कक्षा 12

भारत का इतिहास

कक्षा
12

भारत का इतिहास

भारत का इतिहास

कक्षा–12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : इतिहास

कक्षा – 12

संयोजक एवं लेखक

डॉ. मोहनलाल साहु, पूर्व विभागाध्यक्ष–इतिहास

राजकीय महाविद्यालय, जालोर

लेखकगण

डॉ. शिवकुमार मिश्रा,
व्याख्याता–इतिहास
राजकीय महाविद्यालय,कोटा

बलवीर चौधरी,
व्याख्याता–इतिहास
राजकीय महाविद्यालय,जोधपुर

अनूप कुमार माथुर, प्रधानाचार्य
राज. उच्च माध्यमिक विद्यालय,
रामनगर, अजमेर

संजय श्रीवास्तव, प्रधानाचार्य
राज. उच्च माध्यमिक विद्यालय,
रोटवाड़ा, जयपुर

अरविन्द सिंह भास्कर,
व्याख्याता–इतिहास
राज.उ.मा. विद्यालय, बलारां, सीकर

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक : इतिहास

कक्षा – 12

संयोजक : डॉ. के.एस. गुप्ता, सेवानिवृत्त
23, पद्मिनी मार्ग, रवीन्द्र नगर, उदयपुर

सदस्य

1. डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत, व्याख्याता
महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय
एम.एस.जे. कॉलेज कैम्पस, भरतपुर

2. डॉ. ओम प्रकाश सिंह, व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, माणक चौक, जयपुर

3. श्री संतोष कुमार शर्मा, प्राध्यापक
संस्कृत शिक्षा निदेशालय, शिक्षा संकुल, जयपुर

4. श्री अजय जैन, व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, बून्दी

5. श्री पूनाराम, वरि. अध्यापक
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, भीमाना, सिरोही

दो शब्द

विद्यार्थी के लिए पाठ्यपुस्तक क्रमबद्ध अध्ययन, पुष्टीकरण, समीक्षा और आगामी अध्ययन का आधार होती है। विषय-वस्तु और शिक्षण-विधि की दृष्टि से विद्यालयी पाठ्यपुस्तक का स्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। पाठ्यपुस्तकों को कभी जड़ या महिमामण्डित करने वाली नहीं बनने दी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तक आज भी शिक्षण-अधिगम-प्रक्रिया का एक अनिवार्य उपकरण बनी हुई है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा-9 से 12 के विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा अपना पाठ्यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016-17 से कक्षा-9 व 11 तथा सत्र 2017-18 से कक्षा-10 व 12 की पाठ्यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर ही तैयार कराई गई हैं। आशा है कि ये पुस्तकें विद्यार्थियों में मौलिक सोच, चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करेंगी।

प्रो. बी.एल. चौधरी
अध्यक्ष
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

भूमिका

किसी भी देश का इतिहास उसकी सभ्यता व संस्कृति का दर्पण होता है। प्रस्तुत पुस्तक में भारत के ऐतिहासिक व राष्ट्रीय गौरव को पुनःस्थापित करने का प्रयास किया गया है। भारतीय इतिहास व संस्कृति के वैभवशाली अतीत, सामाजिक, धार्मिक, , राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों, महान् शासकों व महापुरुषों का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मौर्य और गुप्त वंश के शासकों की गौरवमयी उपलब्धियों को सम्मिलित किया गया है। गुप्तों के बाद हर्षवर्द्धन द्वारा राजनैतिक एकीकरण और दक्षिण भारत में चोल शासकों के नेतृत्व में हुए सांस्कृतिक विकास को दर्शाया गया है। यूनानी, शक, कुषाण आदि विदेशी जातियों ने भारतीय परम्पराओं को अपनाया और इनका भारतीय समाज व संस्कृति में विलीनीकरण हो गया। विदेशी आक्रमणकारियों के विरूद्ध यहाँ के शासकों ने अपनी आन–बान और शान के लिए लम्बा किन्तु जीवंत प्रतिरोध किया। 1857 की क्रांति से लेकर भारत के सम्पूर्ण स्वतन्त्रता संग्राम को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। राजस्थान के स्वाधीनता आन्दोलन का विवरण देते हुए किसान एवं जनजातीय आन्दोलनों के माध्यम से आम आदमी के संघर्ष को निकट से देखने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक का लेखन माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा निर्धारित कक्षा–12 के नवीन पाठ्यक्रमानुसार किया गया है। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थी अपनी पाठ्य सामग्री के अध्ययन के साथ ही हमारे अतीत के गौरव व महापुरुषों से प्रेरणा लेकर अपने आप को संस्कारवान बना सकें एवं स्वयं को देशभक्त नागरिक के रूप में तैयार कर सकें। यह भी प्रयास किया गया है कि उन्हें इस बात की भी जानकारी प्राप्त हो सके कि प्राचीनकाल में भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य विश्वव्यापी था। पुस्तक में भारत की पाषाणकालीन संस्कृति से लेकर आधुनिक काल तक की घटनाओं को सम्मिलित किया गया है। स्वतन्त्रता के संघर्ष में आन्दोलनकारियों के साथ ही क्रांतिकारियों के त्याग एवं बलिदान को भी पुस्तक में पर्याप्त स्थान दिया गया है। पुस्तक में उपरोक्त विवरण साक्ष्याधारित है। आशा है विद्यार्थियों के लिए हमारा यह प्रयास उपयोगी सिद्ध होगा।

अपने लेखन में हमने जिन विद्वानों के ज्ञानग्रंथों, चित्रों एवं मानचित्रों की सहायता ली है, हम उन सभी के प्रति आभार प्रकट करते हैं। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान एवं राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल को पुस्तक लेखन व प्रकाशन का कार्य करवाने के लिए हार्दिक बधाई व अभिनन्दन। पुस्तक लेखन में त्रुटियाँ रह सकती हैं, उन्हें दूर करने तथा पुस्तक को और अधिक प्रभावी व आकर्षक बनाने के लिए विद्वज्जन के सुझावों का स्वागत है।

संयोजक एवं लेखकगण

कक्षा – XII

भारत का इतिहास

पूर्णांक–80

1. भारत का वैभवपूर्ण अतीत – 10

(I) ऐतिहासिक स्त्रोतः साहित्यिक– विभिन्न भाषायी ग्रंथ, विदेशी यात्रियों के विवरण, वंशावलियां– पुरातात्विक एवं पुरालेखीय

(II) उपलब्धियां– सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थिति, कला, साहित्य एवं विज्ञान

2. भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ – 15

(I) मौर्य काल –साम्राज्य स्थापना एवं प्रशासन ,अशोक का धम्म

(ii) गुप्त साम्राज्य की स्थापना– आर्थिक स्थिति, कला, साहित्य एवं विज्ञान

(iii) हर्षकालीन भारत

(iv) दक्षिण भारत – चोल प्रशासन, कला एवं साहित्य

(v) विजयनगर साम्राज्य उदय, कला एवं साहित्य का विकास

3. बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण – 10

यूनानी, शक, हूण एवं कुषाण – उद्देश्य तथा प्रभाव

4. मुगल आकमण – उद्देश्य एवं प्रभाव 10

(i) अरब आक्रमण– दाहिर सेन, नागभट्ट, बप्पा रावल एवं अन्य

(ii) तुर्क आक्रमण – पृथ्वीराज चौहान, हम्मीर, रावल रतन सिंह, कुम्भा

(iii) मुगल आक्रमण – राणा सांगा, चन्द्रसेन, महाराणा प्रताप, दुर्गादास, शिवाजी एवं पेशवा।

5. उपनिवेशवादी आक्रमण – 10

(i) भूमिका, उत्पतिं, विस्तार

(ii) भारत में उपनिवेशवादी आक्रमण

(iii) 1857 की क्रान्ति का स्वरूप, कारण एवं परिणाम

6. आधुनिक स्वाधीनता आन्दोलन – 15

(i) सामाजिक आन्दोलन – ब्रहासमाज, आर्यसमाज ,रामकृष्ण मिशन

(ii) क्रान्तिकारी आन्दोलन – जनजातीय प्रतिरोध, अभिनव भारत, हिन्दुस्थान सोशलिस्ट रिपब्लिकन ऐसोशिएशन, गदर पार्टी, आजाद हिन्द फौज

(iii) राजनैतिक आन्दोलन –

(अ)1885–1907 : 1885 के पूर्व की रिथति, अंग्रेजी राज्य के प्रति जन भावना, विभिन्न संगठन, कांग्रेस की स्थापना, उद्देश्य, 1907 तक की कार्यप्रणाली, बंग भंग– कारण एवं प्रभाव।

(ब)1907–1919 : कांग्रेस में आंतरिक विरोध, इसके परिणाम, अंग्रेज सरकार की प्रतिक्रिया, 1909 एवं 1919 के अधिनियमों का आलोचनात्मक विश्लेषण, प्रथम विश्व युद्ध एवं भारत, जलियानवाला हत्याकांड।

(स) 1920–1947 : राजनैतिक वातावरण, असहयोग एवं खिलाफत आंदोलन– परिणाम एवं प्रतिकियाएं, 1922 से 1930 तक के घटनाकम, सविनय अवज्ञा आंदोलन, गोलमेज सम्मेलन, 1935 का अधिनियम, प्रांतीय सरकारों का निर्माण, 1942 का आंदोलन, द्वितीय विश्वयुद्ध एवं भारत, विभाजन एवं स्वतंत्रता, समस्याएं।

7. राजस्थान – **(i)** स्वाधीनता संग्राम– 1857 से 1947 तक **10**

(ii) एकीकरण– 1947 से 1956 तक

विषय सूची

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1	भारत का वैभवपूर्ण अतीत	1
2.	भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	22
3.	बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण	44
4.	मुगल आक्रमण : प्रकार और प्रभाव	58
5.	उपनिवेशवादी आक्रमण	85
6.	आधुनिक भारत का स्वाधीनता आंदोलन	106
7.	राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम एवं एकीकरण	145

अध्याय–1

भारत का वैभवपूर्ण अतीत

भारत भूखण्ड एक पूर्ण भौगोलिक इकाई रहा है। विष्णु पुराण में उल्लेख मिलता है कि समुद्र के उत्तर एवं बर्फीले प्रदेश के दक्षिण में जो प्रदेश है उसका नाम भारतवर्ष है एवं हम सभी भारतीय उसकी संतति है। इसका अधिकांश भाग उष्णकटिबन्धीय वातावरण के क्षेत्र में आता है। उत्तर में हिमालय पर्वतीय क्षेत्र है, जिसमें बल्ख, बदख्खाँ, जम्मू कश्मीर, कांगड़ा, टिहरी, गढवाल ,कुमायूँ, नेपाल, सिक्कम, भूटान, असम व हिमालय की ऊँची पर्वत श्रेणियाँ सम्मिलित हैं। पश्चिम में हिन्दुकुश सफेदकोह, तुकेमान तथा किर्थर पर्वतश्रेणियों ने उत्तर से दक्षिण की विस्तृत होकर, इसे पश्चिमी क्षेत्र से पृथक किया है।

. भारतीय इतिहास की जानकारी के स्रोत

वस्तुतः इतिहास के अन्तर्गत मानव का सम्पूर्ण अतीत समाहित रहता है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो। विज्ञान, अर्थशास्त्र , समाज , राजनीति तथा धर्म व दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में किये गये कार्य कलाप इतिहास की श्रेणी में आते हैं। अतीत में मानव के जिन क्रिया–कलापों को तथ्यों के आधार पर हम पूर्ण विश्वास के साथ प्रमाणित कर सकें, उन्हें इतिहास में रख सकते हैं क्योंकि अतीत का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता, केवल उसके विषय में कुछ स्रोत के रुप में साक्ष्य प्राप्त होते हैं जिनके आधार इतिहासकार इतिहास का निरूपण करता है। वर्तमान में इतिहासकार अतीत की केवल घटनाओं की जानकारी देना ही उपयुक्त नहीं समझते बल्कि उसके कारणों की भी विस्तृत जाँच पड़ताल करते हैं। इसके मूल में मानव के आन्तरिक मनोगत भूमिका होती है और इतिहासकार का मानव संस्कृति का अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य होता है।

अतीत की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए इतिहासकार सभी प्रकार के साधनों को उपयोग करता है, इन साधनों को स्रोत, साक्ष्य और प्रमाण कहा जाता है। इन्हीं के आधार पर वह विश्वसनीय विवरण तैयार करता है। इसलिए कहा जाता है कि इतिहासकार इतिहास की पुनः रचना करता है। इतिहास की उन्हीं घटनाओं को तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है जो साक्ष्य एवं प्रमाणों से सिद्ध हों। इसलिए इतिहासकार का मूल मंत्र है – 'नामूलं लिख्यते किंचित' (अर्थात् बिना मूल या आधार के कुछ नहीं लिखना चाहिए)। भारतीय इतिहास की जानकारी के स्रोतों को मुख्य रुप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. साहित्यिक स्रोत
2. पुरातात्विक व पुरालेखीय स्रोत।

साहित्यिक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के साहित्यिक स्रोतों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) धार्मिक साहित्य – ब्राह्मण साहित्य, बौद्ध सहित्य, जैन साहित्य

(ब) धर्मेतर साहित्य–ऐतिहासिक ग्रन्थ, विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थ, क्षेत्रीय साहित्य, विदेशी विवरण

(स) वंशावलियाँ – इतिहास के स्रोत के रूप में

(अ) धार्मिक साहित्य

ब्राह्मण साहित्य– ब्राह्मण साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। वेदों के द्वारा हमें सम्पूर्ण आर्य सभ्यता व संस्कृति की जानकारी मिलती है। वेद ज्ञान के समृद्ध भण्डार हैं। वेदों की संख्या चार है ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद। सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद है जिसमें 10 मण्डल व 1028 सूक्त हैं। प्रत्येक वेद के चार भाग हैं – संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। वेदों की व्याख्या संहिताओं में की गई है। ऋग्वेद छन्दों में रचा गया है।

यजुर्वेद में यज्ञों से सम्बन्धित विवरण मिलता है। सामवेद में आर्यों द्वारा गायी जाने वाली सामग्री है। अथर्ववेद की रचना अथर्वा ऋषि ने की थी। इसमें विषय भी विविध है। इसमें ब्रह्मज्ञान, धर्म समाज–निष्ठा, औषधि प्रयोग, शत्रुओं का दमन, रोग निवारण, तन्त्र–मन्त्र, आदि विषय सम्मिलित है। इसके उपरान्त यज्ञ और कर्मकाण्डों पर आधारित जो साहित्य रचा गया, वे 'ब्राह्मण ग्रन्थ' कहलाते हैं। आरण्यक ग्रन्थों में जिनकी रचना ऋषियों द्वारा वनों में की गई है,दार्शनिक विषयों का विवरण मिलता है, जबकि उपनिषदों में गूढ़ विषयों एवं नैतिक आचरण नियमों की जानकारी मिलती है। वैदिक साहित्य को ठीक तरह से समझने हेतु वेदांग साहित्य की रचना की गई

जिसके छः भाग हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिष। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद व शिल्पवेद चार उपवेद भी हैं, जिनसे चिकित्सा, वास्तुकला, संगीत, सैन्य विज्ञान आदि की जानकारी मिलती है।

वेदों के उपरान्त विभिन्न ऋषियों द्वारा स्मृति ग्रन्थों की रचना की गई। इनमें मनुस्मृति व याज्ञवल्क्य स्मृति प्रमुख है। रामायण व महाभारत महाकाव्य भारतीय इतिहास की जानकारी के अथाह कोष है। इनसे समाज, धर्म व राजनीति की ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। हमारे पुराण प्राचीन काल के इतिहास ग्रन्थ हैं। इनकी संख्या 18 है। इनमें मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, वायु, विष्णु, भागवत एवं मत्स्य प्रमुख हैं। मत्स्य सर्वाधिक प्राचीन है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास की सर्वाधिक जानकारी इन्हीं से मिलती है। इनके पाँच प्रमुख विषय है – सर्ग, प्रतिसर्ग, मनवन्तर, वंश, वंशानुचरित।

बौद्ध साहित्य :– प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में बौद्ध साहित्य की प्रमुख भूमिका रही है। बौद्ध साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ त्रिपिटक है। ये तीन हैं– सुत्तपिटक, विनय पिटक व अभिधम्म पिटक। इसलिए इनको त्रिपिटक कहा जाता है। इनमें बौद्ध धर्म के नियम–आचरण संग्रहीत हैं। बौद्ध ग्रन्थों में दूसरा महत्वपूर्ण योगदान जातक ग्रन्थों का है। इनमें गौतम बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक पक्षों की जानकारी मिलती है। इनकी संख्या 549 है। पाली भाषा के अन्य बौद्ध ग्रन्थों में मिलिन्दपन्हो, दीपवंश व महावंश है। मिलिन्दपन्हो में यूनानी आक्रमणकारी मीनेण्डर व बौद्ध भिक्षु नागसेन के मध्य वार्ता का विवरण है। दीपवंश व महावंश में सिंहलद्वीप के इतिहास का वर्णन है।

पाली भाषा के अलावा संस्कृत भाषा में भी बौद्ध ग्रन्थ लिखे गए हैं। महावस्तु ग्रन्थ गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र पर आधारित ग्रन्थ है, जबकि ललितविस्तार में लेखक ने गौतम बुद्ध को दैवीय शक्ति के रूप में निरूपित किया है और उनके अद्भुत कार्यो से सम्बन्धित जीवन वृत्त अंकित किया है। मंजुश्री मूलकल्प, अश्वघोष का बुद्धचरित्र एवं सौंदरानन्द काव्य से भी ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। इनमें गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र एवं शिक्षाओं की जानकारी मिलती है। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान में सत्कर्म एवं वीरोचित कार्यों का वर्णन है। मध्य व पश्चिमी एशिया, तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्मा, श्रीलंका आदि देशों में भारतीय बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। जिनमें प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री निहित है।

जैन साहित्य :– बौद्ध साहित्य की तरह ही जैन साहित्य में भी पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। जैन साहित्य में आगम सबसे प्रमुख हैं। इसके अन्तर्गत 12 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्ण, 6 छेद सूत्र, 1 नन्दिसूत्र, 1 अनुयोगद्वार व 4 मूल सूत्र शामिल है। इसकी रचना चौथी शताब्दी ई. पूर्व से छठी शताब्दी के लम्बे समय में विभिन्न धार्मिक संगितियों व व्यक्तियों के माध्यम से हुई थी। जैन साहित्य प्राकृत भाषा में लिखा गया है। अन्य जैन ग्रन्थों में कथाकोष, परिशिष्टपर्वन, भद्रबाहुचरित, कल्पसूत्र, भगवती सूत्र आदि प्रमुख है जिनसे ऐतिहासिक विवरण प्राप्त होता है। आचरांगसूत्र में जैन साधुओं के आचार व्यवहार से सम्बन्धित नियमों का संकलन है। परिशिष्टपर्वन में तत्कालीन राजाओं और जैन मुनियों के सम्बन्धों के बारे में जानकारी मिलती है। भद्रबाहुचरित में जैन मुनि भद्रबाहु के साथ ही चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन के अन्तिम समय की घटनाओं का वर्णन मिलता है।

(ब) धर्मेत्तर साहित्य – इस श्रेणी में प्राचीन भारत में धर्म के अतिरिक्त अन्य विषयों पर लिखा गया साहित्य आता है। इसमें ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थ, नाटक कथा कोष, काव्य आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

(i) ऐतिहासिक ग्रन्थ – कल्हण की राजतरंगिनी विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जिसकी रचना 1150 ई. में की गई थी। इसमें प्राचीन समय से बारहवीं शताब्दी तक का कश्मीर का इतिहास है। अन्य प्रमुख ग्रन्थ ऐतिहासिक आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य या कौटिल्य का अर्थशास्त्र है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तत्कालीन राजप्रबंध, अर्थव्यवस्था, सामाजिक व धार्मिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है। कौटिल्य ने इतिहास के अन्तर्गत पुराण इतिवृत्त, आख्यान, उदाहरण, धर्मशास्त्र, एवं अर्थशास्त्र को सम्मिलित किया है।

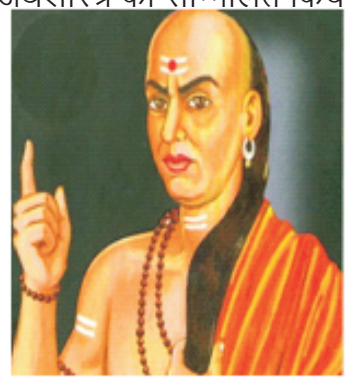

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य

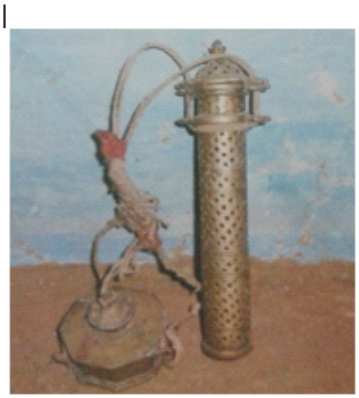

वंशावलीलेखकों की कलम व स्याहीदान

इन ग्रन्थों के अलावा जीवन चरित सम्बन्धी ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं जिनसे उन शासकों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। इन ग्रन्थों में बाणभट्ट का हर्षचरित, वाक्पति का गौढवहो, विल्हण का विक्रमांकदेव चरित, जयसिंह का कुमारपाल चरित, नयचन्द का हम्मीर महाकाव्य, पद्मगुप्त का नवसहसांक चरित, बल्लाल का भोज चरित एवं जयानक की पृथ्वीराज विजय प्रमुख है।

(ii) विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थ – विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थों में अनेक नाटक, व्याकरण ग्रन्थ, टीका, काव्य, कथा साहित्य एवं कोष की रचना की गई, जिनसे उस समय के शासकों, सामाजिक व आर्थिक जीवन की जानकारी मिलती है। पाणिनी का अष्टाध्यायी, पांतजलि का महाभाष्य, गार्गीसंहिता, कालीदास का मालविकाग्निमित्र, विशाखादत्त का मुद्राराक्षस, शूद्रक का मृच्छकटिकम्, मेघातिथि की मिताक्षरा व कामन्दक का नीतिसार ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। कथा साहित्य एवं कोष साहित्य की दृष्टि से विष्णु शर्मा का पंचतंत्र, गुणाढ्य की कथा मंजरी, क्षेमेन्द्र की वृहतकथामंजरी, सोमदेव की कथासरित्सागर, अमरसिंह का अमरकोष आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं, जिनसे तत्कालीन समाज की जानकारी मिलती है। ये ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(iii) क्षेत्रीय साहित्य – क्षेत्रीय भाषाओं के ग्रन्थों में भी प्रचर

ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। प्राचीन तमिल साहित्य संगम साहित्य कहलाता है। इनसे चोल व पल्लव शासकों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। इस साहित्य के प्रणेता अगस्त्य ऋषि थे। तेलगू ग्रन्थ धूर्जटि द्वारा लिखित कृष्णदेवराय विजयुम विजय नगर राज्य के शासक कृष्णदेवराय की उपलब्धियों की जानकारी देता है। राजस्थानी भाषा के ग्रन्थों में चन्दबरदाई का पृथ्वीराज रासो, पद्मनाभ का कान्हड़दे प्रबन्ध, बीठू सूजा का राव जैतसी रो छन्द, सूर्यमल मिश्रण का वंश भास्कर, नैणसी का नैणसी की ख्यात, बांकीदास की ख्यात आदि प्रमुख हैं।

(iv) विदेशी विवरण (साहित्य) – प्राचीन काल से ही भारत की सांस्कृतिक एवं आर्थिक उपलब्धियां विश्व को आकर्षित करती रही हैं। भारत के व्यापारिक सम्बन्ध विश्व के देशों से थे। धर्म व दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने व अध्ययन हेतु लोग विदेशों से यहाँ आते थे। इसीलिये विदेशी लेखक भी भारत से प्रभावित हुए और उन्होंने भारत के सम्बन्ध में पर्याप्त विवरण दिया है लेकिन इस विवरण का सावधानी पूर्वक अध्ययन करने कीआवश्यकता है।

यूनानी साहित्य :– यूनानी लेखकों में टेसियस, हेरोडोटस, निर्याकस, एरिस्टोब्युलस, आनेक्रिट्स, स्ट्रेबो, एरियन एवं स्काई लेक्स प्रमुख हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक चन्द्रगुप्त के दरबार में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज द्वारा लिखित 'इंडिका' है। यूनानी विवरणों से चन्द्र गुप्त मौर्य के प्रशासन, समाज एवं आर्थिक स्थिति के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। यूनानी साहित्य में टॉलमी का भूगोल, प्लिनी दी एल्डर की नेचुरल हिस्ट्री, एरिस्टोब्यूलस की 'हिस्ट्री ऑफ दी वार' स्ट्रेबो का भूगोल आदि विशेष उल्लेखनीय है। 'पेरीप्लस ऑफ दी एरिथ्रीयन सी' पुस्तक में बन्दरगाहों व व्यापार का विस्तृत विवरण है।

चीनी विवरण – चीनी यात्रियो में फाह्यान, सुंगयुन, ह्वेनसांग एवं इत्सिंग का वृतान्त महत्वपूर्ण है। फाह्यान गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त II के समय (399–414 ई.) भारत आया था। ह्वेनसांग को 'यात्रियों का राजकुमार' कहा जाता है। उसने नालन्दा विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। वह हर्षवर्द्धन के राज्य काल में 629 ई. से 644 ई. में भारत आया था और उसने अपनी पुस्तक सीयूकी में भारत के समकालीन इतिहास का वर्णन किया है। इत्सिंग ने सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 672 से 688 ई. तक भारत भ्रमण किया। इससे नालन्दा, विक्रमशिला विश्वविद्यालय के साथ ही भारतीय संस्कृति व समाज की भी जानकारी मिलती है।

तिब्बती वृतान्त– तिब्बती वृतान्त में तारानाथ द्वारा रचित कंग्यूर व तंग्यूर ग्रन्थों को उपयोगी माना गया है। अरबी यात्री और भूगोलवेत्ताओं ने भी भारत के सम्बन्ध में जानकारी दी है। मसूदी ने अपनी पुस्तक 'मिडास ऑफ गोल्ड' में भारत का विवरण दिया है और लिखा है कि भारत का राज्य स्थल व समुद्र दोनों पर था। सिन्ध के इतिहास 'चचनामा' में तथा सुलेमान नवी की पुस्तक 'सिलसिलात–उल–तवारीख' में पाल–प्रतिहार शासको के बारे में लिखा है। अरबी लेखकों में अल्बेरूनी (तारिख ए हिन्द) सबसे महत्वपूर्ण है, जिसने संस्कृत भाषा सीखी व मूल स्रोतों का अध्ययन करके अपनी पुस्तक तारीख–उल–हिन्द में भारतीय समाज व संस्कृति के बारे में लिखा है।

(स) इतिहास के स्रोत के रूप में वंशावलियां

भारतीय इतिहास में वंश लेखन परम्परा का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। वंशावली लेखन परम्परा व्यक्ति के इतिहास को शुद्ध रूप से सहेज कर रखने की प्रणाली है। यह एक ऐसी परम्परा है जिसमें वंशावली लेखक हर जाति–वर्ग के घर–घर जाकर प्रमुख लोगों की उपस्थिति में संक्षेप में सृष्टि रचना से लेकर उसके पूर्वजों की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक घटनाओं का वर्णन करते हुये उस व्यक्ति का वंश क्रम हस्तलिखित पोथियों में अंकित करता है। वंशावलियों के अध्ययन से ही हमें जानकारी मिलती है कि हमारे पूर्वज कौन थे ? वंशावली लेखकों में मुख्य रूप से बड़वा, जागा, रावजी एवं भाट,

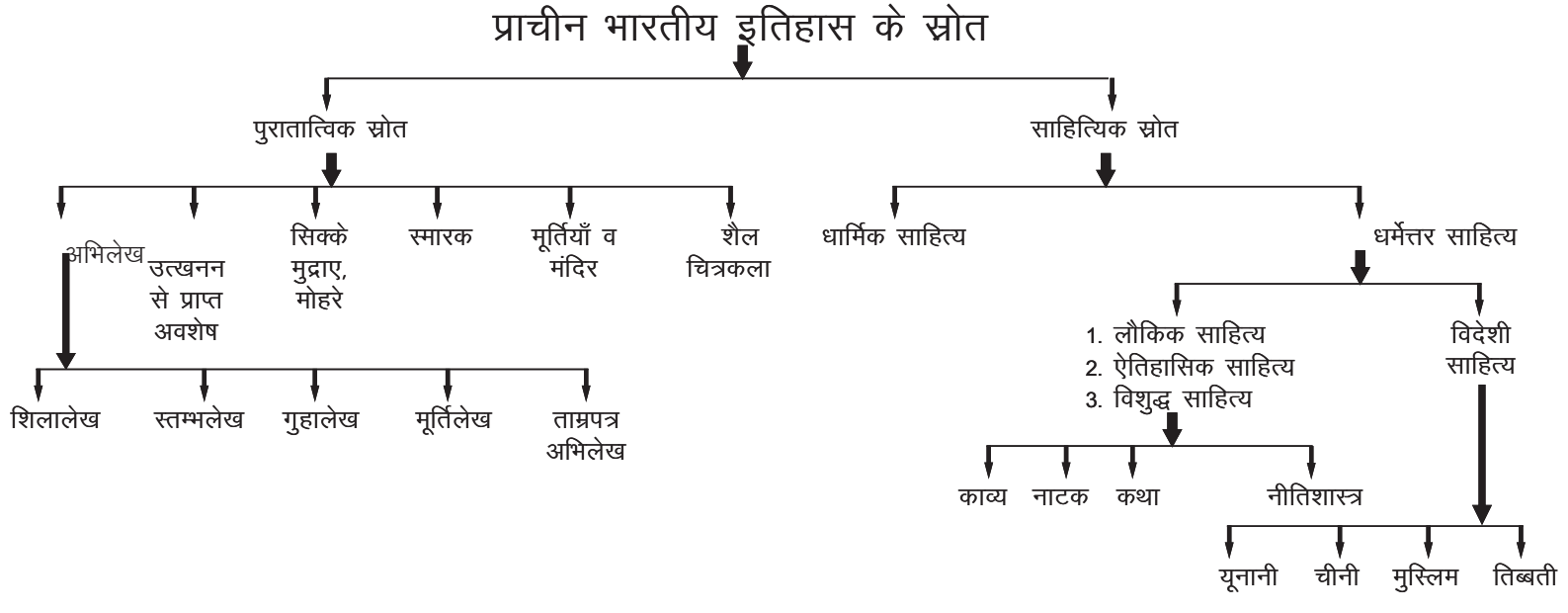

तीर्थ पुरोहित, पण्डे, बारोट आदि प्रमुख है। ऐतिहासिक स्रोत की दृष्टि से वंशावलियाँ निम्नांकित बिन्दुओं की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं –

(1) पुरोहितों द्वारा निर्मित वंशावलियाँ या बहियाँ प्रामाणिक दस्तावेजी न्यायिक साक्ष्य के रूप में मान्य है। इसमें पारिवारिक सम्बन्धों के विषय में कागज इत्यादि पर वर्णन किया जाता है इसका उद्देश्य उनके सदैव रिकार्ड के रूप में रखने का होता है। वर्णन में अक्षरों के साथ ही चिह्नों का भी प्रयोग करते हैं। मौखिक साक्ष्य से लिखित साक्ष्य अधिक प्रभाव पूर्ण होता है। निश्चित रूप से बहियाँ या वंशावलियाँ, एक न्यायिक दस्तावेज है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 के अनुसार वंशावलियों बहियों इत्यादि को सुसंगत न्यायिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है।

जगदीश प्रसाद बनाम सरवन कुमार AIR 2003 P & H मामले में न्यायालय ने पण्डों की बहियों में की गई प्रविष्टियों को साक्ष्य के रूप में ग्रहय माना। ऐसे कई मामले हैं जिसमें वंशावलियों व बहियों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है।

(2) वंशावली लेखको को लोक इतिहासकार भी कह सकते हैं। पुरातन एवं मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में वंशावलियाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत रही हैं। हमारे पुरातन ग्रन्थ पुराणों में जो इतिहास उपलब्ध है उसमें वंशावलियों का महत्वपूर्ण आधार रहा है। कई ऐतिहासिक घटनाओं के प्रमाण वंशावलियों से मिलते हैं।

(3) वंशावलियों में प्रत्येक जाति व प्रत्येक व्यक्ति के इतिहास का लेखन हुआ है। उनके वंशानुक्रम की जानकारी हमें वंशावलियों से मिलती है। वंश लेखकों ने जातीय सामाजिक इतिहास की भी जानकारी दी है। समाज जिन महापुरूषों को अपना आदर्श मानता है, उनकी जानकारी भी हमें वंशावलियों से प्राप्त होती है। वंशावली लेखन परम्परा की शुरूआत वैदिक ऋषियों द्वारा समाज को सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित करने की दृष्टि से की गई थी, जो हजारों वर्षों से आज भी अनवरत् जारी है। वंशावली परम्परा के हस्तलिखित ग्रन्थों से अनेक ऐतिहासिक पुरुषों का परिचय प्राप्त होता है।

(4) समाज के आर्थिक जीवन के विकास, लोगों के व्यवसाय आदि का उल्लेख भी वंश लेखकों द्वारा किया गया है। वंशावली लेखक एक निश्चित समय तक व्यक्ति के आवास पर ही निवास करके इसका लेखन करता था। इसलिए उसमें यथार्थता दिखाई पड़ती है।

(5) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी परम्परा, संस्कृति, मूल निवास, विस्तार, वंश, कुलधर्म, कुलाचार, गोत्र व पूर्वजों के नाम प्राप्त करने का सर्वाधिक विश्वनीय स्रोत वंशावलियाँ ही हैं।

(6) वंशावलियों द्वारा धर्मान्तरित हिन्दुओं को अपनी जड़ों का परिचय देकर आपसी विद्वेष को कम किया जा सकता है। इससे धार्मिक उन्माद और अलगाववाद को कम करके देश में साम्प्रदायिक सहयोग और सद्भाव की भावना को बढ़ावा मिल सकता है। पुराणों में भी जो पाँच लक्षण (विषय) बताए गए हैं, उनमें वंश रचना व वंशानुचरित प्रमुख लक्षण के रूप में अंकित है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मनवन्तराणि च ।
वंशानुचरितम् चैव पुराणं पंच लक्षणाम् ।।

अर्थात् सृष्टि का सृजन, प्रलय का आगमन, वंशों की रचना, काल अवधि गणना एवं वंशचरित की चर्चा करना। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वंशावलियों के माध्यम से हमें इतिहास के महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी मिलती है। आज भी वंशावली लेखक घर घर जाकर इनका वाचन करते हैं।

2. पुरातात्विक स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोत पुरातात्विक स्रोत हैं। पुरातत्व का तात्पर्य अतीत के अवशेषो के माध्यम से मानव क्रिया–कलापों का अध्ययन करना है। हड़प्पा–मोहनजोदड़ो के उत्खनन से भारतीय सभ्यता व संस्कृति का प्रारम्भ 6,000 ई. पू. से 5000 ई. पूर्व तक पीछे चला गया। कलिंग नरेश खारवेल की जानकारी हाथी गुम्फा अभिलेख से ही मिलती है। इतिहास के भौतिक साक्ष्य इन्हीं स्रोतों में है। पुरातात्विक स्रोतो का विभाजन निम्नानुसार किया जा सकता है –

(1) उत्खनन से प्राप्त पुरावशेष (2) अभिलेख (4) सिक्के व मुद्राएं (3) स्मारक व भवन (5) मूर्तियाँ, शैलचित्र कला व अन्य कलाकृतियाँ आदि।

(1) उत्खनन से प्राप्त अवशेष (मृद्भाण्ड, औजार व उपकरण)

पाषाणकालीन मानवीय संस्कृति व सभ्यता के बारे में जानकारी के लिए उत्खनन से प्राप्त पुरावशेष ही मुख्य स्रोत हैं। प्राप्त औजारों एवं मृद्भाण्डों (मिटटी के बर्तन) से हम भारत में मानव की विकास यात्रा को समझ सकते है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की जानकारी उत्खनन से प्राप्त सामग्री पर ही आधारित है। प्रारम्भ में तो पाषाण उपकरण अधिक प्राप्त हुए। जब मृद्भाण्ड का मानव उपयोग करने लगा तो सर्वाधिक मात्रा में इनके अवशेष मिले हैं। इतिहासकारो के अनुसार प्राचीन भारत में चार मृद्भाण्ड संस्कृतियाँ विद्यमान रही हैं –

(i) गेरूए रंग युक्त मृद्भाण्ड संस्कृति (Ochre-coloured Pottery or OCP संस्कृति)
(ii) काले व लाल मृद्भाण्ड परम्परा (Black & Red Ware or BRW संस्कृति)
(iii) चित्रित स्लेटी रंग की मृद्भाण्ड संस्कृति (Painted Grey Ware or PGW संस्कृति)
(iv) उत्तरी काली चमकीली परम्परा (North (Black Painted Ware or NBPW संस्कृति)

उत्खनन में सड़कें, नालियाँ, भवन, ताम्बे व कांस्य सामग्री, औजार, बर्तन, आभूषण आदि पुरावशेष मिले हैं, जिससे तत्कालीन मानव समाज व संस्कृति की जानकारी मिलती है।

(2) अभिलेख

भारतीय पुरास्रोत में अभिलेखों का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। तिथियुक्त एवं समसामयिक होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से इनका महत्व अधिक है। शासन विशेष के तिथिक्रम एवं उपलब्धियों की जानकारी इन अभिलेखो से ही मिलती है। स्थानाभाव के कारण इसमें अनावश्यक सामग्री भी नहीं मिलती। इनमें सम्बन्धित शासक व व्यक्तियों के नाम, वंश, तिथि, कार्य व समसामयिक घटनाओं आदि का उल्लेख होता है।

जैसे अशोक के अभिलेख, खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख,गौतमीपुत्र सातकर्णी का नासिक अभिलेख एवं प्रयाग प्रशस्ति के बिना प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी अधूरी है।

अशोक के अभिलेख खरोष्ठी एवं ब्राहमी लिपि में है। अशोक के शिलालेख, स्तम्भ लेख और गुहालेख तीनो प्रकार के अभिलेख मिलते हैं। अशोक के अभिलेख कला के भी उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये अभिलेख लम्बे–कलात्मक स्तम्भ व शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। जूनागढ़ का रूद्रदामन का शिलालेख भी काफी प्रसिद्ध है। स्तम्भ लेखों में अशोक के अलावा चन्द्र का मेहरोली स्तम्भ लेख, स्कन्द गुप्त का भीतरी स्तम्भ लेख, समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख प्रमुख है। ताम्र लेख से गुप्तो के इतिहास की जानकारी मिलती है। प्रभावती गुप्ता का ताम्र लेख विशेष उल्लेखनीय है। गुहालेखों में अशोक के बराबर गुहालेख, दशरथ के नागार्जुनी गुहालेख, सातवाहनों के नासिक व नानाघाट गुहालेख अधिक उपयोगी है। कई मूर्तियों के भी शीर्ष या अधोभाग में शासकों ने लेख लिखवाए हैं, जिनसे उनके बारे में जानकारी मिलती है। ये मूर्ति लेख कहलाते हैं। इन अभिलेखों के द्वारा विभिन्न शासको के समय की महत्वपूर्ण घटनाओं तथ्यों की जानकारी के साथ ही आर्थिक सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक जानकारियां मिलती हैं।

(3) सिक्के व मुद्राएँ

प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी में सिक्कों, मुद्राओं व मोहरों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनसे शासकों के नाम, तिथियाँ, चित्र, वंशपरम्परा, धर्म, गौरवपूर्ण कार्यों, कला, शासक की रूचि आदि की जानकारी मिलती है। गुप्तकालीन सिक्कों से हमें महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। समुद्रगुप्त के वीणा वादक व व्याघ्र निहन्ता सिक्के उसकी संगीत के प्रति रूचि व शौर्य को प्रदर्शित करते है।

सिक्के पर नहपान का चित्र

समुद्रगुप्त का वीणाधारी सिक्का

इसी प्रकार कुमारगुप्त के कार्तिकेय प्रकार के सिक्के उसके शैव अनुयायी होने की पुष्टि करते है। सिक्कों से शासकों के राज्य विस्तार, उनके आर्थिक स्तर, धार्मिक विश्वास, कला, विदेशी व्यापार आदि की जानकारी मिलती है। सबसे पहले प्राप्त होने वाले सिक्के चाँदी व ताँबे के हैं। इन पर केवल चित्र है। इन्हे पंचमार्क या आहत सिक्के कहा जाता है। मौर्यों के बाद हिन्द–यूनानी शासकों ने लेख युक्त मुद्रा प्रारम्भ की। कुषाणों के समय स्वर्ण व ताम्र सिक्कें प्रचलन में आए। गुप्त काल में स्वर्ण व रजत मुद्रा चलन में थी। सिक्कों पर राजा का नाम, राज चिह्न, धर्म चिह्न व तिथि अंकित होती थी। कुछ विशेष घटनाओं की जानकारी भी सिक्को से मिलती है। समुद्र गुप्त के सिक्कों पर अश्व व यूप के चिह्न है व अश्वमेध पराक्रम लिखा है, इससे समुद्र गुप्त द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किए जाने की जानकारी मिलती है। इसे एक सिक्के पर उसे वीणा बजाते हुये दिखाया है। बयाना (राजस्थान) व जोगलथम्बी (नासिक) से सिक्को का ढेर मिला है। जोगलथम्बी के सिक्को से शक सातवाहन संघर्ष की जानकारी मिलती है। गौतमीपुत्र ने शकों के सिक्कों पर अपना नाम अंकित करवाकर सिक्के जारी किये। सिक्कों के साथ ही मुहरें भी प्रचलित थी। इन पर राजा, सामन्त, पदाधिकारीगण, व्यापारी या व्यक्ति विशेष के हस्ताक्षर व नाम होते थे। बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) से 274 मिट्टी की मुहरें मिली है।

सिक्कों से प्राप्त जानकारी :–

–तिथिक्रम निर्धारण
–धार्मिक विश्वास की जानकारी
–कला पर प्रकाश
–व्यापार व आर्थिक स्तर की जानकारी
–साम्राज्य की सीमाओं का ज्ञान
–नवीन तथ्यों का उद्घाटन
–शासकों की रुचियों का ज्ञान

(4) स्मारक व भवन

पुरातात्विक स्रोतों के अन्तर्गत भूमि पर एवं भूगर्भ में स्थित सभी अवशेष, स्तूप, चैत्य, विहार, मठ, मन्दिर, राजप्रसाद, दुर्ग व भवन सम्मिलित हैं। इससे उस समय की कला, संस्कृति व राजनैतिक जीवन की जानकारी मिलती है। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के अवशेषों से हमें वहां की सभ्यता व संस्कृति की जानकारी मिलती है। देवगढ़ व भीतरीगांव मन्दिर से गुप्तकालीन धार्मिक व सांस्कृतिक अवस्था की जानकारी मिलती है। स्मारकों से ही दक्षिणी–पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के विस्तार की जानकारी मिलती है। कम्बोडिया के अंगकोरवाट के स्मारक, जावा के बोरोबुदूर के मन्दिर भारत का अन्य देशों में औपनिवैशिक व सांस्कृतिक विस्तार की कहानी कहते है।

(5) मूर्तियां, शैलचित्र कला व अन्य कलाकृतियां– उत्खनन में अनेक स्थानों से विभिन्न मूर्तियाँ, टेराकोटा की कलाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं जो हमें उस समय के धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन की जानकारी देती हैं। इसके अलावा चित्रकला मानव जीवन को प्रमाणिक रूप से अभिव्यक्त करने का मुख्य साधन है। प्रागैतिहासिक काल में अनेक शैलाश्रय (प्रारम्भिक मानव का निवास स्थान) में तत्कालीन मानव द्वारा चित्रांकन किया गया है, जिसे शैलचित्र कला कहा जाता है। इनमें जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति चित्रों के माध्यम से की गयी है। इनसे प्रारम्भिक मानव के सांस्कृतिक, सामाजिक, व धार्मिक जीवन की जानकारी मिलती है। दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान, उत्तरी राजस्थान, शेखावाटी क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में ऐसे शैलचित्र मिले हैं। मध्य प्रदेश का भीमबेटका, व पचमढ़ी भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार अजन्ता की चित्रराशि, दुर्गों व महलों के भित्तिचित्र भी प्राचीन भारतीय इतिहास की अभिव्यक्ति करते हैं।

वैभवशाली भारत की उपलब्धियाँ

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म, समाज, कला साहित्य एवं विज्ञान प्रारम्भ से ही उत्कृष्ट रहे हैं। भारत को विश्व गुरू का दर्जा प्राप्त था। आर्थिक समृद्धता की बात करें तो भारत को सोने की चिड़िया कहा गया है। नैतिक एवं मानवीय आचरण में भी भारत सदैव अग्रणी रहा है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में भारत भूमि को माता(माता भूमिःपुत्रोऽहं पृथिव्याः) के रूप में माना है और सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में – 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में स्वीकार किया है। सम्पूर्ण मानव के कल्याण (सर्वेभवन्तु सुखिनः,सर्वेसन्तु निरामया) की कामना करने वाली हमारी संस्कृति ने एक आदर्श प्रस्तुत किया है। ऐसे कई उदाहरण है, जिनसे प्रकट होता है कि हमारा अतीत अत्यधिक वैभवशाली रहा है। भारत की इन उपलब्धियों का बिन्दुवार विवरण निम्नानुसार है।

भारतीय संस्कृति का विश्व संचार

प्राचीन काल में जिस संस्कृति ने अपना सम्पूर्ण विश्व में संचार किया, वह है भारतीय संस्कृति और यह संचार सैनिक आक्रमण नहीं, अपितु सांस्कृतिक विनिमय के स्वरूप का था।। भारत का इतिहास एवं संस्कृति अपने प्रारम्भिक काल से ही गौरवमयी रही है। उत्खनन एवं पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर भी हमें भारतीय संस्कृति का विश्व स्वरूप दिखायी देता है। चीन की दीवार के उत्तरी दरवाजे पर संस्कृत भाषा में आज भी उल्लेख है 'यक्षों के द्वारा परमेश्वर हमारी रक्षा करें'। भारतीय संस्कृति एवं भारतीय इतिहास की श्रेष्ठता का उल्लेख भारतीय ग्रन्थों में ही नहीं है, अपितु पश्चिमी इतिहासकारों और विद्वानों ने भी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता के उद्‌गार प्रकट किये है। इतिहासकार म्यूर ने लिखा हैं कि भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की भव्यता, विविधता और वनस्पतियों के उत्पादन की समूची दुनिया में बराबरी नही। सरवाल्टर रैले ने लिखा है कि प्रथम मानव प्राणी का निर्माण भारत खण्ड में हुआ । कर्नल अल्काट ने मानव संस्कृति का उद्‌गम स्थल भारतवर्ष को ही माना है। जब फ्रांसीसी दार्शनिक वाल्टेयर को ऋग्वेद की एक प्रति भेंट की गई, तब उनके उद्‌गार थे– यह देन इतनी अमूल्य है कि पाश्चात्य राष्ट्र सदैव पूर्व के प्रति ऋणी रहेंगे। मैक्समूलर ने लिखा कि यदि कोई मुझसे पूछे कि मानवी अन्तःकरण एवं बुद्धि की परिपूर्णता व शक्ति किस देश में अधिक चरम सीमा तक पहुँची है ? संसार के गूढ़तम रहस्यों का विश्लेषण किस देश में हुआ है ? प्लेटो केंट आदि के दर्शन के अध्ययन के बाद भी अध्ययन योग्य विषय किस देश में सुलझाये गये हैं ? तो मैं त्रिवार उत्तर दूंगा हिन्दुस्तान में। मैक्समूलर के अनुसार पेरुदेश (दक्षिण अमेरिका) अपने आपको सूर्यवंशी मानते हैं। विजयदशमी पर रामसीतोत्सव व बाद में रामजन्मोत्सव आज भी मनाते हैं।इस प्रकार हम कह सकते है कि भारत प्राचीन काल से ही वैभवशाली एवं समृद्ध रहा है।

अग्निपुराण में भारत को जम्बूद्वीप कहा गया है। समुद्री पार के भारतीय प्रदेशों को दीपान्तर कहा जाता था। इनमें (नवद्वीप) नौ द्वीप थे। सांस्कृतिक भारत में वर्तमान जावा, सुमात्रा, मलाया, कम्बुज, श्याम, चम्पा, बर्मा, लंका आदि सम्मिलित थे। यूरोपीय विद्वान सिलवेनलेवी ने 'भारतीय द्वीप समूह' शब्द का प्रयोग किया है। अरबी भूगोलवेत्ता मसूदी ने भी लिखा है कि प्राचीन काल में भारत भूमि और समुद्र दोनों पर फैला हुआ था, उसकी सीमा जाबाग (सुमात्रा–जावा) तक फैली हुई थी। इस प्रकार उस समय के सांस्कृतिक भारत की सीमाएं अफगानिस्तान से लेकर सम्पूर्ण दक्षिणी–पूर्वी एशिया में फैली हुई थी। शक्तिशाली जलयानों में बैठकर भारतीय ब्रह्म देश, श्याम, इण्डोनेशिया, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, बोर्निओ, फिलीपीन, जापान व कोरिया तक पहुँचे और वहीं अपना राजनैतिक तथा सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया। प्रशान्त महासागर के द्वीपों से ऐसे ही अन्य नाविक एवं पर्यटक मध्य अमेरिका के मैक्सिको, हांडुरास, दक्षिण अमेरिका के पेरू, बोलीविया तथा चिली के विभिन्न स्थानों पर पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने अपने निवास बनाये।

इसी प्रकार पश्चिमी भारत के बंदरगाहों से द्रविड़ पर्यटक तथा नाविक सोमालीलैण्ड से लेकर दक्षिणी अफ्रीका तक के समस्त पूर्वी समुद्र तट पर जगह–जगह अपने वासस्थल स्थापित करने में सफल हुए। भारतीय शूरवीरों की एक शाखा हिमालय पर्वत के उत्तर में पूर्व की ओर बढ़ी और इन्होंने दक्षिणी रूस के विभिन्न राज्यों तिब्बत, मंगोलिया, सिंक्यांन, उत्तरी चीन, मंचूरिया, साइबेरिया और चीन तक पहुँचकर भारतीय संस्कृति का प्रभाव निर्मित किया। भारतवसियों की एक शाखा ने पश्चिमी द्वार से प्रस्थान किया और गांधार, पर्शिया, ईरान, इराक, तुर्किस्तान, अरब, टर्की तथा दक्षिणी रूस के विभिन्न राज्यों एवं फिलीस्तीन पहुँचकर अपनी संस्कृति का ध्वज फहराया।

इस प्रकार के सुसंस्कृत जन आर्य भारत से विश्व के विभिन्न देशों में जल तथा थल मार्ग से पहुँचे। वहाँ अपने धर्म, संस्कृति और सभ्यता का प्रचार कर वहाँ के निवासियों को भारतीय संस्कृति से परिचित करवाया। भारत भूमि पुत्रों की अति प्राचीन काल से ही यह जिज्ञासा रही थी कि सागर के उस पार क्या है। उनकी इच्छा थी कि विश्व के सभी लोगों को सुसंस्कृत बनाना जाए। सभी को आर्य (श्रेष्ठ) बनाना होगा। हमारे प्राचीन ऋषियों के महान् उद्‌घोष 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के साथ भारतीय सागर पार कर गये और इसको वास्तविक स्वरूप प्रदान किया।। कौण्डिन्य नाम के वीर ने फूनान संस्कृति का निर्माण किया। कम्बु कम्बोडिया पहुँचा। चम्पा और अनाम के बलाढ्य हिन्दू राज्य उदित हुए। सुमात्रा में श्रीविजय के वैभवपूर्ण साम्राज्य का उदय हुआ। अश्ववर्मन नामक साहसी वीर बोर्निओ पहुँचा। हमारे यहां के साहसी वीर अमेरिकी तट तक पहुँच गए।

इन साहसी वीरों ने भारतीय दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, गणित ज्योतिष, स्थापत्य युद्ध शास्त्र, नीति शास्त्र, संगीत वैदिक ग्रन्थों का विश्व में प्रसार किया। इण्डोनेशिया कम्बोडिया, इण्डोचाइना, बोर्निओ से संस्कृत भाषा के सैकड़ों लेख मिले है। जावा में आज भी शक काल गणना का प्रचलन है। यहां के शिव, विष्णु व बौद्ध मन्दिर भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। बोरोबुदूर व अंगकोरवाट का भव्य शिल्प अजन्ता–एलोरा की समानता बताते

हैं। चम्पा अनाम पाण्डुरेग, इन्द्रपुर बाली, कलिंग जैसे नगरों के नाम या राम, वर्मा जैसे व्यक्तियों नाम भारतीय परम्परा से अटूट सम्बन्ध बताते है। इन देशों का रहन सहन परम्परा, पूजा पद्धति, शास्त्र विधि, नीति कल्पना, आचार व्यवहार आदि में भारतीय परम्परा झलकती है।

प्राचीन भारत में नाविक शक्ति

सिन्धु प्रदेश में सिन्धु नदी में छः हजार वर्ष पूर्व चलने वाले जलयानों का वर्णन विद्वानों ने किया है। संस्कृत में "नव" शब्द जलयान के लिए प्रयोग किया जाता है और उस समय इस विद्या को "नवगति" के नाम से जाना जाता था। बाद में उर्दू का शब्द "नाव", "नव" शब्द का पर्याय बना और अंग्रेजी का शब्द "नेवीगेशन" इस "नवगति" शब्द का रूपान्तर है। प्राचीन पुस्तकों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि कोलम्बस के पैदा होने के एक हजार वर्ष पूर्व भारत में जो जलयान बनाए जाते थे, वह इतने शक्तिशाली थे कि वह हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर के खुले समुद्र में भयंकर समुद्री तूफानों को सफलतापूर्वक झेलते हुए एक हजार यात्रियों को लेकर सुदूर देशों को जा सकते थे। इसी प्रकार के एक जहाज में प्रसिद्ध बौद्ध पर्यटक फाह्यान दक्षिणी भारत से चीन को गया था, ऐसा उसने अपने यात्रा–विवरण में लिखा है। वह पहले लंका से जावा को गया फिर जावा से चीन को गया।

पांच–छः हजार वर्ष पूर्व हमारे यहाँ विकसित बन्दरगाह थे। उत्खनन में प्राप्त सौराष्ट्र का लोथल बन्दरगाह, शास्त्र शुद्ध प्रणाली से बना था। मिस्र, मेसोपोटामिया, ईरान आदि देशों से इसी बन्दरगाह से व्यापार होता था। 756 फीट लम्बे व 126 फीट चौड़े, 60 से 75 टन माल वाहक जहाज सीधे घाट तक पहुँच जाते थे। इसके लिये पूर्व से पश्चिम 1400 सौ फीट लम्बी दीवार थी ताकि भार के समय जहाजों के लिये पर्याप्त गहराई तक पानी बना रहे। वहाँ पर जलपोत निर्माण व छोटी नौकाएँ बनने की कार्यशाला भी थी। पश्चिमी तट पर सोपारा व भृगुकच्छ भी प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। प्रथम शताब्दी में पेरीप्लस में चोल, दभोल, राजापुर, मालवण, गोवा, कोटायम् कोणार्क, मच्छलीपट्टम एवं कावेरीपट्टम के बन्दरगाहों का उल्लेख हैं। अरब सागर का प्राचीन नाम रत्नाकर व बंगाल की खाड़ी का नाम महोदधि था। जातक में 10 यात्रियों को ले जाने वाले जलपोतों का उल्लेख है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता की अनेक मोहरों व पात्रों पर जलपोतों के चित्र हैं। सांची व भरहूत शिल्प में चप्पू वाले पोत व केबिन वाली नौका के साक्ष्य है।

धार के राजा भोज द्वारा लिखित पुस्तक 'युक्तिकल्पतरु' में नौका निर्माण एवं नौकाओं के प्रकार का विस्तृत उल्लेख है। दिशा ज्ञान के लिये भारतीय नाविकों द्वारा 'लौह मत्स्य यन्त्र' का प्रयोग करने का उल्लेख कुछ अरब यात्रियों ने किया है। मेगस्थनीज ने नौ दलों के नौका संगठन का भी उल्लेख किया है। नौकाओं का समूह जब सागर में चलता था तो नौकाध्यक्ष उस समूह का प्रमुख अधिकारी होता था। प्रत्येक नौका के प्रमुख को कर्णधार या महासार्थ कहा जाता था। पतवार सम्भालने का कार्य 'नियामक' करता था। जलपोत के प्रबन्ध के लिये स्वतंत्र अधिकारी रहते थे जिन्हें 'दत्ररश्मिग्राहक' कहते थे।

भारत में प्रागैतिहासिक, पाषाण संस्कृति

विद्वानों ने अतीत में मानव द्वारा किए गए कार्य–कलापों को दो भागों में बाँट लिया है, जबसे मानव ने पढ़ना–लिखना सीखा है तबसे वर्तमान तक के क्रिया–कलापों को इतिहास (History) में सम्मिलित किया है और इससे पूर्व के मानव के क्रिया कलाप 'प्राक् इतिहास' (Prehistory) के अन्तर्गत सम्मिलित है।

भारत में गत शताब्दी में उत्खनन के द्वारा विद्वानों ने कई ऐसे स्थल ढूँढ़ निकाले हैं, जहाँ पर प्रारम्भिक काल में मानव का निवास था। उत्खनन में उनके द्वारा प्रयोग में ली गई सामग्री औजार, बर्तन एवं जानवरों की अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं। प्रारम्भिक मानव के अधिकांश उपकरण पत्थर के थे। इसीलिए हम इस समय के मानव को पाषाण युगीन मानव कहते हैं और जिस काल में पाषाण उपकरणों का प्रयोग होता रहा उसे पाषाण काल कहते हैं।

इतिहासकारों के अनुसार मानव ने लम्बे समय तक इन पाषाण उपकरणों का प्रयोग किया है। भारत में शिवालिक पहाड़ियों में 20 लाख वर्ष पुराने पाषाण उपकरण मिले हैं। प्रारम्भ में ये उपकरण के बजाय सामान्य पत्थर से प्रतीत होते थे। धीरे–धीरे इसमें विकास हुआ। प्राप्त पाषाण उपकरणों के आधार पर पाषाण युग को तीन भागों में बाँटा जा सकता है –

1. पुरापाषाण काल(Paleolithic Age), 2. मध्यपाषाण युग (Mesolithic Age), 3. नव पाषाण काल (Neolithic Age)

पुरापाषाण काल के उपकरण 20 लाख वर्ष पूर्व मानव ने प्रथम बार बनाये थे, जो आकार में बड़े व मोटे हैं। सुगढ़ नहीं है। इस काल को भी विद्वानों ने निम्न (Lower), मध्य (Middle) व उच्च (Uper) परापाषाण काल में विभाजित किया है।

पुरापाषण उपकरण

नवपाषण उपकरण

मध्यपाषाण युग में पत्थरों का आकार छोटा होता गया। लघु आकर के कारण ही इन्हे 'सूक्ष्म पाषाण उपकरण (Microlithic Tools) कहते हैं। गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, केरल के पाषाण पुरास्थलों से जो तिथियाँ प्राप्त हुई है उनसे इसका काल निर्धारण 12 हजार वर्ष पूर्व का है। इस समय का मानव आखेटक खाद्य संग्राहक अवस्था में रहने लगा और पशुपालन की ओर अग्रसर हुआ। नदी के तटो व झीलों के किनारे मानव लकड़ी व घासफूस से बनी गोल झोपड़ियों में रहने लगा। मिट्टी के पात्र उपयोग में लेने लगे और खाद्य

सामग्री को पकाने भी लगा था।

नवपाषाण काल का मानव पशुपालन व कृषि कार्य की ओर अग्रसर हुआ। इस समय लोगों ने ऐसे उपकरण बनाना शुरू किया, जो कृषि कार्य एवं पशुपालन के लिए उपयोगी सिद्ध हए। इनमें मुख्य रूप से कुल्हाड़ियां, बसूला, छिद्रित वृत, हथौड़ा, सिललोढ़, ओखली आदि मुख्य थे। ये उपकरण बेसाल्ट जैसे कठोर पत्थर के थे जिन्हें घिसकर चिकना किया जाता था। कृषि कार्य ने धीरे धीरे मानव को एक जगह टिक कर रहने व बसने को मजबूर कर दिया। इसी के साथ आर्थिक व सांस्कृतिक विकास के नये युग की शुरूआत हुई।

प्रागैतिहासिक शैलकला (Prehisthic Rock Art)

आदिकाल में मानव प्रारम्भ में पर्वतीय एवं नदी घाटीय क्षेत्र में गुफाओं, चट्टानों में बने प्राकृतिक आश्रयस्थलों जिन्हें शैलाश्रय कहा जाता है, में निवास करता था। उच्चपुरा पाषाण

महाकाय साण्ड–अलनियां, कोटा

काल से ही मानव द्वारा आश्रय स्थल के रूप में उपयोग किये जाने के प्रमाण मिले हैं। शैलाश्रय की छतों –दीवारों पर तत्कालीन मानव द्वारा जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित चित्रांकन किया गया है, जिन्हे शैलचित्र कहते हैं। मानव ने जीवन के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति चित्रों के माध्यम से की है। इनसे प्रारम्भिक मानव के सांस्कृतिक, सामाजिक, व धार्मिक जीवन की जानकारी मिलती है। दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान, उत्तरी राजस्थान शेखावटी क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में ऐसे शैलचित्र मिले है। मध्य प्रदेश का भीमबेटका व पचमढ़ी भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार अजन्ता की चित्र राशि, दुर्गों व महलों के भित्तिचित्र भी प्राचीन भारतीय इतिहास की अभिव्यक्ति करते शैल चित्रों ने तत्कालीन मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को उजाकर किया है और हमें उस समय की संस्कृति का ज्ञान कराते है। सम्पूर्ण भारत देश के पर्वतीय व नदीय क्षेत्र में शैल चित्र प्रचुर मात्रा में है। इस दृष्टि से भीमबेटका (मध्यप्रदेश) विश्व विख्यात है और विश्व विरासत की श्रेणी में है। मध्यप्रदेश के अन्य स्थानों में पंचमढ़ी, भोपाल, होशंगाबाद, विदिशा, सागर, उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, राजस्थान में चम्बल नदी घाटी क्षेत्र, बाराँ, आलनियां विलासगढ़, दर्रा, रावतभाटा, कपिलधारा, बून्दी व विराट नगर (जयपुर), हरसौरा (अलवर) व समधा आदि स्थानों पर शैलाश्रयों में शैलचित्र मिले है।

पुराविद् वी.एच. सोनवाने को चन्द्रावती (गुजरात) से मध्य पाषाण युगीन उपकरणों पर रेखांकन मिला है। इससे इसका काल मध्य पाषाण युग तो स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। डॉ. वी.एस. वाकणकर इनका समय उच्च पुरा पाषाण से मानते हैं। ये चित्र अधिकांशतया लाल व गेरू रंग के हैं। शैल चित्र कला का अध्ययन भारत मे ही नहीं बल्कि विश्व के 22 देशों में शोध कार्य किया जा रहा हैं, इस हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बने हुए हैं।

उपलब्धियाँः– सिन्धु–सरस्वती सभ्यता

1856 में लाहौर से कराची रेल्वे लाइन हेतु पटरियाँ बिछाने का कार्य चल रहा था। लाइन पर रोड़िया बनाने के लिए पत्थर की कमी को देखते हुए पास के टीलों से ईटें

शैलचित्र कला, भीमबेटका मध्यप्रदेश

निकालकर बिछाने लगे। लेकिन उन्हें यह पता नहीं था कि वे विश्व की एक महान् सभ्यता से सम्बन्धित पुरास्थल हड़प्पा के भग्नावशेष निकाल रहे हैं। बर्टन बन्धुओं द्वारा 1856 में हड़प्पा स्थल की सूचना सरकार को दी गई।1861 ई. में कनिंघम के निर्देशन में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की स्थापना की गयी। 1904 ई. में जॉन मार्शल को इस विभाग का निदेशक बनाया गया। 1921 ई. में दयाराम साहनी हड़प्पा स्थल का ने उत्खनन किया। 1922 ई. में राखालदास बनर्जी ने मोहनजोदड़ो का पता लगाया। हड़प्पा की खोज सबसे पहले हुई, इसलिए इसे 'हड़प्पा सभ्यता' कहा जाता है। इस सभ्यता के प्रारम्भिक स्थल सिन्धु नदी के आस–पास थे अतः इसे प्रारम्भ में सिन्धु घाटी सभ्यता कहा गया था। लेकिन अब जो जानकारियाँ मिल रही हैं उसके अनुसार इस सभ्यता का महत्वपूर्ण सर्वाधिक भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विस्तार पंजाब, हरियाणा, राजस्थान व गुजरात में लुप्त सरस्वती नदी घाटी क्षेत्र में मिलता है। अतः इसे सिन्धु –सरस्वती सभ्यता नाम दिया जाना उपयुक्त होगा।

विस्तार की दृष्टि से नवीनतम् अनुमानित जानकारी के अनुसार सिन्धु सरस्वती सभ्यता के अब तक खोजे गए स्थानों में लगभग 917 स्थान भारत में,, 481 पाकिस्तान व 2

अफगानिस्तान में है। इसका विस्तार पश्चिम से पूर्व तक 1600 कि.मी. व उत्तर से दक्षिण तक 1400 कि.मी. था। इसका विस्तार अफगानिस्तान(शोर्तगोई व मुण्डीगाक), बलूचिस्तान (सुत्कागेण्डोर, सुत्काखोह, बालाकोट), सिन्ध(मोहनजोदड़ो, चहूंदड़ो, कोटदीजी, जुदीरजोदड़ा), पंजाब (पाकिस्तान– हडप्पा, गनेरीवाल, रहमान ढेरी, सरायखोला, जलीलपुर), पंजाब (रोपड़,सघोल), हरियाणा (बनावाली, मीताथल, राखीगढी), राजस्थान (कालीबंगा, पीलीबंगा), उत्तरप्रदेश (आलमगीरपुर, हुलास) गुजरात (रंगपुर, धौलावीरा, प्रभास पाटन, खम्भात की खाडी) व महाराष्ट्र (दैमाबाद) था।

सरस्वती नदी

सिन्धु नदी व उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में लगभग 40 बस्तियाँ रही है। लगभग दो तिहाई बस्तियां वर्तमान लुप्त सरस्वती नदी क्षेत्र में थी। 250 बस्तियां सरस्वती नदी प्रवाह क्षेत्र से बाहर थी। सरस्वती नदी व उसकी सहायक नदियों का प्रवाह क्षेत्र सिन्धु व गंगा के बीच का क्षेत्र था। वैदिक काल में सरस्वती नदी लोगों के जीवन का आधार थी। वैदिक साहित्य में इसे 'नदीतमे देवीतमे, अम्बेतमे' कहा है। पिछले वर्षों में विद्वानों ने हवाई व भू सर्वेक्षण से सरस्वती नदी के प्रवाह मार्ग को रेखांक्ति करने का प्रयास किया है। उपग्रह से प्राप्त जल प्रवाह के चिन्हों से, ड्रिलिंग मशीनों की सहायता से भूगर्भ से निकाले गए सम्भावित जल के अध्ययन से, पुराऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हो गया है, कि प्राचीन समय में सरस्वती नदी का अस्तित्व था। सरस्वती नदी का निकास हिमालय की शिवालिक पर्वत श्रेणियों में माना पर्वत से था। आदि बद्री से समतल में उतरती थी। इसके बाद कुरूक्षेत्र और सिरसा, झाँसी, अग्राहेहा, हनुमानगढ, कालीबंगा में होती हुई, अनूपगढ व सूरतगढ तक बहती थी। अनेक भागों में समुद्र में मिलती थी। एक शाखा प्रभास पट्टन में जाकर सिन्धु सागर में मिलती थी। दूसरी शाखा सिन्धु में प्रविष्ट होकर कच्छ के रण में समा जाती थी। इसकी लम्बाई 1600 कि.मी. ओर चौडाई 3 से 12 कि.मी. तक थी। प्रसिद्ध पुराविद डॉ. वी.एस. वाकणकर ने सरस्वती के प्रवाह मार्ग को जानने के लिए अपने दल के साथ अभियान चलाया था ओर 4000 कि.मी. की यात्रा की थी। भूगर्भीय परिवर्तनों के कारण व मूल जल स्रोतों से पानी न मिलने से धीरे धीरे यह नदी लुप्त हो गई।

सिन्धु स्थापत्य कला

नगर नियोजन– सुनियोजित नगर नियोजन यहाँ की प्रमुख विशेषता थी।प्रत्येक नगर में ऊँचे चबूतरे पर गढी और नीचे समतल पर नगर भाग। गढ़ में राजा पुरोहित व अन्य प्रमुख व्यक्तियों का निवास था। मोटी दीवार का परकोटा होता था। परकोटे की दीवार काफी चौडी थी। नीचे समतल पर नगर बसा रहता था। नगर में एक–दूसरे को समकोण पर काटती हुई चौडी सडकें होती थीं जिसकी चौडाई 9 से 34 फीट थी। एक सडक 34 फीट की मिली है, जो संभवतया राजमार्ग रहा होगा। गलियाँ एक से 2.2 मीटर तक होती थी। कालीबंगा की सडके 1.8, 3.6, 5.4 व 7.2 मी. चौडी होती थी। बड़ी ईटों की आकृति का अनुपात 1:2:4 था। सामान्य ईटे 7½ × 15 × 30 इंच की थी। परकोटे के लिए ईटे 10×20×40 इंच की थी। नालियों से पानी की निकासी की उचित व्यवस्था थी। पक्की ईंटों से मिस्रवासी भी परिचित नहीं थे। साधारणतः प्रत्येक घर में 3–4 कक्ष, स्नानागार, शौचालय, पाठशाला व कुंआ होता था। मध्य में आंगन होता था। प्रत्येक घर में जल निकासी के लिये नालियों का प्रबन्ध था।

नगर नियोजन,मोहनजोदड़ो

जल निकास,लोथल

कुंआ,नाली एवं स्नानागार,हड़प्पा

प्राचीन सभ्यताओं में जल निकास की जितनी सुन्दर व्यवस्था सिन्धु–सरस्वती सभ्यता में थी, उतनी विश्व में कहीं नहीं मिलती। घरों के पानी की निकास नालियों से होता था। नालियाँ गन्दे पानी को नगर से बाहर पहुँचाती थीं। बड़ी नालियां ढ़की हुई थी। नालियों को जोड़ने व प्लास्टर में मिट्टी जिप्सम व चूने का प्रयोग करते थे। सड़कों की नालियों में मेन होल (तरमोखे) भी मिले हैं। नालियों के बीच–बीच में चेम्बर (शोषगर्त) भी थे, जिनकी सफाई करके कूड़ा–करकट निकाल दिया जाता था।

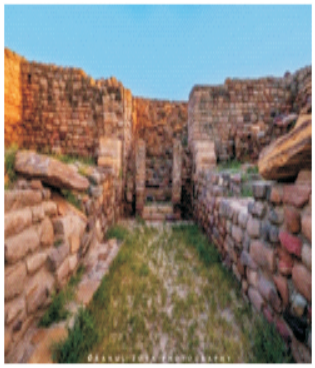

सिन्धुसरस्वती स्थल, धौलावीरा

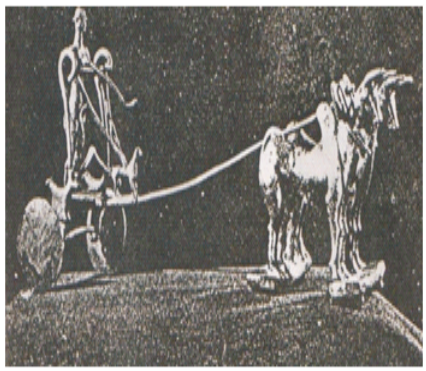

रथ की आकृति,दैमाबाद

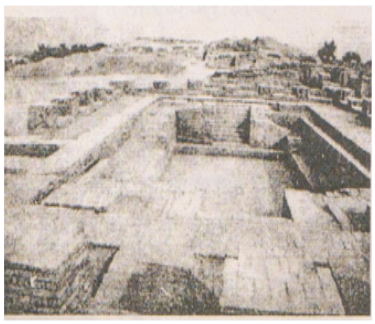

लोथल का विशाल गोदीवाड़ा विशाल स्नानागार,मोहनजोदड़ो

विशाल स्नानागार – मोहन जोदड़ो का यह महत्वपूर्ण भवन है जिसका आकार 39×23×8 फीट है। इसमें ईटों की सीढियाँ हैं। तीन तरफ बरामदे हैं। फर्श व दीवारों पर ईटों का प्रयोग है। पास में ही एक कुएँ के भी अवशेष मिले हैं जो जल का स्रोत था। उत्तर की ओर छोटे–छोटे आठ स्नानागार भी बने हुए हैं।

विशाल अन्नागार–हडप्पा व मोहनजोदड़ो से विशाल अन्नागार के अवशेष मिले हैं। मोहनजोदड़ो का अन्नागार 45.71×15.23 मीटर का है। दो खण्डों में विभाजित हड़प्पा के अन्नागार का क्षेत्रफल 55×43मीटर, जो पानी से बचाव हेतु ऊँचे चबूतरे पर बने हुए हैं। प्रत्येक खण्ड में 6–6 की दो पक्तियों में भण्डारण कक्ष हैं। दोनो के मध्य 23 फुट की दूरी है। इसका प्रवेश द्वार रावी की ओर से था। ऐसे अन्नागार मेसोपोटामिया के नगरों में भी थे।

विशाल जलाशय व स्टेडियम – धौलावीरा के उखनन से 16 छोटे बडे जलाशय प्राप्त हुये हैं, जिनसे हमे तत्कालीन जल सग्रहण व्यवस्था की जानकारी होती है। दुर्ग के दक्षिण में शिला को काट कर 95×11.42×4 मीटर का जलाशय प्रमुख उदाहरण है।

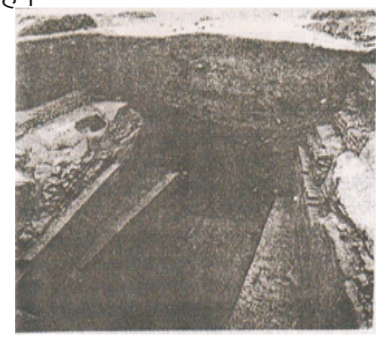

शैल उत्कीचित जलाशय,धौलावीरा, जुता हुआ खेत कालीबंगा

इसके अलावा धौला वीरा से विशाल स्टेडियम के प्रमाण मिले हैं। स्टेडियम का आकार 283×45 मीटर है। स्टेडियम के चारो तरफ दर्शको के बैठने के लिए सोपान बने हुए हैं। समारोह स्थल दुर्ग की प्राचीर से जुडा हुआ है ओर इसकी चौडाई 12 मीटर है।

विशाल गोदी बाड़ा – लोथल से पक्की ईटो का एक ढांचा मिला है जिसे पुराविद् एस.एस. राव ने गोदीवाडा या डॉक यार्ड (बन्दरगाह का महत्वपूर्ण हिस्सा) के रूप में पहचाना है। इसका औसत आकार 214×36 मीटर है। वर्तमान गहराई 3.3 मीटर है। उत्तरी दीवार में 12 मीटर चौड़ा प्रवेश द्वार था जिससे जहाज आते थे। प्रवेश द्वार भोगवा नदी से जुडा था, जिससे गोदी में पानी आता था। राव लिखते हैं कि लोथल की गोदी फिनिशिया और रोम की गोदियों से कहीं अधिक विकसित एवं प्राचीनतम थी। लोथल का डाकयार्ड वर्तमान विशाखापटनम् में बने डाक यार्ड से बड़ा है।

सिन्धु सरस्वती सभ्यता की कला, लिपि एवं विज्ञान

यहाँ की सभ्यता से प्राप्त अवशेषो में पत्थर की मूर्तियाँ,

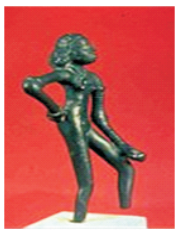

बैल की आकृति, नर्तकी की कांस्य मूर्ति, मुहर पर स्वस्थिक

मणके, मृद्भाण्ड, मुहरें, कास्य मूर्तियाँ व पात्र यहाँ की कला के उत्कृष्ट प्रमाण है। यहां से शैलखड़ी की योगी मूर्ति मिली है नर्तकी की कांस्य और मिट्टी दोनो की मूर्तियां मिली है। कास्य मूर्ति की ऊँचाई 11½ से.मी. है। मृणमूर्तियों का विशाल भण्डार उस समय की विकसित मूर्ति कला का प्रतीक है। कूबड़दार बैल की मूर्तियां भी कला का प्रतीक है। मुहरों पर किए गए चित्रण से हमें यहां निवासियों की चित्रकला के प्रति रूचि की जानकारी

मृण मूर्ति,मोहनजोदड़ो मृद्पात्र

मिलती है। इस सभ्यता से जो मुहरे प्राप्त हुई है उनके अग्रभाग पर पशु का अंकन संक्षिप्त लेख उत्कीर्ण है, पीछे एक घुण्डी बनी हुई है जो सम्भवतया टाँगनें के काम आती थी।

सिन्धु लिपि का विश्वसनीय अध्ययन अभी तक नहीं हो सका है। मुहरों पर अभी तक 2500 लेख उपलब्ध हो चुके हैं। 17 अक्षर का सबसे लम्बा व बड़े अक्षरों का अभिलेख धौलावीरा से मिला है। यहां की लिपि भाव चित्रात्मक लिपि है।

सिन्धु सरस्वती सभ्यता की मुहरें

सिन्धु लिपि–धौलावीरा

विज्ञान की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि सिन्धु सरस्वती सभ्यता में गणित की संख्याओं के लिए प्रतीक चिह्न थे। गुणा और योग जैसे अंक गणितीय प्रक्रियाओं से यहां के निवासी परिचित थे। उत्खनन से ऐसे पदार्थों के अवशेष मिले हैं जो सम्भवतया औषधि के रूप में काम आते थे। कालीबंगा व लोथल से खोपड़ी के अवशेष मिले है। काली बंगा से प्राप्त बालक की खोपड़ी पर 6 छेद हैं। इसमें कुछ छेद भर गये प्रतीत होते हैं। ये खोपड़ी की शल्य चिकित्सा के संकेत देते हैं। धातु विज्ञान के तथ्यों से भी परिचित थे। धातु की ढलाई एवं उपकरण निर्माण की विकसित विधि से वे परिचित थे। मोहनजोदड़ो से प्राप्त नर्तकी का कास्य मूर्ति, दैमाबाद से रथ की आकृति इसके प्रमाण है। मिट्टी के बर्तन कुम्हार के चाक पर बनाये जाते थे। पकाने के लिये 2.1 मीटर की भट्टियों के अवशेष मिले हैं। पकाने के बाद उन पर गेरू रंग करके तूलिका से काले रंग की डिजाइन बनायी जाती थी।

आर्थिक उपलब्धियां

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के वासियों की उन्नत कृषि व्यवस्था, पशुपालन, उद्योग धन्धे एवं आन्तरिक व बाह्य व्यापार के प्रमाण मिले हैं। नवीन साक्ष्य से संकेत मिले है कि इस सभ्यता के लोग घोड़े से भी परिचित थे। सुरकोटड़ा व रणघुण्डई से घोड़े के अवशेष मिले हैं। एस.आर.राव के अनुसार रंगपुर व लोथल से घोड़े की मिट्टी की मूर्तियाँ मिली है। डॉ. वी.एस. बाकणकर के अनुसार कच्छ सरस्वती नदी शोध अभियान के दौरान सरस्वती नदी के तट पर स्थित अनेक स्थानों से घोड़ों की अस्थियाँ मिली है।

उन्नत कृषि कार्य – अनेक स्थानों से प्राप्त विशाल अन्नागार संकेत देते हैं कि अन्न उत्पादन अच्छी मात्रा में होता था। उत्पादन से ही महानगरीय व्यवस्था का विकास हुआ। मुख्य उत्पादन गेहूँ, जौ, मोटे अनाजों में ज्वार, दाल, मटर, रागी, साम्बा आदि का उत्पादन होता था। कपास, खजूर, तिल व चावल का भी उत्पादन होता था जुताई के लिए लकड़ी के हल का प्रयोग होता था प्राक् हड़प्पा कालीन कालीबंगा से आड़ी व तिरछी हल रेखाओं से जुता हुआ खेत मिला है जो कि दोहरी फसल का संकेत देता है। फसल कटाई ताँबे के हाँसिये व पत्थर के फलक से की जाती थी, जो कि लकड़ी के हत्थे पर लगा होता था।

उद्योग–व्यवसाय – यहाँ से उत्खनन में ताँम्बे व काँसे से निर्मित कलाकृतियां मिली है। ताम्र उपकरणों में मछली पकड़ने के काँटे, आरियां, तलवारें, दर्पण, छेणी, चाकू, भालाग्र, बर्तन आदि मिले हैं। काँसे की प्रसिद्ध नर्तकी की मूर्ति, बैल कुत्ते व पक्षियों की कलाकृतियाँ मिली हैं। इससे स्पष्ट है कि यहां धातु उद्योग विकसित था।

मिट्टी के बर्तन बनाने की कला से परिचित थे। मणके निर्माण का उद्योग भी विकसित था। इनसे बने आभूषण इस सभ्यता की कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। लोथल व चहूँदड़ो से इसके कारखाने मिले हैं। ये मनके सोने, चाँदी, ताम्बे, पीली मिट्टी, शैलखड़ी, कीमती पत्थर, सीपी, शंख आदि के बनाये जाते थे। इस सभ्यता से लगभग 2500 मोहरें मिली है, जो अधिकांशतः सेलखड़ी से बनी है। इन पर पशुओं (एक सींग का पशु, बाघ, हाथी, सांड, गेंडा), पेड़–पौधे, मानव आकृतियां आदि के चित्र है जो हमें उस समय मानव गतिविधियों और धर्म का संकेत देते है। इस समय का वस्त्र उद्योग भी उन्नत था। कपास की खेती के व वस्त्रों के प्रमाण मिले हैं। कताई–बुनाई की तकलियाँ व तकुए भी मिले हैं।

व्यापार व वाणिज्य – इस समय आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार दोनों ही उन्नत अवस्था में था। ताम्र खनिक, रत्न, उपरत्न एवं धातु निर्मित सामग्री–पात्र उपकरण आभूषण आदि का व्यापार होता था। सम्भवतया ताँबा राजस्थान के गणेश्वर से, सोना मैसूर से, चाँदी ईरान व अफगानिस्तान से, मणको के लिए कीमती पत्थर गुजरात व महाराष्ट्र से मंगाये जाते थे। मेसोपोटोमिया से व्यापारिक सम्बन्ध थे। इसकी जानकारी मेसोपोटोमिया से प्राप्त एक अभिलेख से होती है, सिन्धुवासियों के लिये मेलूहा शब्द का प्रयोग हुआ है। मेसोपोटामिया के विभिन्न नगरों से सिन्धु सरस्वती सभ्यता की लगभग 24 मोहरे मिली है। लोथल से एक बटन के समान गोलाकार मोहर मिली है। ऐसी मोहरे बहरीन द्वीप, फारस की साड़ी और मेसोपोटामिया के उप नगर से मिली है।

व्यापार के लिए वस्तुओं के विनिमय एवं माप तौल की एक निश्चित व्यवस्था थी। प्राप्त अवशेषों के आधार पर बाट के आकार घनाकार व गोलाकार था। ये चर्ट जैसार व अगेट के बने होते थे। बाट एक श्रृंखला में क्रमशः बढ़ते क्रम में 1,2,4,8,16,32,64 तक होते थे।

सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषताएं

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता के अवशेषों से हमें जानकारी मिलती है कि उस समय के समाज में शासक व महत्वपूर्ण कर्मचारी वर्ग, सामान्य वर्ग, श्रमिक वर्ग एवं कृषक वर्ग था। शासक व महत्वपूर्ण कर्मचारी वर्ग गढ़ी में व अन्य वर्ग के लोग नगर भाग में रहते थे। समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार था। मातृदेवी की मिट्टी की प्राप्त मूर्तियों से समाज में नारी का महत्व व परिवार के मातृसत्तात्मक होने की जानकारी मिलती है। सूती वस्त्रों के प्रमाण भी मिले हैं।

यहाँ के स्त्री एवं पुरूष दोनो ही आभूषण प्रेमी थे। मनको द्वारा बने यहां के आभूषण काफी प्रसिद्ध है। एक मुद्रा पर ढोलक का चित्र सिन्धु सरस्वती सभ्यता वासियों की वाद्य कला में रुचि का प्रमाण है। आखेट व संगीत के भी प्रमाण मिले है।

धार्मिक जीवन की उपलब्धियाँ

वृक्ष, जल एवं पशु पूजा – वृक्षों के भीतर रहने वाली आत्मा के रूप में वृक्षपूजा का इस समय प्रचलन था। एक मुहर में देवता को दो पीपल के वृक्ष के मध्य दिखाया गया है। सात मानवाकृतियां उसकी पूजा कर रही हैं। सिन्धु सरस्वती सभ्यता का प्राचीन धर्म के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मातृ देवी की उपासना, पशुपतिनाथ की कल्पना, वृक्ष पूजा, मूर्ति पूजा, जल की पवित्रता, तप के योग परम्परा आदि यहां की प्रमुख विशेषताएँ थी जो आज भी हमारे जीवन में देखने को मिलती हैं।

हड़प्पा से प्राप्त एक मूर्ति के गर्भ से एक पौधा निकलता हुआ है, सम्भवतया यह पृथ्वी माता का रूप है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता से प्राप्त एक मुहर पर एक पुरूष आकृति पद्मासन में

बैठी है। इसके एक तरफ हाथी व बाघ है दूसरी तरफ भैसा व गेंडा है, नीचे हिरण है। एक अन्य मोहर में योगी मुद्रा में व्यक्ति की यह आकृति त्रिमुखी एवं त्रिश्रृंगी है। नाग द्वारा पूजा करते हुये दिखाया गया है।

तप योग व यज्ञ – कालीबंगा, बाणावली, राखीगढ़ी एवं लोथल से खुदाई में अग्नि कुण्ड व अग्निवेदिकाएँ मिली हैं। पद्मासन में बैठे योगेश्वर की मूर्ति मिली है। इसके अलावा भिन्न भिन्न योगासन मुद्रा में मिट्टी की कई मूर्तियां मिली है। यहाँ से प्राप्त मुहरों पर एक सींग वाले वृषभ का काफी चित्रण मिलता है। इसके अलावा कूबड़दार बैल, बिना कूबड़दार बैल, बाघ व हाथी का चित्रण मिलता है। बाद में पशुओं की देव रूप में पूजा होने लगी। विभिन्न पशु देवताओं के वाहन के रूप में प्रसिद्ध हुए। मोहनजोदड़ो से प्राप्त विशाल स्नानागार इस सभ्यता की जल की पवित्रता एवं स्नान ध्यान की परम्परा का प्रतीक है।

राजनैतिक जीवन– यद्यपि यहाँ की राजनैतिक व्यवस्था की स्पष्ट जानकारी नहीं है। सिन्धु–सरस्वती वासियों की मूल रूचि व्यापार करना थी। प्रशासनिक दृष्टि से साम्राज्य के चार बड़े केन्द्र रहे होगें– हड़प्पा मोहनजोदड़ो कालीबंगा व लोथल। सुव्यवस्थित नगर नियोजन स्वच्छता, जल संरक्षण आदि प्रतीको से प्रतीत होता है पूर्ण एवं कुशल राजसत्ता नियन्त्रण के प्रमाण मिलते हैं। व्यवस्थित नगर पालिका प्रशासन के भी संकेत मिलते हैं। अस्त्र–शस्त्र अधिक संख्या में न मिलना यहां के निवासियों की शान्ति प्रियता के संकेत देते है। हथियारों में कांसे की आरी, ताँबे की तलवारें, भाले के अग्रभाग, कटारें, चाकू बाणाग्र मिले हैं।

भारतीय सभ्यता के प्रमाण हमें उस समय की विदेशी संस्कृतियों में भी देखने को मिलता है। इनसे व्यापारिक सम्बन्धो के साथ ही सांस्कृतिक सम्बन्ध भी थे। भारत की तरह क्रीट में भी मातृ पूजा का प्रचलन था। मोहन जोदड़ो में भेड़ की आकृति में दाढ़ी बतायी है, सुमेर और बेबीलोन में बैलों में दाढ़ी बताई गई है। हड़प्पा की तरह ही सुमेरवासी अपने केसो को फीते से बांधते थे। हड़प्पा की तरह मिश्र की कब्रों से लघु मक्खी के आकार की गुरिया प्राप्त हुई है। इस प्रकार हम कह सकते है कि हमारी सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव अति प्राचीन काल में विश्व अन्य संस्कृतियों पर था।

उपलब्धियाँ: वैदिक काल से महाजनपदकाल

वेदो की गिनती विश्व के सर्वश्रेष्ठ साहित्य में की जाती है और यही वेद वैदिक सभ्यता के आधार स्तम्भ हैं। इस सभ्यता के निर्माता आर्य थे। आर्य शब्द का प्रयोग जाति वाचक न होकर गुणवाचक रूप में किया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– श्रेष्ठ या उत्तम। वेदो से हमें इन्ही श्रेष्ठ व्यकित्यों की जानकारी मिलती है। वैदिक साहित्य में आर्य शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। आर्यों के प्राचीन ग्रन्थ वेदो में विशद् ज्ञान भरा हुआ है। इनकी भाषा संस्कृत थी, जिसे देववाणी कहा जाता है।

कतिपय पश्चिमी विद्वानों ने आर्यों को बाह्य आक्रमणकारी बताकर अपनी संकीर्ण मानसिकता का परिचय दिया है। आर्य यहीं के निवासी थे। वैदिक साहित्य में आर्यों को कहीं पर भी विदेशी नहीं कहा है। आर्यों ने भारतभूमि की प्रसंशा करते हुए नदियों को देवी, माँ कहा है। आर्य बाहर से नहीं आए बल्कि यहीं से सम्पूर्ण भारत में ईरान और यूरोप की ओर गए। मध्यएशिया में भारतीय संस्कृति के प्रमाण भारतीयों का इस क्षेत्र में प्रसार होने का प्रमाण है। नवीन अनुसंधानों से सिन्धु सरस्वती सभ्यता व वैदिक सभ्यता में कई समानताएं उजागर हुई है। दोनों का भौगोलिक क्षेत्र सप्त सैन्धव प्रदेश ही था। ऋग्वेद के नदी सूक्त में 21 नदियों का उल्लेख है, जिनमें पूर्व में गंगा व पश्चिम में कुम्भा (काबुल) नदी शामिल है।

भाषा एवं साहित्यिक समृद्धता

संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति का वैभव है और इस जैसी परिपूर्ण भाषा संसार में अन्य नहीं है। संसार के प्राचीनतम् वेद–संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं। संस्कृत व्याकरण आज भी उतनी ही वैज्ञानिक है। आज अधिसंख्यक भाषाओं का आधार संस्कृत व्याकरण ही है। प्राचीन काल में जितना साहित्य संस्कृत में लिखा गया, उतना अन्य किसी भाषा में नहीं मिलता है। लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि के रूप में हुआ, जिसकी प्रसंशा मैकडॉनल्ड ने अपनी पुस्तक (History of Sanskrit Literature) में की है।

साहित्यिक दृष्टि से भारत में अत्यधिक समृद्धि थी। ऐसा कोई ज्ञान नहीं था जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं किया गया हो। वेदो को अपौरूषेय कहा गया है। हमारे ऋषियो ने लम्बे समय तक जिस ज्ञान का साक्षात्कार किया, उसका वेदो में संकलन किया गया है। इसलिए वेदों को संहिता कहा गया है। प्रारम्भ में इनको लिपि बद्ध नहीं किया गया। मौखिक रूप से सुनाकर इन्हे निरन्तर रखा, इसीलिए इन्हें श्रुति भी कहा गया है। वेद चार है। प्रत्येक वेद की संहिता से सम्बन्धित ब्राह्मण अरण्यक व उपनिषद है।

आर्यों का सबसे प्राचीनतम् ग्रन्थ ऋग्वेद हैं। इसमें 10 अध्याय और 1028 सूक्त हैं। इसमें छन्दों में रचित देवताओं की स्तुतियाँ हैं। प्रत्येक सूक्त में देवता व ऋषि का उल्लेख है। कुछ सूक्तों में युद्धों व आचार विचारों का वर्णन है। सामवेद में काव्यात्मक ऋचाओं का संकलन है। इसके 1801 मन्त्रो में से केवल 75 मन्त्र नये हैं, शेष ऋग्वेद के है। ये मंत्र यज्ञ के समय देवताओं की स्तुति में गाये जाते है। यज्ञों, कर्मकाण्डों व अनुष्ठान पद्धतियों का संग्रह यजुर्वेद में है। इसमें 40 अध्याय है एवं शुक्ल व कृष्ण यजुर्वेद दो भाग है। अन्तिम वेद अथर्ववेद में 20 मण्डल 731 सूक्त ओर 6000 मंत्र है। रचना अथर्व ऋषि द्वारा की गयी थी। इसका अन्तिम अध्याय ईशोपनिषद् है, जिसका विषय आध्यात्मिक चिन्तन है।

पुराण – पुराणों में इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है। पुराणान्तर्गत इतिहास को विशेष महत्व दिया जाने लगा है। पुराणों में हमें विभिन्न घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास मिलता है। इनके रचयिता लोमहर्ष व उनके पुत्र उग्रश्रवा को माना जाता है। प्रमुख पुराणों में मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्माण्ड, भागवत्, अग्नि, मार्कण्डेय का नाम उल्लेखनीय है।

पुराणों में वंशावलियाँ मिलती हैं, इन्हें सर्वाधिक प्राचीन माना गया है। यह दूसरी–तीसरी शताब्दी की रचना है।इनसे

गुप्तों के इतिहास व अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी मिलती है। पुराणों के अलावा 29 उपपुराण है। सूत्र साहित्य भी महत्वपूर्ण साहित्य है। इसके द्वारा ऋषियों ने मनुष्य के सामाजिक व धार्मिक जीवन को नियमबद्ध करने का प्रयास किया है। इनमें कला सूत्र प्रमुख है जिसके तीन भाग है। श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र। वैदिक साहित्य में वेदांग, स्मृतियां (धर्मशास्त्र) एवं महाकाव्यों (रामायण व महाभारत) का महत्वपूर्ण स्थान है।

राजनैतिक व्यवस्था – प्रमुख विशेषताएँ

वैदिक काल में व्यवस्थित राजनैतिक जीवन की शुरूआत हो चुकी थी। इस समय की सबसे छोटी राजनैतिक इकाई 'कुल' थी। सबसे बड़ी इकाई 'राष्ट्र' थी। राष्ट्र–जन–विश–ग्राम व कुल राजनैतिक संगठन का अवरोही क्रम था। एक राष्ट्र में कई जन थे। कुल का मुखिया कुलुप, ग्राम का मुखिया ग्रामणी, विश का अधिकारी विशपति, जन का मुखिया गोप, देश या राज्य को राष्ट्र कहा जाता था, जिसका मुखिया राजा होता था। राजा का पद वंशानुगत होता था। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि कभी कभी राजवंश से चुनकर राजा बनाया जाता था। लोक कल्याणकारी राज्य का स्वरूप हमें उस समय भी दिखाई देता है। राजा को राज्याभिषेक के समय प्रजा हित की शपथ लेनी होती थी। जनता राजा को कर देती थी जिसे बलिहृत कहा जाता था। ऋग्वेद में 'पंचजना' का अनेक स्थानों पर मिलता है। पांच प्रमुख जन थे– अणु यदु तुर्वस, पुरू एवं दुह्य। ऋग्वेद में एक बड़े युद्ध का भी उल्लेख मिलता है, जो दस राज्ञ युद्ध के नाम से जाना जाता है। भरत जन के राजा सुदास का रावी (परूष्णी) नदी के तट पर दस जनो के राजाओं के साथ युद्ध लड़ गया था जिसमें सुदास की विजय हुई थी। दस राजाओं में पंचजन के अलावा अलिन, पक्थ, भलानस, विसाणी व शिव जनपद थे। ऐसी मान्यता है कि राजा सुदास ने विश्वामित्र को पुरोहित पद से हटाकर वशिष्ठ को पुरोहित बना दिया था। इसलिये विश्वामित्र ने दस राजाओं को संगठित कर सुदास से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। लेकिन इसमें सुदास की विजय हुई। राजा के प्रशासनिक कार्यो में सहयोग के लिए पुरोहित व सेनानी की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।

सभा व समिति – ऋग्वेद व अथर्ववेद दोनो में ही सभा व समिति का उल्लेख मिलता है, जो उस समय के राजनैतिक संगठन की महत्वपूर्ण घटक की और राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगाने वाली संस्थाएं थी। विद्वानों के अनुसार 'समिति' एक आम जन प्रतिनिधि सभा प्रतीत होती थी, जिसमें महत्वपूर्ण राजनैतिक एवं सामाजिक विषयों पर विचार होता था। समिति की बैठकों में राजा भी भाग लेता था। समिति की तुलना में 'सभा' छोटी संस्था की जिसमें ज्येष्ठ या विशिष्ट व्यक्ति ही भाग लेते थे। ऋग्वेद में सुजात (कुलीन या श्रेष्ठ) व्यक्तियों की सभा का उल्लेख है। सभा अनुभवी वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों की संस्था थी जो राजा को परामर्श एवं न्याय कार्य में सहयोग करती थी।

महाकाव्य काल – रामायण व महाभारत प्रमुख महाकाव्य हैं जिनसे भारतीय इतिहास व संस्कृति की जानकारी मिलती है। महाकाव्य काल में राजनैतिक व्यवस्था काफी सुदृढ़ हो चुकी थी।

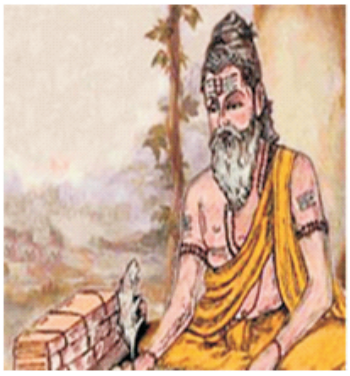

ऋषि वाल्मिकी

महर्षि वेद व्यास

राजा का पद वंशानुगत था और उसके साथ दैविक सिद्धान्त की भी झलक मिलती है। लेकिन राजा निरंकुश नहीं था। वह धर्म, कर्तव्य एवं प्रजाहित से बंधा हुआ था। राज्याभिषेक के समय राजा को धर्म पूर्वक प्रजा के पालन करने की शपथ लेनी होती थी। शारीरिक दोष होने पर बड़े पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित किया जा सकता था। राजा की सहायता के लिए मन्त्री परिषद् एवं सभा का अस्तित्व था। महाभारत काल में मंत्री परिषद् के 18 विभाग (तीर्थ) थे। इस समय कुछ गणराज्यों का भी उल्लेख मिलता हैं जिसमें – अन्धक, वृष्णि, कुकुर और भोज प्रमुख थे।

महाजनपद काल – महाजन पद काल के राजनैतिक जीवन की सबसे प्रमुख उपलब्धि सुदृढ़ राजतंत्रात्मक एवं गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का विकास होना था। ऋग्वेदिक काल में जन (कबीला) का स्थायी भौगोलिक आधार नहीं था। उत्तर वैदिक काल में जन बसना शुरू हो गये और इसीलिये जनपद कहलाने लगे। महात्मा बुद्ध के समय तक जनपदों का पूर्ण विकास होने लगा था और राज्य की कल्पना जातीय के बजाय भौगोलिक हो गई। जनपदो की सीपना के साथ ही भू–विस्तारके लिए आपसी संघर्ष होने लगा। निर्बल राज्य शक्तिशाली राज्यों में विलीन हो गये और जनपदों ने महाजनपदों का रूप ले लिया। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय में 16 महाजन पदों की सूची दी गई है। 16 महाजन पद व उनकी राजधानी निम्नानुसार है।

1. अंग–चम्पा 2. मगध– गिरिव्रज व राजगृह, 3. काशी– वाराणसी, 4. कोसल– श्रावस्ती, 5. वाज्जि संघ–वैशाली, 6. मल्ल–कुशीनारा व पावा, 7. चेदि– शुक्तिमती, 8. वत्स–कौशाम्बी, 9. कुरू– इन्द्रप्रस्थ, 10. पांचाल– अहिछत्र व काम्पिल्य, 11. मत्स्य – विराट नगर (बैराठ) 12. सूरसेन–मथुरा, 13. अश्मक– पैदन्य (पौतन), 14. अवन्ति– उज्जयिनी, 15. गान्धार– तक्षशिला, 16. कम्बोज– राजपुर

इनके अलावा कई छोटे बड़े जनपद थे। इनमें योद्धेय, माद्रक, त्रिगर्त, केकय सिन्धु, सौवीर, शिवि अम्बष्ठ शाक्य, कलिंग, मूलक आदि प्रमुख थे। इस समय चार महाशक्तिशाली महाजनपदों का उदय हुआ– कोसल मगध वत्स ओर अवन्ति। इनमें राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था थी। दस राज्यों में गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली थी। बौद्ध ग्रन्थों में इनके नाम मिलते है– कपिल वस्तु के शाक्य, रामगाम के कोलिए, सुंसुमरगिरी के भग्ग, अलकप्प के बुलि, केसपुत्त के कालाम, कुशीनारा के मल्ल, पावा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, मिथिला के विदेह एवं वैशाली के लिच्छवी।

प्राचीन भारत में गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति एवं सवैधानिक व्यवस्था– आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व भारत में समृद्ध गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति एवं संवैधानिक व्यवस्था के प्रमाण मिलते है। यह हमारी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। बौद्ध कालीन गण राज्यों के विधान और शासन पद्धति गणराज्य का राजा या प्रमुख निर्वाचित व्यक्ति होता था। अर्थ शास्त्र में लिच्छवी गणराज्य के लिए 'राजा शब्दोपजीवी' संघ का प्रयोग किया है। अर्थात् वहां का प्रत्येक व्यक्ति अपने राज्य का राजा समझता है। उपराजा, भण्डारिक एवं सेनापति राजा की सहायता करते थे।

सभा या संस्था गणराज्यों के कुल प्रमुखों की सर्वोच्च सभा होती थी। इसमें विभिन्न विषयों पर विचार विमर्श करके निर्णय किया जाता था। जिस स्थान पर सभा की जाती थी उसे संस्थागार या संथागार कहा जाता था। संस्थागार में सदस्यों के एक निश्चित क्रम में बैठने की व्यवस्था आसन पन्नापक नाम का अधिकारी करता था। संस्था के अधिवेशन के लिए एक निश्चित संख्या गणपूर्ति (कोरम) आवश्यक थी। संस्था में सदस्य द्वारा औपचारिक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता था। प्रस्तोता द्वारा प्रस्ताव पेश किये जाने के बाद उसे तीन बार दोहराया (अनुस्साव) जाता था, ताकि सभी उपस्थित सदस्य उसे सुन सके। प्रस्ताव के अनुमोदन के लिये सदस्यों से पूछा जाता था। जो सदस्य मौन रहते थे, उनकी सहमति मान ली जाती थी। वादविवाद के बाद सर्वसम्मति न बनने पर मतदान की भी व्यवस्था थी। विभिन्न रंगों की शलाकाओं द्वारा जो कि भिन्न मतों की सूचक थी, मतदान कराया जाता था। शालाका ग्राहपक नामक अधिकारी इन्हें एकत्र करता था। यह कार्य गोपनीय या खुले दोनों रूप में होता था। विवादित विषय कतिपय चयनित समितियों को सौंप दिया जाता था। गणंतत्रो की न्यायिक व्यवस्था का भी विशेष स्थान था। बुद्धघोष की अट्टकथा के अनुसार अपराधी की जाँच पड़ताल सात न्यायिक अधिकारियों द्वारा की जाती थी और उसके बाद ही उसे दण्ड दिया जाता था। हमारी वर्तमान संसदीय एवं संवैधानिक व्यवस्था में महा जनपद कालीन गणतंत्रीय व्यवस्था की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। प्राचीन भारत में प्रजातंत्र का यह अनुकरणीय उदाहरण था। लेकिन यह व्यवस्था लम्बे समय तक निरन्तर नहीं रह सकी। कालान्तर में मौर्य शासक चन्द्रगुप्त ने सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया। उसने केन्द्रीयकृत शासन व्यवस्था की स्थापना कर सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक राजनैतिक इकाई के रूप में संगठित किया।

सामाजिक जीवन –प्रमुख विशेषताएं

वर्ण व्यवस्था – प्राचीन भारतीय समाज में वर्ण और आश्रम व्यवस्था तत्कालीन समाज की आधार शिला थी। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त के दसवें मण्डल में, परमपुरुष से उत्पन्न भारतीय समाज के चार वर्णो (ब्राह्मण क्षत्रिय,वैश्य एवं शूद्र)का उल्लेख है, जिन्हें परम् पुरूष से उत्पन्न बताया है। इसके अनुसार समाज एक व्यक्ति और वर्ण उसके अंग माने गये हैं। इन वर्णो का मुख्य आधार व्यवसाय था। इस काल में व्यक्ति को व्यवसाय अपनाने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। एक ही परिवार के लोग ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य हो सकते थे। उत्तर वैदिक काल में वर्ण भेद व्यवस्था का और अधिक विकास हुआ। लेकिन आधार कर्म ही था। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ का कथन है कि कोई भी व्यक्ति ज्ञान से ब्राह्मण बनता है न कि जन्म से। इस समय अन्तवर्णीय विवाहों के अनेक उदाहरण है। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य व्यावसायिक कुशलता का विकास था। वर्ण परिवर्तन सम्भव था जैसे ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ का कर्ता महिदास किसी अज्ञात आचार्य की पत्नी इतरा (शूद्र वर्ण) का पुत्र था, इसीलिये ऐतरेय कहलाया। वेद व्यास का भी इसी प्रकार का उदाहरण है।

सूत्र काल में वर्ण भेद में जन्मना दृढता आने लगी। गौतम बुद्ध के समय वर्ण व्यवस्था विकृत व अधिक कठोर हो गई एवं आपसी भेद बढ़ गए। इसीलिए बौद्ध साहित्य में वर्णभेद की कटु आलोचना की गई। वर्ण व्यवस्था के विकृत रूप से ही धीरे धीरे जाति व्यवस्था बनी। कर्म आधारित वर्ण धीरे धीरे जन्म आधारित जातियां हो गई। वैदिक सभ्यता से पूर्व भी भारतीय समाज अनेक व्यवसायगत समाजों में विभाजित था।

आश्रम व्यवस्था – आश्रम व्यवस्था का विकास उत्तर वैदिक काल से माना जाता है। उपनिषदो में अधिकांशतः 3 ही आश्रम थे– ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम । धर्म सूत्र साहित्य एवं स्मृतिग्रन्थों में आश्रम व्यवस्था की जानकारी एवं इससे सम्बन्धित व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को एक आदर्श परिधि में व्यक्त करते हुये उसकी जीवन की गति को चार आश्रमों में विभाजित किया गया। मनुष्य से अपेक्षा की गई कि जीवन के इन चार सोपानों– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व **सन्यास आश्रम–** को पार करते हुये अपने जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करेगा। मानव के इतिहास में जीवन के वैज्ञानिक विभाजन का प्रथम प्रयास, विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। पुरूषार्थ और आश्रमों के आदर्श एक दूसरे से जुड़े हुये है। मनुष्य ब्रह्मचर्य आश्रम में धर्म से परिचित होता है, शिक्षा प्राप्त कर उसकी साधना करता है, गृहस्थाश्रम में धर्मरत होकर अर्थ और काम को प्राप्त करता है, वानप्रस्थ में वह पूरा समय समाज कार्य के लिए लगाता था तथा सन्यास में वह मोक्ष प्राप्ति के लिये साधना करता है।

वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार समाज के लिए उपयोगी बनाना था, जबकि आश्रम व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य भौतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व नैतिक लक्ष्यों का समान रूप से समन्वयीकरण है। इस व्यवस्था का विकसित रूप हमें सूत्र काल और महाकाव्य काल में देखने को मिलता है। प्रोफेसर जी.सी. पाण्डे ने लिखा है– आश्रम व्यवस्था वर्ण व्यवस्था के पूरक के रूप थी। आश्रम एक ओर व्यक्ति को समाज से जोड़ते हैं, दूसरी ओर वे उसके विकास के क्रमबद्ध सोपान बनते है।

संस्कार द्वारा जीवन का परिष्कार – सम्पूर्ण विश्व में भारतीय समाज सामाजिक व्यवस्थाओं दृष्टि से अग्रणी रहा है। भारतीय ऋषि मनीषियों की मान्यता है कि व्यक्ति 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्चयते' अर्थात् व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है परन्तु संस्कार (गुण विकास) से वह द्विजत्व (द्वितीय जन्म या विद्वता) प्राप्त करता है। भारत में व्यक्तिगत जीवन को

सुव्यवस्थित कर पूर्णता की ओर ले जाने के लिए जिन धार्मिक व सामाजिक क्रियाओं को अपनाया जाता है, उन्हें संस्कार कहा जाता है। संस्कारो का विस्तृत विवेचन गृह्य सूत्रों, धर्म सूत्रों एवं स्मृतियों में मिलता है। विभिन्न ग्रन्थों में इनकी संख्या अलग अलग है। वैखानस गृह सूत्र में 18, पाराशर बोद्धायन, वराह गृह सूत्र व मनुस्मृति में 13 व गौतम गृह सूत्र में 40 संस्कार बताये हैं। वर्तमान 16 संस्कारों को प्रमुख माना गया है जो इस प्रकार है – 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्नतोनयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चूड़ाकर्म, 9. कर्णवेध, 10. विद्यारम्भ, 11. उपनयन, 12. वेदारम्भ, 13. केशान्त, 14. समावर्तन, 15. विवाह, 16. अन्त्येष्टी

पुरूषार्थ की अवधारणा– भारत में पुरूषार्थ की अवधारणा अति प्राचीन है। धर्म अर्थ अैर काम वैदिक काल से ही मनुष्य के लिए अनुसरणीय बताये हैं, लेकिन उपनिषद् जैन धर्म और बौद्ध धर्म में मोक्ष को मनुष्य जीवन का परम एवं अन्तिम लक्ष्य बताया है। बाद में धर्म अर्थ काम व मोक्ष का समन्वय हो गया। पुरूषार्थ से तात्पर्य पुरूष (मनुष्य) के योग्य अर्थ अथवा मूल्य। मूल्य से तात्पर्य आदर्श से है। जिन आदर्शों का अनुसरण मनुष्य को अपने जीवन में करना चाहिए, वे पुरुषार्थ हैं। भारत में मानव के लिए अनुसरण करने योग्य मूल्यों का वर्गीकरण चार पुरुषार्थ– धर्म (सदाचार–आचरण) अर्थ (भौतिक सम्पदा) काम (सुविधा भोग) एवं मोक्ष (जीवन–मरण बन्धन से मुक्ति) के रूप में किया गया है। धर्म का सम्बन्ध सदाचार, कर्तव्य पालन व सद्गुण से है। अर्थ का सम्बन्ध मनुष्य की भौतिक समृद्धि के उपभोग से है। काम का सम्बन्ध भौतिक सुख समृद्धि के उपभोग से तथा मोक्ष का सम्बन्ध सांसारिक जीवन से मुक्त होने से है। प्रथम तीन पुरूषार्थ का सम्बन्ध मनुष्य के सांसारिक जीवन से है, जबकि चौथे पुरूषार्थ का सम्बन्ध अध्यात्म से है। भारतीय संस्कृति में पुरूषार्थ का दर्शन सम्पूर्ण जीवन दृष्टि से है जिसमें लौकिक जीवन के विभिन्न पक्षों के साथ साथ व्यक्ति के पारलौकिक अथवा आध्यात्मिक सम्बन्ध भी शामिल है।

ऋण व यज्ञ की अवधारणा – ऋण व यज्ञ की अवधारणा भी भारतीय संस्कृति व धर्म का महत्वपूर्ण भाग है। ऋग्वेद में लौकिक एवं पारलौकिक दोनों संदर्भ में मनुष्य के ऋणों की चर्चा आयी है। ये मंत्र इस भावना को दर्शाते है, कि उऋण (ऋण मुक्त) हो जाने में ही सुख निहित है। भारतीय ऋषियों ने तीन (त्रिऋण) की व्यवस्था की है। ये ऋण है– देव ऋण, ऋषि ऋण व पितृ ऋण इन ऋणों से मुक्त होने पर ही मुक्ति सम्भव है। ये ऋण मनुष्य के सामाजिक दायित्वों से सम्बन्धित है।

पितृ ऋण – सन्तानोत्पत्ति के द्वारा मानव जाति की निरन्तरता बना कर हम पितृ ऋण की पूर्ति कर सकते है।

ऋषि ऋण – जो ज्ञान हमें ऋषियों से मिला है और जिस ज्ञान की परम्परा के हम उत्तराधिकारी हैं, उस ज्ञान और परम्परा का सवर्द्धन करके ऋषि ऋण की पूर्ति कर सकते है।

देव ऋण – देवताओं के प्रति हमारा दायित्व जिसे यज्ञादि से पूरा किया जाता है।यह ऋण मनुष्य को सृष्टि से जोड़ता है। अतः मनुष्य को समस्त प्राणियों कीट पतंगे, पशु पक्षियों को भोजन व सूर्य चन्द्र की स्तुति कर सृष्टि की निरन्तरता में हमें योगदान करना चाहिए।

पांच महायज्ञ – भारतीय सस्कृति में प्रत्येक गृहस्थ के लिए पाँच महायज्ञ का भी आवश्यक प्रावधान किया गया है।

ब्रह्म या ऋषि यज्ञ– स्वाध्याय व ऋषि के विचारों का अनुशीलन करना।

देवयज्ञ– देवताओं की यज्ञ करके स्तुति करना, पूजा करना प्रार्थना करना एवं वन्दना करना।

पितृ यज्ञ– माता पिता की सेवा करना तथा गुरू, आचार्य,वृद्धजन का सम्मान व सेवा करना

भूत यज्ञ– विभिन्न प्राणियों,पशु पक्षियों गाय कौआ चीटी कुत्त को भोजन करवाकर सन्तुष्ट करना एवं अतिथियों की सेव करना।

नृप यज्ञ– सम्पूर्ण मानव मात्र के कल्याण के लिए कार्य करना।

परिवार व्यवस्था एवं स्त्रियों की स्थिति – परिवा व्यवस्था की संकल्पना भी भारतीय सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। यह व्यवस्था भी भारत में ही सुदृढ़ रही है। इस संस्था ने व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़कर समाज व राष्ट्र तक पहुँचाया है। इसी भाव से हम भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम् का विश्व संदेश देते हैं। पुरा ऐतिहासिक युग (सिन्धु सरस्वती सभ्यता) में भी हमें परिवार की संकल्पना के अवशेष दिखाई देते हैं। अनेक संख्या में मातृ मृण मूर्तियां अवशेषों में मिली है, जो कि उस समय के मातृसत्तात्मक परिवार का संकेत देते हैं।

वैदिक संहिताओं में परिवार के स्थान पर कुटुम्ब शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें दो या तीन पीढ़ियों के लोग रहते थे इसे वर्तमान परिभाषा में संयुक्त परिवार कहा जाता था। वैदिक युग में पितृ सत्तात्मक परिवारों का उल्लेख है। लेकिन पुत्र व पुत्री के सामाजिक व धार्मिक अधिकारों में अन्तर नहीं था। पुत्र के समान ही पुत्री को भी उपनयन, शिक्षा व यज्ञ करने का अधिकार था। प्राचीन काल में पत्नी और मां के रूप में स्त्री की अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' (जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते है) का भाव भारतीय समाज में था। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं की दृष्टा ऋषियों की तरह ऋषिकाएँ भी थी। घोषा, आपाला, लोपामुद्रा, विश्ववारा तथा सिकता निवावरी जैसी विदुषी महिलाओं के नाम मिलते हैं जो याज्ञिक अनुष्ठानों का सम्पादन करती थीं।

भारतीय कुटुम्ब का स्वरूप पति पत्नी माता पिता व बच्चों के सम्बन्धों पर आधारित था। पुरूष व स्त्री के सम्बन्धों का मूल आधार विवाह संस्था थी। यही संस्था परिवार की आधार शिला थी। विवाह एक प्रकार से गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार रहा है जो कि एक विधि सम्मत धार्मिक व सामाजिक संस्कार है। विवाह के माध्यम से व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर पितृ देव व ऋषि ऋण चुकाकर धर्म संचय कर अर्थ का उपार्जन करता है। हमारे धर्म शास्त्रों में विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख मिलता है– ब्रह्म, देव, आर्य, प्रजापत्य, असुर, गन्धर्व, राक्षस ओर पैशाच। इनमें प्रथम चार की ही भारतीय समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

धार्मिक जीवन की उपलब्धियाँ

सांस्कृतिक विशेषताओं एवं समृद्धि के कारण ही भारत को विश्व गुरू का दर्जा प्राप्त था। वैदिक कालीन सभी देवी देवत

प्राकृतिक शक्तियों से सम्बन्धित गुणवाचक नाम थे। इनकी संख्या बहुत थी।इन्हें तीन वर्गों में बाँटा गया है –

1.स्वर्गवासी देवता (आकाशवासी)– द्यौस, वरूण, सूर्य, सावित्रि, अदिति, ऊषा, मित्र, विष्णु, अश्विन्, मित्र।

2.पार्थिव देवता (पृथ्वीवासी)– पृथ्वी, अग्नि, सोम, बृहस्पति, सरस्वती आदि।

3.वायुमण्डलीय देवता (अन्तक्षवासी)– वरूण, वात, इन्द्र, रूद्र, पर्जन्य, मारूत।

प्रार्थना, स्तुति व यज्ञ के माध्यम से देवताओं की पूजा अर्चना की जाती थी। प्रकृति की बहुदेवीय शक्तियों की उपासना के होते हुए भी ईश्वर की 'परम एकता' पर बल दिया गया है। उसी ईश्वरीय शक्ति ने सृष्टि का निर्माण किया है और लोग उसे भिन्न रूपों में पूजते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है – 'एकम् सत विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य ईश्वर एक ही है, ऋषियों ने उसका अलग अलग रूपों में वर्णन किया है) उपनिषदों में उसे परम ब्रह्म की संज्ञा दी है। आत्मा उसी परमब्रह्म का अंश है। ब्रह्म व आत्मा एक ही है।उपनिषदों के दर्शन के अनुसार ब्रह्म से ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति हुई है और यह जगत पुनः ब्रह्म में विलीन हो जाता है। आत्मा का ब्रह्म में विलय होना ही मोक्ष कहलाता है। उपनिषद् हमें सांसारिक वस्तुओं के प्रति मोह त्याग, मन व बुद्धि को निर्मल बनाना और सादगी व सदाचारी जीवन जीने का सन्देश देते हैं।हमारे अनेक महापुरूषों रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उपनिषद् दर्शन की विवेचना की है। श्रीमद्भगवद्गीता जैसे धर्म, दर्शन व नीति के महान् ग्रन्थ की रचना हुई एवं कर्मयोग पर चलने का संदेश मिला जिसका अर्थ है – बिना किसी अहंकार के स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुये फल की कामना किए बिना कर्म के मार्ग पर चलना। हमारे धार्मिक दर्शन ने मानव कल्याण एवं राष्ट्र कल्याण के भाव को मजबूती प्रदान की है।

आर्थिक जीवन की उपलब्धियाँ

भारत की आर्थिक समृद्धता हमारे वैभवशाली अतीत को दर्शाती है। इसी समृद्धता के कारण प्राचीन काल में भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि एवं पशु पालन हमारी अर्थ व्यवस्था का मूल आधार रहा है। गाय को अघन्या (not to be killed) माना जाता था और उसे गावो विश्वस्य मातरम् (गाय माँ की तरह ही विश्व का पालन करने वाली है) कहा गया है। ऋग्वेद में जुताई, बुवाई, फसल की कटाइ, बैल द्वारा हल खींचना, खाद्यान्नों के उत्पादन का उल्लेख है। कुल्याओं (नहरों) का भी उल्लेख है। इनसे उस समय की उन्नत कृषि व्यवस्था का संकेत मिलता है। आज के हजारों वर्ष पूर्व लकड़ी, चमड़े व पत्थर के उद्योगों का भी उल्लेख मिलता है।

उस समय का व्यापार भी काफी उन्नत था। एक प्रसंग में इन्द्र की प्रतिमा का मूल्य 10 गायें बताया है। ऋग्वेद में 100 पतवार वाली नाव का उल्लेख है। तेतरीय उपनिषद् में अधिक अन्न उपजाने का सन्देश दिया गया है। उत्तर वैदिक काल में कृषि की नई तकनीकी का विकास हुआ। हल में दो चार छः व बारह बैलों के जुते होने का उल्लेख है। गोबर को खाद के रूप में प्रयोग में लेने का भी उल्लेख है। इस समय व्यावसायिक संघों का अस्तित्व भी शुरू हो गया था। श्रेष्ठी, गण व गणपति शब्द का प्रयोग इसी संदर्भ में हुआ है।

महाकाव्य काल में दो प्रकार की उपज का उल्लेख है– (1) वनेय जो अपने आप पैदा होती थी (2) कृष्ट – जो कृषि कार्य व परिश्रम करके उत्पन्न की जाती थी– गोधूम (गेहूँ, यव (जौ) व्रीही (चावल), माल (उड़द), चणक (चना), तिल आदि। कर के रूप में उपज का 1/6 से 1/10 तक देना होता था। पशु विशेषज्ञों के उल्लेख से इस समय पशु पालन तकनीकी में भी विकास के संकेत मिलते हैं। महाभारत में समुद्री यात्राओं का उल्लेख भी मिलता है। देशी एवं अन्तर्देशीय दोनों प्रकार का व्यापार होता था।

कला सम्बन्धी उपलब्धियाँ

कला के क्षेत्र में जैन धर्म ओर बौद्ध धर्म दोनों का ही विशेष योगदान रहा। इन धर्मो के अनुयायियों द्वारा भारत के विभिन्न भागों में निर्मित मन्दिर, मठ, चैत्य, विहार, स्तूप, मूर्तियाँ गुफाएं भारतीय कला के उत्कृष्ट प्रमाण है।

कोलवी की बौद्ध गुफाएं, सांची भरहुत एवं अमरावती के स्तूप, कन्हेरी (मुम्बई), कार्ले–भाजा (मुम्बई–पूणे के मध्य) के चैत्य व विहार बौद्धकला के श्रेष्ठ उदाहरण है। मूर्तिकला की दृष्टि से हमारी शैलियों में गांधार व मथुरा कला विशेष उल्लेखनीय है। सारनाथ से प्राप्त प्रसिद्ध बौद्ध प्रतिमा भारतीय कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। अजन्ता के भीति चित्र चित्रकला की दृष्टि से विश्व विख्यात है।

वैदिक काल में अयस् धातु को आग में पिघलाकर उसे पीट पीट कर उसे विभिन्न आकार देने में यहां के लोग सक्षम थे। ऋग्वेद में हिरण्य (सोना) से विभिन्न आभूषण बनाये जाने का उल्लेख है। आभूषणों में कर्णशोभन व निस्क (स्वर्णमुद्रा या मूल्य की इकाई का आभूषण) बनाये जाते थे। वैदिक आर्य कपड़ा बनाने की कला से भी परिचित थे। बुनने के लिये वय धातु थी, बुनाइ के कार्य को 'वयन' बुनकर को (जुलाहे) और बुने हुये वस्त्र को 'वयून' करते थे। धागे या सूत के लिये 'तन्तु' व करघे के लिये तंत्र शब्द का प्रयोग हुआ है। काष्ट कला के भी उत्कृष्ट उदाहरण है।

विज्ञान से सम्बन्धित उपलब्धियाँ

वेदो में विज्ञान का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। विज्ञान के गणित ज्योतिष व रसायन विषयों पर लिखित संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद परवर्ती काल में अरबी, लेटिन व अंग्रेजी भाषा में हुआ। पश्चिम की जानकारी इन शाखाओं में सीमित थी और ऐसा प्रतीत होता है भारत में पीढ़ियां दर–पीढ़ियां इस क्षेत्र में कार्य कर रही थी।

चिकित्सा विज्ञान – विज्ञान की कसौटी पर खरा एवं वर्तमान में अत्यधिक उपयुक्त एवं श्रेष्ठ चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद से हम सभी परिचित हैं। इसमें केवल मनुष्य ही नहीं अपितु सृष्टि के समस्त प्राणियों के जीवन व उपकार का वर्णन है। इनमें आयुर्वेद

व चिकित्सा विज्ञान का विस्तृत उल्लेख है। भारत में आयुर्वेद की परम्परा बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में भिषक (वैद्य या चिकित्सक) का कई स्थानों पर उल्लेख आया है। एक भिषक को पैर की टूटी हड्डी को जोड़ने का प्रयास करते हुए बताया गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि इस समय चिकित्सा विज्ञान विकसित था। चरक, सुश्रुत, एवं धनवन्तरि इस क्षेत्र के प्रमुख विद्वान थे। चरक संहिता में चिकित्सा पद्धति का विशद् वर्णन है।

भारतीय परम्परानुसार सर्व प्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष एवं भास्कर को दिया था। भास्कर ने अपनी चिकित्सा पद्धति का विकास किया। दक्ष प्रजापति ने आयुर्वेद का ज्ञान अश्विनी कुमारों को दिया। अश्विनी कुमारों ने पर्वतों पर औषधियाँ उत्पन्न की और चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक चमत्कार दिखाये। चरक संहिता में अच्छे वैद्य के 6 गुण बताये हैं। विद्या, (शिक्षा), वितर्को (अलोचनात्मक दृष्टिकोण), विज्ञान, स्मृति, तत्परता व क्रिया। आयुर्वेद ऋग्वेद के उपवेद के रूप में जाना जाता है। अथर्ववेद के अध्याय 8 श्लोक 10 में उल्लेख है कि जहर का उपचार जहर से होता है। शरीर के अच्छे व बुरे जीवाणुओं (बेक्टीरिया) का उल्लेख है। वेदों के तीन प्रमुख विषय हैं – ईश्वर, आत्मा व प्रकृति। प्रकृति में सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान का विवरण है।

धनवन्तरि

चरक

आयुर्वेद के त्रिधातु सिद्धान्त, त्रिदोष सिद्धान्त, पंच भौतिक देह, व उसका पुरूष प्रकृति सम्बन्ध, सांख्य दर्शन का सप्तधातु सिद्धान्त आज भी चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अचूक एवं उपयोगी है। आचार्य सुश्रुत ने चिकित्सा में शल्य (Surgery), काय चिकित्सा (Cardiology) , भूत–विद्या कोमार भृत्य (Paediatrics), अगद (Toxicology), शालाक्य, रसायन व वाजीकरण (Viritification) आदि अष्टांगो का विवरण दिया। चरक संहिता में देह औषधियों का विशद् वर्णन है। चरक व सुश्रुतके ग्रन्थों का अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया है। बाग्भट्ट ने अष्टांग हृदय सहिता में आयुर्वेद का ज्ञान, व्यवस्थित कर संग्रहीत किया है। उन्हें ज्वर, अम्बपित्त, कास, राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग, उदर, उन्माद, अपस्मार, मूत्रधात, नेत्ररोग, कुष्ठ रोग आदि के लक्षण व उपचार का ज्ञान था। इनके अलावा माधवकर, वृन्द, धनवन्तरि, चक्रपणिदत्त आदि प्राचीन भारतीय आयुर्वेदाचार्यों ने इस ज्ञान में निरन्तर वृद्धि की।

गणित– ज्ञान की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि सिन्धु सरस्वती सभ्यता में गणित की संख्याओं के लिए प्रतीक चिह्न थे। संख्या

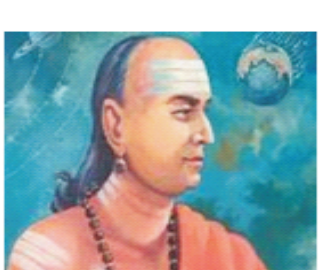

आर्यभट्ट

भास्कराचार्य

शास्त्र (गणित) में भारत की जानकारी काफी पहले से थी। शून्य व उसका उपयोग करना भारतीय बहुत पहले से जानते थे विलड्यूरेन्ट ने अपनी पुस्तक 'सभ्यता का इतिहास' में लिखा है वह भारत है जिसने हमें सभी संख्याओं को केवल 10 अंकों व्यक्त करने की अभिनव विधि बतायी, जिसमें प्रत्येक अंक क निरपेक्ष मूल्य भी और स्थानीय मूल्य भी था।

यजुर्वेद में दस घात बारह (10^{12}) तक संख्याओं के नाम है। विक्रम सम्वत् के बाद दस घात तिरेपन (10^{53}) संख्या लिखन का भारतीयों का ज्ञान था। जबकि चौथी शताब्दी ई.पूर्व तक रोम व यूनान में अधिकतम् 10^4 की संख्या लिख सकते थे। दशमलव के प्रयोग द्वारा गणित के क्रान्तिकारी विकास का आधार भारत था। सातवीं शदी के बाद लेटिन व अरबी अनुवाद से यह ज्ञान भारत से विश्व में पहुँचा। वर्गमूल निकालने की पद्धति, त्रिभुज चतुर्भुज, वृत्त की परिधि का क्षेत्रफल, पाई का चार दशमलव तक मान (exact value) 3.1416 का ज्ञान पाँचवी शताब्दी में आर्यभट्ट को था। किसी भी घात के विस्तार का सूत्र ब्रह्मगुप्त ने खोज निकाला था। भास्कराचार्य के ग्रन्थ लीलावती सिद्धान्तशिरोमणि अंक गणित, बीजगणित व रेखा गणित की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। शून्यलब्धि में आधुनिक प्रगत कलन गणित (calculus) का उनको ज्ञान था। बोधायन के 'शुल्वसूत्र' में क्षेत्रफल के सूत्रों की जानकारी मिलती है। समकोण त्रिभुज का योग दो भुजाओं के वर्गो के समान होता है, 'रेखा गणित के इस सिद्धान्त' चिति प्रमेय' का प्रतिपादन बोधायन ने किया था पाइथागोरस ने इसे भारत से प्राप्त किया। वर्ग सूत्र भी बोधायन एवं आपस्तम्ब का हैं। कात्यायन ने वृत्त के ग्राफ को नापने की विधि बताई।

खगोल एवं ज्योतिष विज्ञान

अपनी निरीक्षण शक्ति के बल पर प्राचीन भारतीय अन्वेषकों ने अन्तरिक्ष, तारे, ब्रह्माण्ड आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की। भारतीय पंचाँग प्रणाली से प्रकट होता है कि पृथ्वी का आकार और भ्रमण, सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण, ग्रह–उपग्रह, तारों की गति, सताईस नक्षत्र आदि के बारे में जानकारी व गणना वर्तमान प्रगत विज्ञान के युग में भी सटीक है। जब विश्व को पृथ्वी के आकार के बारे में जानकारी नहीं थी तब आर्यभट्ट ने पृथ्वी के भ्रमण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। तारों व ग्रहों की गति के सूक्ष्म ज्ञान का वर्णन शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में है। प्राचीन ज्योतिषविदों द्वारा प्रतिपादित चन्द्र का पृथ्वी के चारों ओर घूमना और पृथ्वी का अपने अक्ष पर भ्रमण देखकर बारह राशियाँ, सताईस नक्षत्र, तीस दिन का चन्द्र मास बारह मास का वर्ष, चन्द्र व सौरवर्ष में समन्वय हेतु तीसरे वर्ष

पुरूषोत्तम मास (अधिक मास) द्वारा समायोजन आदि सिद्धान्त आज भी यथावत् चल रहे हैं।

भौतिक व रसायन विज्ञान

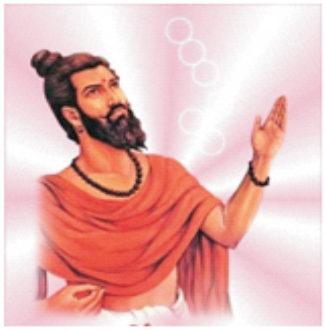

महर्षि कणाद

मेहरौली(दिल्ली) का लोह स्तभ

कणाद ऋषि वैशेषिक दर्शन के रचयिता एवं अणु सिद्धान्त के प्रवर्तक थे। इनसे हमें प्राचीन भारत में भौतिक विज्ञान की प्रगति की जानकारी मिलती है। कणाद ने पदार्थ (matter) उसके संघटक तत्व व गुण (atoms) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। अणुओं के संयोजन की विशद् धारणा भी कणाद ने दी। पदार्थ (matter) कार्यशक्ति (Power) गति (motion) व वेग (velocity) आदि विषयक भौतिक सिद्धान्त प्राचीन ऋषियों व विद्वानों ने दिये। यूरोप में 14वीं शताब्दी में भौतिकी के जो सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये, वे पांचवी शताब्दी के प्रशस्तपाद के 'पदार्थ धर्म सग्रह' व व्योम शिवाचार्य के 'व्योमवती' ग्रन्थों में उपलब्ध है।प्राचीन काल में भारतीयों को रासायनिक मिश्रण का भी ज्ञान था,इसका उदाहरण मेहरौली(दिल्ली) का लोह स्तभ है, जिस पर आज तक जंग नहीं लगा।

समाज से दूर वन में रह कर केवल ज्ञान की उपासना

वैदिक वाङ्मय एक दृष्टि में

ग्रंथ / वेद	ऋग्वेद	कृष्ण यजुर्वेद	शुक्ल यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
1. उपवेद	आयुर्वेद		धनुर्वेद	गांधर्ववेद	शिल्पवेद
2. ब्राह्मण ग्रंथ	ऐतरेय,	कौषितकी तैत्तरीय	– शतपथ	पंचविश	गोपथ
3. आरण्यक	ऐतरेय,	सांख्यायन तैत्तरीय	–बृहदारण्यक	जेमिनीय	–
4. उपनिषद्	ऐतरेय,	कौषितकी तैत्तरीय, कठ श्वेताश्वर	–ईशावास्य बृहदारण्यक	छांदोग्य–केन	प्रश्न,मुंडक, मांडुक्य
5. श्रोत सूत्र	आश्वलायन,	कौषीतकी आपस्तम्ब हिरण्यकेशी बोधायन	कात्यायन	खादिर, लाट्यायन द्राध्यायण	वैतान
6. गृह्य सूत्र	आश्वलायन,	कौषितकी मैत्रायणी,आपस्तंब–कात्यायन बोधायन,कठ,पारस्कर वेश्वानस		खादिर,गोभिल गौतम	कौशिक

अन्य धर्मसूत्र (स्मृतिया) 1. मनु स्मृति 2. अत्रि स्मृति 3. हारित 4. याज्ञवल्क्य 5. अशका 6. अंगिरा 7. यम 8. आपस्तंब 9. संवर्ग 10. कात्यायन 11. बृहस्पति 12. पाराशर 13. व्यास 14. शंख 15. लिखित 16. दक्ष 17. गौतम 18. शातातय 19. वशिष्ठ 20. देवल 21. सोम 22. नारद 23. यमदर्शन 24. प्रजापति 25. बौधायन 26. आश्वालयन 27. शोनक 28. काश्यप 29. गोभिल

वेदांग 1. शिक्षा 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरूक्त 5. छन्द 6. ज्योतिष

करने वाले तपस्वी लोगों का एक बहुत बड़ा वर्ग प्राचीन भारत में अध्ययन अध्यापन करता था। उनके आश्रम मानव का मार्ग दर्शन करने वाली प्रयोगशालाएँ थी। भारतीयों की भौतिक प्रगति के मूल में आध्यात्मिक प्रेरणा थी। भारत के प्राचीन विद्यापीठ संसार के अनेक देशों के छात्रो से भरे रहते थे। सभी देश भारत को गुरू मानते थे। इसीलिए मनु ने बड़े आत्म विश्वास से घोषणा की है कि – इस देश में जन्में ज्येष्ठ जनों के पास अपने चरित्र निर्माण की शिक्षा लेने हेतु संसार के मानव आए।

सारांश के रुप में हम कह सकते हैं कि भारत का अतीत वैभवशाली रहा है। पृथ्वी पर रोम यूनान मिश्र सुमेरिया आदि संस्कृतियाँ उदित हुई और अस्त भी हो गई। लेकिन भारतीय संस्कृति अनवरत रही। भारतीय संस्कृति ने केवल भारतीय ही नहीं अपितु विश्व के अनेक मानव समाजों को प्रभावित किया है। भारत देश आकार में विस्तृत, परम्परा से समृद्ध, प्राचीन विपुल साहित्य से भरपूर, सतत इतिहास व अनन्त संस्कृति से परिपूर्ण है। अनेक संघर्षों का मुकाबला करते हुए भारतीय संस्कृति अस्तित्व में रही। भारतीय धर्म, समाज एवं संस्कृति व इतिहास प्राचीन काल से ही अत्यधिक गौरवपूर्ण एवं समृद्ध रही है। अनेक विदेशी आक्रमणकारियों ने भारतीय संस्कृति व धर्म को बहुत ही आघात पहुचाया। लेकिन हमारी संस्कृति का स्वरूप इन आक्रमणों के बाद भी अक्षुण्ण बना रहा है। भारत भूमि वीर भूमि रही है जहाँ वीर महापुरुषों ने अपने प्राणों की अपेक्षा अपनी स्वतंत्रता एवं सम्मान को अधिक महत्व दिया। यहां के महापुरुषों जननायक, समाज सुधारकों ने भारतीयों को एक नया रास्ता दिखाया। वैदिक साहित्य से हमें जानकारी मिलती है लोगों में भारतमाता, भारतवर्ष या भारत खण्ड के प्रति सम्मान एवं भक्ति की भावना थी। यह हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक है। प्राचीन काल से ही भारत में राष्ट्रवाद के विकास के विभिन्न सोपान रहे हैं। भारत मे राष्ट्रवाद की अवधारणा वैदिक काल से ही चली आ रही है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को विशेष महत्व था। प्राचीन काल में वृद्धतर भारत का उल्लेख मिलता था। जिसके अन्तर्गत भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य सम्पूर्ण मध्य एशिया में व्याप्त था। भारतीय संस्कृति ने अनेकाविध उपासना पद्धति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

अध्ययन बिन्दु

- प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति का विश्व में प्रसार था।
- इतिहास में मानव का सम्पूर्ण अतीत समाहित होता है।
- कर्नल अल्काट के अनुसार मानव संस्कृति का उद्‌गम स्थल भारत ही है।
- विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है।
- पुरातात्विक साक्ष्य प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के प्रामाणिक साधन हैं।
- कौटिल्य, कल्हण एवं बाणभट्ट ने भारतीय इतिहास लेखन परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।
- वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है।
- बौद्ध एवं जैन ग्रन्थ भारतीय इतिहास की जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत है।
- भारत में उत्तर पुरापाषाण काल के कई प्रमाण उपलब्ध है।
- व्यवस्थित नगर नियोजन, सिन्धु सरस्वती सभ्यता की प्रमुख विशेषता है।
- सिन्धु सरस्वती सभ्यता का विस्तार भारत सहित वर्तमान पाकिस्तान व अफगानिस्तान था।
- सरस्वती नदी वैदिक आर्यों के जीवन का प्रमुख आधार थी।
- सिन्धु सरस्वती वासी मिट्‌टी के बर्तन बनाने की कला से परिचित थे।
- सिन्धु सरस्वती वासी मुहर निर्माण कला में पारंगत थे।
- प्राचीन काल में कई भारतीय नाविकों ने समुद्री मार्ग से विदेश यात्राएँ की एवं भारतीय संस्कृति का विश्व में प्रसार किया।
- समुद्र पार भारतीय प्रदेशों को दीपान्तर कहा जाता था।
- नवपाषाण युग में मानव पत्थर के उपकरणों की सहायता से पशुपालन व कृषि कार्य करने लग गया था।
- सिन्धु सभ्यता के अधिकांश स्थल सरस्वती नदी घाटी क्षेत्र में स्थित है, इसीलिये इसे सिन्धु सरस्वती सभ्यता कहा जाता है।
- ऋग्वेदिक काल में सभा व समिति नाम की दो महत्वपूर्ण संस्थाएं शासन संचालन में महत्वपूर्ण योगदान करती थी।
- प्राचीन भारत में विज्ञान के क्षेत्र में ज्योतिष, खगोल, गणित, चिकित्सा, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान का ज्ञान काफी समृद्ध था।
- दशमलव प्रणाली एवं शून्य का आविष्कार भारत में ही हुआ था।
- उपनिषद् साहित्य भारतीय दर्शन साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. किस वेद में पृथ्वी को भारत माता के रूप में स्वीकार किया है?
   (अ) अथर्ववेद (ब) सामवेद
   (स) यजुर्वेद (द) ऋग्वेद

2. 'मिडास ऑफ गोल्ड' पुस्तक का लेखक कौन थे।
   (अ) मैक्समूलर (ब) डी.डी.कौशाम्बी
   (स) अल मसूदी (द) अल्बेरूनी

3. विक्रम सम्वत् की शुरुआत कब हुई ?
   (अ) 78 ई.पूर्व (ब) 57 ई.पूर्व
   (स) 78 ई. (द) 130 ई.

4. निम्नांकित में से कौन सा वेदांग नहीं है –
   (अ) शिक्षा (ब)व्याकरण
   (स) ज्योतिष (द)सूत्र

5. प्राचीन भारत में नौका शास्त्र के ग्रन्थ 'युक्तिकल्पतरू' के लेखक का नाम था –
   (अ) राजा भोज
   (ब) गौतमी पुत्र सातकरणी
   (स) भास्कराचार्य
   (द) बाणभट्ट

6. ऋग्वेदिक आर्यो का भौगोलिक क्षेत्र था –
   (अ) ईरान
   (ब) अफगानिस्तान
   (स) दो आब प्रदेश
   (द) सप्तसैन्धव

7. सिन्धु सरस्वती सभ्यता में विशाल स्टेडियम के अवशेष कहाँ प्राप्त हुए हैं–
   (अ) लोथल
   (ब) राखीगढ़ी
   (स) धौलावीरा
   (द) मोहनजोदड़ो

8. महाजनपद काल ने जिस स्थान पर सभा की बैठक होती थी उस स्थान को कहते थे–
   (अ) समिति
   (ब) सभा
   (स) आसन्न प्रज्ञापक
   (द) संस्थागार

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 लुप्त सरस्वती नदी शोध अभियान किन पुरातत्ववेता ने प्रारम्भ किया था ?
2. दक्षिणी पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार किन किन देशो में हुआ ?
3. अंगकोरवाट के स्मारक किस देश में स्थित है ?
4. नव पाषाण युग की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
5. सिन्धु सरस्वती सभ्यता के लोग किस धातु से परिचित थे।
6. सिन्धु सरस्वती सभ्यता के अधिकांश लेख किस पर मिलते है ?
7. आरण्यक ग्रन्थों में किस विषय को प्रतिपादित किया है ?
8. त्रिपिटक क्या हैं ?
9. दस राज्ञ युद्ध किन किन के मध्य लड़ा गया ?
10. पंच जन में कौन कौन से जन सम्मिलित थे ?
11. तीन ब्राह्मण ग्रन्थों के नाम बताइए।
12. प्राचीन भारत में गणित के क्षेत्र में योगदान करने वाले दो विद्वानों के नाम बताइए।
13. भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में कणाद ने किस पद्धति का आविष्कार किया ?
14. 16 संस्कारों के नाम बताइए ।
15. चार पुरूषार्थ क्या है?
16. आश्रम व्यवस्था क्या है ?
17. दिल्ली में लौह स्तम्भ कहाँ स्थित है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. शैलचित्र कला के बारे में आप क्या जानते हैं ?
2. प्राचीन समाज व धर्म में त्रिऋण व यज्ञ व्यवस्था को समझाइए।
3. महाजनपद से क्या तात्पर्य है ?16 महाजनपदों के नाम लिखिए।
4. सभा व समिति क्या थी ?
5. उपनिषदों में किन विषयों का प्रतिपादन किया गया है ?
6. भारतीय इतिहास की जानकारी में विदेशी साहित्य का योगदान बताइए।
7. भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए सिक्कों का महत्व बताइए।
8. वेदांग साहित्य क्या है ?स्पष्ट करिए।
9. सिन्धु स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताए बताइए।
10. आरण्यक साहित्य क्या है ?
11. सिन्धु सरस्वती कालीन प्रमुख उद्योगों का वर्णन करिए।
12. सिन्धु सरस्वती सभ्यता की मुहर निर्माण कला की विशेषताएँ बताइए।
13. कौटिल्य ने किन विषयों को इतिहास में सम्मिलित किया है।
14. मृद्पात्र संस्कृतियों के नाम बताइए।
15. प्राचीन भारत में समुद्री यात्राएँ व नौका शास्त्र के बारे में आप क्या जानते हैं।
16. वंशावली क्या है ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी में पुरातात्विक स्रोतो का वर्णन करिए।
2. प्राचीन भारतीय वैभव की जानकारी में वैदिक साहित्य की भूमिका का वर्णन करिए।
3. प्राचीन भारत में विज्ञान व कला के क्षेत्र में समृद्धता पर निबन्ध लिखिए।

4. प्राचीन भारत में राजनैतिक तंत्र व गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करिए।
5. प्राचीन काल में भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य के विश्व में प्रसार का वर्णन करिए।
6. प्राचीन काल में भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। इस कथन के सम्बन्ध में प्राचीन भारत के आर्थिक वैभव को रेखांकित करिए।
7. भारत के प्राचीन धार्मिक वैभव पर एक निबन्ध लिखिए।
8. भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में वंशावलियों का महत्व बताइए।

उत्तरमाला बहुचयनात्मक प्रश्न –

1.(अ) 2.(स) 3.(ब) 4.(द) 5.(अ) 6.(द)
7.(स) 8.(द)

अध्याय–2

भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ

मौर्य साम्राज्य (ई.पू. 323 से 185 ई.पू. तक)

मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीय इतिहास सुदृढ़ धरा पर अवतरित होता है। विदेशी राज्यों से कूटनीतिक संबंधों की शुरुआत होती है। भारत के राजनीतिक एकीकरण एवं भारत वर्ष की वास्तविक संकल्पना दृष्टिगोचर होती है। मौर्य साम्राज्य के इतिहास के विषय में हमें विभिन्न स्रोतों से जानकारी मिलती है। उनमें से कौटिल्य का अर्थशास्त्र, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, सोमदेव की कथा सरितसागर , क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामंजरी, दीपवंश, महावंश टीका, भद्रबाहु के कल्पसूत्र, स्ट्रेबो, प्लूटार्क, जस्टिन आदि यूनानी यात्री, फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि चीनी यात्री, रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख एवं अशोक के अभिलेख जो हमें पुरातात्विक खुदाई के दौरान मिले हैं, आदि मुख्य स्रोत हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य– (322 ई0 पू0 से 298 ई0 पू0)– चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु विष्णुगुप्त अथवा चाणक्य (कौटिल्य) की सहायता से नंद वंश के अन्तिम शासक घनानंद को हराकर 322 ई.पू. मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य की 'चन्द्रगुप्त' संज्ञा का प्राचीनतम अभिलेखीय साक्ष्य रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से मिलता है।मगध के राजसिंहासन पर बैठकर चन्द्रगुप्त ने एक ऐसे साम्राज्य की नींव डाली जो सम्पूर्ण भारत में फैला था। चन्द्रगुप्त के विषय में प्लूटार्क कहता है कि 'चन्द्रगुप्त ने छः लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत पर अधिकार कर लिया।''

चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तरी–पश्चिमी भारत को सिकन्दर के उत्तराधिकारियों से मुक्त कर, नंद वंश का उन्मूलन कर, सेल्यूकस को पराजित कर संधि के लिए विवश करके जिस साम्राज्य की स्थापना की, उसकी सीमाएं उत्तर–पश्चिम में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक एवं पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तक फैली हुई थी। 305 ई0 पू0 में मेसिडोनिया के शासक सेल्यूकस एवं चन्द्रगुप्त के मध्य युद्ध हुआ, जिसमें सेल्यूकस पराजित हुआ। दोनों के बीच सम्पन्न हुई संधि की शर्तें इस प्रकार थीं – सेल्यूकस ने मौर्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया और में दहेज के रूप में ऐरिया, अराकोसिया, जेड्रोसिया एवं पेरीपेमिसडाई के क्षेत्र चन्द्रगुप्त को दिये। प्लूटार्क के अनुसार चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी उपहार में दिए। सेल्यूकस ने अपने एक राजदूत 'मेगस्थनीज' को चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा। जिसने 'इण्डिका' नामक पुस्तक की रचना की।चन्द्रगुप्त मौर्य की दक्षिण विजय के विषय में जानकारी तमिल ग्रंथों 'अहनामूर' और मुरनानुरु तथा अशोक के अभिलेखों से मिलती है।

चन्द्रगुप्त एक कुशल योद्धा, सेनानायक तथा महान् विजेता ही नहीं था, वरन् योग्य शासक भी था। उसने अपने मुख्यमंत्री कौटिल्य की सहायता से ऐसी शासन व्यवस्था का निर्माण किया, जो उस समय के अनुकूल थी। अपने जीवन के अन्तिम चरण में चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन मुनि भद्रबाहु से जैन धर्म की दीक्षा लेकर श्रवणबेलगोला (मैसूर, कर्नाटक) में स्थित चन्द्रगिरी पहाड़ी पर करीब पर 298 ई0 पू0 में उपवास के द्वारा शरीर त्याग दिया।

बिन्दुसार–(298 ई0 पू0 से 272 ई0 पू0)– चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र बिन्दुसार 298 ई0 पू0 में साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना, इसे यूनानी लेखक 'अमित्रोचेड्रस' कहते थे। स्ट्रेबो ने बिन्दुसार को अलिट्रोकेड्स कहा है। फ्लीट ने बिन्दुसार को अमित्रघात अर्थात् शत्रुओं का वध करने वाला बताया। बिन्दुसार ने अपने पिता द्वारा जीते गए क्षेत्रों को पूर्ण रूप से अक्षुण्ण बनाये रखा। 'दिव्यावदान' में बिन्दुसार के समय में तक्षशिला में हुए दो विद्रोहों का वर्णन है। इन विद्रोहों को दबाने के लिए बिन्दुसार ने पहले अपने पुत्र अशोक, फिर सुसीम को भेजा। स्ट्रेबो के अनुसार यूनानी शासक ऐण्टियोकस प्रथम ने बिन्दुसार के दरबार में डाइमेकस नाम के राजदूत को भेजा। बिन्दुसार ने ऐण्टियोकस प्रथम से मदिरा, सूखे अंजीर एवं एक दार्शनिक भेजने की प्रार्थना की थी। बिन्दुसार के समय में ही मिस्र के राजा फिलाडेल्फस (टालमी द्वितीय) ने पाटलिपुत्र में 'डायोनिसस' नाम के एक राजदूत को भेजा था।

अशोक–(273 ई0 पू0 से 232 ई0 पू0)– बिन्दुसार की मृत्यु की उपरान्त अशोक विशाल मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। करीब चार वर्ष के सत्ता–संघर्ष के बाद अशोक का विधिवत् राज्याभिषेक करीब 269 ई0 पू0 में हुआ, वैसे तो अशोक 273 ई0 पू0 में ही मगध के राजसिंहासन पर बैठ चुका था। अभिलेखों में अशोक को 'देवानामप्रिय', 'देवनाप्रियदर्शी' एवं राजा के सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है। सर्वप्रथम मस्की अभिलेख में 'अशोक' नाम मिलता है। गूर्जरा लेख में भी इसका नाम 'अशोक' ही मिलता है। अपने राज्याभिषेक के सातवें वर्ष में अशोक ने कश्मीर एवं खोतान क्षेत्र के अनेक भागों को विजित कर मौर्य साम्राज्य में मिलाया। अशोक के प्राप्त सभी अभिलेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका साम्राज्य उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत (अफगानिस्तान), दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम में काठियावाड़ एवं पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक था। कल्हण की राजतरंगिनी के अनुसार अशोक ने कश्मीर में वितस्ता नदी के किनारे 'श्रीनगर' नामक नगर की स्थापना की तथा नेपाल में ललितपत्तन नगर बसाया।

एक युग पुरुष के रूप में अशोक ने मौर्य साम्राज्य को अपनी नीतियों के माध्यम से नई दिशा दी। वह अत्यधिक व्यापक दृष्टि से युक्त व्यक्तित्व था। उसने तत्कालीन समस्याओं को समझते हुए उन्हें सुलझाने का प्रयास किया। उसका धम्म एवं अन्य नीतियाँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी तत्कालीन समय में थी। वे सार्वजनिक, सार्वभौमिक व सार्वयुगीन है, जो एक अकेले राष्ट्र की धरोहर नहीं हो सकती। सम्पूर्ण विश्व की धरोहर है, ऐसी नीतियों के प्रवर्तक के रूप में हम अशोक को महान् कहते हैं। अशोक ने पितृवत् शासन का सिद्धान्त दिया तथा लोककल्याण को राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बनाया व कौटिल्य के लोक–कल्याण के आदर्श को आत्मसात् किया। वृक्षारोपण, कृषि, सिंचाई, सार्वजनिक निर्माण (कुएं, सराय आदि) के कार्य कराये। इनसे रोजगार का सुधार हुआ। आर्थिक एवं आधारभूत संरचना में व्यापक सुधार हुआ एवं राज्य को आर्थिक व सामाजिक रूप से मजबूत बनाया, जो आज भी प्रासंगिक है।

अशोक ने धम्म का प्रतिपादन करके राजा, प्रजा एवं नौकरशाही हेतु संविदा तैयार की। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक एकता व विकास को बढ़ावा दिया, जिससे अन्तःसंबंधों में प्रगाढ़ता आई। उसका उद्देश्य राष्ट्र निर्माण करना था। अशोक एक मात्र ऐतिहासिक शासक हुए, जिसने प्रजा से प्रत्यक्ष सम्पर्क किया। इस हेतु अशोक ने धम्म यात्राएँ की एवं प्रतिवेदकों आदि अधिकारियों की नियुक्तियाँ की।

भौतिक संस्कृति के प्रचार–प्रसार एवं शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व के लिए उसने समाज के कमजोर वर्गों को गतिशीलता प्रदान की, कृषि भूमि का विस्तार किया तथा युद्ध बन्दियों आदि को वनों व खानों में लगा दिया। वे एक मात्र ऐसे शासक हुए जिन्होनें प्रजा के आध्यात्मिक व नैतिक उत्थान के साथ–साथ उत्पादन शक्तियों पर भी ध्यान दिया। अशोक ने ग्रामीण विकास को ध्येय बनाया तथा इस पर अधिक ध्यान दिया। अशोक ने साम्राज्य में 84000 स्तूपों का निर्माण कराया। राजस्व का पुनर्वितरण सार्वजनिक हित एवं लोकानुरंजन कार्य में किया तथा अर्थव्यवस्था को तीव्रता व गति दी। इन कार्यों के फलस्वरूप आम जनता की क्रय शक्ति में वृद्धि हुई।

अशोक ने वैदेशिक नीति को समसामयिक बना दिया तथा तत्कालीक सम्राटों के साथ कूटनीतिक संबंध बनाए एवं उच्च स्तरीय धम्म आयोग भेजे, जिससे अन्तःसंबंधों की स्थापना हुई। अशोक ने सम्पूर्ण विश्व को धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया, सभी धर्मों को समान महत्त्व व आदर प्रदान करने पर बल दिया तथा जनता पर धर्म को बलात् नहीं थोपा।एक धर्म, एक भाषा, प्रायः एक लिपि का अनुसरण कर सम्पूर्ण भारतवर्ष का एकीकरण किया। समान नागरिक संहिता व दण्ड संहिता का क्रियान्वयन कर सामाजिक न्याय एवं कानून के शासन की स्थापना की। विभिन्न वर्गों व धर्मों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित किए, जो प्रगतिशील अर्थव्यवस्था तथा राज्य की प्रगति हेतु नितान्त आवश्यक है।

अशोक ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष में लगभग 261 ई0 पू0 में कलिंग पर आक्रमण किया। हाथीगुम्फा अभिलेख से प्रकट होता है कि सम्भवतः कलिंग पर नंदराज नाम का राजा शासन करता था। उस समय कलिंग की राजधानी तोशली थी। अशोक सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बांधना चाहता था एवं कलिंग हाथियों हेतु प्रसिद्ध होने एवं व्यापार–व्यवसाय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। समुद्र के किनारे होने के कारण विदेशी व्यापार की दृष्टि से इसका महत्त्व था। कलिंग युद्ध में 1 लाख लोग मारे गये व 1.5 लाख लोग बंदी बना लिए गए। इस भीषण नरसंहार से अशोक का मन द्रवित हो गया तथा उसने भविष्य में युद्ध की नीति को त्यागने की घोषणा की, अब अशोक ने भेरी घोष को त्याग कर धम्म घोष को अपनाया।

अशोक के बाद, जालोक, कुणाल, दशरथ, सम्प्रति, शालिशूक, देववर्मन आदि शासकों ने शासन किया। बृहद्रथ अन्तिम मौर्य सम्राट था। बृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र ने 184 ई0 पू0 में उसकी हत्या कर एक नये शुंग साम्राज्य की नींव रख

अशोक का धम्म

धम्म के प्रमुख सिद्धान्त

1. सहिष्णुता : जन सामान्य के मध्य आत्म सहिष्णुता, विभिन्न विचारों, धर्मों एवं आस्थाओं के मध्य सहिष्णुता।
2. अहिंसा : सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
3. आडम्बरहीनता : धर्मानुष्ठानों तथा बलि चढ़ाने को अर्थहीन कहा।
4. लोककल्याण : वृक्षारोपण, कुएँ एवं सरायों आदि का निमार्ण कार्य।

श्रेष्ठ पवित्र नैतिकता : श्रेष्ठ नैतिक, पवित्र आचरण, सदाचार एवं सत्यवादिता पर बल दिया।

विभिन्न वर्गों, जातियों और संस्कृतियों को एक सूत्र में बाँधने तथा अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए अशोक ने जिन आचारों की संहिता प्रस्तुत की, उसे अभिलेखों में 'धम्म' कहा गया है। 'धम्म' के सिद्धान्त हर धार्मिक सम्प्रदाय से संबंध रखने वाले लोगों के लिए स्वीकार्य थे। अशोक के अभिलेखों में उस व्यापक नीति अर्थात् धम्म का उल्लेख किया गया, जो सामान्य व्यवहार को नए ढांचे में ढालने के लिए आवश्यक थी।

'धम्म' के बुनियादी सिद्धान्तों में अशोक ने सर्वाधिक बल सहिष्णुता पर दिया। प्रथम स्वयं व्यक्तियों की सहिष्णुता, द्वितीय विभिन्न विचारों, विश्वासों, धर्मों एवं भाषाओं में सहिष्णुता, इसे अशोक ने 7, 11 व 12वें शिलालेख व दूसरे लघु शिलालेख में उल्लेखित किया। जिसमें माता–पिता की सेवा, गुरुओं का आदर, दासों के साथ उचित व्यवहार, धर्म–सार की वृद्धि, वाक्संयम तथा सम्वाय पर बल दिया। धम्म का दूसरा बुनियादी सिद्धान्त अहिंसा था, जिसका तात्पर्य युद्ध व हिंसा द्वारा विजय प्राप्ति का त्याग और जीव हत्या का विरोध था जो प्रथम व 11वें शिलालेख व पांचवें स्तम्भ लेख में मिलते हैं।

जनकल्याणकारी अवधारणा – धम्म नीति में ऐसे कार्य भी शामिल थे, जो आम नागरिकों के कल्याण से संबंधित थे। जो सातवें स्तम्भ लेख व दूसरे शिलालेख में लिखित है, जिसमें वृक्षारोपण, सराय, सड़कें, सिंचाई, कुओं के निर्माण आदि की व्यवस्था थी।अशोक ने नवें शिलालेख में अंधविश्वासों के फलस्वरूप जो निरर्थक अनुष्ठान और यज्ञ होते थे, ऐसे बाह्याडम्बरों की निंदा की। प्रथम स्तम्भ लेख में धम्म की प्राप्ति के लिए धर्म यात्रा, धर्म मंगल, धर्म दान, शुश्रूषा आदि की व्यवस्था की।

अशोक दूसरे स्तम्भ लेख में धम्म की परिभाषा बताते हुए कहता है ''अपासिनवे बहुकयाते दया दाने सचे सोचये माधवे साधवे च'' अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति पापों से दूर रहे, कल्याणकारी कार्य करे, दया, दान, सत्य, पवित्रता व मृदुता का अवलम्बन करे। तीसरे स्तम्भ लेख में वह प्रचंडता, निष्ठुरता, क्रोध, घमण्ड एवं ईर्ष्या आदि के निषेध का कहता है, इनके लिए व्यक्ति आत्म निरीक्षण अर्थात् 'निज्झति' करे एवं सबके साथ श्रेष्ठ व्यवहार करे।

धम्म को फ्लीट ने राजधर्म, राधाकुमुद मुखर्जी ने सार्वभौम धर्म एवं भण्डारकार ने उपासक बौद्ध धर्म कहा। यद्यपि अशोक का व्यक्तिगत धर्म बौद्ध था। महावंश व दीपवंश के अनुसार अशोक ने मोगलिपुत्र तिस्स की अध्यक्षता में तृतीय बौद्ध संगीति (सभा) बुलाई और मोगलिपुत्र तिस्स की सहायता से संघ में एकता और अनुशासन लाने का प्रयास किया, इससे उसके बौद्ध होने की पुष्टि होती है। तथापि 'धम्म' में सर्वमान्य आचार तत्वों और नैतिक नियमों का समन्वय था तथा धम्म अत्यन्त ही सरल, सुबोध, पवित्र, नैतिक और व्यावहारिक था। उसका धम्म सर्वमंगलकारी था, जिसका उद्देश्य प्राणिमात्र का उद्धार करना था।

धम्म की नीति की क्रियान्वति– अशोक ने धम्म के प्रतिपादन हेतु व्यावहारिक उपाय किए। इस हेतु अशोक ने न केवल युद्ध की नीति का परित्याग किया, अपितु आम जन के दुःख–दर्द एवं उनकी आवश्यकताओं को समझा। उसने नौकरशाहों को तत्काल न्याय देने तथा लोकहित के कार्य करने हेतु पाबन्द किया।

अशोक ने सार्वजनिक हित के कार्य किए यथ परिवहन, सिंचाई, कुओं, सरायों आदि का निर्माण कराया। इन समस्त सार्वजनिक हित के कार्यों का उद्देश्य धम्म को स्वीकार कराना था। अशोक ने धम्म के उपदेशों को पाषाणों पर उत्कीर्ण कराया तथा ऐसी जगहों पर लगाया जहाँ पर आम जन पढ़ सके, इस तरह अशोक ने धम्म को सार्वजनिक एवं सार्वभौम बना दिया। हिंसा पर प्रतिबंध लगाया तथा पशुबलि को निषेध किया। समान नागरिक आचार संहिता, दण्ड संहिता के सिद्धान्त को जन्म दिया तथा क्रियान्वित किया। जगह–जगह धम्म आयोग भेजे एवं विदेशों में भी धम्म का प्रचार–प्रसार किया। धम्म महामात्रों की नियुक्ति की व उनके दायित्वों का प्रतिपादन किया।

धम्म की नीति का मूल्याँकन – यद्यपि धम्म के मूल सिद्धान्त सहिष्णुता, अहिंसा एवं सदाचार थे, जो कि भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ से ही के मूल तत्व रहे हैं तथा वर्तमान में भी उनका महत्त्व यथावत् है। अशोक के बाद के सभी शासकों ने इन सिद्धान्तों को स्वीकार किया, तथापि समग्र रूप से यह नीति अशोक के पश्चात् फलीभूत नहीं हो सकी, इसके अनेक कारण थे। धम्म की नीतियों का अशोक के उत्तराधिकारी उसी रूप में क्रियान्वित नहीं कर सके। धम्म दुर्बल शासकों, राजनीतिक अनिश्चितता व सीमाओं की असुरक्षा के कारण फलीभूत नहीं हो सका, क्योंकि धम्म की नीति का क्रियान्वयन शान्तिकाल में ही संभव है, जब राष्ट्र आन्तरिक व बाहरी रूप से युद्धों से पूर्णतया मुक्त हो। परवर्ती शासक अशोक की दूरदर्शिता को नहीं समझ पाये, धम्म महामात्र अपने असीमित अधिकारों द्वारा जनता के कार्यों में अवांछनीय हस्तक्षेप करने लग गये। सामाजिक तनाव ज्यों के त्यों बने रहे एवं साम्प्रदायिक संघर्ष बराबर चलते रहे, क्योंकि समस्याएं व्यवस्था की जड़ों में निहित थी।

उपर्युक्त कारणों से धम्म की नीति फलीभूत नहीं हो सकी, तथापि अशोक सराहना का पात्र है कि उसने एक पथ प्रदर्शक सिद्धान्त की आवश्यकता को महसूस करते हुए धम्म की नीति का प्रतिपादन किया, जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

मौर्य प्रशासन–

मौर्य साम्राज्य के प्रशासन की विस्तृत जानकारी इण्डिका, अर्थशास्त्र आदि ग्रंथों एवं तत्कालिक अभिलेखों से प्राप्त होती है। मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत भारत में प्रथम बार राजनीतिक एकता देखने को मिली तथा सत्ता का केन्द्रीकरण हुआ। साम्राज्य में प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्तियों से पूर्व

उनकी योग्यता एवं चरित्र को परखा जाता था, जिसे 'उपधा परिक्षण' कहते थे। मौर्य साम्राज्य के प्रशासन का ढांचा निम्नलिखित था–

केन्द्रीय प्रशासन

राजा– राजा शासन प्रणाली का केन्द्र बिन्दु था, महत्त्वपूर्ण एवं नीति संबंधी निर्णय राजा स्वयं लेता था। व्यवस्थापिका, न्यायपालिका व कार्यपालिका की समस्त शक्तियाँ उसमें निहित थी।

मंत्रिपरिषद्– राजा को परामर्श देने के लिए मन्त्रिपरिषद् थी, जिनकी नियुक्ति वंश व योग्यता के आधार पर राजा करता था। अन्तिम निर्णय का अधिकार राजा का था। एक आन्तरिक परिषद् होती थी, जिसे मन्त्रिण् कहा जाता था। जिसके 3–4 सदस्य होते थे। महत्त्वपूर्ण विषयों पर राजा मन्त्रियों से परामर्श करता था।

अधिकारी– शीर्षस्थ राज्याधिकारी जो संख्या में 18 थे। इन्हें 'तीर्थ' कहा जाता था। वे केन्द्रीय विभागों का कार्यभार देखते थे, जिनमें कोषाध्यक्ष, कर्मान्तिक, समाहर्ता, पुरोहित एवं सेनापति प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में 27 अध्यक्षों का उल्लेख मिलता है, जो राज्य की आर्थिक गतिविधियों का नियमन् करते थे। वे कृषि, व्यापार, वाणिज्य, बांट–माप, कताई–बुनाई, खान, वनों आदि का नियमन एवं नियंत्रण करते थे।

नगर प्रबन्ध– नगर प्रबन्ध हेतु 5–5 सदस्यों की 6 समितियां होती थी, जो विभिन्न कार्यों, उद्योग एवं शिल्प, विदेशियों, जनगणना, वाणिज्य–व्यापार, निर्मित वस्तुओं की देखभाल, बिक्रीकर आदि के नियमन–विपणन एवं रखरखाव का कार्य करती थी। अर्थशास्त्र के अनुसार 'नागरक' नगर प्रशासन का अध्यक्ष, गोप तथा स्थानिक उसके सहायतार्थ कर्मचारी थे।

सेना– सैन्य विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी सेनापति होता था। सेना की छः शाखाएँ थी। जो क्रमशः पैदल, अश्व, हाथी, रथ, यातायात एवं नौ सेना में विभक्त थी। 5–5 सदस्यों की समिति इनकी देखरेख करती थी, जबकि कौटिल्य अर्थशास्त्र में चतुरंगबल को सेना का मुख्य अंग बताता है। 'नायक' युद्धक्षेत्र में सेना का नेतृत्व करने वाला अधिकारी होता था।

गुप्तचर व्यवस्था– प्रशासन तन्त्र के साथ–साथ गुप्तचर्या का भी विस्तृत जाल बिछाया गया था, जो मन्त्रियों से लेकर आम जनता की गतिविधियों पर नजर रखते थे। गुप्तचरों को संस्था एवं संचार नाम से पुकारा जाता था।

न्याय– धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजशासन न्याय संहिता के स्रोत थे। धर्मस्थीय एवं कंटक–शोधक न्यायालय क्रमशः दीवानी तथा फौजदारी मामले सुलझाते थे। न्यायपीठ पद्धति विद्यमान थी, राजा सर्वोच्च न्यायधीश था। राजुक, व्यावहारिक आदि न्यायिक अधिकारी थे। संग्रहण व द्रोणमुख स्थानीय एवं जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। दण्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी।

राजस्व प्रशासन– समाहर्ता राजस्व विभाग का प्रमुख अधिकारी था। दुर्ग, राष्ट्र, व्रज, सेतु, वन, खाने, आयात–निर्यात आदि राजस्व प्राप्ति के मुख्य स्रोत थे। सन्निधाता राजकीय कोष का मुख्य अधिकारी होता था।

जनोपयोगी कार्य– मौर्य साम्राज्य में जनोपयोगी सेवाओं में सिंचाई, सड़क, सराय, चिकित्सा आदि को महत्त्व दिया गया, जिसकी व्यवस्था प्रशासनिक अधिकारी करते थे।

प्रांतीय शासन – साम्राज्य चार प्रान्तों में विभाजित था। जिनका प्रशासक राजकुमार होता था, जो मंत्रिपरिषद् एवं अमात्यों के माध्यम से शासन संचालित करता था। चार प्रमुख प्रान्त थे–उत्तरापथ,दक्षिणापथ,अवन्तिपथ एवं मध्यप्रान्त। धर्म महामात्र तथा अमात्य प्रान्तीय अधिकारी थे, जो धम्म एवं अन्य कार्य देखते थे। प्रान्तों को आहार या विषय में बाँटा गया था, जो विषयपति के अधीन होते थे।

जनपद व ग्रामीण – जनपद स्तर पर प्रदेष्ट, राजुक व युक्त नाम अधिकारी थे जो भूमि, न्याय व लेखों संबंधी दायित्व वहन करते थे। ग्रामिक, ग्रामीण स्तरीय अधिकारी था। गोप एवं स्थानिक जनपद व गाँवों के बीच मध्यस्थता का कार्य करते थे।

इस प्रकार मौर्यकालीन प्रशासन एक केन्द्रीयकृत व्यवस्था थी। जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाएँ प्रायः नगण्य थी। गुप्तचर सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करते थे। नौकरशाही को विस्तृत अधिकार प्राप्त थे।

अशोक के प्रशासनिक सुधार – अशोक ने चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था का अनुसरण किया यद्यपि उसने अपनी नीतियों एवं उद्देश्यों के क्रियान्वयन की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन एवं सुधार भी किए। अशोक ने प्रजा को अपनी संतान बताया एवं राजा के कर्त्तव्य के रूप में सर्वलोकहित और पराक्रम को रखा, जिसका उल्लेख उसके चौथे स्तम्भ लेख एवं कलिंग पृथक लेख में मिलता है। राजुक, युक्त एवं प्रादेशिक आदि अधिकारियों की नियुक्ति की, जो न्याय भूमि व लेखा संबंधी थे। 13वें वर्ष में अशोक ने धम्म महापात्र पद का सृजन किया, जिनका कार्य विभिन्न सम्प्रदायों में सांमजस्य, अकारण दण्डितों के परिवार को सहायता प्रदान करना था। अशोक ने ऐसी व्यवस्था की, जिसमें हर समय, हर जगह राजा के पास जनता के सुख–दुःख एवं समस्याओं की खबर पहुंचे। इस हेतु अशोक ने प्रतिवेदकों की नियुक्ति की, जिसका उल्लेख छठे शिलालेख में मिलता है।

न्यायिक व्यवस्था में एकरूपता लाने के लिए 26वें वर्ष में राजुकों को न्याय संबंधी मामलों में स्वतन्त्र अधिकार प्रदान किए, जिसका उल्लेख चौथे स्तम्भ लेख में मिलता है। अशोक ने दण्डविधान को उदार बनाया एवं अमानवीय यातनाओं को बंद किया। अभिषेक दिवस पर बन्दियों को मुक्त किया, जिसका उल्लेख पांचवें स्तम्भ लेख में मिलता है। मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियों को 3 दिन का समय पश्चाताप हेतु दिया, जिसका उल्लेख चौथे स्तम्भ लेख में मिलता है। अहिंसापरक सुधारों में अशोक ने युद्ध नीति को त्यागा तथा जहाँ तक संभव हो जीव हिंसा न करने की आज्ञा दी तथा समाजों पर प्रतिबंध लगाया। अशोक ने लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को जन्म दिया तथा प्राणिमात्र के कल्याण के लिए चिकित्सा, सड़कें, कुएं व वृक्षारोपण आदि कार्यों पर बल दिया व ग्रामीण विकास को प्राथमिकता थी। स्त्राध्यक्ष, वृजभूमिक महामात्र, नगर व्यावहारिक, अन्तमहामात्र आदि की नियुक्ति क्रमशः स्त्री, पशु संरक्षण, न्याय व सीमावर्ती क्षेत्रों से संबंधित थी। इन नियुक्तियों के माध्यम से अशोक ने प्रशासन को आम जनता से जोड़ा। धम्म

प्रयाग स्तंभ अभिलेख

अमरावती मूर्तिशिल्प में अशोक

का आविष्कार करके, राजा, प्रजा एवं नौकरशाही के लिए एक संविदा तैयार की, जिससे अन्तः संबंधों में प्रगाढ़ता आई। अशोक ने वैदेशिक नीति को समसामयिक बनाया। इस प्रकार अशोक ने पूर्व प्रचलित मौर्य प्रशासन को ओर अधिक दक्ष एवं सक्षम बनाया।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना, आर्थिक स्थिति, कला, साहित्य एवं विज्ञान

गुप्त साम्राज्य (240 ई0 से 550 ई0 तक)

गुप्त साम्राज्य का उदय तीसरी शताब्दी के अन्त में हुआ था। विष्णु पुराण, वायु पुराण और भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि आरम्भिक गुप्त राज्य में मगध एवं उत्तर–पश्चिम बंगाल तक गंगा नदी के तटीय के प्रदेश सम्मिलित थे।

श्रीगुप्त (लगभग 240 ई0 – 280 ई0)– प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र अभिलेख में श्रीगुप्त का उल्लेख गुप्त वंश के 'आदिराज' के रूप में किया गया है। इनका शासन काल 240ई0 से 280 ई0 तक रहा। श्रीगुप्त ने महाराज की उपाधि धारण की। श्री गुप्त स्वतंत्र शासक न होकर संभवतः किसी शासन के अन्तर्गत सामन्त थे।

घटोत्कच (280 ई0 – 319 ई0)– लगभग 280 ई0 में श्रीगुप्त ने घटोत्कच को अपना उत्तराधिकारी बनाया, इसने भी महाराज की उपाधि धारण की। प्रभावती गुप्ता के पूना एवं रिद्धपुर ताम्रपत्र अभिलेखों में घटोत्कच को गुप्त वंश का प्रथम राजा बताया गया है, इसका राज्य सम्भवतः मगध के आस–पास तक ही सीमित था। इसने 319ई0 तक शासन किया।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319ई0 – 335ई0)– घटोत्कच के उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासनारूढ़ चन्द्रगुप्त प्रथम एक प्रतापी राजा था,उसने उस समय के प्रसिद्ध लिच्छवि कुल की कन्या कुमार देवी से विवाह किया। इस विवाह के उपरान्त गुप्त वंश की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की, जो प्रायः सर्वोच्च शासन के लिए प्रयोग की जाती है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने एक संवत् 'गुप्त संवत्' (319–320ई0) के नाम से चलाया।

समुद्रगुप्त (335 ई0 – 375ई0)– चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसका पुत्र समुद्रगुप्त राजगद्दी पर बैठा। समुद्रगुप्त के दरबार में प्रसिद्ध कवि हरिषेण रहता था, जिसने प्रयाग प्रशस्ति लेख में समुद्रगुप्त के विजय अभियानों का उल्लेख किया। यह अभिलेख उसी स्तंभ पर उत्कीर्ण है, जिस पर अशोक का स्तम्भ लेख है। इसने अपनी विजयों की उद्घोषणा हेतु 'अश्वमेध यज्ञ' सम्पन्न करवाया था। समुद्रगुप्त के प्राप्त सिक्कों में कुछ पर 'अश्वमेध पराक्रम' लिखा मिलता है।

प्रयाग स्तंभ अभिलेख जो इलाहाबाद, उतरप्रदेश में विद्यमान हैं, गुप्तकाल का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत है। जिसमें समुन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक, दिग्विजय एवं व्यक्तित्व पर विशद् प्रकाश डाला गया है तथा कई अधिकारियों के पदों व नामों के उल्लेख से गुप्तकालीन शासन व्यवस्था की जानकारी मिलती है। अलंकारिक संस्कृत भाषा, ब्राह्मी लिपि व चम्पूशैली तात्कालिक समृद्ध साहित्य के प्रगति की प्रतीक है। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को ''कविराज'', गायन व संगीत में दक्षता में गुरु तुम्बरू व नारद को लज्जित करने वाला, लाख गायों का दानी, उच्चकोटि का विद्वान, विद्या का संरक्षक एवं धर्म का प्राचीर कहा गया। ऐरण अभिलेख में उसे पराक्रम तथा विजय का स्रोत कहा गया। अश्वमेघ प्रकार व वीणा बजाते सिक्कों आदि से समुद्रगुप्त के विद्वान, संगीतज्ञ, गायक, दानी, धर्मनिष्ठ, पराक्रमी, विनयशील तथा विजयाकांक्षी आदि वैयक्तिक गुणों का पता चलता है।

श्रीलंका के राजा मेघवर्मन ने कुछ उपहार भेजकर समुद्रगुप्त से गया में एक बौद्ध मन्दिर बनवाने की अनुमति मांगी थी। समुद्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार में कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपुताना, सिंध और गुजरात के अतिरिक्त शेष सारा भारत सम्मिलित था। समुद्रगुप्त ने भारत में एक नए युग की स्थापना की, वह अखिल भारतीय साम्राज्य के आदर्श से प्रेरित हुआ तथा सम्पूर्ण भारत वर्ष को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधा।

समुद्रगुप्त की विजय – समुद्रगुप्त एक महान् शासन, सेनापति, कूटनीतिज्ञ, बहुआयामी प्रतिभा से युक्त यर्थाथवादी व्यक्तित्व था। उसके दरबारी कवि एवं महासंधिविग्रहक हरिषेण ने प्रयाग प्रशस्ति में अपने आश्रयदाता समुद्रगुप्त के पराक्रम व दिग्विजय का वर्णन किया है।

समुद्रगुप्त ने सर्वप्रथम आर्यवर्त अर्थात् गंगा, यमुना दोआब पर सैनिक अभियान किया। जो दो चरणों में पूरा हुआ। नौ राजाओं रूद्रवेद, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति, नाग, नागसेन, अच्युत, नंदी एवं बलवर्मा को पराजित किया, जिन्हें राजप्रसभोद्धरण की नीति के तहत साम्राज्य में मिला लिया।

समुद्रगुप्त ने दक्षिण के 12 राज्यों कौशल, महाकान्तर, कोरल, कोट्टूर, पिष्टपुर, एरनपल्ली, कांची, अवमुक्त, वैंगी, पल्लक, देवराष्ट्र, कुस्थलपुर आदि को पराजित किया। लेकिन उसने उन्हें ग्रहणमोक्षानुग्रह की नीति अर्थात् ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) एवं अनुग्रह (राज्य को लौटाकर) के तहत फिर मुक्त कर दिया। वह जानता था कि इन दूरस्थ भागों पर प्रत्यक्ष शासन असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य था। अतः उसने ग्रहणमोक्षानुग्रह की व्यवहारिक नीति का अवलम्बन किया।

समुद्रगुप्त ने मध्य भारत के आटविकों को भी परास्त किया व उन्हें अपना भृत्य बना दिया। सीमान्त प्रदेशों के राजतन्त्रात्मक एवं गणतन्त्रात्मक राज्यों में भी भयभीत होकर अधीनता स्वीकार कर ली। जिनमें उत्तर पूर्व भारत के समतट डवाक् कामरूप, नेपाल, कर्तपुर व पश्चिमी भारत के नौ गणतन्त्र

राज्य आभीर, अर्जुनायन मालव, यौद्धेय मद्रक प्रार्जुन, सनकानिक, काक व खरपरिक थे। इनके साथ सर्वदानाज्ञाकरण प्राणायाम की नीति का अवलंबन किया।

देवपुत्र, शाहिशाहानुशाही, शक–मुरूण्ड तथा सिंहल आदि विदेशी शासकों ने समुद्रगुप्त से भयभीत होकर उससें मैत्रीयाचना की, इनके साथ आत्म–निवेदन, कन्योपायान, गुरूत्मदंकित, स्वविषय, भुक्ति, शासन याचना की नीति का अनुसरण किया।

इस प्रकार समुद्रगुप्त ने भारत के बहुत बड़े भाग को अपने अधीन कर एकता के सूत्र में बाँधा और उससे कहीं अधिक भू–भाग में उसका लोहा माना जाता था, जो उसकी यथार्थवादी नीति का प्रतीक है। स्मिथ ने समुद्रगुप्त उसकी बहादुरी एवं युद्ध कौशल के कारण भारत का नेपोलियन कहा है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (375 ई0 – 414 ई0)– समस्त गुप्त राजाओं में समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय सर्वाधिक शौर्य एवं वीरोचित गुणों से सम्पन्न था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय से किया, रूद्रसेन की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने अप्रत्यक्ष रूप से वाकाट्क राज्य को अपने राज्य में मिलाकर उज्जैन को अपनी दूसरी राजधानी बनायी।

चीनी यात्री फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में भारत आया था। इसके दरबार में कालिदास एवं अमर सिंह जैसे विद्वान रहते थे। शकों को पराजित करने की स्मृति में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने चांदी के विशेष सिक्के जारी किए। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ की, उसने नागवंश की कुबेर नागा तथा कदम्ब वंश की राजकुमारी से स्वयं एवं वाकाटक वंश के रूद्रसेन द्वितीय से अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह किया। इनसे प्रभावशाली शासकों की मित्रता व संरक्षण प्राप्त हो गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुप्त साम्राज्य को अरब सागर तक बढ़ाया और सौराष्ट्र प्रायद्वीप को विजित किया। उसने पश्चिमी भारत के शकों को पराजित किया तथा शक शासक रूद्रसेन तृतीय को हराया। इससे गुजरात, मालवा व कठियावाड़ गुप्त साम्राज्य के अंग बन गए। हुणों की सक्रियता को देखते हुए उसने उत्तर पश्चिम के गणराज्यों का विलय कर लिया। महरौली अभिलेख से विदित होता है कि उसने पश्चिम में बाहलिक (बैक्ट्रिया) व पूर्व में बंगाल तक अपनी सत्ता का विस्तार किया। उज्जैन को दूसरी राजधानी बनाने से राज्य के समुद्री व्यापार एवं गुजरात प्रान्त के संसाधनों में वृद्धि हुई। चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम और शौर्य से गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का चतुर्दिक विकास किया और अपना यश में वृद्धि की।

कुमारगुप्त प्रथम (415 ई0–455 ई0)– चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने बड़ी संख्या में मुद्राएं जारी करवाईं। बयाना–मुद्राभाण्ड से कुमारगुप्त की करीब 623 मुद्राएं मिली है। ह्वेनसांग ने कुमारगुप्त का नाम शक्रादित्य बताया। कुमारगुप्त को अपने शासन के अन्तिम समय में पुष्यमित्र जातियों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। इसकी जानकारी स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख से मिलती है। यहीं से गुप्त साम्राज्य विघटन की ओर अग्रसर हुआ। संभवतः नालन्दा विश्वविद्यालय का संस्थापक कुमारगुप्त ही था।

स्कन्दगुप्त (455 ई0–467 ई0)– स्कन्दगुप्त को राजसिंहासन पर बैठते ही जूनागढ़–अभिलेख में मलेच्छ के रूप में उल्लिखित हूणों के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसका उल्लेख भीतरी स्तम्भ लेख में मिलता है जिसमें स्कन्दगुप्त को सफलता मिली। इनकी स्वर्ण मुद्राओं पर विक्रमादित्य की उपाधि मिलती है। स्कन्दगुप्त ने सौराष्ट्र में पर्णदत्त को गवर्नर के रूप में नियुक्त किया। स्कन्दगुप्त ने गिरिनार पर्वत पर स्थित सुदर्शन झील के पुनरुद्धार का कार्य गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित को सौंपा था, जिसने झील के किनारे एक विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया था।

स्कंदगुप्त के शासन के प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य आन्तरिक व बाहरी समस्याओं से ग्रसित था। स्कंदगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख, जूनागढ़ अभिलेख तथा चन्द्रगुप्त परिपृच्छा आदि अभिलेखों एवं साहित्यिक स्रोतों से हूण आक्रमण का एवं स्कंदगुप्त के द्वारा उनको पराजित करने को उल्लेख मिलता है। यह युद्ध संभवतः उत्तर–पश्चिम सीमावर्ती क्षेत्र में हुआ। स्कंदगुप्त ने बाह्य शत्रुओं, पुष्यमित्रों व हूणों को परास्त कर गुप्त साम्राज्य को भीषण संकट से बचाया एवं गुप्त साम्राज्य को स्थायित्व व व्यवस्था प्रदान की। इसके अतिरिक्त उसने वाकाटकों व नागवंश के आक्रमण को असफल कर उनके क्षेत्रों पर अधिकार कर साम्राज्य की रक्षा की व क्षेत्र में वृद्धि की। अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा तथा सुदृढ़ प्रशासन व्यवस्था स्थापित करके साम्राज्य को स्थायित्व दिया। स्कंदगुप्त ने इन समस्याओं का धैर्य व साहस से मुकाबला किया व सफल रहा। विघटनकारी प्रवृतियों पर रोक लगाई। यह उसके शौर्य का जीवन्त प्रमाण है कि अनेकानेक विपत्तियों के होते हुए भी उसने बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक विस्तृत अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा। स्कंदगुप्त की सफलताओं का आधार उसकी प्रशासनिक व्यवस्था थी। उसने पश्चिमोत्तर सीमा का महत्त्व समझा एवं उसकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। उसने साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त किया एवं योग्य प्रान्तपतियों की नियुक्ति की, जो पूर्णरूप से प्रजाहित को महत्त्व देते थे। वह प्रजापालक, उदार तथा धर्म–सहिष्णु शासक था। उसके साम्राज्य में सभी सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उसका बुद्धिमतापूर्ण शासन, उसके शौर्यपूर्ण युद्ध, उसकी स्वदेशी भक्ति इस सबने स्कंदगुप्त को महान् गुप्त सम्राटों में से एक बना दिया। उसकी मृत्यु के साथ गुप्त साम्राज्य विघटन एवं विभाजन की दिशा में अग्रसर हुआ।

सुदर्शन झील– रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के गर्वनर वैश्य पुष्यगुप्त द्वारा जनकल्याण हेतु सुदर्शन झील के निर्माण कराया एवं स्वयं रूद्रदामन द्वारा इसकी मरम्मत कराने का उल्लेख मिलता है। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेखानुसार भारी वर्षा के कारण टूटने से झील के बांध का पुनर्निर्माण सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पर्णदन्त के पुत्र व गिरनार के प्रशासक चक्रपालित ने कराया। सुदर्शन झील प्राचीन भारत के शासकों द्वारा जल प्रबन्धन एवं संरक्षण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

स्कन्दगुप्त के पश्चात पुरूगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमार गुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, बालादित्य द्वितीय, कुमारगुप्त तृतीय और

विष्णुगुप्त ने शासन किया, लेकिन धीरे–धीरे उनका राज्य सीमित होता गया। संभवतः बंगाल के गौड़ों ने अन्तिम रूप से गुप्त साम्राज्य को समाप्त किया।

गुप्तों के पतन का मूल कारण केन्द्रीय शक्ति का दुर्बल होना था। डॉ. हेमचन्द्र रायचौधरी ने गुप्त सम्राटों का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव को भी इनके पतन का कारण माना है। गुप्त सम्राटों ने सैनिक शक्ति और शान्तिपूर्ण विदेश नीति का पालन नहीं किया, जिसके कारण विदेशी शत्रुओं, शक्तिशाली सामन्तों एवं अधीन शासकों को लाभ उठाने का अवसर मिला।

गुप्त कला, साहित्य एवं विज्ञान का विकास

प्राचीन भारत में स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्रकला आदि क्षेत्रों में विकास की चरमसीमा गुप्तकाल में प्राप्त होती है। इस युग की कला में भारतीयकरण, सौन्दर्याभिव्यक्ति, भावचित्रण एवं आध्यात्मिकता का अंकन उल्लेखनीय है। इस काल की कला में रूढ़िवादिता का अभाव, स्वाभाविक एवं यर्थाथवादिता का अंकन, सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के अनुरूप सृजन, आध्यात्मिक आदर्श, कला, तकनीक की सादगी और अभिव्यंजना, लावण्य और लालित्य का संयमित प्रदर्शन मिलता है।

वास्तुकला– इस काल में मन्दिर वास्तु के विकास के साथ–साथ इसके शास्त्रीय नियम भी निर्धारित हुए। गुप्तकालीन मन्दिर नागर शैली के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। आधार पीठिका, गर्भगृह, सभा–मण्डप, शिखर, अन्तराल, प्रदक्षिणा पथ तथा द्वार पर गंगा–यमुना की मूर्तियां आदि इनकी सामान्य विशेषताएं हैं। यह ईंटों व पत्थरों से निर्मित है। तिगवां का विष्णु मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर, नाचना कुठार का पार्वती मन्दिर, भितरीगांव का लक्ष्मण मन्दिर व देवगढ़ का दशावतार मन्दिर आदि प्रमुख मन्दिर हैं।

दशावतारमन्दिर,देवगढ़

लक्ष्मणमन्दिर,भितरीगांव

समुद्रगुप्त का सिक्का

इनमें क्रमशः मन्दिर की योजना व आकृति में सतत् विकास दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त विहार, स्तूप, गुहा, चैत्य आदि निर्मित हुए, जिनमें अजंता, बाघ, एलोरा, उदयगिरी के गुहा के मन्दिर धमेख स्तूप व महाबोधि विहार (बोधगया) मुख्य है।

मूर्तिकला– मथुरा, सारनाथ व पाटलीपुत्र मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्र थे। मूर्तियां धातु , पत्थर व मिट्टी की बनाई जाती थी। परिधानों की महत्ता, अलंकृत प्रभा–मण्डल, विशेष केश सज्जा, मुद्रा आसन, आध्यात्मिकता, सरलता व भारतीयकरण मूर्तिकला की प्रमुख विशेषता है। प्रतिमा निर्माण शास्त्रीय नियमों के अनुसार होता था, सुल्तानगंज की बुद्ध, मथुरा से महावीर, देवगढ़ व मथुरा की विष्णु, ऐरण व उदयगिरी की वराह की मूर्तियाँ उत्कृष्ट मूर्तिकला के उदाहरण हैं। शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की रचना भी इसी समय की गयी।

चित्रकला :– गुप्त चित्रकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अजन्ता व ग्वालियर की बाघ गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। अजंता के चित्रों में प्राकृतिक सौन्दर्य, बुद्ध व बौधिसत्व तथा जातक ग्रंथों के वर्णात्मक दृश्यों का अंकन हुआ है। सुन्दर कल्पना, रंगों की प्रभा, रेखाओं का लालित्य, विषय वस्तु की विविधता, अभिव्यक्ति से सम्पन्नता व अभिव्यंजना के कौशल के कारण अजंता के चित्र अद्वितीय हैं। इनमें गुफा सं. 16 में उत्कीर्ण मरणासन्न राजकुमारी के सहित अवलोकिश्वर, यशोधरा व राहुल आदि चित्र प्रसिद्ध हैं। गुफा सं. 17 के चित्र को चित्रशाला कहा गया है। इस गुफा में माता और शिशु का चित्र सर्वोत्कृष्ट है। बाघ में नौ गुफाएँ मिलती हैं। बाघ के भित्ति चित्र, लौकिक जीवन से संबंधित हैं, जो तत्कालिक वेशभूषा, केश–विन्यास, प्रसाधन आदि की जानकारी देती है। यहाँ संगीत एवं नृत्य आदि के दृश्य का एक प्रसिद्ध चित्र मिलता है। संगीत, नाटक, अभिनय कला और नृत्यकला की अद्वितीय उन्नति हुई। समुद्रगुप्त का वीणा लिए हुए सिक्कों पर अंकित किया जाना, उसके संगीत प्रेम को सिद्ध करता है।

सहित्य– गुप्तकाल में साहित्य का अद्भुत विकास हुआ। साहित्य में संस्कृत भाष एवं जटिल अलंकारिक शैली का विकास हुआ। प्रयाग एवं महरौली आदि प्रशस्तियों की रचना हुई। भाष ने स्वप्नवासवदत्ता, शुद्रक ने मृच्छकटिकम्, विशाखदत्त ने मुद्राराक्षक, कालिदास ने अभिज्ञान शकुन्तलम् आदि सुखान्त नाटकों एवं रघुवंश जैसे महाकाव्यों की रचना की। पुराणों, स्मृतियों, रामायण एवं महाभारत आदि ग्रन्थों को अन्तिम रूप दिया गया। संस्कृत व्याकरण का विकास हुआ। अमरसिंह ने अमरकोश, चन्द्रगोमिन् ने चन्द्रव्याकरण आदि व्याकरण ग्रन्थ रचे। विष्णु शर्मा ने पंचतन्त्र नामक जैसे नीति ग्रंथ, ईश्वर कृष्ण ने सांख्यकारिका एवं दिङ्नाग ने प्रमाण समुच्चय आदि दार्शनिक ग्रंथो की रचना की, वाक्पतिराज का गोहडवो, प्रवरसेन का सेतुबंध आदि प्राकृत ग्रंथों की रचना भी इसी काल में हुई। इस युग में लौकिक साहित्य का बाहुल्य था।

गुप्तकाल में हिन्दू विधियों का संकलन – गुप्तकाल में मनुस्मृति के आधार पर नारद, बृहस्पति, कात्यायन, याज्ञवलक्य आदि स्मृतियों में कानून का संकलन हुआ। इनमें याज्ञवलक्य व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी है। इसमें धर्म, वर्ण, आश्रम, विधि समाज, प्रायश्चित, राज्य शास्त्र आदि पक्षों का उल्लेख है। नारद स्मृति में व्यवहार व न्यायिक विचार, बृहस्पति ने दीवानी व फौजदारी दोनों पक्षों का विवेचन किया। कात्यायन ने कानून के चार अंग धर्म, व्यवहार चरित्र और राजशासन बताया। प्राचीन भारत में यह गुप्तों की साहित्य में महत्त्वपूर्ण देन है।

नालन्दा विश्वविद्यालय – नालन्दा भारत का प्रमुख शिक्षा केन्द्र था। संभवत गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम ने इसका निर्माण कराया। गुप्त एवं पूर्व मध्यकाल में इसकी ख्याति पराकाष्ठा पर थी। देश–विदेश से छात्र शिक्षा ग्रहण करने यहां आते थे। जिनका प्रवेश परीक्षा के माध्यम से होता था। शिक्षकों एवं छात्रों की संख्या 10,000 से अधिक थी। यहां धर्म, विज्ञान, उद्योग, तर्क आदि की शिक्षा दी जाती थी। यहाँ विशाल पुस्तकालय भी था।

गणमति, स्थिरमति, शीलभद्र यहाँ के प्रसिद्ध कुलपति थे।

विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी – गुप्तकाल में विज्ञान एवं तकनीक की विभिन्न शाखाओं का उल्लेखनीय विकास हुआ। इस काल में गणित,ज्योतिष,खगोल, रसायन, भौतिक, आयुर्वेद, शल्यचिकित्सा आदि का विकास प्रमुख रूप से हुआ। आर्यभट्ट का गणित एवं ज्योतिष में विशेष स्थान था, जिन्होंने दशगितिक सूत्र, आर्याष्ट शतक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने पृथ्वी गोल एवं उसके, घुरी पर घूर्णन का सिद्धान्त का विवेचन किया। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भास्कर प्रथम ने भाष्य नामक ग्रंथ व आर्यभट्ट के ग्रंथों दशगितिक सूत्र एवं आर्यष्टि शतक पर टीका लिखी। वराहमिहिर ने भारतीय एवं यूनानी ज्योतिष का समन्वय कर रोमक तथा पौलिश का सिद्धान्त प्रतिपादन किया। वराहमिहिर ने पंच सिद्धान्तिका, वृहत्संहिता व वृहत्जातक आदि ग्रंथों की रचना की। उन्होंने वर्गमूल व घनमूल निकालने की पद्धति तथा खगोल विज्ञान की विस्तृत विवेचना की। ब्रह्मगुप्त ने गणित, ज्योतिष खगोल शास्त्र पर ब्रह्मफुट सिद्धान्त खण्ड खाद्यक आदि ग्रंथ लिखे एवं गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। औषधिशास्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष गुप्तकाल में प्रबल हुआ। वाग्भट्ट ने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अष्टांग हृदय' की रचना की, धनवन्तरी एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक एवं शल्य चिकित्सक थे। नवनीतकम आयुर्वेद का ग्रंथ था। इस समय वानस्पतिक औषधियों का प्रयोग होता है। पशु चिकित्सा पर भी ग्रंथ लिखे गये। पलकाप्व ने हस्तायुर्वेद नामक ग्रंथ लिखा, जो हाथियों की चिकित्सा से सम्बन्धित था।

भौतिक एवं रसायन विज्ञान के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण अध्ययन हुए। कणाद ऋषि ने गुप्त काल में वैशेषिक दर्शन एवं अणु सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। नागार्जुन रसायन तथा धातु विज्ञान के विद्वान थे। उन्होंनें चांदी, सोना आदि खनिज पदार्थों के रसायनिक प्रयोगों से रोगों के निवारण को प्रमाणित किया एवं पारद का आविष्कार किया।

तकनीक का विशेष ज्ञान श्रेणियों के पास था। धातुओं को रसायनिक क्रियाओं द्वारा पिघलाने तथा ढालने की कला की उन्नत्ति हुई। महरौली का लौह स्तम्भ सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। सुल्तान गंज में बुद्ध की 1 टन की तांबे की खड़ी मूर्ति मिली है। सिक्के, आभूषण एवं मोहरें भी तकनीकी उपलब्धि की साक्षी है। इस प्रकार गुप्तकाल में विज्ञान व तकनीक में अभूतपूर्व विकास हुआ।

आर्थिक जीवन

गुप्त काल में आर्थिक जीवन समृद्ध हुआ। विस्तृत साम्राज्य एवं सुयोग्य प्रशासन के कारण आर्थिक जीवन के सभी पक्षों–कृषि, पशुपालन, उद्योग एवं शिल्प तथा व्यापार–वाणिज्य में अभूतपूर्व उन्नति हुई।

1. कृषि– स्मृतियों, बृहत्संहिता, अमरकोश आदि से गुप्तकालीन कृषि के बारे में जानकारी मिलती है। हल में लोहे के फाल का प्रयोग किया जाता था। बृहत्संहिता में बीजों की गुणवत्ता बढ़ाने एवं धरती की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने के तरीकों का उल्लेख किया गया है। कृषक अधिकांशतः वर्षा पर निर्भर होते थे, लेकिन गुप्त सम्राटों की ओर से प्रजा को सिंचाई की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास किया गया। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख ने अनुसार उसने गिरिनार पर्वत पर स्थित सुदर्शन झील का पुनरुद्धार करवाया। यह कार्य उसके सौराष्ट्र के गवर्नर पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने करवाया था। सिंचाई में रहट या घटीयंत्र का प्रयोग होता था।

अमरकोष में उपज की विभिन्न वस्तुओं के नाम मिलते हैं– गेहूँ , धान, ज्वार, ईख, बाजरा, मटर, दाल, तिल, सरसों, अलसी, अदरक, कालीमिर्च आदि। बृहत्संहिता में तीन फसलों का उल्लेख है। एक फसल श्रावण के महीने में तैयार होती थी, दूसरी बसंत में और तीसरी चैत्र या बैसाख मे तैयार होती थी। ह्वेनसांग के अनुसार पश्चिमोत्तर भारत में ईख व गेहूँ तथा मगध एवं उसके पूर्वी क्षेत्रों में चावल की पैदावार होती थी। अमरसिंह ने अपने ग्रंथ अमरकोष में 12 प्रकार की भूमि का उल्लेख किया है। इस समय प्रचलन में करीब 5 प्रकार की भूमि का उल्लेख मिलता है– क्षेत्र भूमि, वास्तु भूमि, चारागाह भूमि, सिल व अप्रहत भूमि इत्यादि।

2. पशुपालन– पशुपालन जीविका का एक अन्य प्रमुख साधन था। कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार गोपालन वैश्य का पेशा है। अमरकोश में पालतू पशु के रूप में गाय के अतिरिक्त घोड़े, भैंस, ऊँट, बकरी, भेड़, गधा, कुत्ता, बिल्ली आदि को गिनाया गया है। बैल हल चलाने और सामान ढोने के काम आता था।

3. उद्योग एवं शिल्प– गुप्तकालीन उद्योगों एवं शिल्पों में जहां एक ओर विशेषज्ञता का विकास दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर प्रौद्योगिकी या तकनीकी कौशल में अद्भुत प्रगति दृष्टिगोचर होती है। इस काल में धातु–शिल्प, वस्त्र–निर्माण, आभूषण–कला, काष्ठ–शिल्प साथ ही पाषाण–शिल्प, हाथीदाँत का काम आदि उद्योगों में विशेष प्रगति हुई। आभूषण, हाथीदाँत, धातुकर्म, बर्तन, जहाज उद्योग विकसित हुए। गुप्तकाल में धातु–शिल्प के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। इस काल में धातुविज्ञान के क्षेत्र में हुई अद्भुत प्रगति का एक भव्य उदाहरण मैहरोली (दिल्ली) का लौह–स्तम्भ है जो इतनी शताब्दियों बाद भी बिना जंग लगे हुए, अक्षत खड़ा है। गुप्तकालीन ताम्रशिल्प का एक श्रेष्ठ उदाहरण तांबे की विशालकाय बुद्ध की मूर्ति है जो सुलतानगंज (जिला भागलपुर, बिहार) से मिली थी और इस समय इंग्लैण्ड के बरमिंघमन के संग्रहालय में है। गुप्तकालीन धातुकर्म का सर्वोत्तम रूप इस काल के सिक्कों में देखा जा सकता है। इस काल के ताम्रपत्रों पर लगी हुई मुहरें भी धातुशिल्प की श्रेष्ठ उदाहरण है।

गुप्तकाल की सहस्त्रों स्वर्णमुद्रायें प्राप्त हुई है, जो विशुद्ध भी हैं तथा कलात्मक भी। गुप्तकाल की आर्थिक सम्पन्नता, कलात्मक सौन्दर्यसृष्टि तथा तकनीकी कौशल का वे ज्वंलत उदाहरण है। गुप्त सम्राटों में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने सिक्के प्रचलित किये। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय सोने के अतिरिक्त चांदी एवं तांबे का भी मुद्राओं के लिए प्रयोग किया गया। कुमारगुप्त प्रथम ने सर्वाधिक सिक्कों का प्रचलन किया। इन स्वर्ण मुद्राओं को अभिलेखों में दीनार कहा गया है। फाह्यान ने बताया कि गुप्तकाल में साधारण जनता दैनिक जीवन के विनिमय में वस्तुओं के आदान–प्रदान या फिर कौड़ियों से काम चलाती थी।

वस्त्र–निर्माण भी गुप्तकाल का एक प्रमुख उद्योग था। 'अमरकोश' में उसका उल्लेख आता है। गुप्तकाल में धनी व्यक्तियों के लिए बहुत बारीक कपड़ा बनाया जाता था। इसी ग्रंथ में रेशम का कपड़ा बुनने की पूरी प्रक्रिया का विवेचन है। भारत के उत्तर–दक्षिण व्यापार में वस्त्रों का प्रमुख स्थान था तथा विदेशी बाजारों में भी भारतीय वस्त्रों की बहुत मांग थी। रेशमी वस्त्र, मलमल, लिलन, ऊनी व सूती वस्त्रों की विदेशों में अधिक मांग थी।

गुप्तकाल में आभूषण बनाने का शिल्प भी उन्नत अवस्था में था। आभूषण बनाने के लिए स्वर्ण एवं रजत के अलावा विभिन्न प्रकार के रत्नों का भी बहुलता से प्रयोग किया जाता था। 'बृहत्संहिता' में 22 प्रकार के रत्नों का उल्लेख है। साहित्यिक साक्ष्य बताते हैं कि गुप्तकाल में काष्ठ–शिल्प भी विकसित अवस्था में था। इलाहाबाद के निकट भीत नामक स्थल पर गुप्तकालीन हाथीदाँत की बनी दो मुहरें प्राप्त हुई है।

4. श्रेणी–संगठन – शिल्पी, उद्यमी तथा व्यापारी संगठित थे और उन्होंने अपने–अपने संघ बना रखे थे। इन संघों को 'श्रेणी', 'निगम' अथवा 'गण' कहा जाता था। ये श्रेणियां व्यावसायिक उद्यम एंव निर्माण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। अपने व्यवसायों के संचालन के लिए उनके अपने नियम और कोष थे। वे आधुनिक बैंकों की भाँति काम करते थे। ये ऋण ब्याज पर देते थे और निधियाँ ब्याज पर अपने पास रखते थे। व्यापार व उद्योग श्रेणियों में संगठित थे। श्रेणियों में वस्त्रोद्योग, बैंकिंग आदि का कार्य प्रमुख था। 'श्रेणियाँ' आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होती थीं और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्य भी करती थी, जैसे सभागृहों, यात्रियों के लिए पीने योग्य पानी की सुविधाओं से युक्त विश्रामगृह, जलाशयों, उद्यानों, मन्दिरों आदि का निर्माण। मन्दसौर के एक कुमारगुप्त–कालीन लेख से ज्ञात होता है कि दशपुर (मन्दसौर) में तन्तुवाहों (जुलाहों) की एक श्रेणी थी जिसने सूर्य–मन्दिर की स्थापना की थी। श्रेणियाँ अपने आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्र होती थीं। श्रेणी के प्रधान को 'ज्येष्ठक' कहा जाता था। यह पद आनुवांशिक होता था। नालन्दा एवं वैशाली से गुप्तकालीन श्रेणियों, सार्ववाहों एवं कुलिकों की मुहरें प्राप्त हुई है। गुप्तकाल में श्रेणी से बड़ी संस्था होती थी, जिसकी शिल्प श्रेणियाँ सदस्य होती थीं, उसे निगम कहा जाता था अर्थात् व्यापारिक समितियों को निगम कहते थे। प्रत्येक शिल्पियों की अलग–अलग श्रेणियाँ होती थीं। ये श्रेणियाँ टपने कानून एवं परम्परा की अवहेलना करने वालों को सजा देने का अधिकार रखती थीं। व्यापारिक कारवाँ का नेतृत्व करने वाला सार्थवाह कहलाता था। निगम का प्रधान 'श्रेष्ठि' कहलाता था।

5. गुप्तकाल में व्यापार एवं उद्योग

आन्तरिक व्यापार– गुप्तकाल में व्यापार एवं वाणिज्य अपने चरम् उत्कर्ष पर था। आंतरिक व्यापार सड़कों और नदियों के द्वारा किया जाता था। गुप्तकाल में दीर्घ राजनीतिक स्थिरता एवं शान्ति की स्थिति तथा गुप्तकालीन नरेशों द्वारा प्रभूत मात्रा में प्रचलित स्वर्ण मुद्राओं ने व्यापार के विकास में बहुत सहयोग दिया। आन्तरिक व्यापार की प्रमुख वस्तुओं में दैनिक उपयोग की लगभग सभी वस्तुएँ शामिल थीं जिन्हें नगरों एवं ग्रामों के बाजारों में मुख्यतः बेचा जाता था जबकि विलासितापूर्ण वस्तुओं में दूरस्थ प्रदेशों से लाई गई वस्तुएँ शामिल थीं। सार्थ भ्रमणशील व्यापारी थे, जिनका नगरीय जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था। नारद एवं बृहस्पति की स्मृतियों में क्रेताओं और विक्रेताओं के समान हितों की रक्षा के लिए अनेक नियम–विनियम मिलते हैं। गुप्तकाल में मार्गों से यात्रा सुरक्षित एवं निरापद थी। चीनी यात्री फाह्यान ने भारत में अपनी यात्रा के दौरान कहीं असुरक्षा महसूस नहीं की।

उज्जैन, भड़ौच, प्रतिष्ठान, विदिशा, प्रयाग, पाटलिपुत्र, वैशाली, ताम्रलिप्ति, मथुरा, अहिच्छत्र, कौशम्बी आदि महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगर थे। इन सब में उज्जैन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक स्थल था क्योंकि देश के हर कोने से मार्ग उज्जैन की ओर आते थे।पेशावर, मथुरा, उज्जैन, पैठान मुख्य व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र थे।

विदेशी व्यापार– भारतीय बन्दरगाहों का बाहर के अनेक देशों से स्थायी सामुद्रिक संबंध बना हुआ था। ये देश थे– चीन, श्रीलंका, फारस, अरब, इथोपिया, बैजन्टाइन (रोमन) साम्राज्य तथा हिन्द महासागर के द्वीप। गुप्तकाल में चीन के साथ भारत के विदेशी व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई। चीन का रेशम जो 'चीनांशुक' के नाम से प्रसिद्ध था, भारत के बाजारों में अत्यधिक लोकप्रिय था। रोमन साम्राज्य के पतन से कमजोर हुआ पश्चिमी विदेशी व्यापार में पुनः वहाँ बैजन्टाइन साम्राज्य की स्थापना के बाद वृद्धि हुई। यहां निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में रेशम व मसाले प्रमुख थे।

भृगुकच्छ (भड़ौच) पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। कैम्बे, सोपार व कल्याण बन्दरगाह थे। पूर्वी तट पर स्थित बन्दरगाहों में घंटशाला, कदूरा तथा गंगा के मुहाने पर ताम्रलिप्ति स्थित था। ताम्रलिप्ति पूर्वी भारत में होने वाले सामुद्रिक व्यापार का यह सबसे बड़ा केन्द्र था। चीन, इण्डोनेशिया तथा श्रीलंका के व्यापारिक जहाज यहाँ आते–जाते थे। रघुवंश एवं दशकुमारचरित में ताम्रलिप्ति से होने वाले समृद्ध सामुद्रिक व्यापार के उल्लेख है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि गुप्त साम्राज्य एशिया का प्रमुख केन्द्र स्थल था एवं विश्व के सामुद्रिक देशों में वह सर्वप्रमुख सामुद्रिक शक्ति के रूप में प्रसिद्ध था।

भारत में चीन से रेशम, इथोपिया से हांथीदाँत व अरब ईरान तथा बेक्ट्रिया से घोड़ों का आयात होता था। दक्षिण पूर्वी एशिया, चीन व पश्चिम से ताम्रलिप्ति, भड़ौच आदि बन्दरगाहों से व्यापार होता था। मसाले, मोती, वस्त्र, हाथीदांत, नील का निर्यात एवं धातु, चिनाशंकु, घोड़ो आदि का आयात किया जाता था।

6. राजस्व के स्रोत– गुप्तकाल में भू राजस्व राजकीय आय का प्रमुख स्रोत था। साहित्य में निम्न प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है –

- भाग–राजा का भूमि के उत्पादन से प्राप्त होने वाला 1/6 हिस्सा।
- भोग–राजा को हर दिन फल–फूल, सब्जियों के रूप में दिया जाने वाला कर।
- उपरिकर एवं उद्रंग – ये एक प्रकार के भूमि कर थे।

गुप्तकाल में भूमिकर की अदायगी नकद (हिरण्य) व अन्न (मेय) दोनों रूपों में की जा सकती थी, इस समय भूमि, रत्न, खाने एवं नमक आदि राजस्व के अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत थे। भू राजस्व कुल उत्पादन का 1/4 से 1/6 भाग तक होता था।

गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। फाह्यान ने गुप्तकाल में धार्मिक सहिष्णुता, सरल दण्ड व्यवस्था, घरों में तालों का अभाव तथा प्याज–लहसुन के असेवन का उल्लेख किया है, जो समाज में अपराधवृत्ति की न्यूनता, सम्पत्ति की सुरक्षा, अहिंसक तथा सात्विक प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। जिन भावनाओं को जनता में पल्लवित करने हेतु मौर्य सम्राट अशोक को उपदेश देना पड़ा, वो अब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। मौर्यों के पश्चात् पहली बार राजनीतिक एकता एवं सुव्यवस्था स्थापित हुई। गुप्तकाल में अर्थव्यवस्था का मौद्रीकरण हुआ। उद्योग तथा व्यापार प्रौन्नत थे। इस युग की कला में आध्यात्मिकता, शालीनता तथा भारतीयता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। अजन्ता, बाघ के गुहा चित्र, देवगढ़ भितरी गांव आदि के मन्दिर, विष्णु, बुद्ध, महावीर की मूर्तियों आदि, इस युग की कला के चरमोत्कर्ष के द्योतक हैं, जो सामाजिक समृद्धि एवं सौहार्द्र का प्रतीक है। साहित्य में कालिदास, हरिषेण, विष्णुशर्मा आदि ने उच्च कोटि की रचनाएं की। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, नागार्जुन आदि ने विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विकास किया तथा भारतीय संस्कृति का भी विदेशों में प्रचार–प्रसार भी गुप्तकाल में हुआ।

निःसंदेह गुप्त युग कला, वास्तु, मूर्ति, शिल्प, चित्रकला, साहित्य, वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के अवतरण, पल्लवन और मुद्रा प्रसारण में समग्र रूप से प्रगति का युग था। राजनीतिक एकता प्रतापी सम्राट, आर्थिक वैभव, धार्मिक सहिष्णुता, विदेशियों को हिन्दू धर्म में सम्मिलित करना, हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान, संस्कृत साहित्य की प्रगति, सभी ललित कलाओं की उन्नति, विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के कारण, प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकाल का स्थान श्रेष्ठ हैं। इन कार्यों के लिए निःसन्देह गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्ण युग था। श्री अरविन्द ने लिखा है कि 'भारत ने अपने इतिहास में अपनी जीवन शक्ति को विभिन्न क्षेत्रों में इतना पल्लवित होते हुए कभी नहीं देखा, जितना गुप्तकाल में विकास हुआ।'

फाह्यान का भारत वर्णन

चीनी यात्री फाह्यान ने 399 ई. से 414 ई. तक भारत का भ्रमण किया था। उसने भारत की आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। तत्कालीन समाज में शाकाहार का प्रचलन था सामान्यतयः जनता लहसुन प्याज का सेवन नहीं करती थी। अस्पृश्यता विद्यमान थी, परन्तु आम जनता का जीवन सादा व अहिंसक था।

बौद्ध धर्म सीमावर्ती राज्यों में उन्नति था जबकि अपने प्रमुख स्थानों में अपनी महत्ता खो रहा था। समाज में धार्मिक समानता विद्यमान थी। ब्राह्मण धर्म भी उन्नत अवस्था में था। प्रजा दान–धर्म, पाप–पुण्य, लोक–परलोक, पुनर्जन्म में विश्वास करती थी। प्रजा सुखी थी। करों का बोझ अधिक नहीं था। दण्ड व्यवस्था कठोर नहीं थी, अपराध नगण्य थे। चोरों व डाकुओं का भय नहीं था। राज्य प्रजा के निजी विषयों में हस्तक्षेप नहीं करता था।

प्रसिद्ध नगर श्रावस्ती, वैशाली, कौशम्बी उजड़ने लगे तथा उनके स्थान पर व्यापारिक नगर उज्जैन, कन्नौज आदि समृद्ध हो गए एवं व्यापार उन्नत था। मुख्यतः कौड़ियां एवं वस्तुएँ विनियम का आधार थी। पाटलिपुत्र के निवासी सम्पन्न थे। दान देने व जनहित कार्य के लिए तैयार रहते थे।

हर्षकालीन भारत

गुप्त साम्राज्य के विघटन के पश्चात हरियाणा के थानेश्वर में पुष्यभूति वंश की स्थापना हुई। हर्षचरित के अनुसार प्रभाकरवर्धन इस वंश का चौथा शासक था। उसके पश्चात् हर्षवर्धन लगभग 606 ई0 में थानेश्वर का शासक बना व 647 ई0 तक शासक किया। हर्ष ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया।

हर्ष की विजय एवं साम्राज्य विस्तार

हर्षवर्द्धन के साम्राज्य की वास्तविक जानकारी उसके अभिलेखों, हर्षचरित तथा ह्वेनसाँग के विवरणों से प्राप्त होती है। हर्ष ने लगभग समस्त उत्तरी भारत में विजय प्राप्त की एवं साम्राज्य का विस्तार किया। ह्वेनसाँग उसके पंच भारत की विजय का उल्लेख करता है। हर्ष 606 ई0 में सिंहासन पर बैठा। उसने सर्वप्रथम बंगाल के गौड़ों के विरूद्ध कार्यवाही की, उस समय शशांक वहाँ का शासक था। हर्ष ने कामरूप के शासक भास्कर वर्मा के साथ समझौता किया, जिससे गौड़ नरेश शशांक को सीमित कर दिया। हर्ष ने 630 ई0 से 633 ई0 के बीच वल्लभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य को पराजित किया, जो चालुक्यों से युद्ध का पूर्व चरण था। बाद में हर्ष ने वल्लभी से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। हर्ष व पुलिकेशिन द्वितीय महत्त्वाकांक्षी शासक थे, जिन्होंने साम्राज्यवादी नीति का अवलम्बन किया। दोनों राज्यों की सीमाएं निकट होने के कारण उनके बीच युद्ध को अनिवार्य बना दिया, यह युद्ध संभवतः 630 से 634 ई0 के बीच नर्मदा नदी के तट पर हुआ होगा। ह्वेनसाँग तथा पुलिकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति इस युद्ध में हर्ष की असफलता का उल्लेख करती है।

हर्ष अपने पूर्वी भारत अभियानों में सफल रहा। चीनी लेखक मा–त्वान–लीन 641 ई0 में हर्ष को मगध नरेश बताता है। संभवतः हर्ष व कामरूप के शासक भास्कर वर्मा के गठजोड़ ने बंगाल एवं पूर्वी भारत को विजित किया। 640 ई0 के आसपास ओड्र, कांगोद एवं कलिंग पर विजय प्राप्त कर, उड़ीसा पर भी विजय प्राप्त की तथा हर्ष ने उड़ीसा विजय के बाद बौद्ध सभा बुलाई, इसकी पुष्टि चीनी विवरण द्वारा होती है। बाणभट्ट के अनुसार हर्ष ने सिंध के राजा को राजलक्ष्मी से वंचित किया, जिसे पहले प्रभाकरवर्धन हरा चुका था। अब सिंध हर्ष का आश्रित राज्य हो गया। जालन्धर का उदित और प्रत्यक्षतः पूर्वी मालवा का माधव गुप्त उसके आश्रित थे। बाणभट्ट व ह्वेनसाँग कश्मीर व नेपाल पर हर्ष के आधिपत्य की बात कहते हैं। कश्मीर के राजा को हर्ष ने बुद्ध के दाँत देने के लिए बाध्य किया तथा नेपाल में हर्ष संवत् के प्रचलन से इस तथ्य की पुष्टि होती है। हर्ष के तुषार

शैल अर्थात् बर्फीले पहाड़ों के दुर्गम क्षेत्र से कर वसूलने का भी उल्लेख हुआ है।

41 वर्ष के अपने शासन के दौरान हर्ष ने अपने सामंत राजाओं में दूर–दराज के क्षेत्रों यथा जालंधर, कश्मीर, नेपाल, वल्लभी, मालवा, सिंध, सीमान्त प्रदेश व असम को सम्मिलित किया। संयुक्त प्रदेश बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्य भारत तथा राजपूताना हर्ष के प्रशासन के अधीन थे। अन्ततः हर्ष उत्तरी भारत के एक बहुत बड़े शासन के रूप में विद्यमान रहा। दक्षिण भारत के अभिलेखों में हर्ष को सकलोत्तरापथनाथ अर्थात् उत्तर भारत का स्वामी कहा गया है। हर्ष का साम्राज्य सामन्ती संगठन पर आधारित था। गृह राज्य पर हर्ष का सीधा प्रशासनिक नियन्त्रण था, लेकिन अन्य राज्यों पर उसका सिर्फ अप्रत्यक्ष नियन्त्रण था। हर्ष की उपाधियों परमभट्टारक, महाराजाधिराज, सकलोत्तरायेश्वर, एकाधिकार, चक्रवर्ती, सार्वभौम, परमेश्वर आदि से स्पष्ट होता है कि हर्ष में दैवीय गुणों का समावेश था। हर्ष के अधीनस्थ शासक भूपाल, कुमार, लोकपाल, नृपति, सामंत, महासामंत एवं महाराजा की उपाधि धारण करते थे। अधीनस्थ शासक हर्ष को कर देते थे, सैन्य सहायता करते थे एवं राज दरबार में उपस्थित होते थे। हर्ष इन्हें न केवल सुरक्षा देता था बल्कि प्रशासनिक छूट भी देता था। अधीनस्थ शासकों में वल्लभी का ध्रुवसेन द्वितीय, कामरूप का भास्कर वर्मन मगध का पूर्ववर्मन, जालन्धर का उदित और उत्तर गुप्त शासक माधव गुप्त का नाम लिया जा सकता है।

हर्ष का धर्म व ज्ञान के सरंक्षक के रूप में मूल्यांकन

हर्ष एक महान् सेनापति, कला–साहित्य व धर्म का संरक्षक था। वह राजस्व का आधा भाग धर्म, शिक्षा–साहित्य के संरक्षण हेतु व्यय करता था। हर्ष प्रारम्भ में शैव था, तत्पश्चात् वह महायान बौद्ध धर्म की ओर प्रवृत्त हुआ। इन सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के लिए हर्ष ने कन्नौज में 643 ई0 में एक विशाल सम्मलेन का आयोजन किया। इसमें बौद्ध, ब्राह्मण, जैन व नालंदा के विद्वानों ने भाग लिया। हर्ष राजस्व का चौथाई हिस्सा धर्म के लिए व्यय करता था। उसके प्रश्रय से महायान बौद्ध धर्म देश–विदेश में फैला। प्रयाग व कन्नौज आदि सभाओं के माध्यम से विभिन्न धर्मावलम्बियों को एक जगह लाकर धार्मिक सहिष्णुता एवं सामाजिक एकता का सूत्रपात किया।

कन्नौज सभा– 643 ई0 में हर्ष ने कन्नौज में एक सभा का आयोजन किया। सभा का उद्देश्य देश में बौद्ध धर्म को विकसित करने के लिए ह्वेनसाँग की उपस्थिति का लाभ उठाना था। बहुत से शासक इस सभा में सम्मिलित हुए। उसमें 3,000 महायान व हीनयान बौद्ध भिक्षु, 3,000 ब्राह्मण व नालन्दा विश्वविद्यालय के लगभग 1,000 बौद्ध विद्वान् भाग लेने के लिए आए। हर्ष ने ह्वेनसाँग का नाम सभापति पद के लिए प्रस्तावित किया और महायान सम्बन्धी एक विषय को वाद–विवाद के लिए निर्धारित कर दिया। यह सभा 23 दिन तक चली और इसमें महायान का प्रचार किया गया। गंगा के तट पर स्थित विशाल विहार को इसी अवसर के लिए बनवाया गया था। राजा के बराबर बुद्ध की एक सोने की मूर्ति एक सौ फुट ऊँचे स्तम्भ पर रख दी गई। उसी प्रकार की, किन्तु उससे छोटी, तीन फुट ऊँची मूर्ति को रोज जुलूस में उठाया जाता था, जिसमें 20 राजा और 300 हाथी होते थे। छत्र को स्वयं हर्ष उठाता था। आगे बढ़ते हुए हर्ष चारों ओर मोती, सुनहरी फूल और अन्य कीमती चीजें बिखेरता जाता था। हर्ष ने स्वयं अपने हाथों से बुद्ध की मूर्ति को धोया और अपने कन्धों पर उठाकर पश्चिमी स्तम्भ तक ले गया। वहां से उसने हीरों से जड़े हुए हजारों रेशमी वस्त्र उसे अर्पित किए। अस्थायी विहार विशेष रूप से इसी अवसर के लिए बनाया गया था। हर्ष के संरक्षण तथा प्रयासों से महायान बौद्ध धर्म देश–विदेश में फैला। उसने बौद्ध विहारों एवं स्तूपों का निर्माण कराया तथा दान दिया।

हर्ष प्रत्येक पांचवे वर्ष में प्रयाग महामोक्ष परिषद् का आयोजन करता था, जिनमें विभिन्न धर्मों के देवी–देवताओं की पूजा की जाती थी एवं विभिन्न धर्मावलम्बियों को दान दिया जाता था।

प्रयाग सभा– 643 ई0 में हर्ष ने प्रयाग में एक और सभा ('मोक्ष–परिषद्') का आयोजन किया। हर्ष पिछले 30 वर्षों से ऐसी सभाएं आयोजित करता रहा था। 643 ई0 की सभा छठी सभा थी। यह सभा रेत पर की गई थी, जहां गंगा और यमुना मिलती है। सभा में हर्ष और ह्वेनसाँग के अठारह राजसी मित्रों ने भाग लिया। उस अवसर पर 5,00,000 से भी अधिक व्यक्ति उपस्थित हुए। उनके निवास तथा भोजन के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया था। प्रयाग में किए गए कार्य के संबंध में पहले दिन एक बुद्ध–मूर्ति रखी गई और लोगों में असंख्य वस्त्र तथा बहुमूल्य वस्तुएँ बांटी गई। दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य और शिव की मूर्तियों का सम्मान किया गया। चौथे दिन बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया गया। उसके अगले दिन ब्राह्मणों को दान दिया गया। जैन धर्म तथा अन्य धर्मों के अवलम्बियों को दस दिन दान दिया गया। सुदूर देशों के तपस्वियों को कई दिनों तक दान दिया गया। अगले एक महिने में निर्धन, अनाथ और दिव्यांग लोगों को सहायता दी गई। यह सब 75 दिन में सम्पन्न हुआ। ह्वेनसाँग ने लिखा है : ''अब तक पांच वर्ष का संचित धन व्यय हो चुका था। घोड़ों, हाथियों और सैनिक उपकरण, जो राज–सम्पत्ति की रक्षा तथा सुव्यवस्था के लिए आवश्यक थे, इसके अतिरिक्त शेष कुछ भी न बचा। इनके अलावा राजा ने अपने हीरे और सामान, कपड़े और मालाएं, कंगन, कण्ठाहार और चमकीले शिरो–भूषण सब बिना भेदभाव के दान में दिए। सब कुछ दे चुकने के बाद उसने अपनी बहन राजश्री से पुराना वस्त्र मांगा और उसे पहन कर उसने 'दस दिशाओं के बुद्धों' की पूजा की और प्रसन्नता अनुभव की, कि उसका कोष दान–धर्म में समाप्त हो गया था।''

इन सभाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि उसके दान और उदारता ने तो पुरानी सभी सीमाओं को भी पार कर लिया था। हमें किसी राजा का ज्ञान नहीं हैं जिसने मानवता का कष्ट–निवारण करने के लिए सर्वस्त्र दान दिया हो। इस प्रकार हर्ष ने धार्मिक सहिष्णुता व सद्भाव को प्रोत्साहन दिया तथा मानवतावाद का संदेश फैलाया।

हर्ष के राजस्व का चौथाई हिस्सा बौद्धिक उपलब्धियों यथा विद्या के प्रसार एवं विद्वानों को पुरस्कृत करने पर व्यय होता था। हर्ष ने मयूराष्टक तथा सूर्यशतक के रचयिता मयूर, हर्ष चरित्र एवं कादम्बरी के रचयिता बाणभट्ट सहित भृर्तहरि, मांतग

दिवाकर, जयसेन आदि अनेक विद्वानों को संरक्षण दिया। स्वयं हर्ष ने नागानंद, प्रियदर्शिका व रत्नावली आदि रचनाएं रची। हर्ष ने शिक्षा के प्रसार–प्रचार के लिए धन एवं ग्रामों को दान में दिया। नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। इसके अतिरिक्त वल्लभी, अनेक गुरुकुल आश्रम एवं विहार शिक्षा के केन्द्र थे। इस प्रकार हर्ष ने प्रजा के बौद्धिक स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। हर्ष ने बौद्ध धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों की सहिष्णुता पर बल दिया एवं उनका संरक्षण किया। ज्ञान में हर्ष ने अनेक विद्वानों को संरक्षण दिया तथा शिक्षा के प्रसार–प्रचार के लिए वित्त का पोषण किया। हर्ष को हम धर्म एवं ज्ञान का महान् संरक्षक कहते हैं।

हर्ष का शासन प्रबन्ध

सम्राट हर्ष स्वयं प्रशासन की धुरी था। हर्ष प्रशासनिक व्यवस्था में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेता था। उसका विचार था कि प्रशासकीय कुशलता के लिए शासक को निरन्तर सचेष्ट रहना चाहिए। हर्ष बहुत परिश्रमी था। उसने दिन को तीन भागों में बांट रखा था, जिनमें से एक राज्य–कार्य के लिए निश्चित था। उसका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। हर्ष को निरीक्षण–यात्रा के लाभ में विश्वास था। यदि नगरों के निवासियों के आचार में कोई त्रुटियां होती थी, तो वह स्वयं उनके बीच चला जाता था। किन्तु उसकी यात्राएं नगरों तक ही सीमित नहीं थी। ग्रामीण क्षेत्रों की ओर भी वह उतना ही ध्यान देता था। जब राजा किसी स्थान पर ठहरता था, तो प्रजागण उससे भेंट कर सकते थे और उसके समक्ष अपनी कठिनाइयां प्रस्तुत कर सकते थे। सिद्धान्त के रूप में हर्ष का प्रशासन निरंकुश था। किन्तु लोगों को अपने– अपने क्षेत्रों में स्वशासन प्राप्त था। अधिकांश कार्य ग्रामीण समुदायों के हाथ में था। केन्द्रीय सरकार और ग्राम–सभाओं में परस्पर पर्याप्त सहयोग था। कुल मिलाकर हर्ष का प्रशासन निरंकुश तथा गणतंत्रीय तत्वों का मिश्रण था।

मन्त्रिपरिषद् – सम्राट की सहायता के लिए एक मंत्रिपरिषद् गठित की गयी थी। राज–सिंहासन रिक्त होने की अवस्था में परिषद् अपनी शक्ति का प्रयोग करती थी। राज्यवर्धन की मृत्यु पर मुख्य–मंत्री भण्डी ने मन्त्रि–परिषद् की सभा का आयोजन किया और हर्ष के राज–पद संभालने का प्रस्ताव रखा। वहाँ उपस्थित सभी जन सहमत हो गए और हर्ष से राज्याधिकार ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। मन्त्रि–परिषद को शासक चुनने में ही नहीं बल्कि विदेश–नीति में भी काफी कुछ कहने का अधिकार था।

सचिवालय– प्रतीत होता है कि राजधानी में एक सुव्यस्थित सचिवालय था। बाणभट्ट ने अवन्ति को विदेश तथा युद्ध मन्त्री बताया है। सिंहानन्द को उसने हर्ष का सेनापति कहा है। कुन्तल को उसने घुड़सेना का अधिकारी बताया है। स्कन्दगुप्त को हाथी सेना का प्रमुख कहा है। मधुवन ताम्र–पत्र में स्कन्दगुप्त को 'महाप्रमातार महासामन्त' कहा गया है। उसी पत्र में सामन्त महाराज ईश्वरगुप्त को रिकार्ड–संरक्षक कहा है। बांसखेड़ा ताम्र–पत्र अभिलेख में भानु को रिकार्ड–संरक्षक कहा है। मुख्य राज्य कर्मचारियों के नाम थे 'महासामन्त', 'महाराज', 'दौस्साधनिक', 'प्रमातार', 'राजस्थानीय', 'कुमारामात्य', 'उपरिक', विषयपति' इत्यादि।

उच्च प्रशासकीय सेवा में 'कुमारमात्य' नियुक्त किए गये थे। उन्हीं में से मंत्री, सचिवालय के अधिकारी और जिला अधिकारी लिए जाते थे। राजधानी के अपने राजकीय संदेशवाहक थे जिन्हें 'हर्षचरित' में 'दीर्घध्वज' कहा है। 'सर्वगतः' नामक एक कर्मचारी का उल्लेख है, जो संभवतः गुप्तचर विभाग का सदस्य था। संभवतः अधिकांश उच्च कर्मचारियों को वेतन नकद नहीं दिया जाता था। राज्य के छोटे कर्मचारियों को उनके कार्य के अनुसार नकद या भूमि के रूप में वेतन दिए जाते थे, पर ह्वेनसांग का मानना है कि मंत्रियों एंव अधिकारियों के वेतन भूमि अनुदान के रूप में दिया जाता था। यह कहा जा सकता है कि हर्ष की प्रशासन–प्रणाली देश की सामन्त–प्रणाली की अग्रगामी थी।

सेना – ह्वेनसाँग बताते हैं कि हर्ष के पास 5,000 हाथी, 2,000 घुड़सवार और 5,000 पैदल सैनिक थे। अपने राज्य को विस्तृत करने के बाद हर्ष ने अपनी सैन्य शक्ति को भी बढ़ाया। फिर उसके पास 60,000 हाथी और 1,00,000 घुड़सवार हो गए। घुड़सेना के लिए घोड़े सिन्धु , ईरान और कम्बोज से मंगवाये जाते थे। पैदल सेना इससे भी कई गुणा अधिक रही होगी किन्तु इसकी ठीक संख्या नहीं दी गई। साधारण सैनिकों को 'चाट' और 'भाट' कहा जाता था। घुड़सेना के अधिकारियों को 'बृहदेश्वर' कहा गया था। पैदल सेना के अधिकारियों को 'बलाधिकृत' और 'महाबलाधिकृत' कहा जाता था। प्रमुख सैन्याधिकारी को 'महासेनापति' कहा जाता था।

साम्राज्य के भाग – हर्ष का साम्राज्य भुक्तियों, विषयों आदि में विभक्त था। प्रान्तों को 'भुक्तियों' में बांटा गया था। हर्ष के मधुवन तथा बांसखेड़ा पत्रों में अहिछत्र भुक्ति का उल्लेख है, भुक्ति को वर्तमान में जिले समझा जा सकता है। 'भुक्ति' को कई 'विषय' में बांटा गया था। संभवतः ग्राम का प्रशासन एक मुखिया के हाथ में था, जिसे 'ग्रामक्षपटलिक' कहा जाता था। उसकी सहायता के लिए कई लेखक थे, जिन्हें 'करणिक' कहा जाता था।

कर– तीन प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है, यथा 'भाग', 'हिरण्य' और 'बलि'। 'भाग' भूमि–कर था और पदार्थ रूप में दिया जाता था। 'हिरण्य' करों को कृषक या व्यापारी नकद दिया करते थे। संभवतः नाव कर भी लिया जाता था। व्यापारिक वस्तुओं पर नाप और तौल के अनुसार कर लिए जाते थे। कृषि उत्पादन में सम्राट का छठा भाग था। अनिवार्य श्रम भी लिया जाता था लेकिन उसके लिए पारिश्रमिक दिया जाता था। ह्वेनसाँग ने लिखा है कि राज–भूमि को चार भागों में बांटा गया था। एक भाग राज्य–कार्य चलाने के लिए था दूसरा भाग मंत्रियों तथा अन्य राजकर्मचारियों को वेतन देने के लिए था। तीसरा भाग सुयोग्य व्यक्तियों को पुरस्कृत करने के लिए था। चौथा भाग धार्मिक सम्प्रदायों को दान देने के लिए था।

दण्ड–विधान– ह्वेनसाँग यह भी बताता है कि अपराधी और विद्रोहियों की संख्या बहुत कम थी। जब कानून तोड़ा जाता था, तो अपराधियों को दण्ड दिया जाता था। शारीरिक दण्ड नहीं दिए जाते थे। अपराधियों को जीवन जंगलों में बिताने के लिए नगर से निकाल दिया जाता था। कुछ अपराधों के लिए थोड़ा–सा जुर्माना

किया जाता था। अभियुक्त से अपराध स्वीकार कराने के लिए यंत्रणा नहीं दी जाती थी। परीक्षा द्वारा अपराध की जाँच करने का ढंग भी प्रचलित था। सरकार जन हितकारी थी और सरकारी जरूरतें कम थीं। सरकार प्रजा के जीवन में हस्तक्षेप नहीं करती थी।

ह्वेनसाँग का भारत विवरण

ह्वेनसाँग चीनी बौद्ध यात्री था, जो हर्ष के समय भारत आया। वह बौद्ध स्थलों के दर्शन एवं बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन करने के उद्देश्य से भारत आया था। उसने भारत के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण दिया–

सामाजिक स्थिति– तत्कालीन समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र वर्णों में विभाजित था। प्रथम तीन वर्ण समृद्ध थे। वे स्वच्छता, रहन–सहन पर ज्यादा ध्यान देते थे। शूद्र खेती व परिचर्या का कार्य करते थे। समाज में शुद्ध भोजन तथा नैतिक चरित्र पर बल था। प्याज, लहसुन एवं मांस खाने वालों का निवास शहर से बाहर था। अन्तर्जातीय विवाह प्रतिबंधित थे।

आर्थिक पक्ष– भूमि उर्वरा थी तथा लोग समृद्धशाली थे। सोने–चांदी के सिक्कों एवं सामान्यतः कौड़ियों का मुद्रा के रूप में प्रचलन था। वस्त्रोद्योग का व्यवसाय उन्नत था। समाज में श्रेणी व्यवस्था प्रचलित थी। ताम्रलिप्ति, भड़ौंच, पाटलीपुत्र आदि शहर व्यापारिक केन्द्र थे। चीन, मध्य एशिया, पश्चिम से भारत के व्यापारिक संबंध थे। कपड़ा, मसाले, निर्यात एवं घोड़े, सोना–चांदी आयात की प्रमुख वस्तुएँ थी। कृषि कर उपज का 1/6 भाग होता था।

धार्मिक जीवन– ज्ञान की खोज धार्मिक जीवन का मुख्य लक्ष्य था। भारत में ब्राह्मण धर्म का प्रभाव था। जैन एवं बौद्ध धर्म भी प्रचलित थे। राजा–प्रजा धर्म सहिष्णु थे। बौद्धों में महायान प्रभावी था। सभी धर्मों में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। ब्राह्मण धर्म में यज्ञ एवं गायें आदरणीय थी।

राजनीतिक जीवन – शासन पद्धति हितकारी सिद्धान्तों पर आधारित थी। राज्य की आय राजकार्य चलाने, वेतन पुरस्कार तथा दान आदि में खर्च होती थी। हर्ष की राजकार्यों में व्यक्तिगत रुचि थी, वह निरीक्षण यात्राएँ करता रहता था। दण्डनीति उदार थी। अपराध कम होते थे। कुछ अपराधों में कठोर सजा थी। हर्ष के पास विशाल सेना थी।

शिक्षा– शिक्षा विहारों व गुरुकुल के माध्यम से दी जाती थी। वेदों का पाठ मौखिक होता था। ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी। शिक्षा में संस्कृत भाषा तथा वाद–विवाद प्रचलित थे। नालन्दा एवं वल्लभी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

हर्ष का मूल्यांकन– हर्ष पुष्यभूति वंश के शत्रुओं एवं हूणों का सामना, सामन्तवाद को नियंत्रित करना, उत्तर भारत में एकता व कानून व्यवस्था स्थापित करना, अर्थव्यवस्था को अनुप्राणित करना, विदेशी व्यापार एवं प्रशासन को दक्ष, सक्षम व उत्तरदायित्व युक्त बनाना आदि अपने समय की समस्याओं व प्रवृत्तियां से पूर्ण रूप से भिज्ञ था। हर्ष ने तत्कालीन समस्याओं के समाधान का अथक प्रयास किया। इस हेतु हर्ष ने बड़ी सेना का निर्माण किया, शत्रुओं का परास्त किया एवं उत्तरी भारत को एकता के सूत्र में बांधा। कन्नौज एवं प्रयाग में धर्म सभाओं के माध्यम से सामाजिक एकता व सहिष्णुता को प्रोत्साहन दिया तथा दान के माध्यम से जन–कल्याण किया एवं धन का पुनर्वितरण किया। चीन आदि देशों में प्रतिनिधि मण्डल भेजकर अर्थव्यवस्था व सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ किया। हर्ष साहित्य व विद्या का महान संरक्षक था।

हर्ष एक महान् सेनापति, कला एवं साहित्य का संरक्षक, कर्ण जैसा दानी सम्राट था। युग की प्रवृत्तियों के अनुरूप अपनी नीतियों को ढालने का प्रयत्न किया एवं आजीवन लोक रंजन में संलग्न रहा। हर्ष स्वयं व्यक्तिगत रूप से शासन प्रबन्ध देखता था। जनहित उसके राज्य का प्रमुख उद्देश्य था। सामंतशाही शक्तियों के नियंत्रण हेतु उसने भ्रमण किया तथा केन्द्रीय शासन को सुदृढ़ किया। भ्रमण एवं दान के माध्यम से हर्ष ने ग्रामीण विकास को गति प्रदान की तथा जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित किया, इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हर्ष ने जनःकल्याण व उत्पादन की शक्तियों को प्रोत्साहित किया।

हर्ष के समय तिब्बत–चीन तथा अन्य एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार हुआ, चीन में हर्ष ने प्रतिनिधि मण्डल भेजा। हर्ष नालंदा विश्वविद्यालय का मुख्य संरक्षक था। इसके अतिरिक्त वल्लभी सहित अनेक गुरुकुल आश्रम एवं शिक्षा के केन्द्र हर्ष के समय में विद्यमान थे। इस प्रकार हर्ष की उपलब्धियां व्यापक एवं बहुआयामी थी। हर्षवर्धन सातवीं शताब्दी की भारतीय राजनीति का श्रेष्ठतम नायक था। एक श्रेष्ठ यौद्धा, साम्राज्य निर्माता, कुशल प्रशासक, लोक कल्याणकारी और विद्यानुरागी शासक के रूप में सभी विद्वान उसकी प्रशंसा करते हैं। आर. एस. त्रिपाठी उसकी तुलना अशोक, समुद्रगुप्त से करते हैं।

अतः हर्ष ने युग की धाराओं को बदलने का एवं नई प्रवृत्तियों को जन्म देने का प्रयास किया तथा आजीवन लोक–कल्याणकारी कार्यों में संलग्न रहा, लेकिन वह पूर्णरूप से सफल नहीं रहा, उसका कारण उसकी अयोग्यता नहीं बल्कि ऐसी प्रवृत्तियों का उदय होना था, जिनके उत्थान व पतन के लिए एकमात्र व्यक्ति या युग विशेष रूप से उत्तरदायी नहीं होता है। इस प्रकार हर्ष अपने श्रेष्ठ कार्यों के कारण ही अन्तिम हिन्दू सम्राट कहा जा सकता है।

चोल प्रशासन, कला व साहित्य

चोलों के विषय में प्रथम जानकारी पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी' से मिलती है। इस विषय में जानकारी के अन्य स्रोत हैं–कात्यायन कृत वार्तिक, महाभारत, संगम साहित्य, टॉलमी आदि। चोल राज्य आधुनिक कावेरी नदी घाटी, कोरोमण्डल, त्रिचिरापल्ली एवं तंजोर तक विस्तृत था। साक्ष्यों के आधार पर माना जाता है कि इनकी पहली राजधानी 'उत्तरी मनलूर' थी। कालान्तर में उरैयुर तथा तंजावुर चोलों की राजधानी बनी। चोलों का शासकीय चिह्न 'बाघ' था।

प्रमुख शासक

उरवप्पहरै इलन जेत चेन्नी – यह चोल राजवंश का प्रथम शासक था। इसने अपनी राजधानी उरैयुर में स्थापित की। वह

युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अपने सुन्दर रथों के लिए प्रसिद्ध था।

करिकाल – यह प्रारम्भिक चोल शासकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शासक था। इस साम्राज्य विस्तारवादी शासक ने अपने शासन के आरम्भिक वर्षों में 'वण्णि' नामक स्थान पर वेलरि तथा अन्य ग्यारह शासकों की संयुक्त सेना को पराजित कर प्रसिद्धि प्राप्त की। उसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण सफलता थी– वहैप्परन्दलई के 9 छोटे–छोटे शासकों की संयुक्त सेना को पराजित करना। संगम साहित्य के अनुसार करिकाल ने कावेरी नदी के मुहाने पर 'पुहार' पत्तम (कावेरी पट्टनम) की स्थापना की। शक्तिशाली नौ सेना रखने वाला करिकाल शायद संगम–युग का सबसे महान् एवं पराक्रमी शासक था। 'पट्टिनपालै' कृति के उल्लेख के आधार पर करिकाल ने उरैयुर को अपनी राजधानी बनाया। इसकी मृत्यु युद्ध क्षेत्र में हुई थी। उसकी प्रशंसा में संगम साहित्य के अनेक कविताओं की रचना हुई। ईसा की तृतीय शताब्दी से 9वीं शताब्दी तक चोलों का इतिहास अंधेरे में था, पर 9वीं शताब्दी के मध्य ही चोल नरेश विजयालय द्वारा पल्लवों के अवशेष पर चोल शक्ति का पुनः उद्धार किया। यह चोल राजवंश साम्राज्य 9वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहा। चोल साम्राज्य के उत्थान में भिन्न– भिन्न शासकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

विजयालय (850 ई. से 875 ई.)– 9वीं शताब्दी के मध्य लगभग 850 ई0 में चोल शक्ति का पुनरुत्थान विजयालय ने किया। विजयालय को चोल साम्राज्य का द्वितीय संस्थापक भी माना जाता है। विजयालय ने पाण्ड्य शासकों से तंजौर को छीन कर उरैयुर के स्थान पर इसे अपने राज्य की राजधानी बनाया।

आदित्य प्रथम (875 ई. से 907 ई.)– विजयालय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी आदित्य प्रथम लगभग 875 ई. में चोल राजसिंहासन पर बैठा था। आदित्य प्रथम ने अपनी साम्राज्य विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत होकर पल्लव नरेश अपराजित को पराजित कर उसकी हत्या कर दी और इस तरह पल्लव राज्य पर चोलों का अधिकार हो गया। पल्लवों के अतिरिक्त उसने पाण्ड्यों एवं कलिंग देश के राजाओं को भी पराजित किया। आदित्य प्रथम के पश्चात् परान्तक प्रथम (907 ई. से 935 ई-) शासक बना, पाण्ड्य नरेश राजसिंह द्वितीय को परास्त कर पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा पर अधिकार कर मदुरैकोण्ड की उपाधि धारण की। परान्तक प्रथम के पश्चात अरिमौलिवर्मन अथवा राजराज प्रथम प्रसिद्ध चोल शासक हुआ।

राजराज प्रथम (985 ई. से 1014 ई.)– राजराज प्रथम के शासन के तीस वर्ष चोल साम्राज्य के सर्वाधिक गौरवशाली वर्ष थे। इसने अपने पितामह पराकान्त प्रथम की 'लौह एवं रक्त' की नीति का पालन करते हुए 'राजराज' की उपाधि ग्रहण की। राजराज प्रथम ने अपने शासन के 9वें वर्ष में सामरिक अभियान प्रारम्भ किया। चोल सत्ता के पुनरूद्धारक राजराज प्रथम ने बड़े पैमाने पर सैनिक अभियान कर दक्षिण के पाण्ड्यों व चेर, पश्चिमी गंगों, उत्तर में कलिंग तक उत्तरी श्रीलंका, मालद्वीप आदि को विजित किया। इस अभियान के अन्तर्गत सर्वप्रथम इसने चोल विरोधी गठबंधन में शामिल पाण्ड्य, चेर एवं श्रीलंका के शासकों पर आक्रमण किया। इस संयुक्त मोर्चे को नष्ट करने के लिए उसने सर्वप्रथम चेर नरेश भास्करवर्मन को पराजित किया। चेरों के बाद राजराज ने पाण्ड्य शासक अमर भुजंग को पराजित कर राजधानी 'मदुरा' को अपने कब्जे में कर लिया।

पण्ड्य राज्य पर अधिकार के बाद राजराज प्रथम ने श्रीलंका के शासक महेन्द्र पंचम पर आक्रमण कर उसकी राजधानी 'अनुराधापुरम' को बुरी तरह नष्ट कर दिया। इस अभियान में राजराज ने अपने द्वारा जीते गये प्रदेश का नाम 'मामुण्डी चोलमण्डलम' रखा एवं 'पोलोन्नरुवा' को उसकी राजधानी बनाया। संभवतः इस विजय के बाद राजराज प्रथम ने 'जगन्नाथ' का विरुद धारण कर पोलोन्नरुवा का नया नाम 'जगजाथमंगलम्' रखा। अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों में राजराज प्रथम ने मालद्वीप को विजित किया। प्रशासनिक सुधारों में राजराज ने भूमि का सर्वेक्षण कराया एवं स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहन दिया। वह धर्म–सहिष्णु, कला एवं विद्वता का संरक्षक था। नागपट्टनम में बौद्ध विहार की अनुमति दी तथा तंजौर में राजराजेश्वर का मन्दिर बनाया।

राजेन्द्र प्रथम (1014 ई0 से 1044 ई0)– राजराज प्रथम का पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम लगभग 1014 ई0 चोल राजसिंहासन पर बैठा। राजेन्द्र अपने पिता के समान ही योग्य शासक था। इसकी उपलब्धियों के बारे में सही जानकारी तिरुवालंगाडु एवं करंदाइ अभिलेखों से मिलती है। अपने विजय अभियान के प्रारम्भ में इसने पश्चिमी चालुक्यों, पाण्ड्यों, एवं चेरों को पराजित किया। इसके बाद लगभग 1017 ई0 में सिंहल (लंका) राज्य के विरूद्ध अभियान में उसने वहां के शासक महेन्द्र पंचम को परास्त कर सम्पूर्ण सिंहल राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। राजेन्द्र प्रथम ने उत्तर–पूर्वी भारतीय प्रदेशों को जीतने के लिए विशाल हस्ति प्रधान सेना का इस्तेमाल किया। राजेन्द्र प्रथम के सामरिक अभियानों में उसकी सेनाओं ने उत्तरी भारत में बंगाल के गांगेय क्षेत्र तक विजय अभियान किए। कलिंग में चोल सेनाओं ने पूर्वी गंग शासक मधुकामार्नव को पराजित किया। पूर्वी भारत में बंगाल के पाल शासक महीपाल को पराजित किया। गंगा घाटी के अभियान की सफलता पर राजेन्द्र प्रथम ने गंगैकोण्डचोल की उपाधि धारण की तथा इस विजय की स्मृति में कावेरी तट के निकट 'गंगैकोण्डचोलपुरम' नामक नई राजधानी का निर्माण करवाया, उसमें मन्दिर, तालाब आदि निर्मित कराये। उसने सिंचाई हेतु चोलगंगम नामक एक बड़े तालाब का भी निर्माण करवाया।

राजेन्द्र प्रथम ने श्री विजय (शैलेन्द्र) शासक विजयोत्तुंग वर्मन को पराजित कर जावा, सुमात्रा एवं मलाया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया। राजेन्द्र प्रथम ने चालुक्यों से दक्षिण प्रदेश छीने, चेरों की सत्ता समाप्त की तथा उसकी नौ सेना ने सिंहल द्वीप, बंगाल की खाड़ी पार कर जावा, सुमात्रा एवं मलय प्रायद्वीप पर विजय प्राप्त कर एक विस्तृत चोल साम्राज्य स्थापित किया।

राजेन्द्र प्रथम कला, साहित्य एवं शिक्षा का संरक्षक था, उसने एक वैदिक महाविद्यालय भी स्थापित किया। उसने चीन से सांस्कृतिक व व्यापारिक संबंध स्थापित किए।

राजाधिराज प्रथम (1044 ई0 1052 ई0)– राजेन्द्र प्रथम के बाद उसका पुत्र राजाधिराज प्रथम 1044 ई0 में चोल राजगद्दी पर बैठा। उसने तत्कालिक चालुक्य नरेश सोमेश्वर को पराजित कर

चालुक्य राजधानी कल्याणी पर अधिकार कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में राजाधिराज ने 'विजय राजेन्द्र' की उपाधि धारण की। तत्पश्चात् 1052 ई0 में कोप्पम के युद्ध में लड़ते हुए राजाधिराज की मृत्यु युद्ध क्षेत्र में ही हो गई। इसके छोटे भाई राजेन्द्र द्वितीय (1012 ई0 1064 ई0) ने युद्ध क्षेत्र में ही राज्याभिषेक सम्पन्न करवाया। इसके पश्चात वीर राजेन्द्र (1064ई0 से 1070 ई0) शासक बना, जिसने पश्चिम के चालुक्यों को कुंडलसंगमम् के मैदान में पराजित कर तुंगभद्रा नदी के किनारे विजय स्तम्भ की स्थापना की। 1070 ई0 में अधिराजेन्द्र शासक बना, लेकिन राज्य में हुए जन विद्रोह में उसकी हत्या गई। बाद में राजेन्द्र द्वितीय कुलोत्तुंग प्रथम नाम से शासक बना। चोल लेखों में कुलोत्तुंग को शुंगमतवर्ति अर्थात् करों को हटाने वाला कहा गया है। इस वंश का अन्तिम शासक राजेन्द्र तृतीय (1250 ई0 1279ई0) था। लगभग 1279 ई0 में पाण्ड्यों ने चोल राज्य पर अधिकार कर इसे समाप्त कर दिया।

चोल प्रशासन– चोल प्रशासन की जानकारी अभिलेखों, तत्कालिक साहित्य एवं विदेशी यात्रियों के विवरण आदि से मिलती है। जिसकी विशिष्ट राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विशेषता थी। इसमें केन्द्रीय नियंत्रण के साथ–साथ ग्रामीण व स्थानीय स्वायत्तता का अद्भुत संतुलन था।

केन्द्रीय प्रशासन

चोल शासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक व वंशानुगत था। राजा प्रशासन का प्रधान था व उसकी सहायता हेतु अनेक अधिकारीगण थे। राजा के निजी सहायकों को उद्मकुटुम कहा जाता था। उच्चस्तरीय अधिकारी पेरून्दनम व निम्न स्तरीय अधिकारी सीरुतरम कहलाते थे। ओलेनायकम् प्रधान सचिव होता था।

सैन्य संगठन– चोल नरेशों ने साम्राज्य की सुरक्षा एवं विजयों की दृष्टि से विशाल सेना का गठन किया। जिसके पदाति, अश्वारोही, गजारोही तीन अंग थे। चोलों की स्थायी सेना में पैदल, गजारोही, अश्वारोही आदि सैनिक शामिल होते थे। 'कुंजिर–मल्लर' गजारोही दल को, 'कुदिरैच्चैवगर' अश्वारोही दल को, 'बिल्लिगढ़' धनुर्धारी दल को, 'सैगुन्दर' भाला से प्रहार करने में निपुण सैनिकों को एवं 'वेलैक्कोर' राजा के अति विश्वसनीय अंगरक्षक को कहते थे। सेना गुल्मों व छावनियों (कडगम) में रहती थी। चोल काल में सेना की टुकड़ी का नेतृत्व करने वाले को नायक तथा सेनाध्यक्ष को महादण्डनायक कहा जाता था। इनके अतिरिक्त चोलों ने एक शक्तिशाली नौ सेना बनाई। चोल शासक अपने जहाजों को व्यापारिक एवं सैनिक दोनों कार्यों के लिए प्रयुक्त करते थे। चोल नरेश राजराज प्रथम ने नौ सेना द्वारा उत्तरी श्रीलंका, मालद्वीप एवं लक्षद्वीप को विजित कर साम्राज्य विस्तार किया। राजेन्द्र प्रथम की नौ सेना ने अपनी विजय वैजयन्ती गांगेय क्षेत्र, सिंहल द्वीप, बंगाल की खाड़ी के पार जावा, सुमात्रा एवं मलय प्रायद्वीप पर फहरा दी। इस समय बंगाल की खाड़ी चोल झील बन गई। महाबलिपुरम तथा कावेरी पट्टनम मुख्य चोल बन्दरगाह थे।

न्याय व्यवस्था– राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। चोल अभिलेखों में राजा के धर्मासन का अंतिम न्याय प्राप्त करने के स्थान के रूप में उल्लेख है। जहाँ पर राजा धर्मासनभट्ट, जो स्मृतिशास्त्र ज्ञाता ब्राह्मण विद्वान होता था, की सहायता से न्याय करता था। न्याय के लिए नियमित न्यायालयों का गठन किया गया एवं ग्राम न्यायालय व जातीय पंचायत का विधान था। छोटे विवादों पर स्थानीय निगम निर्णय देते थे। चोलों की दण्ड व्यवस्था में आर्थिक दण्ड एवं सामाजिक अपमान के दण्ड का विधान था। प्रायः आर्थिक दण्ड काशु (सोने का सिक्का) के रूप में देना पड़ता था।

राज्य की आय के स्त्रोत– राज्य की आय का मुख्य साधन भू–राजस्व था। भू–राजस्व निर्धारित करने से पूर्व भूमि का सर्वेक्षण, वर्गीकरण एवं नाप–जोख कराया जाता था। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजराज प्रथम एवं कुलोत्तुंग के पैर की माप ही भूमि की लम्बाई मापने की इकाई बनी। भूमिकर भूमि की उर्वरा एवं वार्षिक फसल चक्र देखने के बाद निर्धारित किया जाता था। संभवतः चोल काल में भूमि कर उपज का एक तिहाई हिस्सा हुआ करता था। चोल अभिलेखों भूमि कर के अतिरिक्त अन्य करों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है –

आयम	राजस्वकर
मनैइरै	गृहकर
कढ़ैइरै	व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर लगने वाला कर
मगन्मै	व्यवसाय कर
आजीवकाशु	आजीविका पर लगने वाला कर

राजस्व विभाग का उच्च अधिकारी वरित्पोत्तगकक् कहा जाता था। व्यापार–वाणिज्य, आयात–निर्यात, सिंचाई कर आदि आय के अन्य साधन थे। राजस्व प्रशासनिक एवं जनहितोपयोगी कार्यों आदि पर व्यय होता था।

प्रान्तीय प्रशासन– साम्राज्य विभिन्न प्रान्तों में विभाजित था। जिन्हें मण्डलम् कहा जाता था। इनके प्रशासक को 'मण्डल मुडालि' कहते थे। मण्डल–मुडालि सामान्यतः राजपरिवार के सदस्य होते थे, जिन्हें राजा नियुक्त करता था। प्रान्तों के अपने अधिकारी, सेना एवं न्यायालय होते थे। प्रान्तों का विभाजन क्रमशः वलनाडु (कोट्टम), नाडु (जिला), कुर्रम (ग्राम समूह) एवं ग्राम में होता था।

स्थानीय प्रशासन– चोल प्रशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता ग्रामीण एवं नगरीय स्तर पर स्थानीय स्वायत्तता की व्यवस्था थी। जो प्रतिनिधि संस्थाओं उर, सभा, महासभा एवं नगरम् के द्वारा संचालित होता था। इनके सदस्यों के लिए शैक्षणिक, आर्थिक तथा नैतिक योग्यताएं अनिवार्य थी। ये निर्वाचित सदस्यों को 'पेरु मक्कल' कहा जाता था। ये सदस्य समितियों, जिन्हें 'वारियम' कहा जाता था, के माध्यम से सिंचाई व्यवस्था, भूमि विवरण, लगान एवं करों की वसूली, मन्दिरों की देखरेख, न्याय आदि प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करते थे। उर सामान्य वयस्क पुरुष कर दाताओं की सभा थी, जबकि सभा, महासभा में सिर्फ ब्राह्मण सदस्य होते थे। इनको आन्तरिक स्वायत्तता प्राप्त थी। केन्द्रीय हस्तक्षेप न के बराबर था। वस्तुतः ग्राम लघु गणतंत्र ही थे, इस प्रकार चोल प्रशासन सुसंगठित एवं कार्य कुशल शासन था।

चोल कला– चोलकाल में पौराणिक, शैव एवं वैष्णव धर्मों का पुनर्जागरण हुआ। नयनार (शैव) व आलवार (वैष्णवों) ने अपने प्रवचनों तथा भजनों से दक्षिण को आप्लवित किया। चोल स्वयं शैव धर्मानुयायी थे तथापि वे धार्मिक सहिष्णु थे। उन्होंने शैव मन्दिरों के निर्माण के साथ–साथ वैष्णव मन्दिरों का निर्माण तथा जैन बौद्ध विहारों को अनुदान दिया। मन्दिरों ने सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

चोल कला प्रेमी एवं महान् निर्माता थे। उन्होंने विशाल राज प्रासाद, कृत्रिम झीलें, विस्तीर्ण बाँध, सुन्दर नगर, धातु एवं पाषाण की मूर्तियां तथा भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। चोल स्थापत्य की मुख्य देन मन्दिर निर्माण है। इन मन्दिरों का निर्माण द्रविड़ शैली के अन्तर्गत हुआ। महान् चोल शासकों ने अपने शासन काल में द्रविड़ स्थापत्य कला शैली को विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। उनके द्वारा निर्मित मन्दिरों की मुख्य विशेषताएं विशाल व वर्गाकार विमान, मध्य में विस्तृत आंगन, अलंकृत गोपुरम, मण्डप, अन्तराल सजावट के लिए पारम्परिक सिंह ब्रेकेट तथा संयुक्त स्तम्भों का प्रयोग आदि हैं। चोलकालीन प्रारम्भिक मंदिरों में तिरुकट्टलाई का सुन्दरेश्वर मंदिर, नरतमलाई का विजयालय चोलेश्वर मन्दिर प्रसिद्ध है। राजराज का वृहदेश्वर, राजेन्द्र प्रथम का गंगैकोण्डचोलपुरम तथा कोरंग नाथ, ऐरातेश्वर, त्रिभुवनेश्वर आदि अन्य प्रमुख मन्दिर हैं।

गंगैकोण्डचोलपुरम

बृहदीश्वर मंदिर,तजौर

तंजौर में स्थित राजराज प्रथम द्वारा निर्मित राजराजेश्वर अथवा बृहदीश्वर मंदिर को चोल स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष माना जाता है। इस मंदिर के निर्माण में द्रविड़ कला शैली का पूर्ण विकास हुआ है। इस मंदिर का निर्माण (1003 ई0 –1111 ई0) में हुआ। इस मंदिर का आयाताकार प्रांगण 160 मीटर लम्बा एवं 80 मीटर चौड़ा है। मंदिर का सर्वाधिक आकर्षण भाग है, गर्भगृह के ऊपर पश्चिम में बना 60 मीटर ऊँचा विमान, उसके ऊपर 3.50 मीटर ऊँचा पिरामिडाकार का शीर्षभाग है। मंदिर के आधार तल के वर्गाकार कक्ष में 2.25 मीटर चौड़ा प्रदक्षिणा–पथ निर्मित है। गर्भगृह में एक विशाल शिवलिंग की स्थापना की गयी। पर्सी ब्राउन ने तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर के विमान को 'भारतीय वास्तुकला का निकष' माना। गंगेकोण्डचोलपुरम के मंदिर का निर्माण राजराज के पुत्र राजेन्द्र प्रथम ने करवाया था। इस मंदिर का आधार 105 मीटर लम्बा एवं 50 मीटर चौड़ा है। इसका आठ मंजिला विमान लगभग 50 मीटर ऊँचा है। इस मंदिर को द्रविड़ चोल मंदिर कला की परिणति कहा जा सकता है। इस काल के कुछ अन्य मन्दिरों में तंजौर में स्थित दार सुरम् का ऐरावतेश्वर मंदिर एवं त्रिभुवनम् का कंपहरेश्वर मंदिर उल्लेखनीय है। चोल कला का प्रभाव इण्डो–चीन तथा सुदूर पूर्व के देशों पर पड़ा, जिसका प्रमुख उदाहरण अंकोरवाट का महान् मन्दिर है।

स्थापत्य के साथ–साथ तक्षण कला के क्षेत्र में भी चोल कलाकारों ने सफलता प्राप्त की। इस काल में उत्कृष्ट तक्षणकला के उदाहरण ब्रह्मा, विष्णु, नटराज, राजा–रानियों आदि की पाषाण, कांस्य व अष्टधातु की मूर्तियों हैं। इस काल में धातु मुर्तियों में 'नटराज शिव' की कांस्य मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। शिवमूर्ति के अलावा पार्वती, स्कन्द, कार्तिकेय एवं गणेश आदि शैव देवताओं की मूर्तियां कांस्य द्वारा बनी। मूर्तिकला, भवन निर्माण कला की सहायक कला के रूप में भी विकसित हुई। मंदिरों की दीवारों एवं छतों पर इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ। चोल चित्रकला, पल्लव–पाण्डव शाखा का ही विकसित रूप है। भित्तिचित्र कला के अन्तर्गत बृहदीश्वर मंदिर की दीवारों पर अजन्ता की चित्रकला से प्रभावित धार्मिक चित्रकारी की गई है। शिव, कैलाश, नन्दी आदि चित्रों को उकेरा गया है। तंजावुर में उत्कृष्ट चित्रकला के उदाहरण मिलते हैं। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रसार–प्रचार के साथ–साथ दक्षिण पूर्वी एशिया में चोल स्थापत्य, शिल्प तथा चित्रकला आदि का प्रसार–प्रचार हुआ।

राजराज प्रथम ने अपने शासन के दौरान चोल अभिलेखों का प्रारम्भ 'ऐतिहासिक प्रशस्ति' के साथ करवाने की प्रथा की शुरूआत की। उसने शैलेन्द्र शासक श्रीमार विजयोत्तुंग वर्मन को नागपट्टम में 'चूड+ामणि' नामक बौद्ध विहार बनाने की अनुमति दी और साथ ही इसके निर्माण में आर्थिक सहायता भी दी। राजराज ने अपने धर्म–सहिष्णु होने का परिचय राजराजेश्वर मंदिर की दीवारों पर बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण करवा कर दिया।

चोल साहित्य – चोल शासक शिक्षा एवं साहित्य के संरक्षक थे। मन्दिर तथा ग्राम महासभाएं शिक्षा के केन्द्र थे। तमिल एवं संस्कृत भाषा का प्रचलन था। तमिल को राजाश्रय प्राप्त था। कम्बन ने रामावतार नामक ग्रंथ की रचना की। कंबन कुलोत्तुंग तृतीय के दरबार में रहते थे। इनके काल को तमिल साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता हैं। जयन्गोन्दार ने कलितुंग पर्णी नामक ग्रंथ की रचना की। जयन्गोन्दार चोल शासक कुलोत्तुंग प्रथम का राजकवि था। शेक्किल्लार का परियापुराणम तथा पुलगेन्दी का नलबेम्ब महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं में प्रिय पूर्णम् या शेखर की तिरुट्टोन्डपूर्णम्, नंदी का तिरुविलाईयादल पूर्णम्, अमुदनार का रामानुज नुरंदादि, तिरुकदेवर का शिवकोशीन्दमणि आदि धार्मिक ग्रंथ तथा बुद्धमित्र का विरासोलियम्, पबन्दी का नन्नौर आदि व्याकरण ग्रंथ प्रमुख हैं। जैन ग्रंथों में तिस्क्करदेवर का जीवक चिंतामणी बौद्ध ग्रंथों में कुण्डल केशी महत्त्वपूर्ण है। रामानुज, यमुनाचार्य एवं ऋग्वेद पर भाष्यकार वैकट माधव आदि ने संस्कृत ग्रंथों की रचना की।

चोल वंश की मुख्य उपलब्धियाँ उसका स्थानीय स्वशासन, नौ सेना, तमिल ग्रंथ, विशालकाय मंदिर और मूर्तियाँ हैं। इसी कारण दक्षिण भारत के इतिहास में यह काल एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से चोल वंश भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण युग का परिचायक है।

कल्हण की राजतरंगिणी एवं कश्मीर का इतिहास

कल्हण कश्मीर के लोहर वंश के शासक हर्षदेव (1068 ई.–1101 ई.) के महामात्य चंपक के पुत्र और संगीतमर्मज्ञ कनक के अग्रज थे। कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना लोहर वंश के अन्तिम शासक जयसिंह के समय में की। इसका रचना काल सन् 1147ई. से 1149ई. तक है। इसमें कश्मीर का इतिहास वर्णित है जो महाभारत काल से लेकर स्वयं अपने युग तक के कश्मीर के इतिहास का विवरण दिया है। भारतीय इतिहास लेखन में कल्हण की राजतरंगिणी पहली प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। राजतरंगिणी में आठ तरंग और संस्कृत में कुल 7826 श्लोक हैं। पहले के तीन तंरगों में कश्मीर के प्राचीन इतिहास की जानकारी मिलती है। जिसमें कश्मीर की पीढ़ी–दर–पीढ़ी से आ रही मौखिक परम्पराओं का चित्रण है। इस युग के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उन्होंने पौराणिक स्रोतों, अनुश्रुतियों तथा मिथकों का उपयोग किया है। इस युग के राजाओं का महाभारत तथा रामायण के चरित नायकों के संबंध में जोड़ा गया है। चौथे से लेकर छठें तंरग में कार्कोट एवं उत्पन्न वंश के इतिहास का वर्णन है। केवल अंतिम दो अध्याय कल्हण की व्यक्तिगत जानकारी एवं ग्रंथावलोकन पर आधारित है। इस युग के बारे में उनकी पकड़ निश्चय ही ऐतिहासिक अभिलेखों और बौद्ध स्रोतों तक पहुंची थी। अन्तिम सातवें एवं आठवें तंरग में लोहर वंश का इतिहास उल्लिखित है। पुस्तक में घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख है। कल्हण ने पक्षपातरहित होकर राजाओं के गुण एवं दोषों का उल्लेख किया है। पुस्तक के विषय के अन्तर्गत राजनीति के अतिरिक्त सदाचार एवं नैतिक शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया है। कल्हण ने अपने ग्रंथ राजतरंगिणी में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया। कल्हण की राजतरंगिणी संस्कृत में उपलब्ध उन रचनाओं में पहली महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त की विशेषताएं पाई जाती है।

'राजतरंगिणी' का शाब्दिक अर्थ है– राजाओं की नदी, जिसका भावार्थ है– 'राजाओं का इतिहास या समय–प्रवाह'। यह कवित् के रूप में है। कल्हण ने इतिहास को काव्य की विषय वस्तु बनाकर भारतीय साहित्य को एक नई विधा प्रदान की है और राष्ट्रजीवन के व्यापक विस्तार के साथ–साथ मानव प्रकृति की गहराईयों को भी छू लिया है।

राजतरंगिणी के प्रथम तरंग में बताया गया है कि सबसे पहले कश्मीर में पांडवो के सबसे छोटे भाई सहदेव ने राज्य की स्थापना की थी और उस समय कश्मीर में वैदिक धर्म ही प्रचलित था। फिर सन् 273 ईसा पूर्व कश्मीर में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ।

राजतरंगिणी एक निष्पक्ष और निर्भय ऐतिहासिक कृति है। स्वयं कल्हण ने राजतरंगिणी में कहा है कि एक सच्चे इतिहास लेखक की वाणी को न्यायाधीश के समान राग–द्वेष–विनिर्मुक्त होना चाहिए, तभी उसकी प्रशंसा हो सकती है। कल्हण ने राजतंरगिणी की रचना पुराने राजवंशों की जानकारी देना, पाठकों का मनोरंजन करना, अतीत से शिक्षा लेना के आदि उद्देश्यों से रची गई। वे इस रचना के मूल में उनके कुछ अन्य उद्देश्य भी थे। वे कश्मीर पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों की पूर्ण वंशावली भी देना चाहते थे। हर्ष की मृत्यु के बाद गृहयुद्ध तथा संघर्ष का युग आ गया था। उस समय जो अनिश्चय एवं अव्यवस्था का वातावरण व्याप्त था वह एक अन्य ऐसा तत्त्व था जिसने कल्हण को अपना इतिहास लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने इतिहास के द्वारा वे जीवन–सांसारिक जीवन तथा भौतिक ऐश्वर्य की नश्वरता को प्रकट करना चाहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि लोग अपने अतीत की गलतियों से सबक लें। इतिहास से सीख या सबक लेने के लिए उन्हें स्थितियों एवं घटनाओं का विश्लेषण करना पड़ा। यह विश्लेषण ही उनकी कृति को अन्य कृतियों की तुलना में विशिष्ट बना देता है।

कल्हण की कृति एक महान वीर के क्रिया–कलापों के साथ– साथ तत्कालीन समाज का वर्णन है, जिसमें कल्हण रह रहा था। उनका परिवार राजनीतिक सत्ता के काफी निकट था और उन्हें इस क्षेत्र के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण युग के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त हुई। उन्हें राज्य की तरफ से कोई विशेष सहायता नहीं मिली। यही वजह है कि उनकी रचना अन्य प्रशस्तिपरक कृतियों से ऊपर उठ सकी। अपनी रचनाओं के लिए उन्होंने काव्य की विधा को अपनाया था, उन्होंने अपनी रचना में रसात्मकता के साथ–साथ ऐतिहासिक सत्य का संयोजन किया। उन्होंने जोर देकर कहा कि कवि को निष्पक्ष होना चाहिए।

कल्हण ने उन स्रोतो का विस्तार से हवाला दिया है जिनकी उन्होंने अपना इतिहास लिखने के लिए जाँच पड़ताल की है। उन्होंने अपने से पहले के ग्यारह विद्वानों का उल्लेख किया है जिन्होंने राजाओं की कालक्रमानुसार सूची दी और साथ ही उन्होंने उन विद्वानों की विवेचन–पद्धति की कमियों की ओर भी इशारा किया हैं। उन्होंने अनुश्रुतियों परम्पराओं और इस क्षेत्र पर लिखी गई प्रमुख रचनाओं जैसे नीलमत पुराण का उपयोग किया है। उन्होंने मंदिरों तथा अन्य भवनों में खुदे हुए अभिलेखों का उन्होंने जो युगांतरकारी उपयोग किया वह एक निश्चित प्रगति का सूचक है। साथ ही पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा किए गये भूमिदान तथा धर्मदाय के बारे में उन्होंने अभिलेखों से जो सूचनाएँ एकत्र की उनका भी उपयोग किया है। इतिहास के तर्कसंगत स्रोतों के रूप में अभिलेखों का यह उपयोग निश्चय ही एक महान योगदान था। कल्हण ने चौथे तरंग के अंतिम भाग से अपने समय तक अर्थात 3886 लौकिक शक (813–14ई0) से 4225 लौकिक शक (1146–50 ई0) तक उसकी कालगणना और इतिहास सामग्री विस्तृत और विश्वनीय है। अपने पूर्ववर्ती ''सूरियों'' के 11 ग्रंथों और 'नीलमत'' (पुराण) के अतिरिक्त उसने प्राचीन राजाओं के 'प्रतिष्ठाशासन', 'वास्तुशासन', 'प्रशस्तिपट्ट', 'शास्त्र' (लेख आदि), भग्नावशेष, सिक्के और लोकश्रुति आदि पुरातात्विक साधनों से यथेष्ट लाभ उठाने का गवेषणात्मक प्रयास किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि अपने युग अवस्थाओं और व्यवस्थाओं का निकट से अध्ययन करते हुए वह भी अपनी टीका टिप्पणी में बेबाक है। और तो और अपने आश्रयदाता महाराज जयसिंह के गुण–दोष चित्रण (तरंग 8, श्लोक 1550) में भी उसने अनुपम तटस्थता का परिचय दिया है।

विजयनगर साम्राज्य का उदय, कला एवं साहित्य का विकास

विजयनगर का शाब्दिक अर्थ है–'जीत का शहर'। प्रायः इस नगर को मध्ययुग का प्रथम हिन्दू साम्राज्य माना जाता है। विजयनगर साम्राज्य का नाम तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित इसकी राजधानी के नाम पर पड़ा। इनकी राजधानी विपुल शक्ति एवं सम्पदा की प्रतीक थी। विजयनगर के विषय में फारसी यात्री अब्दुल रज्जाक ने लिखा कि 'विजय नगर दुनिया के सबसे भव्य शहरों में से एक लगा, जो उसने देखे या सुने थे।'

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना 1336 ई0 में हरिहर तथा बुक्का नामक दो भाइयों ने की। इतिहासकारों के अनुसार दक्षिण में भारत मुस्लिम सत्ता के विस्तार के विरूद्ध यह तीव्र प्रतिक्रिया थी। उस क्षेत्र के हिन्दुओं ने इस्लामी संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू धर्म, समाज एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास किया और इस नई चेतना के फलस्वरूप विजयनगर राज्य की स्थापना संभव हुई। विद्यारण्य नामक संत ने हरिहर और बुक्का को हिन्दू धर्म में पुनः दीक्षित किया और उन्हें एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य के निर्माण हेतु प्रेरित किया। यह स्मरणीय है कि हरिहर और बुक्का ने युद्ध में बन्दी बनाए जाने के पश्चात् इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार विजयनगर का राज्य दक्षिण भारत की अस्थिर राजनीति और विघटनकारी प्रवृत्तियों के कारण उत्पन्न हुआ। अलाउद्दीन के समय से ही दक्षिण में विद्रोह और उपद्रव होते आए थे। मुहम्मद बिन–तुगलक के समय में 1334 ई0 में काम्पिली प्रान्त में ऐसा ही विद्रोह आरम्भ हुआ। इसके दमन के लिए हरिहर और बुक्का को सेना सहित दक्षिण भारत भेजा गया। यहाँ पहुँचकर उन्होंने स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण कर ली और पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। उन्होंने हिन्दू धर्म को प्रश्रय एवं प्रोत्साहन दिया। हरिहर तथा बुक्का पहले काकतीय शासक प्रताप स्वरूप के सेवक थे। कालान्तर में ये काम्पिली चले गये। कालान्तर में अनुकूल परिस्थितियों में दोनों भाइयों ने विद्यारण्य सन्त के आशीर्वाद से हिन्दू बन कर विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली। हरिहर और बुक्का ने अपने पिता संगम के नाम पर संगम राजवंश की स्थापना की।

संगम वंश (1336 ई.–1486 ई.)

हरिहर प्रथम और बुक्का के द्वारा स्थापित वंश को संगम वंश का नाम दिया जाता है। हरिहर प्रथम ने और बुक्का दोनों भाइयों ने सम्राट व महाराजाधिराज की उपाधियाँ धारण नहीं की। इस वंश के शासकों ने साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाई।

हरिहर प्रथम (1336 ई0 से 1356 ई0) – संगम वंश के प्रथम शासक हरिहर प्रथम ने अनगोन्दी के स्थान पर नवीन नगर विजय नगर को अपनी राजधानी बनाया। इसने होयसल राज्य को अपने राज्य में मिलाया तथा कदम्ब व मदुरा पर विजय प्राप्त की। उसने राज्य में कृषि विकास के कार्य किया। लगभग इसी समय बहमनी राज्य की स्थापना हुई और दक्षिण भारत में प्रभुत्व का संघर्ष आरम्भ हुआ।

बुक्का प्रथम (1356 ई0 से 1377 ई0) – हरिहर का उत्तराधिकारी उसका भाई बुक्का प्रथम सिंहासन पर बैठा। उसने मदुरा को अपने साम्राज्य में शामिल किया। सर्वप्रथम बुक्का ने कृष्णा नदी को बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्य के मध्य की सीमा माना। बुक्का ने 'वेदमार्ग प्रतिष्ठापक' की उपाधि ग्रहण की।

हरिहर द्वितीय– बुक्का की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हरिहर द्वितीय उत्तराधिकारी बना, जिसने 1379 ई0 से 1406 ई0 तक राज्य किया। उसने दक्षिण के रेड्डी शासकों और वारंगल के राजा को पराजित किया। उसने बेलगाँव और गोआ के क्षेत्र भी जीते और श्रीलंका के उत्तरी भाग में भी सैनिक अभियान किए। उसने महाराजाधिराज तथा राजपरमेश्वर की उपाधियाँ धारण की। उसने कनारा, त्रिचनापल्ली, कांची तथा चिगलपुर को जीत कर अपना आधिपत्य किया।

देवराय प्रथम (1406 ई0 से 1422 ई0) – इसके बाद देवराय प्रथम शासक बना। देवराय प्रथम ने राज्य में सिंचाई की सुविधा के लिए तुंगभद्रा नदी पर बाँध बनाकर नहरें निकाली। उसके शासनकाल में ही इटली का यात्री 'निकोलो काण्टी' विजयनगर की यात्रा पर आया। 1422 ई. में इसकी मृत्यु हो गई बाद में वीर विजय शासक बना। उसके समय में बहमनी राज्य से पुनः युद्ध हुआ। बहमनी शासक फिरोज शाह ने उसे पराजित कर दिया। इस हार का बदला देवराय द्वितीय ने लिया।

देवराय द्वितीय – (1426 ई0 से 1446 ई0) – अगला शासक वीरविजय का पुत्र देवराय द्वितीय हुआ। वह इन वंश के महान शासकों में से था। इसे 'इमाडिदेवराय' भी कहा जाता था। उसने आन्ध्र एवं उड़ीसा के गजपति शासक को पराजित किया। देवराय योग्य शासक होने के साथ विद्या तथा विद्वानों का संरक्षक भी था। इसके दरबार में तेलुगू कवि श्रीनाथ कुछ समय तक रहा। फारसी राजदूत अब्दुल रज्जाक देवराय द्वितीय के समय में विजयनगर आया। देवराय ने मुसलमानों को मस्जिद निर्माण की स्वतन्त्रता दे रखी थी। एक अभिलेख में देवराय द्वितीय को 'गजबेटकर' (हाथियों का शिकारी) कहा गया है। 1446 ई. में इसकी मृत्यु हो गई। देवराय द्वितीय ने संस्कृत ग्रंथ 'महानाटक सुधानिधि' एवं ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य लिखा। उसकी मृत्यु के पश्चात् संगम वंश का पतन तीव्र गति से हुआ। इसके बाद मल्लिकार्जुन शासक बना, जिसे प्रौढ+ देवराय भी कहा जाता है।

विरुपाक्ष द्वितीय (1465 ई0 से 1485 ई0) –संगम वंश का अन्तिम शासक विरुपाक्ष के समय विजयनगर साम्राज्य विघटन की कगार पर आ गया। तब चन्द्रगिरी के गवर्नर सालुव नरसिंह ने विजयनगर राज्य की रक्षा की। विरुपाक्ष की मृत्यु के पश्चात हुई अराजकता के कारण सालुव नरसिंह राजगद्दी पर बैठा।

सालुव वंश (1485ई.–1505ई.)

1485ई. में नरसिंह सालुव ने सालुव वंश की स्थापना की। उसने आंतरिक शान्ति बहाल की लेकिन उड़ीसा के शासक पुरुषोत्तम गजपति ने उसे युद्ध में पराजित कर बन्दी बना लिया। अपने राज्य के कुछ क्षेत्रों को गजपतियों को सौंपकर वह पुनः स्वतन्त्र हो गया। मगर 1491ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् इम्माड़ी नरसिंह (1491ई.–1505ई.) शासक बना, वह अल्पायु था। अतः उसके संरक्षक के रूप में नरसा नायक की नियुक्ति हुई। उसने सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली और विजयनगर की शक्ति का पुनरूद्धार किया। उसने बीजापुर,

बीदर, चोल, पाण्ड्य तथा चेर राज्यों के विरूद्ध सफलता प्राप्त की तथा उड़ीसा के गजपति शासकों को भी पराजित किया।

तुलुव वंश (1505ई.–1570ई.)

नरसा नायक की मृत्यु पर उसके बेटे वीर नरसिंह ने इम्माड़ी नरसिंह की हत्या कर दी, इसी के साथ सालुव वंश का अन्त हो गया तथा वीर नरसिंह ने एक नये वंश की स्थापना की, जो तुलुव वंश के नाम से जाना जाता है। इस वंश का महानतम् शासक कृष्णदेव राय था, जिसने 1509ई. से 1529 ई. के बीच शासन किया।

कृष्णदेव राय–(1509ई. से 1529 ई.) – कृष्णदेव राय वीर नरसिंह का छोटा भाई था। इनके शासन काल में विजयनगर ऐश्वर्य एवं शक्ति की दृष्टि से अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस समय विजयनगर की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। उम्मत्तुर का सामन्त शासक स्वतन्त्र रूप से आचरण कर रहा था। उड़ीसा का शासक प्रतापरूद्र उदयगिरी के तटवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार किए हुए था। बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों में बीजापुर, विजयनगर पर दबाव बनाए हुए था और पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों की शक्ति सुदृढ़ होती जा रही थी। परन्तु दस वर्ष के संघर्ष में कृष्णदेव राय ने इन सभी समस्याओं का अंत किया। कृष्णदेव राय अपने सैनिक अभियानों में प्रायः सफल रहा। उसने बीदर तथा बीजापुर के शासकों सुल्तान महमूद शाह एवं युसुफ आदिल शाह को परास्त किया। उसने बहमनी सुल्तान महमूद शाह को बरीद से मुक्त कराकर पुनः सिंहासन पर बैठाया और 'यवन राज स्थापनाचार्य' की उपाधि धारण की। 1520 ई. तक कृष्णदेव राय ने अपने समस्त शत्रुओं को परास्त कर पराक्रम का परिचय दिया। दक्षिण में विजयनगर की प्रभुसत्ता स्थापित कर दी। उसने पुर्तगालियों के साथ मैत्रीपूर्ण नीति अपनाई। उसके शासनकाल में काफी बड़ी संख्या में पुर्तगाली व्यापारी और यात्री विजयनगर में आये। पुर्तगाली यात्री 'डोमिगोस पायस' ने कृष्णदेव राय के समय विजयनगर की यात्रा की। उसने भटकल में पुर्तगालियों को किला बनाने की अनुमति प्रदान की।

कृष्णदेव राय तेलुगू साहित्य का महान् विद्वान था। उसके दरबार में तेलुगू साहित्य के 8 सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे। स्थापत्य कला में कृष्णदेव राय ने नागलपुर नामक नये नगर की स्थापना की तथा हजारा एवं विट्ठलस्वामी नामक मंदिर का निर्माण कराया। कृष्णदेव राय की मृत्यु 1529ई. में हुई।

कृष्णदेव राय के बाद उसका छोटा भाई अच्युतराय (1529 ई. से 1542 ई.) उत्तराधिकारी हुआ, लेकिन अच्युतराय एक दुर्बल शासक होने के कारण केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गयी। अच्युतराय की मृत्यु के बाद उसका भतीजा सदाशिव राय सिंहासन पर बैठा। उसकी निर्बलता का लाभ उठाकर उसके मंत्री रामराय ने शासन पर नियन्त्रण कर लिया। उसने दक्षिण के मुसलमान राज्यों – बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर और बीदर के पारस्परिक संघर्ष में हस्तक्षेप करके विजयनगर राज्य की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि की। उसके नेतृत्व में सेना ने अहमद नगर को खूब लूटा और मस्जिदों को तोड़ा। ऐसे में चारों मुस्लिम राज्यों की संयुक्त सेना ने विजयनगर पर आक्रमण करके 25 जनवरी 1565 ई. को तालीकोटा के युद्ध में रामराय को पराजित किया। विजयनगर पर इसके विपरीत परिणाम हुए।

अराविडु वंश (1570 ई. से 1650 ई.)

रामराय का भाई तिरुमाल प्रधानमंत्री बना। उसने पैनुगौड़ा को राजधानी बनाया। 1570ई. में उसने सदाशिव राय को हटाकर स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने अरविन्दु वंश की नींव रखी। विजयनगर साम्राज्य धीरे–धीरे विखंडित होता गया तथा मैसुर, बेदनूर, तंजौर आदि स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई। 1612 ई. में वोडियार ने मैसूर राज्य की स्थापना की। यह साम्राज्य लगभग तीन शताब्दी तक जीवित रहा, जिसने दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सांस्कृतिक प्रगति

मध्यकालीन दक्षिण भारत के इतिहास में विजयनगर साम्राज्य के सांस्कृतिक योगदान का विशेष महत्त्व है। दो शताब्दियों से कुछ अधिक समय तक विजयनगर का राज्य दक्षिण की राजनीति मे अपना प्रभाव बनाए रखने में सफल रहा। इस राज्य के शासकों ने सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। हिन्दू शासकों की सत्ता के अधीन होने के कारण यह राज्य हिन्दू धर्म और संस्कृति का केन्द्र रहा। विजयनगर के शासकों ने विशेषकर हिन्दू धर्म और संस्कृति को प्रोत्साहन दिया। मध्यकाल में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का श्रेय विजयनगर के शासकों को दिया जाता है। विजयनगर के शासकों ने साहित्य, स्थापत्यकला, चित्रकला और संगीत आदि को प्रोत्साहन दिया। विजयनगर साम्राज्य को सांस्कृतिक गतिविधियों का उत्कृष्ट केन्द्र बना दिया। इसकी पुष्टि तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं, अभिलेखों और विदेशी यात्रियों के वृतान्त से होती है।

साहित्य का विकास

विजयनगर की साहित्यिक कृतियों में धार्मिक, ऐतिहासिक, जीवन वृत्तान्त एवं काव्य संबंधी रचनाएँ उपलब्ध हैं। विजयनगर के प्रारम्भिक शासकों में बुक्का प्रथम ने अनेक धार्मिक रचनाओं के लेखन में योगदान दिया। सायण के नेतृत्व में विद्वानों के एक मण्डल ने चारों वेदों की संहिताओं सहित अनेक ब्राह्मण ग्रंथों और आरण्यकों पर भाष्य लिखे। कृष्णदेव राय के संरक्षण में ईश्वर दीक्षित ने हेमकूट नामक महाकाव्य पर दो टीकाएं लिखीं। अगस्त्य ने अनेक काव्यों की रचना की, जिनमें कुछ रचनाओं पर कृष्णदेव के मंत्री सालुआ तिम्मर ने टीका लिखी। विजयनगर का महानतम् शासक कृष्णदेव राय, एक उत्कृष्ट कोटि का कवि और लेखक था, जिसे संस्कृत एवं तेलुगू भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त थी। उसकी तेलुगू रचना 'आमुक्त मालयदम्' थी, जो तेलुगू भाषा में पाँच महाकाव्यों में से एक है। कृष्णदेव राय ने संस्कृत में एक नाटक जाम्बवती कल्याणम् की रचना की। कृष्णदेव राय के दरबार में तेलुगू साहित्य के 8 सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे। साथ ही उनके दरबार में अनेक कवियों को प्रश्रय मिला, जिसमें सबसे प्रसिद्ध नाम अलसानी पेद्दन है, उन्हें तेलुगू कविता के पितामह के नाम से जाना जाता है। उसकी प्रमुख रचना 'स्वारोचितसम्भव' है। दूसरा कवि नन्दी तिम्मन था, जिसने 'परिजात हरण' की रचना की। तीसरे कवि भट्टमूर्ति ने अलंकार शास्त्र से सम्बन्धित

पुस्तक 'नर सभूयालियम' की रचना की। एक अन्य कवि हरिदास था, जो वैष्णव भक्ति के विचार से प्रभावित था। कृष्णदेव राय के दरबार में तेनालीराम एक प्रसिद्ध कवि था, ने पाण्डुरंग महात्म्य की रचना की। जिसकी तुलना अकबर के प्रसिद्ध दरबारी बीरबल से की जाती है।

साहित्यिक रचनाओं में राजनाथ का ''सालूवाभियुदय'' और भागवत–चंपू विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। शासकों की जीवनी से संबंधित रचनाओं में बुक्का प्रथम के पुत्र कुमार कम्पन की सफलताओं पर आधारित, उसकी पत्नी की काव्य रचना 'मदुरा विजयम्' है। एक दूसरी रचना तिरूवलाम्बा की वरदाम्बिकापरिणय है, जिसमें अच्युत राय और वरदाम्बिका के विवाह का वर्णन है। इन रचनाओं के अतिरिक्त दर्शन, यज्ञतंत्र आदि से संबंधित अनेक रचनाएं भी इस काल में लिखी गईं।

संस्कृत और तेलुगू भाषाओं को यद्यपि विजयनगर के शासकों ने प्राथमिकता दी, फिर भी अन्य भाषाओं के कवियों को इन्होंने प्रश्रय दिया। तमिल भाषा पहले ही विकसित अवस्था में थी और विजयनगर काल में इसकी प्रगति में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। कन्नड़ भाषा में भी अनेक तीर्थंकरों और सन्तों की जीवनियाँ इस काल में लिखी गई। मधुर ने 'धर्मनाथ पुराण' की रचना की तथा गोमतेश्वर की स्तुति में कविताओं की रचना की। कृष्णदेव राय के दरबार में संस्कृत एवं कन्नड़ भाषाओं में विभिन्न पुस्तकों की रचना हुई, जिनमें 'भाव चिंतारण' तथा 'वीर शैवामृत' प्रमुख हैं। कृष्णदेव राय और अच्युत राय ने वैष्णवों, लिंगायतों तथा जैनों को भी संरक्षण दिया।

कला

विजयनगर के शासकों ने स्थापत्य कला के विकास में भी प्रशंसनीय योगदान दिया। दक्षिण भारत में मन्दिर निर्माण शैली को चरमोत्कर्ष विजयनगर के शासकों के काल में ही प्राप्त हुआ। इस शैली के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में देव राय द्वितीय द्वारा निर्मित 'हजारा मन्दिर' और कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित 'विट्ठलस्वामी के मन्दिर' का नाम लिया जा सकता है। ये मन्दिर चोलकाल में विकसित द्रविड़ शैली में ही हैं, लेकिन इनमें कुछ नई विशेषताएँ भी शामिल हैं। सबसे पहले हर मन्दिर में मण्डप के अतिरिक्त एक 'कल्याण मण्डप' का निर्माण किया गया है। यह आमतौर पर मन्दिर के आँगन के बांयी ओर बनाया जाता था। इसमें अत्यन्त अलंकृत स्तम्भों का प्रयोग होता था। इस मण्डप में देवता के विवाह समारोह का त्यौंहार मनाया जाता था। दूसरी विशेषता 'अम्मान मन्दिर' के रूप में देखी जा सकती है। एक अतिरिक्त मन्दिर था, जिसमें देवता की पत्नी की विशेष रूप से आराधना की जाती थी। इनके अतिरिक्त मन्दिर में प्रवेश द्वार बने थे। गोपुरम और मन्दिर के स्तम्भों के अलंकार पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। विजयनगर शैली के भवन तुंगभद्रा नदी से दक्षिण क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनमें काँचीपुरम का एकाग्रनाथ नामक मन्दिर तथा ताड़पत्री स्थित रामेश्वरम् मन्दिर अपने सुन्दर गोपुरों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है, जबकि श्रीरंग स्थित शेषगिरी मण्डप में प्रस्तुत घोड़ों की मूर्तियाँ अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है।

स्तम्भ की विविध तथा जटिल सजावट विजयनगर शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। स्तम्भ के चारों ओर बड़े–बड़े तथा गोलाकार मूर्तियों के काफी समूह है, जिनमें पिछले पैर के बल खड़े कुछ घोड़े या कोई अलौलिक जानवरों का सर्वाधिक अंकन हैं। सब स्तम्भ और मूर्तियाँ एक ही ठोस पत्थर को काटकर निर्मित होती थी। अलंकार ही विजयनगर स्थापत्य शैली की उल्लेखनीय विशेषता है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विजयनगर के शासकों द्वारा सांस्कृतिक जीवन को प्रोत्साहन देने का निश्चित प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है। विजयनगर की इस शैली को आगे चलकर मदुरा के नायकों द्वारा प्रोत्साहित किया गया।

हजारा मन्दिर, हम्पी

विजयनगर के शासकों द्वारा अनेक महलों एवं राजप्रासादों का भी निर्माण कराया गया, जिनमें से कुछ के अवशेष साम्राज्य की राजधानी विजयनगर वर्तमान में कर्नाटक के हम्पी नामक स्थान में देखे जा सकते हैं। इन भवनों की दीवारों पर चित्रण के सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनमें विभिन्न देशों के रहन–सहन को दर्शाया गया है। चित्रकला के अतिरिक्त मूर्तियों का निर्माण भी इस काल में प्रचुर मात्रा में हुआ। ये मूर्तियाँ अधिकतर शासकों की हुआ करती थीं, इनका निर्माण पत्थरों को काटकर या काँसे का ढालकर किया जाता था। कृष्णदेव राय और उसकी पत्नियों, वेंकट प्रथम और कुछ अन्य शासकों की कांस्य की बनी विशाल मूर्तियाँ धातुकला में विजयनगर के कारीगरों की प्रवीणता को स्पष्ट करती है।

संगीत

संगीत को भी विजयनगर के शासकों ने विशेष प्रोत्साहन दिया। उनके दरबार में संगीत एवं नृत्य की लोकप्रियता रही। कृष्णदेव के दरबार मे अनेक विख्यात संगीतकार, गायक और नर्तक मौजूद थे, जिन्हें उचित सम्मान और संरक्षण प्राप्त था। संगीत एवं नृत्य संबंधी सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए भी अनेक पुस्तकें लिखी गई। इनमें सर्वप्रथम सायण द्वारा रचित 'संगीतसार' थी। मल्लीनाथ संगीत विषय के लेखक जिन्होंने मल्लिकार्जुन के संरक्षण में प्रगति की और उसके पोते राम अमात्य ने रामराय के संरक्षण में 'स्वरमेल कला निधि' की रचना की। देवराय द्वितीय के दरबार में संगीतकार लक्ष्मीनारायण ने 'संगीत सर्वोदय' पुस्तक की रचना की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विजयनगर साम्राज्य के काल में सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हुई। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना इस्लाम धर्म के विरूद्ध हिन्दू प्रतिक्रिया का परिणाम थी और विजयनगर के शासकों का उद्देश्य इस्लाम के प्रभाव से मुक्त, हिन्दू धर्म और संस्कृति को बढावा देना था। विजयनगर के शासकों द्वारा सांस्कृतिक गतिविधियों को

पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। इन्होंने दक्षिण भारत में पूर्वकाल की परम्पराओं को बनाए रखने के साथ–साथ नई सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया।

अध्ययन बिन्दु

- ❖ चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु थे।
- ❖ अशोक ने धम्म् की नीति का प्रतिपादन किया।
- ❖ गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त थे।
- ❖ प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजयों का उल्लेख मिलता है।
- ❖ प्रयाग प्रशस्ति के लेखक हरिषेण थे।
- ❖ स्कंदगुप्त ने सुदर्शन झील का पुनः निर्माण कराया।
- ❖ गुप्तकालीन चित्रकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अजंता व बाघ की गुफाओं से मिले।
- ❖ हर्ष के समय चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने भारत की यात्रा की।
- ❖ हर्ष ने महायान बौद्ध धर्म को आश्रय दिया।
- ❖ चोलों ने बंगाल की खाड़ी को चोल झील बना दिया था।
- ❖ चोल शासकों ने वर्तमान के इण्डोनेशिया, श्रीलंका आदि देशों को विजित किया।
- ❖ हरिहर व बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।
- ❖ विजयनगर साम्राज्य के अवशेष वर्तमान में कर्नाटक राज्य के हम्पी में देखे जा सकते हैं।
- ❖ विजयनगर के शासकों के दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को बार–बार पराजित किया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त मौर्य ने किसकी सहायता से मौर्य साम्राज्य की स्थापना की ?
   (अ) चाणक्य (ब) धनानंद
   (स) मेगस्थनीज (द) सेल्यूकस ( )

2. अशोक के धम्म की परिभाषा किस स्तंभ लेख में मिलती है ?
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय
   (स) चतुर्थ (द) अष्ठम् ( )

3. प्रयाग प्रशस्ति में किस गुप्त शासक की विजयों का उल्लेख है ?
   (अ) चन्द्रगुप्त प्रथम (ब) स्कंदगुप्त
   (स) समुद्रगुप्त (द) कुमारगुप्त ( )

4. किस भारतीय गणितज्ञ ने दशमलव प्रणाली का सर्वप्रथम विवेचन किया ?
   (अ) वराहमिहिर (ब) ब्रह्मगुप्त
   (स) धनवन्तरी (द) आर्यभट्ट ( )

5. निम्नलिखित रचनाओं में से किसकी रचना हर्षवर्धन ने नहीं की थी ?
   (अ) हर्षचरित (ब) नागानंद
   (स) प्रियदर्शिका (द) रत्नावली ( )

6. किस चोल शासक ने गंगैकोण्ड चोल की उपाधि धारण की ?
   (अ) राजराज प्रथम (ब) राजेन्द्र प्रथम
   (स) राजाधिराज प्रथम (द) आदित्य प्रथम ( )

7. विजयनगर के किस शासक के दरबार में आठ सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे ?
   (अ) कृष्णदेव राय (ब) अच्युत देव राय
   (स) देवराय प्रथम (द) देवराय द्वितीय ( )

8 .चोल प्रशासन की प्रमुख विशेषता क्या थी ?
   (अ) केन्द्रीय प्रशासन (ब) स्थानीय स्वायत्त शासन
   (स) प्रान्तीय शासन (द) सैन्य प्रशासन ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अर्थशास्त्र नामक पुस्तक की रचना किसने की ?
2. 'धम्म' का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया ?
3. सुदर्शन झील का निर्माण किसने कराया ?
4. गुप्त संवत कब और किसने प्रचलित किया ?
5. चीनी यात्री फाह्यान किस गुप्त शासक के समय भारत आया ?
6. किस गुप्त शासक ने उज्जैन को अपनी दूसरी राजधानी बनाया ?
7. किस गुप्त शासन ने सुर्दशन झील का पुनः निर्माण कराया ?
8. भारत में मन्दिर वास्तु कला किस काल में विकसित हुई ?
9. हिन्दु विधियों का संकलन किस युग में हुआ ?
10. हर्ष के समय कौन–सा चीनी यात्री भारत आया था ?
11. हर्ष अपने राज्य की आय को कितने भागों में बाँटता था ?
12. बाणभट्ट की दो रचनाओं के नाम लिखिए।
13. करिकाल ने कहाँ व किस नगर की स्थापना की ?
14. किस चोल शासक की नौ सेना अत्यन्त विकसित थी ?
15. हरिहर व बुक्का किस महात्मा के आशीर्वाद से विजय नगर साम्राज्य की स्थापना की ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मौर्य कालीन प्रान्तीय प्रशासन को बताइऐ ।
2. अशोक के प्रशासनिक सुधारों पर टिप्पणी लिखिए ।
3. समुद्रगुप्त की विजयों पर टिप्पणी लिखिए ।
4. गुप्तकाल में विज्ञान के विकास पर टिप्पणी लिखिए ।
5. प्रयाग प्रशस्ति पर टिप्पणी कीजिए ।
6. हर्ष के समय कन्नौज धर्म सभा के बारे में बताइए ?
7. हर्ष के समय पर आयोजित प्रयाग सभा पर टिप्पणी लिखिए।
8. ह्वेनसाँग ने भारत के बारे में क्या लिखा है?
9. नालंदा विश्वविद्यालय पर टिप्पणी लिखिए।
10. चोल कालीन स्थानीय स्वायत्ता पर टिप्पणी लिखिए ।
11. चोलों के केन्द्रीय प्रशासन पर टिप्पणी लिखिए ।
12. विजयनगर, साम्राज्य कला के विकास पर टिप्पणी लिखिए ।
13. विजयनगर साम्राज्य के साहित्य के विकास पर टिप्पणी लिखिए।
14. हर्ष के प्रशासन पर टिप्पणी लिखिऐ ।
15. मौर्यकालीन केन्द्रीय प्रशासन पर टिप्पणी कीजिए ।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अशोक के 'धम्म' पर लेख लिखिए ।
2. गुप्तकालीन कला व साहित्य पर प्रकाश डालिए ।
3. ज्ञान व विद्या के संरक्षक के रूप में हर्ष का मूल्याकंन कीजिए ।
4. चोल कालीन कला व साहित्य की विवेचना कीजिए।
5. कृष्णदेव राय की उपलब्धियों को बताइए।

उत्तर बहुचयनात्मक प्रश्न

1 (अ) 2 (ब) 3 (स) 4 (द) 5 (अ) 6 (ब)
7 (अ) 8 (ब)

.....

अध्याय–3

बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण

अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ की हत्या करके पुष्यमित्र शुंग ने 185 ईस्वी पूर्व में मौर्य साम्राज्य को समाप्त कर दिया। सन् 200 ईस्वी पूर्व के बाद का जो युग था जिसे हम मौर्योत्तर भारत की संज्ञा दे सकते है । इस समय कोई बड़ा साम्राज्य तो स्थापित नहीं हुआ, पर यह युग ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसलिए महत्वपूर्ण है कि उस युग में मध्य एशिया से सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुए और विदेशी तत्वों का भारतीय समाज में समावेश हुआ । असंख्य यूनानी भारतीय धर्मों के अनुयायी बन गए। यूनानियों ने क्रमशः भारतीय ढ़ंग को अपना लिया। समय के साथ वे जैसे भारतीय भूमि की उपज ही बन गए और अन्त में यूनानी विशेषताऐं भारत में ही आत्मसात होकर मुख्यधारा में विलीन हो गई। मौर्योत्तर काल में किसी एक राजवंश का सम्पूर्ण भारत पर नियत्रंण नहीं था, बल्कि अनेक क्षेत्रिय व स्थानीय राजवंशों का अलग–अलग क्षेत्रीय में शासन था। अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से इन शासक वर्गों को दो भागों में बाँटा जा सकता है – विदेशी शासक व भारतीय शासक । विदेशी शासकों में मुख्यतः यूनानी (इण्डो–ग्रीक जिन्हें हिन्दयवन भी कहा जाता है), शक, कुषाण व हूण राजवंशों को रखा जा सकता है। भारतीय शासकों में शुंगवंश , कण्ववंश, चेदिवंश और सातवाहन वंश के शासक प्रमुख थे।

मौर्योत्तर काल से हमारा तात्पर्य उस काल से है, जो मौर्य साम्राज्य के पतन से लेकर गुप्त साम्राज्य के उद्भव तक के इतिहास को बताता है । यह वह काल था, जब मोर्यों को केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था बिखर रही थी और विदेशी राजवंश भारत पर निरन्तर आक्रमण कर रहे थे , दूसरी और कई भारतीय राजवंश अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत थे ।

इस समय उत्तर और दक्षिण भारत भारतीय शासकों के अधीन ही रहा किन्तु भारत के उत्तर–पश्चिम सीमा विदेशी आक्रान्ताओं का प्रवेशद्वार बन चुकी थी । पश्चिमोतर भारत से ही यूनानी, शक, हूण व कुषाण जैसे जातियों ने अपने कदम आगे बढ़ाए थे ।

जानकारी के स्त्रोत– मोर्यो की पराजय के तुरन्त बाद के समय के लिए गार्गी संहिता, पंतजलि के महाभाष्य, दिव्यावदान, कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा बाणभट्ट के हर्षचरित व इतिहासकार कल्हण की ऐतिहासिक पुस्तक राजतंरगिणी से जानकारी मिलती है ।

कुषाण राजा कनिष्क के दरबार में उच्चकोटि के दार्शनिक, वैज्ञानिक व साहित्यकार रहते थे । कनिष्क के दरबार का महान कवि अश्वघोष था, जिसने संस्कृत में बुद्धचरित, सौदरानन्द महाकाव्य व सूर्यालंकार और सारीपुत्र प्रकरण लिखे। शून्यवाद, सापेक्षवाद व माध्यमिक सूत्र के प्रवर्तक नागार्जुन भी इसी कालखण्ड के प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं जो सार्थक, जानकारी प्रदान करते है ।

चरक संहिता के रचयिता महर्षि चरक के अलावा चीनी इतिहास ग्रन्थ व चीनी यात्री हवेंग्सांग की यात्रा विवरण, तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के साथ साथ बौद्ध विद्वान वसुमित्र व बौद्ध साहित्य त्रिपिटक,''मिलिन्दपन्ह'' भी हमें विदेशी आक्रमणकारियों की जानकारियाँ उपलब्ध करवाता है। कौशाम्बी, सारनाथ व मथुरा की कनिष्क कालीन मुद्राएँ भी सही संकेत देती है। यह सिक्के बहुत महत्वपूर्ण स्त्रोत है क्योंकि उन पर शासकों के नाम अंकित है। सिकन्दर के साथ आयें नियार्कस, आनेसिक्रिटस और एरिस्टोब्युलस जैसे लेखक भी मददगार हैं।

यूनानी आक्रमण व भारत की राजनैतिक स्थिति

जिस समय संसार को जीत लेने की इच्छा से मकदूनिया का शासक सिकन्दर अपने सैनिक अभियान पर निकला था, उस समय भी उत्तरी पश्चिमी भारत की स्थिति वैसी ही थी, जैसी भारत पर हुए ईरानी आक्रमण से पहले थी। पूरा उत्तरी पश्चिमी भारत छोटे–छोटे कई राज्यों में विभक्त था। काबुल के उत्तर में गंधार, झेलम और चिनाब के बीच में पौरव, रावलपिण्ड़ी और पेशावर के हिस्से में तक्षशिला, कश्मीर के पश्चिम में रावी और व्यास नदियों के बीच का भाग कठ, उसके निकट क्षुद्रक, इसी तरह रावी और चिनाब नदी के संगम स्थल के भाग में मालव, मूसक, सम्बोस और वे ऐसे ही अन्य राज्यों को मिलाकर उस काल में भारत का उत्तरी पश्चिमी भाग कुल 25 राज्यों में बँटा था। इनमें से कुछ गणतंत्र थे और कुछ राज्य राजतंत्रात्मक शासन पद्धति से शासित राज्य थे। राजतंत्र के शासक गणतंत्रों से विरोध रखते थे। पौरव और तक्षशिला तथा

तक्षशिला और अभिसार में शत्रुता थी। इसी तरह क्षुद्रक और मालव तथा अभिसार व पौरव के बीच सम्बन्ध अच्छे नहीं थे और सम्बोस और मूसक एक दूसरे के शत्रु थे। ऐसी राजनैतिक परिस्थितियों में मकदुनिया का राजा सिकन्दर ईसा पूर्व 327 में ईरान के शासक को अराबेला के युद्ध में परास्त कर भारत की तरफ बढ़ा।

सिकन्दर का भारत में आगमन– ईसा पूर्व 327 में मकदुनिया के शासक सिकन्दर के भारत की तरफ बढ़ने पर कुछ देश प्रेम से ओतप्रोत सीमान्त राज्यों के शासकों में दिल खोलकर अपना सब कुछ मातृभूमि की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया, लेकिन शशिगुप्त और आंभी जैसे देशद्रोहियों और विश्वासघात करने वाले शासकों ने सिकन्दर का साथ दिया। सिकन्दर सीस्तान और अफगानिस्तान को जीतता हुआ, काबुल घाटी से होकर भारत पर चढ़ आया, उसने हवाली को और पाश को जीता और फिर हिन्दुकुश को पार किया यहां शशिगुप्त ने उसका स्वागत किया। यहीं से उसने अपनी सेना के दो भाग किए। सेना के एक हिस्से को अपने विश्वासपात्र सेनापति–हेफ्रिस्तियन और पर्दिकस के नेतृत्व में सिन्धु नदी पर पुल बनाने के लिए भेजा और दूसरे भाग का नेतृत्व खुद संभाल कर भारत की तरफ आगे बढ़ा। अभी सिकन्दर ने भारत की भूमि पर पाँव नहीं रखे थे, लेकिन इसी समय तक्षशिला के राजा आंभी ने सिकन्दर के पास भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण भेजा। अपने संदेश में आंभी ने सिकन्दर को सहायता देने का आश्वासन भी दिया। तब उत्साहित होकर सिकन्दर आगे बढ़ा और भारत में प्रवेश किया। इस अवसर पर उसे भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर स्थित राज्यों से युद्ध करना पड़ा। यूनानी लेखक एरियन के विवरण से प्रकट होता है कि भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर सबसे पहले उसकी मुठभेड़ अश्मकों या अश्शायनों से हुई। अश्मको ने जबरदस्त प्रतिरोध किया। उन्होंने सिकन्दर की सेना के दांत खट्टे कर दिये, लेकिन अंत में सिकन्दर विजयी रहा। सिकन्दर ने चालीस हजार अश्मकों को बंदी बनाया। इसके बाद सिकन्दर ने नीसा वाले गौरियों पर आक्रमण किया। नीसा वालों ने प्रतिरोध किए बगैर आत्मसमर्पण कर दिया। तब सिकन्दर ने आश्वकायनों, जिन्हें यूनानी लेखकों ने अस्सकेनोय लिखा है, पर आक्रमण किया। इस समय अश्वकायनों का राजा हस्ति या अष्टक था। यूनानी लेखकों ने इसे अस्सकेनस नाम से पुकारा है। इसी अस्सकेनस अथवा अष्टक या हस्ति ने अपने दुर्ग मस्सग में रहते हुए सिकन्दर का प्रतिरोध करने का निश्चय किया। मस्सग का दुर्ग प्राकृतिक दृष्टि से सुरक्षित था। अश्वकायनों ने उसके चारों तरफ खाई भी खोद रखी थी। ऐसी स्थिति में मस्सग दुर्ग अजेय था। सिकन्दर को मस्सग दुर्ग पर अधिकार करने के लिए कई बार आक्रमण करना पड़ा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। एक आक्रमण में तो सिकन्दर घायल भी हो गया। इस आक्रमण और प्रतिरोध के दौर में ही एक दिन अचानक एक तीर राजा अष्टक को वेध गया और उसकी मृत्यु हो गई। राजा अष्टक की रानी क्लियोफिस ने आत्मसमर्पण कर दिया और अश्वकायनों के राज्य पर सिकन्दर का अधिकार हो गया। यहाँ सिकन्दर ने धोखा देकर अश्वकायनों के सात सौ वेतनभोगी सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

सिकन्दर मस्सग से आगे बढ़ा। उसने रास्ते में पड़ने वाली कई अन्य जातियों पर आक्रमण किए और उन पर जीत दर्ज करता हुआ वह अपनी सेना के उस भाग से जा मिला, जिसे उसने सिन्ध पर पुल बनाने के लिए आगे भेजा था। फिर अपनी पूरी सेना को लेकर सिकन्दर ने ओहिन्द के पास से नावों के बनाए गए पुल पर होकर सिन्ध को पार किया और वह तक्षशिला जा पहुंचा। तक्षशिला में आंभी उसका स्वागत करने के लिए इन्तजार कर ही रहा था। सिकन्दर के पहुंचते ही आंभी ने काफी मात्रा में चांदी के साथ भेड़, बैल आदि दूसरी कई चीजें भेंट स्वरूप सिकन्दर को दी। सिकन्दर ने उन वस्तुओं के साथ अपनी भेंट मिलाकर भेंट का पूरा सामान ससम्मान लौटा दिया। इसी समय कुछ अन्य भारतीय राजाओं ने भी सिकन्दर के सामने आत्मसमर्पण किया। कश्मीर के उत्तर पश्चिम में स्थित अभिसार के राजा ने भी सिकन्दर को आत्मसमर्पण का विश्वास दिलाया। अन्त में वह राजा पोरस की तरफ चला गया।

राजा पुरू अथवा पोरस का प्रतिरोध

तक्षशिला से सिकन्दर ने झेलम और चिनाब नदियों के बीच में स्थित पौरव राज्य पर अधिकार करने का निश्चय किया। तक्षशिला का राजा आंभी भी पुरानी शत्रुता के कारण यही चाहता था। अतः सिकन्दर को उत्साहित करने के लिए उसने अपने पाँच हजार सैनिक सिकन्दर को दिए। तब सिकन्दर ने पौरवों के राजा पुरू अथवा पोरस के पास आत्मसमर्पण कर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करने का संदेश भेजा। सिकन्दर को शायद यह मालूम नहीं था कि राजा पोरस की रगों में मातृभूमि के लिए सब कुछ बलिदान कर देने वाले भारतीयों का रक्त बह रहा था। इसलिए सिकन्दर का संदेश मिलते ही राजा पोरस ने प्रतिउत्तर में कहलवाया कि वह रणक्षेत्र में ही सिकन्दर से मिलेगा। राजा पोरस का उत्तर मिलने पर अपनी महत्वाकांक्षाओं से बावला हुआ सिकन्दर राजा पोरस को हराने के लिए झेलम नदी के किनारे तक आगे बढ़ा। उधर राजा पोरस तलवारों के वार से सिकन्दर का स्वागत करने के लिए पहले से ही झेलम के दूसरे तट पर मौजूद था। वर्षा की ऋतु थी। नदियों में बाढ़ आई हुई थी। इस कारण सिकन्दर को पोरस पर आक्रमण करने से पहले कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। दूसरा, सिकन्दर एकदम आमने सामने होकर पोरस से युद्ध करना नहीं चाहता था। वह किसी ऐसे मौके की तलाश में था, जब वह पोरस की धोखे में रखकर उस पर आक्रमण कर दे। कुछ समय में ही ऐसा अवसर सिकन्दर के सामने आ उपस्थित हुआ। एक दिन काफी वर्षा हुई। उस दिन रात के अंधरे में सिकन्दर ने अपनी सेना के साथ झेलम को पार किया और पोरस की सेना पर आक्रमण कर दिया। पोरस भी अपनी सेना के साथ शत्रु का मुकाबला करने के लिए आगे आया। यूनानियों और भारत की सेनाओं के बीच घमासान प्रारंभ हो गया। सुबह होने पर युद्ध में तेजी आई। पौरस और उसके भारतीय सैनिक यूनानियों के छक्के छुड़ाने लगे। दोपहर का समय हो गया। भारतीय सैनिकों के पराक्रम के सामने यूनानी

सेना घबराने लगी। ऐसा लगने लगा कि यूनानी हार कर भाग खड़े होंगे। तभी पोरस की सेना में हाथियों के कारण भगदड़ मच गई। भारतीयों की सेना में हाथी अधिक संख्या में होते थे। अधिकांश योद्धा हाथियों पर बैठकर ही युद्ध करते थे। यूनानी सैनिक घोड़ों पर बैठकर युद्ध कर रहे थे। वर्षा के कारण नदी के किनारे की चिकनी मिट्टी में आगे बढ़ते हुए भारतीय सेना के हाथी फिसलने लगे। भारतीयों के हाथी उनके पांवो और सूंडों पर पड़ने वाले शत्रु सेना के तीरों से भी घबराने लगे। पोरस की सेना के कुछ हाथी बिगड़कर पीछे हटने लगे। ये हाथी अपनी ही सेना को कुचलने लगे। ऐसे समय में जब भारत के धनुर्धारी, जो पैदल ही थे, शत्रुओं पर तीर चलाने को तत्पर हुए तो उन्हें भी वर्षा के कारण कठिनाई का सामना करना पड़ा।

इन्हीं परिस्थितियों में सिकन्दर की सेना के फुर्तीले घुड़सवार धर्नुधारियों ने भारतीय सेना पर तीरों की वर्षा करना प्रारंभ किया। युद्ध का रुख बदल गया। यूनानी भारतीयों पर भारी पड़ने लगे। लेकिन राजा पोरस ने होंसला नहीं खोया। एक ऊँचे हाथी पर बैठकर वह युद्ध का नेतृत्व करता रहा। उसके शरीर पर कई घाव हो गए, रक्त बहने लगा, लेकिन मातृभूमि की रक्षा के निमित वह प्राण समर्पित करने का संकल्प लेकर रणक्षेत्र में आया था। पोरस ने मुँह नहीं मोड़ा। तब तक जब तक वह मूर्छित सा नहीं हो गया। शत्रुओं ने राजा पोरस को घेर लिया और पकड़ लिया। बंदी बनाकर सिकन्दर के सामने लाया गया। इस समय अहंकार में सिकन्दर ने राजा पोरस से यह पूछा कि उसके (राजा पोरस के) साथ कैसा व्यवहार किया जाए, तो उत्तर में पोरस ने कहा जैसा एक राजा को दूसरे राजा के साथ करना चाहिए। पोरस का यह उत्तर सुनकर पहले तो सिकन्दर अवाक् रह गया। लेकिन भारत के उस वीर सपूत की निर्भीकता की सिकन्दर के मन पर छाप पड़ गई। सिकन्दर उसके साहस का कायल हो गया। उसने राजा पोरस को स्वतंत्र करते हुए उसका राज्याधिकार लौटा दिया। कुछ इतिहासकार सिकन्दर के इस व्यवहार के पीछे यह कूटनीति मानते हैं कि पोरस जैसे शक्तिशाली राजा से मित्रता स्थापित कर सिकन्दर शत्रु की तरफ से निश्चिंत होकर भारत में आगे बढ़ना चाहता था। सिकन्दर की इच्छा कुछ भी रही हो, किन्तु उसके व्यवहार ने राजा पोरस को प्रभावित किया और पोरस ने सिकन्दर से मित्रता कर ली।

सिकन्दर की सेना का स्थानीय विरोधः– उत्तरी पूर्वी पंजाब के छोटे राज्यों पर अधिकार करता हुआ सिकन्दर भारत के भीतरी भागों की तरफ आगे बढ़ने लगा, लेकिन व्यास नदी तक पहुंच कर सिकन्दर की सेना ने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। वास्तविकता यह थी कि सिकन्दर के सैनिक लंबे समय से लड़ते– लड़ते थक चुके थे। उनमें से बहुत से बीमार भी होने लगे थे और आगे बीमारी के प्रकोप से घबराने लगे थे। अपने कुटुम्बियों से लंबे समय से अलग रहने के कारण उनमें घर लौट चलने की उत्सुकता भी बढ़ गई थी। यही नहीं, यूनानी सैनिकों को मगध के नन्द राज्य की सैनिक शक्ति की सूचनाएं भी मिलने लगी थी, जिससे वे डरने लगे थे, क्योंकि भारतीयों की वीरता का अनुभव वे राजा पोरस के साथ युद्ध में पहले कर चुके थे। इन्हीं कारणों से सिकन्दर के यूनानी सैनिक अब आगे न बढ़कर लौट जाना चाहते थे। यूनानी सैनिकों की ऐसी मनोदशा देखकर सिकन्दर ने उन्हें समझाने और उनमें उत्साह पैदा करने की खूब कोशिश की। लेकिन उत्साहहीन सैनिकों की मनोदशा के चलते मजबूर होकर उसे वापस लौटना पड़ा।

सिकन्दर का लौटनाः– सिकन्दर उन्नीस महीनों तक भारत में रहकर झेलम के मार्ग से वापस लौटा। इस समय भी उसने पंजाब को विजित किया। फिर वह लौटते हुए रावी और चिनाव के संगम स्थल पर पहुंचा। यहीं उसने शिबियों और अग्रश्रेणियों पर आक्रमण किया। इन आक्रमणों में उस अग्रश्रेणियों के साथ कड़ा संघर्ष करना पड़ा। इसके पश्चात् सिकन्दर को मालवों और क्षुद्रकों के साथ जूझना पड़ा। मालवों और क्षुद्रकों ने सम्मिलित होकर सिकन्दर का सामना किया। इनके साथ संघर्ष में यूनानियों को घोर परेशानियाँ उठानी पड़ी। तब यूनानी सेना में फिर विरोध के लक्षण उभरने लगे। पर सिकन्दर ने उन्हें समझा बुझाकर मालवों और क्षुद्रकों से युद्ध के लिए तैयार किया और मालवों पर आक्रमण किया। मालवों ने कड़ा प्रतिरोध किया। उनके प्रतिरोध के आगे यूनानी हतप्रभ रह गए। एक बार तो स्वयं सिकन्दर घायल हो गया। तब अपने स्वामी की रक्षा के लिए यूनानियों ने प्राणप्रण से युद्ध किया। यूनानी सैनिक निरपराध बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों को मारने लगे। इस क्रूरता से दुःखी होकर क्षुद्रकों ने मालवों को समझा कर सिकन्दर के सामने संधि का प्रस्ताव किया। सिकन्दर ने क्षुद्रकों के प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपने एक विश्वास पात्र व्यक्ति फिलिप्स को वहां मालवों एंव क्षुदकों के राज्य में क्षत्रप के रूप में छोड़कर सिकन्दर अपने देश के लिए आगे बढ़ा। वह सिन्धु के मुहाने पर पहुँचा। यहाँ पर भी सिकन्दर को मेस्सिकेनस, सम्बोस तथा ऑक्सिकेनस राज्यों निवासियों से संघर्ष करना पड़ा। ईसा पूर्व 325 में सिकन्दर ने भारत छोड़ा। भारत छोड़ते समय उसने अपनी सेना के दो भाग किए। नियार्कस नामक उसके विश्वासपात्र सेनापति के नेतृत्व में उसने सेना के एक भाग को समुद्री मार्ग से यूनान के लिए रवाना किया। दूसरे भाग के साथ स्वयं काबुल होता हुआ ईसा पूर्व 324 के अंत में सिकन्दर ईरान के सूसा नगर में पहुंचा। यहां वह बीमार पड़ गया। उसे तीव्र ज्वर ने घेर लिया और यहीं ईसा पूर्व 323 में केवल बत्तीस वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

भारतीय यूनानी (इण्डो ग्रीक)– पश्चिमोत्तर भारत में अलेकजेंडर (सिकन्दर) का आक्रमण यूनान तथा भारत को किसी दृष्टि से निकट लाने में असफल रहा था। 323 ई.पू. में सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनानायकों में प्रभुत्व के लिए संघर्ष हुआ। संघर्ष में सिकन्दर के सेनानायक सेल्यूकश निकेटर के उत्तराधिकारी के रूप में शासक एण्ट्रयोकस तृतीय ने भारत के विरूद्ध लगभग 306 ई.पू. में एक अभियान का नेतृत्व किया। हिन्दुकुश के पार करके उसने काबुल घाटी को पार किया और एक राजा सुभागसेन से उसका सामना हुआ। सुभागसेन को आत्म समर्पण करना पड़ा, इसी समय से भारत में बैक्ट्रियान यूनानी राज्य की शुरूआत मानी जाती है। क्योंकि हिन्दुकुश पर्वत के पार उत्तरी अफगानिस्तान एवं ईरान के आसपास का क्षेत्र

बैक्ट्रिया एवं पार्थिया दो भू–प्रदेशों के नाम से जाना जाता था। बैक्ट्रिया का क्षैत्र पश्चिमोत्तर क्षेत्र था जो बहुत उपजाऊ व सरसब्ज था और एण्टयोकस तृतीय यहीं का शासक था। यही बैक्ट्रियन यूनानी या यूनानियों की बैक्ट्रियन शाखा जिसने भारत के पश्चिमोत्तर को आधार बनाकर प्रवेश किया और अन्त में भारतीय समाज में घुल–मिलकर यूनानी जो भारतीय यूनानी अथवा इण्डो–ग्रीक के नाम से जाने गए।

एण्टयोकस तृतीय के पश्चात क्रमशः डेमेट्रियस, यूकेटाइड्ज, हेलियोक्लीस व अपोलोजेटम आये किन्तु यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। यूनानी राजाओं में सबसे महान शासक मेनाण्डर (मिलिन्द) था।

मेनाण्डर (Manander)– स्ट्रवों ने माना है कि मेनाण्डर इण्डोयूनानी राजाओं में सबसे महान् था। पाली भाषा की पुस्तक ''मिलिन्दपन्ह'' या 'मिलिन्द के प्रश्नों' के अनुसार, मेनाण्डर कलसी गांव में उत्पन्न हुआ था, जो मेनाण्डर की राजधानी शाकल से 200 योजन दूर स्थित अलासण्ड द्वीप में स्थित था। शाकल पाकिस्तान में स्थित स्यालकोट है। भाग्यवश ''मिलिन्दपह्न'' में मेनाण्डर की राजधानी का यह विवरण दिया गया है : ''योणकों के देश में व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र है, एक शहर जिसका नाम शाकल है, सुहावने प्रदेश में स्थित है। वहाँ पानी की सुविधा है और पहाड़ियां भी हैं, कई उपवन, बाग, कुँज, झीलें और कुण्ड हैं, नदियों, पहाड़ों और जंगलों का स्वर्ग है। बुद्धिमान व्यक्तियों ने इसकी योजना बनाई और इसके निवासियों का अत्याचार से परिचय नहीं है क्योंकि सभी शत्रु और विपक्षी दबा दिए गए हैं। इसकी सुरक्षा सुदृढ़ है, कई बड़े–बड़े बुर्ज और दीवारें हैं, अनुपम दरवाजे और प्रवेशद्वार हैं और इसके मध्य में सफेद दीवार का राजदुर्ग है जिसके चारों ओर गहरी खाई है। इसकी गलियॉं, वर्गाकार क्षेत्र, चौराहे और मंडियॉं नियमित ढंग से बनी हैं। इसकी दुकानों में भरे कीमती पदार्थों की दुकानों में अच्छी तरह प्रदर्शित किया जाता है। इसमें कई तरह के शानदार भवन हैं जो हिमालय की चोटियों की तरह ऊँचे हैं। इसकी सड़कें हाथियों, घोड़ों, गाड़ियों और पैदल यात्रियों से भरी हैं और हर प्रकार के व्यक्तियों–ब्राह्मण, सामन्त, शिल्पी, सेवक आदि की वहाँ भीड़ लगी रहती है। प्रत्येक सम्प्रदाय के गुरूओं का वे ऊँचे नारों से स्वागत करते हैं और नगर में प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रमुख व्यक्ति रहते हैं। बनारसी मलमल, 'कोटुम्बर' पदार्थों और अन्य कई प्रकार के कपड़ों की बिक्री के लिए वहाँ दुकानें हैं। बाजारों से मीठी सुगन्धें आती हैं, वहाँ सब तरह के फूल और सुगन्धियाँ अच्छी तरह सजाकर रखी जाती है। आभूषण असंख्य हैं और हर प्रकार की कला के व्यापारियों की श्रेणियाँ अपना–अपना सामान सजाती हैं और चारों ओर फैलाती हैं।''

मिलिन्दपन्ह'' में उसे एक राजवंश से सम्बन्धित बताया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि वह साधारण व्यक्ति था। विवाह के कारण यह यूथिडेमस के वंश से सम्बन्धित हो; यह सम्भव है। प्रो0 रैप्सन का विचार था कि उसने डेमेट्रियस की पुत्री अगैथीक्लीया, अगैथीक्लीया की बहिन तथा अन्यों से विवाह

यूनानी शासक मेनाण्डर

महात्मा बुद्ध – गांधार कला

किया। उसका पुत्र स्ट्रैटो प्रथम मेनाण्डर की मृत्यु के समय नाबालिग था। उसकी रानी अगैथोक्लीया अपने पुत्र की बाल्यावस्था में राज्य–कार्य करती रही। यह निष्कर्ष मेनाण्डर के कुछ सिक्कों के अध्ययन पर आधारित था।

यूनानी लेखकों से ज्ञात होता है कि मेनाण्डर एक महान् विजेता था। कहा जाता है कि उसने सिकन्दर से भी अधिक राष्ट्रों पर विजय पाई। मेनाण्डर के कई प्रकार के सिक्कों और उनके प्राप्ति–स्थानों की विविधता से निष्कर्ष निकाला गया है कि वह कई राज्यों का शासक था और एक महान् विजेता भी था। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों से उसके बहुत से सिक्के प्राप्त हुए हैं। उसके सिक्के काठियावाड़ में भी प्रचलित थे। पंजकोर और स्वात नदियों के संगम से 20 मील पश्चिम की ओर स्थित वजीर जातीय प्रदेश से खरोष्ठी अभिलेखों के एक मंजूषा में रखे दो वर्ग मिले हैं। इनमें से एक अभिलेख में मेनाण्डर के राज्य का उल्लेख किया गया है। शाक्य मुनि बुद्ध के कुछ अवशेषों को पूजा के लिए मंजूषा में रख दिया गया और उसे पहले मेनाण्डर के एक सामन्त वियाकमित्र ने और फिर उसके पुत्र या पौत्र ने प्रतिष्ठित किया। इससे पेशावर प्रदेश और सम्भवतः ऊपरी काबुल घाटी पर मेनाण्डर के अधिकार का संकेत मिलता है। इस समय में तक्षशिला या पुष्करावती में कोई स्वतन्त्र यवन शासक नहीं था।

''मिलिन्दपन्ह'' में बताया गया है कि मेनाण्डर, बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। कहा गया है कि शुंग राजा पुष्यमित्र के अत्याचार से त्रस्त बौद्ध भिक्षुओं के लिए मेनाण्डर का शाकल स्थित दरबार आश्रय–स्थल बन गया। ''दिव्यावदान'' में कहा गया है कि पुष्यमित्र ने घोषणा की थी कि जो व्यक्ति शाकल के किसी बौद्ध भिक्षु का सिर उसे लाकर देगा, उसे एक सौ दीनार दिए जाऐंगे। मेनाण्डर एक कट्टर बौद्ध था इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसने बौद्ध भिक्षुओं को आश्रय दिया हो जिन पर शुंगों ने सम्भवतः अत्याचार किए थे। 'मिलिन्दपह्न' में मेनाण्डर अर्थात् मिलिन्द और बौद्ध विद्वान् भिक्षु नागसेन के बीच एक वार्तालाप दिया गया है। मेनाण्डर ने बौद्ध अध्यात्म शास्त्र और दर्शन के सम्बन्ध में कई सूक्ष्म प्रश्न नागसेन से पूछे और सभी

प्रश्नों का उसने सन्तोषजनक उत्तर दिया। परिणामस्वरूप मेनाण्डर बौद्ध बन गया।

हिन्द–यवन शासक मेनान्डर के सिक्के

विद्वान् एकमत से मेनाण्डर का राज्य डेमेट्रियस की मृत्यु के पश्चात् मानते हैं जो 165 ई0 पू0 में हुई, इसलिए मेनाण्डर पुष्यमित्र का बाद के समय का हो सकता है। ''मिलिन्दपन्ह'' में कहा गया है कि मेनाण्डर 'परिनिर्वाण' से 500 वर्ष पश्चात् जीवित रहा।प्रो0 रैप्सन ने ठीक कहा है कि एक महान् और न्यायप्रिय शासक के रूप में मेनाण्डर की ख्याति भारत तक ही सीमित नहीं थी। उसके लगभग दो शतियों पश्चात् प्लूटार्क ने यूनानियों को बताया कि सैनिक शिविर में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके अवशेषों की रक्षा के लिए किस प्रकार उसके साम्राज्य के नगरों में स्पर्धा हुई। रैप्सन ने लिखा है : ''इस प्रकार मेनाण्डर ने केवल एक महान् विजेता के रूप में ही नहीं बल्कि उपनिषदों में वर्णित कुरुवंशी जनमेजय और विदेह–शासक जनक की भांति एक दार्शनिक के रूप में भी ख्याति प्राप्त की।''

यूनानी आक्रमण का उद्देश्य एवं प्रभाव

सिकन्दर की जल्दी ही मृत्यु हो जाने के कारण यूनानी भारत में स्थायी बस्ती नहीं बसा सके। सिकन्दर के आक्रमण की तुलना में भारतीय यूनानियों की उत्तर – पश्चिम सीमान्त प्रदेशों पर अधिकार अधिक समय तक रहा था। बैक्ट्रियां के यूनानियों ने इस प्रदेशों पर लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया और इसलिए सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए यह समुचित समय था, यद्यपि भारतीय यूनानी शासन की देन उत्तर – पश्चिमी क्षेत्र तक ही मानी जाती रही है तथापि उसके भारतीय प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता है। वास्तव में यूनानी विशेषताएँ भारत में ही आत्मसात् होकर मुख्य धारा में विलीन हो गई।

मुद्रा (सिक्के) – भारतीय बैक्ट्रियनों के शासन का भारत में महत्वपूर्ण प्रभाव मुद्रा के क्षेत्र में पड़ा। यूनानी प्रभाव से पूर्व भारतीय चांदी के चिन्हित सिक्के तकनीकी रूप से कम श्रेष्ठ थे। इन सिक्कों पर किसी का नाम या तिथि नहीं लिखी होती थी। भारतीय यूनानी पहले शासक थे जिन्होंने सोने के ऐसे सिक्कों की ढ़लाई की जिन पर राजा का नाम, उपाधि और तिथि अंकित होती थी। निर्माण कला का श्रेष्ठता के कारण वह बेहतर होते थे। चूँकि यूनानी ग्रहणशील थे इसलिए वे कभी–कभी भारतीय मौद्रिक तकनीकी को अपनाकर भी प्रयोग करते थे।

कला और मूर्तिकला– के क्षेत्र में भी यूनानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ। भारतीय यूनानियों की भूमिका, सांस्कृतिक संबंधों के संदर्भ में इसलिए भी महत्वपूर्ण समझी जाती है कि उन्होंने उत्तर–पश्चिम भारत में हेलेनिस्टिक कला से परिचय कराया, जिसने बाद में गंधार कला शैली का रूप लिया। भारतीय और यूनानी मिश्रण से उत्तर – पश्चिम में कला की प्रसिद्ध गांधार शैली का विकास हुआ। भारतीय यूनानी शासन में खगोल शास्त्र, साहित्य, भवन निर्माण और धर्म के क्षेत्र में भी अपनी छाप छोड़ी। साथ ही नए जल और थल मार्गों के खुलने से भारत और यूनान के मध्य व्यापार और वाणिज्य का विस्तार हुआ।

व्यापार–वाणिज्य–_भारत रत्न, हाथी–दाँत मसाले और अच्छे वस्त्रों जैसी वस्तुओं की यूनान में काफी मांग थी जबकि भारतीय बाजार में भी यूनान से आने वाली विलास सामग्री और श्रृंगार–प्रसाधनों की भरमार थी। एक परम्परा के अनुसार राजा एटीओकस चतुर्थ ने लगभग 166 ई.सा. पूरे यूनान में एक प्रदर्शनी का आयोजन किया था। जिसमें भारत के मसाले और हाथी – दाँत में वस्तुएँ प्रदर्शित थी। समकालीन सिक्कों की एक बड़ी संख्या में कम से कम 30 भारतीय यूनानी शासकों के नाम मालूम हो जाते हैं। उत्तर में काबुल तथा दिल्ली के निकट मथुरा में मेनान्दर के सिक्के प्राप्त हुए हैं। भारतीय यूनानियों का इतिहास मुख्यतः इन्हीं सिक्कों की सहायता से लिखा गया है। इन सिक्कों पर यूनानी भाषा में अनुश्रुतियाँ अंकित है, बाद में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि भी मिलती है। इन प्रमाणों को समझने में कहीं–कहीं कठिनाई भी होती है, क्योंकि कुछ राजाओं के नाम एक से थे। इसलिए एक शासन के समय के सिक्कों को दूसरे से अलग करना आसान नहीं है। सिक्के, विशेषकर चाँदी के सिक्कों के ढालने की भारतीय यूनानी तकनीक कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। इसका प्रभाव इस युग के कुछ स्थानीय शासकों द्वारा जारी किए हुए सिक्कों पर पड़ा और एक बड़े क्षेत्र में उनका प्रचलन हुआ। ये इस युग के बढ़ते हुए व्यापार संबंधों पर प्रकाश डालते हैं।

सांस्कृतिक प्रभाव व विलिनीकरण– भारत में इण्डो–बैक्ट्रियन राज्य के विषय में डॉ. जे.एन. बैनर्जी का विचार है कि भारत की द्वितीय यूनानी विजय सिकन्दर की विजय से अधिक महत्वपूर्ण थी। दो शताब्दियों तक भारतीयों तथा यूनानियों में पर्याप्त सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे और दोनों की एक दूसरे पर प्रतिक्रिया हुई। यह केवल यूनानी सभ्यता का भारतीय सभ्यता पर तथा भारतीय सभ्यता का यूनानी सभ्यता पर प्रभाव मात्र नहीं था। भारतीयों की कई धार्मिक धारणाओं और आदर्शों को यूनानी शासकों ने अपनाया। असंख्य यूनानी भारतीय धर्मों के अनुयायी बन गए। यूनानियों ने क्रमशः भारतीय ढ़ंग को अपना लिया। समय के साथ वे भारतीय भूमि की उपज ही बन गए। और अन्त में यूनानी विशेषताएँ भारत में ही आत्मसात होकर भारतीय समाज व संस्कृति की मुख्यधारा में विलीन हो गई।

शक (सीथियन)

ये मूल रूप से मध्य एशिया के निवासी थे, इनको

पश्चिमी चीन की यू–ची जाति ने इनकी मातृभूमि मध्य एशिया से उखाड़ फेंका था। तब से ही इन्होंने अपना भाग्य भारत की ओर आजमाया।

यूनानियों के बाद भारत में मध्य एशिया से आने वाली दूसरी विदेशी जाति शक थी। इनका निवास स्थान सीथिया नामक प्रदेश था और वहाँ रहने के कारण ही इनको सीथियन कहा गया। पहली सदी ईसवी पूर्व में बैक्ट्रिया में यूनानी राज्यों के पराभव के समय कुषाणों से पराजित शक पार्थियनों को पराजित करते हुए बोलन दर्रे को पार करते हुए सिन्धु घाटी और पश्चिमोत्तर भारत में बस गये। भारत में शकों का प्रारंभिक राजनीतिक इतिहास धुँधला है फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भारत में शकों की पाँच शाखाओं ने उस समय अपने राज्य कायम किए थे। शकों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित सिक्के और अन्य स्त्रोत उपलब्ध हैं। एक शाखा अफगानिस्तान में थी जिसकी राजधानी या केन्द्र कपिशा था। दूसरी शाखा पंजाब में बसी जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। तीसरी शाखा मथुरा में स्थापित हुई जिसने वहाँ दो शताब्दियाँ तक शासन किया। चौथी शाखा ने पश्चिमी भारत में अपना राज्य स्थापित किया जो चौथी सदी के आरम्भ तक विद्यमान रहा जिसकी राजधानी उज्जैन थी। शकों की पाँचवी शाखा ने ऊपरी दक्कन में अपना राज्य स्थापित किया था, जिसकी राजधानी नासिक थी।

उत्तर–पश्चिम भारत में शकों को अपने सैनिक अभियानों में न तो भारतीय शासकों का और न ही जनता के प्रतिरोध का कठोर सामना करना पड़ा। लेकिन भारतीय साहित्य और परम्परा में 56 ई.पू. पूर्व में उज्जैन के राजा विक्रमादित्य द्वारा शकों पर उसकी निर्णायक विजय का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक विजय की स्मृति में ही 57 ईसवी पूर्व में विक्रम संवत् का प्रारम्भ हुआ जो भारतीय ज्योतिष गणना का प्रामाणिक स्रोत बना। शकों पर विक्रमादित्य की इस ऐतिहासिक विजय ने उसे इतनी प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता प्रदान की विक्रमादित्य का नाम एक महान् उपाधि में प्रतिष्ठित हो गया, प्रत्येक राजा इस उपाधि को धारण करने के लिये लालायित रहता था। प्रतिष्ठा पराक्रम के महान् प्रतीक के रूप में भारतीय राजा 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने की प्रथा प्रचलित हुई थी। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाले राजाओं में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त रहा है। पाँचों शाखाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नासिक व उज्जैन शाखा थी। मौलिक रूप से शक मध्य एशिया के रहने वाले थे और धीरे–धीरे उन्होंने पश्चिमी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। उज्जैन और नासिक के शक सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं, नासिक के शकों में सर्वप्रसिद्ध नहपान था उसने सातवाहनों को पराजित कर उनके एक बड़े भू–भाग पर अधिकार कर लिया था। किन्तु 124 ई. में गौतमीपुत्र शातकर्णी ने नहपान का वध कर दिया था। जूनागढ़ के शिलालेखों से उसकी सैन्य सफलताओं तथा सुदर्शन झील की मरम्मत की जानकारी मिलती है। उसकी मृत्यु के बाद उज्जैन के शकों का पतन हो गया।

शक शासक रूद्रदमन (Rudradamana)

शक शासकों के वंशजों में जयदमन के पुत्र रूद्रदमन प्रथम (130–150 ईसवी) उज्जैन के शक शासकों में सबसे प्रख्यात था। भारत में स्थापित शकों के विभिन्न राज्यों में से केवल पश्चिमी भारत (गुजरात) में स्थापित शाखा का ही चार सदियों तक शासन विद्यमान रहा। गुजरात के बन्दरगाहों से होने वाले विदेशी व्यापार ने उनको भारी आर्थिक समृद्धि प्रदान की, परिणामस्वरूप उन्होंने बड़ी संख्या में चाँदी के सिक्के चलाये। यहाँ के शक शासकों में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त शासक रूद्रदमन प्रथम था। इस विषय में सर्वाधिक जानकारी उसके स्वयं के जूनागढ़ अभिलेख से मिलती है। यह अभिलेख शक संवत 72 अर्थात् 150 ईसवी में लिखा गया था।

विदेशी होते हुए भी उसने सबसे पहले विशुद्ध संस्कृत भाषा में इतना लम्बा अभिलेख (जूनागढ़) जारी किया था। इससे यह बात साफ है कि रूद्रदमन ने संस्कृत को बढ़ावा दिया। यह उसी शिला पर उत्कीर्ण है जिस पर अशोक के चौदह शिलालेखों का एक सेट और गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के दो लेख भी उत्कीर्ण हैं।

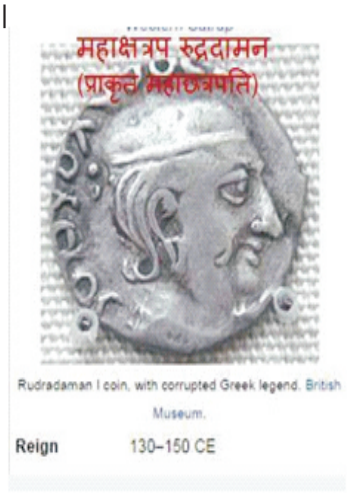

महाक्षत्रप रूद्रदामन कनिष्क की बिना सिर वाली मूर्ति

सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार – जूनागढ़ लेख में रूद्रदमन द्वारा सुदर्शन झील के जीर्णोद्धार के विषय के साथ रूद्रदमन की उपलब्धियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें बताया गया है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के गर्वनर पुष्यगुप्त ने गिरनार के समीप जनकल्याण हेतु सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। अशोक के राज्यकाल में सिंचाई के लिए इसी झील से अनेक नहरें निकाली गयी थी। अनेक शताब्दियों तक यह झील सौराष्ट्र के किसानों के लिए सिंचाई का महत्वपूर्ण स्रोत थी। रूद्रदमन के शासनकाल में अतिवृष्टि के कारण सुदर्शन झील का बाँध टूट गया तथा दरार आ गई। इसका पुनर्निर्माण बहुत कठिन व खर्चीला था, किन्तु रूद्रदमन ने प्रजा की भलाई के लिए सचिवों के विरोध के बावजूद अपने निजी कोष से विशाल धनराशि व्यय करके बांध का पुनर्निर्माण कराया तथा प्रजा पर कोई अतिरिक्त कर नहीं लगाया। सुदर्शन झील के जीर्णोद्धार का यह कार्य उस समय के सौराष्ट्र प्रान्त के गवर्नर सु–विशाख द्वारा सम्पन्न कराया गया था।

साम्राज्य विस्तार– जूनागढ़ अभिलेख में रूद्रदामन की विजयों

का उल्लेख यूं मिलता है कि उसने अकर (पूर्वी मालवा), अवन्ति (पश्चिमी मालवा), अनूप (नर्मदा तट प्रदेश), त्रिवृत (उत्तरी काठियावाड़ व उसकी राजधानी आनन्दपुर), सुराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़), मरू (मारवाड़), कच्छ सिन्धु (निचली सिन्धुघाटी का पश्चिमी क्षेत्र), पूर्वी तट का प्रदेश, कुकुर (पश्चिमी मध्यभारत का प्रदेश), निषाढ (विन्ध्याचल), उत्तरी कोंकण और अरावली पर्वतमाला के प्रदेश को जीता था। नासिक अभिलेख के अनुसार विजीत प्रदेश गौतमीपुत्र शातकर्णि के थे। अतः निश्चित रूप से ये प्रदेश रूद्रदामन ने गौतमीपुत्र के किसी वंशज से छीने होंगे। जो भी हो रूद्रदामन के साम्राज्य में सिन्धु–सौवीर (मुलतान सिन्धु नदी के मुहाने तक का प्रदेश), मालवा, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरी कोंकण, पश्चिमी राजस्थान और सिन्ध के प्रदेश सम्मिलित थे।

शासन व्यवस्था– जूनागढ़ लेख से रूद्रदमन के प्रशासन पर भी प्रकाश पड़ता है। उसका विशाल साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था, जिसका प्रशासन प्रान्तीय शासकों के अधीन था। सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार सौराष्ट्र के प्रान्तीय गवर्नर पहलव जातीय सुविशाख द्वारा सम्पन्न किया गया था। राजा को राज कार्य में सहायता के लिए मन्त्रिपरिषद थी। शासन–प्रबन्ध में परामर्श देने वाले मन्त्रियों को सचिव' और राजाज्ञाओं और नीतियों को क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों को 'कर्मसचिव' कहा जाता था अमात्य (मन्त्रियों) के गुणों का वर्णन सुविशाख की प्रशंसा करते हुए किया गया है। उसकी व्यवस्था एवं कर प्रणाली धर्म आधारित थी।

व्यक्तित्व– जूनागढ़ अभिलेख रूद्रदामन के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों को स्पष्ट करता है। इस लेख में उसके व्यक्तित्व का जो पक्ष सर्वाधिक उभरा, वह है उसकी जन कल्याण की भावना। उसने प्रजा के लिए अपने मन्त्रियों के विरोध के बावजूद अपने निजी कोष से भारी धन व्यय करके सुदर्शन झील का पुननिर्माण करवाया था। उसने बॉध के लिए प्रजा से कोई अतिरिक्त या अनुचित कर नहीं लिया। वह उच्च आदर्शों का पालन करने वाला प्रजावत्सल राजा था। वह सदैव शरणागत की रक्षा करने वाला और युद्ध के अतिरिक्त किसी का भी वध न करने की प्रतिज्ञा लेने वाला दयालु व्यक्ति था। उसने अपने प्रजाजनों को डाकुओं, जंगली पशुओं व रोगों से भयमुक्त किया। वह एक कुशल सेनानायक और योद्धा था। वह शस्त्र व शास्त्र दोनों विद्याओं में पारंगत था। वह संगीत व शास्त्रों का ज्ञाता, संस्कृत व संस्कृति का संरक्षक, काव्यशास्त्र का मर्मज्ञ, शब्दार्थ (व्याकरण), न्याय (तर्कशास्त्र) का ज्ञाता तथा हाथी, घोड़े रथादि के संचालन एवं तलवार, ढाल आदि के युद्ध में प्रवीण था। इन गुणों के साथ–साथ वह अद्भुत शारीरिक सौन्दर्य का स्वामी भी था। उसके सिक्कों से इसकी पुष्टि होती है। निष्कर्षतः रूद्रदामन बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का धनी था और अपने स्वतंत्र शासन के बावजूद ''महाक्षत्रप'' की उपाधि को उसी प्रकार धारण किये रहा जैसे पुष्यमित्र शुग सम्राट होते हुए भी सेनापति कहा जाता रहा। उसका व्यक्तित्व इस बात का भी प्रमाण है कि रूद्रदमन व उसके उत्तरोत्तर शासकों का इस समय तक लगभग भारतीयकरण हो चुका था। रूद्रदमन के उत्तराधिकारी कमजाकर शासक थे। उसके उत्तराधिकारी के रूप में दामजाद का नाम आता है।

कुषाण

यद्यपि कुषाणों की उत्पत्ति पर इतिहासकार एकमत नही है, फिर भी इस सम्बन्ध में मान्यता प्राप्त मत यह है कि कुषाण पश्चिमी चीन के कान–सू प्रान्त के रहने वाली 'यू–ची' जाति से

कुषाण साम्राज्य

सम्बन्धित थे। लगभग 165 ई.पू. में हूणों द्वारा इस जनजाति को इनकी मातृभूमि से खदेड़ दिये जाने पर यू–ची नये स्थान की तलाश में विभिन्न संघर्षों के बाद आक्सस नदी घाटी के ताहिया (बैक्ट्रिया) प्रदेश में पहुँचे। ताहिया में उस समय शकों का शासन था। यू–ची जाति ने शकों को परास्त कर बैक्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। यहीं पर रहते हुए यू–ची पाँच शाखाओं में विभक्त हो गए। इन शाखाओं में कुषाण शाखा सर्वाधिक शक्तिशाली थी, अतः उसने शेष चारों शाखाओं पर विजय प्राप्त करके उनके राज्यों को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसी कारण यू–ची के स्थान पर कुषाण शब्द का प्रयोग होने लगा। कुषाण वंश का संस्थापक कजुलकेडफिसिज था जिसका राज्य बैक्ट्रिया व गान्धार प्रदेश में था। उसका उत्तराधिकारी विम कडफिस था जिसने अपने साम्राज्य का विस्तार भारतीय प्रदेश मथुरा तक में किया था, साथ ही महाराज की उपाधि धारण की थी। कुषाणों के प्रारंभिक इतिहास पर चीनी इतिहास ग्रंथ बहुमूल्य प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा भारतीय साहित्य तथा पुरातात्विक सामग्री–मुद्राओं, अभिलेखों, मूर्तियों और खुदाई में प्राप्त प्राचीन स्मारकों से भी कुषाण वंश के इतिहास पर व्यापक एवं प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

कनिष्क (78–101 ई.)

कनिष्क कुषाण राजाओं में सबसे महान् था, किन्तु उसकी सिंहासनारोहण की तिथि के विषय में विद्वान एकमत नही है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार कनिष्क के राज्याभिषेक की तिथि 78 ई. मानी गई है। कनिष्क की महानता का अनुमान इस

बात से भली–भांति लग जाता है कि उसका साम्राज्य पश्चिम में आक्सस नदी से पूर्व में गंगा नदी तक मध्य एशिया में खुरासन से लेकर उत्तर–प्रदेश में वाराणसी तक फैला था।

कनिष्क की सैनिक उपलब्धियाँ

कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी शासक था। कनिष्क के समय में कुषाण सत्ता अपने शिखर पर पहुँच गई थी। कनिष्क एक महान् विजेता, कुशल प्रशासक एवं कला प्रेमी शासक था। कनिष्क जब सिंहासनारूढ़ हुआ तब उत्तराधिकार में उसे एक छोटा सा राज्य मिला था। जिसमें अफगानिस्तान, सिन्ध का भाग, पार्थिया, बैक्ट्रिया और पंजाब का कुछ भाग शामिल था। उसके पूर्व शासक चीनी शासकों द्वारा पराजित कर दिए गए थे और विम कदफिसस की मृत्यु के बाद उत्पन्न अराजकता के कारण कुषाण राज्य शिथिल एवं अव्यवस्थित हो गया था। विम की मृत्यु के समय कनिष्क उन कुषाण सरदारों में से एक था, जो भारत में अपना भाग्य आजमा रहे थे।

1. पार्थिया पर अधिकार – कनिष्क व पार्थिया के शासक के मध्य हुए युद्ध की जानकारी चीनी स्रोतों से मिलती है। चीनी साहित्य से पता चलता है कि पार्थिया के शासक ने कनिष्क पर आक्रमण किया था। पार्थिया के शासक द्वारा कुषाण साम्राज्य पर आक्रमण करने के दो कारण थे। प्रथम तो यह कि व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश बैक्ट्रिया पर वह अधिकार करना चाहता था। दूसरा कारण यह था कि एरियाना प्रदेश पर पहले पार्थिया का अधिकार था, किन्तु बाद में कुषाणों ने इस पर अधिकार कर लिया था, अतः पार्थिया का शासक एरियाना प्रदेश पर पुनः अधिकार करना चाहता था। डॉ. स्मिथ की मान्यता है कि 'कनिष्क ने पार्थियनों के मूर्ख राजा संभवतया खुसरो को हराया था।' इस युद्ध के फलस्वरूप सम्पूर्ण पार्थिया प्रदेश कुषाण राज्य का अंग बन गया।

2. पाटलिपुत्र (मगध) को जीतना – चीनी और तिब्बती लेखकों के वर्णन से पता चलता है कि कनिष्क ने साकेत (अयोध्या) और पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया था। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा को हराकर उसमें दण्डात्मक कर की मांग की थी और वह न दे पाने पर कनिष्क बुद्ध का एक काष्ठ निर्मित भिक्षापात्र तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष को पाटलिपुत्र से अपने साथ लेकर आया था। सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार मगध राज्य से सातवाहनों के शासन का अंत करने का श्रेय कनिष्क को ही है।

कुछ विद्वानों ने बंगाल व उड़ीसा में कुषाणों की मुद्राएँ मिलने के आधार पर बिहार के आगे बंगाल व उड़ीसा पर भी कनिष्क का अधिकार बताया है।

3. कश्मीर पर विजय – कनिष्क को कश्मीर बहुत पसन्द था। डॉ. स्मिथ के अनुसार कनिष्क को अपने राज्यकाल के प्रारंभिक वर्षों में भी कश्मीर विजय सम्पन्न करने का श्रेय दिया जा सकता है। किन्तु कश्मीर के शासक के साथ उसके युद्ध का विवरण उपलब्ध नहीं है। विभिन्न प्रमाणों से कश्मीर पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि होती है। कश्मीर के प्राचीन इतिहासकार कल्हण ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक 'राजतरंगिणी' में कनिष्क को कश्मीर का शासक बताया है। कनिष्क ने कश्मीर में ही बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति बुलाई थी जिसमें पाटलिपुत्र से लाये गये प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। कनिष्क ने कश्मीर में अनेक विहारों का निर्माण कराया और 'कनिष्कपुर' नगर बसाया, जो संभवत् आधुनिक बारामूला के समीप कानीरपोर ;Kaniapor) ग्राम है।

4. उज्जैन पर विजय – माना जाता है कि कनिष्क ने उज्जैन के शक शासकों के विरूद्ध भी युद्ध किया था। अधिक संभावना यह है कि शक क्षत्रप चष्टन ही वह शासक था जिसे कनिष्क ने परास्त किया था। इस युद्ध के परिणामस्वरूप पश्चिमी भारत के शकों ने कनिष्क की प्रभुता को स्वीकार कर लिया और मालवा के कुछ भाग पर कनिष्क का अधिकार स्थापित हो गया था।

5. मध्य एशिया की विजय – चीनी इतिहास ग्रंथों से पता चलता है कि लगभग 90 ई. में कनिष्क ने हानवंश के सेनापति पान–चाओ, (जिसने चीनी तुर्किस्तान को अपने अधिकार में ले लिया था), के विरूद्ध शक्तिशाली सेना भेजी। कनिष्क को इस युद्ध में महत्वपूर्ण विजय मिली, जिसके परिणामस्वरूप मध्य एशिया (चीनी तुर्किस्तान) के काशगर, यारकन्द एवं खोतान पर कनिष्क का अधिकार हो गया।

6. चीन पर आक्रमण – चीनी तुर्किस्तान पर अधिकार हो जाने से कनिष्क का साम्राज्य उत्तर में पामीर की पहाड़ी तक फैल गया था और इसके फलस्वरूप कुषाण साम्राज्य की सीमाएँ चीन के हान साम्राज्य की सीमाओं को छूने लग गई थी। चीनी साहित्यिक स्रोतों एवं ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि इस समय कनिष्क ने पामीर के उत्तर में अपने साम्राज्य विस्तार के लिए एक शक्तिशाली सेना भेजकर चीन पर आक्रमण किया था।

चीनी साहित्य के अनुसार कनिष्क ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु चीन के हानवंशी सम्राट (हो–ति) के पास अपना दूत भेजकर चीनी राजकुमारी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी। चीन के सेनापति पान–चाओ ने इसे चीनी सम्राट का अपमान समझते हुए कुषाण दूत को बन्दी बना लिया। इसकी सूचना मिलने पर कनिष्क ने अपने सेनापति 'सी' के नेतृत्व में 70,000 घुड़सवारों की एक शक्तिशाली सेना चीनी साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिये भेजी किन्तु खोतान तक पहुँचने पर खराब मौसम के कारण सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। अतः पान–चाओ ने उसे आसानी से हरा दिया और कनिष्क को प्रतिवर्ष चीनी शासक को कर देने के लिए विवश किया। इस पराजय की पुष्टि एक किंवदन्ती से भी होती है जिसके अनुसार अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व कनिष्क ने खेदपूर्वक कहा था, ''मैंने तीनों दिशाओं को अपने अधीन कर लिया है केवल उत्तरी दिशा के लोग ही आत्मसर्पण के लिए नहीं आए हैं।''

ह्वेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि कुछ समय पश्चात् कनिष्क ने अपनी पराजय का प्रतिशोध ले लिया। ह्वेनसांग के अनुसार ''कनिष्क का साम्राज्य सुंग–लिन पर्वत के पूर्व (खोतान, काशगर, यारकन्द) में भी विस्तृत था तथा पीली नदी के पश्चिम में रहने वाली जातियाँ (चीनी) उससे भयभीत हो गई और उन्होंने अपने दो राजकुमारों को कनिष्क के दरबार में बन्धक के रूप में भेजा था।'' एक विजेता के रूप में कनिष्क की यह महान्

विजय थी।

7. पेशावर पर चढ़ाई– कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपुर या वर्तमान पेशावर में स्थापित की। यह उसके साम्राज्य का केन्द्रवर्ती स्थान था, क्योंकि साम्राज्य मध्य एशिया तक फैला हुआ था। कनिष्क ने अपनी राजधानी को कई श्रेष्ठ स्मारकों, सार्वजनिक भवनों और बौद्ध विहारों से सुसज्जित किया।

कुषाणों का साम्राज्य विस्तारः– इस प्रकार विभिन्न विजयों के द्वारा कनिष्क में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उपर्युक्त विजय के अलावा मुद्रा, अभिलेख और साहित्यिक स्रोतों से उसके साम्राज्य की सीमाएँ निर्धारित की जा सकती है। कौशाम्बी, सारनाथ, मथुरा से प्राप्त उसके अभिलेख यह संकेत देते है कि शासक के रूप में वह मूलतः पूर्वी प्रदेश से सम्बन्धित था तथा सम्पूर्ण उत्तर पर उसका अधिकार था। काशी तथा सारनाथ उसके साम्राज्य के इस भाग के केन्द्र स्थल थे। सिन्ध व पंजाब से प्राप्त उसके लेख वहाँ पर उसके अधिकार की पुष्टि करते हैं। चीनी स्रोत, गान्धार पर उसका अधिकार प्रमाणित करते हैं। मध्य प्रदेश के कुछ स्थानों से भी कनिष्क की मुद्राएँ और मथुरा शैली की मूर्तियाँ मिली है। इस प्रकार कनिष्क का साम्राज्य पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम खुरासान तथा उत्तर में पामीर से लेकर दक्षिण में कोंकण प्रदेश तक विस्तृत था।

प्रशासन – डॉ. बी. एन. पुरी के अनुसार कुषाण निरंकुश शासक थे, कनिष्क का साम्राज्य विशाल था, किन्तु उसकी शासन व्यवस्था के विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। यूनानियों एवं शकों की भांति कनिष्क का शासन क्षत्रप प्रणाली पर आधारित था। सारनाथ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसका शासन प्रान्तीय क्षत्रपों के द्वारा होता था। एक की राजधानी मथुरा व दूसरे की संभवतः काशी थी। मथुरा में महाक्षत्रप खरपल्लन और काशी में वनस्पर प्रान्तीय शासक थे। इस शासन का स्वरूप बहुत कुछ सैनिक था और इसका संगठन बहुत मजबूत नहीं था। ''दण्डनायक और महादण्डनायक पद कुषाण प्रशासकीय मशीनरी की कड़ी थे।

बौद्ध धर्म का पोषक कनिष्क

भारतीय इतिहास में कनिष्क की प्रसिद्धि एक महान् विजेता के साथ ही बौद्ध धर्म के महान संरक्षक के रूप में रही है। बौद्ध साहित्य में कनिष्क का उल्लेख दूसरे अशोक के रूप में किया गया है, जिसके प्रोत्साहन एवं संरक्षण के कारण बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। बौद्ध धर्म अपनाने के पूर्व कनिष्क क्रमशः ईरानी, यूनानी, एवं हिन्दू देवताओं में विश्वास करता रहा था। इसका प्रमाण यह है कि कनिष्क के प्रारम्भिक सिक्कों पर ईरानी देवता 'मिहिर', अग्नि, अहुरमज्दा, यूनानी देवताओं हेलियोस, हैरेक्लीज तथा हिन्दू देवताओं सूर्य, चन्द्र, शिव आदि के चित्र मिले हैं। उसकी मुद्राओं पर बुद्ध के चित्र भी मिलते हैं। अधिकांश इतिहासकारों की मान्यता है कि पाटलिपुत्र की विजय के साथ लाये गये प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष से प्रभावित होकर कनिष्क ने उसी से बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। शीघ्र ही कनिष्क एक उत्साही बौद्ध बन गया और अपने धर्म की अभिवृद्धि में वह अशोक के चिन्हों पर चल पड़ा। उसने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान कर कनिष्कपुर, पुरूषपुर, मथुरा व तक्षशिला में स्तूप और विहार बनवाए। विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बौद्ध भिक्षुओं को मध्य एशिया, चीन, तिब्बत, जापान आदि देशों में भेजा। राजतरंगिणी में लिखा है कि कनिष्क ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। ह्वेनसांग ने भी कनिष्क को बौद्ध धर्म का महान् संरक्षक एवं प्रचारक बताया है। कनिष्क द्वारा चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कनिष्क बौद्ध था और महायान शाखा के प्रसार के लिए उसने प्रयत्न किए। बौद्ध होते हुए भी कनिष्क ने अन्य धर्मों का आदर किया और धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पालन किया जो उसके सिक्कों से प्रमाणित होती है।

बौद्ध धर्म का विभाजन व चतुर्थ बौद्ध संगिति –

संगीति कनिष्क के शासनकाल की एक उल्लेखनीय घटना है। बौद्ध धर्म में उपस्थित विवादास्पद सिद्धान्तों का निर्णय करने के उद्देश्य से कनिष्क के शासनकाल में चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के 'कुण्डलवन' नामक विहार में किया गया था। लगभग 500 बौद्ध विद्वानों ने इसमें भाग लिया था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुमित्र इसके अध्यक्ष और अश्वघोष उपाध्यक्ष थे। छः माह तक चले इस सम्मेलन में सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य की सूक्ष्मता से जॉच की गई तथा त्रिपिटकों पर टीका लिखकर उसे सम्पूर्ण रूप से एक ग्रन्थ में संकलित कर लिया गया, जिसका नाम 'महाविभाष' रखा गया। महाविभाष को बौद्ध धर्म का विश्व कोष कहा जाता है। सभी टीकाओं को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कर विशेष रूप से निर्मित एक स्तूप में रखा गया। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार बौद्ध सभा में बौद्ध धर्म के तत्कालीन 18 स्कूलों के मतभेदों का निवारण किया और इन सभी स्कूलों को धर्म–परायण स्वीकार कर लिया गया।

चतुर्थ बौद्ध संगीति का एक उल्लेखनीय परिणाम बौद्ध धर्म का हीनयान एवं महायान शाखा में विभक्त होना था। जन साधारण में तथा विदेशों में प्रसार के लिए इस समय बौद्ध धर्म के नियमों व सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया। इसमें मूर्ति–पूजा, स्वर्ग, धार्मिक क्रियाएँ आदि को स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार बौद्ध धर्म की एक नवीन शाखा का जन्म हुआ जिसे 'महायान' कहा गया जबकि मूल बौद्ध धर्म को हीनयान कहा जाने लगा। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राजधर्म के रूप में मान्यता दी। हीनयान में बुद्ध केवल महापुरूष थे, जबकि महायान में बुद्ध को ईश्वरीय अवतार समझकर उनकी मूर्ति–पूजा शुरू हो गई। हीनयान में सत्कर्मों पर बल दिया था जबकि महायान में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की पूजा कर बल दिया जाने लगा। हीनयान में पाली भाषा का प्रयोग किया जाता था किन्तु महायान में उसका स्थान संस्कृत भाषा ने ले लिया। बौद्ध धर्म की इस नई शाखा महायान के उदय के कारण बौद्ध धर्म का विकास तेजी से हुआ क्योंकि इसके सिद्धान्त सरल थे जिनका पालन जनसाधारण में एक गृहस्थ व्यक्ति भी सरलतापूर्वक कर सकता था। अन्य धर्मों के समान मूर्ति–पूजा का प्रचलन होने से महायान धर्म की लोकप्रियता बढ़ गई। कनिष्क द्वारा महायान को राजधर्म घोषित करने से मध्य एशिया में उसके विशाल साम्राज्य में महायान के विकास में पर्याप्त सुविधा हुई होगी।

कला व साहित्य की उन्नति

कनिष्क केवल एक महान् विजेता ही नहीं वरन् उच्च कोटि का विद्वान एवं कला प्रेमी सम्राट था। उसने अनेक बौद्ध विहार एवं स्तूप बनवाकर अपने कला प्रेम का परिचय दिया। किन्तु उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन मूर्तिकला के क्षेत्र में थी। उसके मुख्य स्मारक तथा कलाकृतियां पेशावर, मथुरा, कनिष्कपुर और तक्षशिला में पाई गई है। तक्षशिला का सिरमुख नगर उसी ने स्थापित किया, जिसमें एक बड़ा भवन व विहार था। मथुरा उसके समय एक महान कला केन्द्र बन गया, यहीं से कनिष्क की एक सिर रहित मूर्ति प्राप्त हुई है जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। मूर्ति–निर्माण और स्थापत्य की दृष्टि से कनिष्क के शासनकाल में तीन विभिन्न केन्द्रों में तीन प्रमुख शैलियों का विकास हुआ– मथुरा, अमरावती एवं गान्धार। किन्तु महायान के उदय से मूर्तिकला में एक नया मोड़ आया। सीमान्त प्रदेश गान्धार में यूनानी प्रभाव के कारण बुद्ध की मूर्तियों में यूनानी देवताओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा, इस कारण इस कला को 'इण्डो–ग्रीक' अथवा 'ग्रीको बुद्धिष्ट' कला भी कहते हैं। किन्तु बुद्ध की इन मूर्तियों का निर्माण मुख्यतः गान्धार प्रदेश में होने के कारण इस कला का नाम 'गान्धार कला' पड़ा। इस प्रकार कला में कला की एक नवीन शैली 'गान्धार शैली' का आर्विभाव कनिष्क के शासनकाल की एक बड़ी देन थी।

कनिष्क की राजसभा में अनेक उच्चकोटि के दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यकार रहते थे। कनिष्क के दरबार का सबसे महान् व्यक्ति प्रसिद्ध कवि अश्वघोष था जिसने संस्कृत में 'बुद्धचरित' नामक महाकाव्य की रचना कर उसे अमर कृति बना दिया था। 'सौदरानन्द महाकाव्य, 'सूत्रालंकार' और 'सारीपुत्र प्रकरण' उसकी अन्य रचनाएँ थी। शून्यवाद एवं सापेक्षवाद का प्रवर्तक नागार्जुन कनिष्क के दरबार की एक अन्य महान् विभूति था। वह केवल दार्शनिक ही नहीं, वैज्ञानिक भी था। उसने अपनी पुस्तक 'माध्यमिक सूत्र' में सापेक्षता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उसे ही भारतीय आइंस्टीन कहा गया है। चरक कनिष्क का राज्य वैद्य था उसकी रचना 'चरक संहिता' आयुर्वेद की अमूल्य निधि है। वसुमित्र, पार्श्व एवं संघरक्षक कनिष्क के समय के अन्य प्रसिद्ध विद्वान थे। कनिष्क के काल में संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई। उसके दरबार का एक मंत्री 'मंथर' प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं कुशाग्र बुद्धि था।

मुद्राः– कुषाण युग के सिक्के बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं कनिष्क प्रथम, हुविष्क तथा वासिस्क ने सोने तथा ताँबे के सिक्के चलाए। उन्होंने चाँदी के सिक्के नहीं चलाए। कुषाण सिक्कों का एक रूचिकर लक्षण यह है कि कुषाण साम्राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के देवताओं को कुषाण सिक्कों पर अंकित किया है।

निर्माता कनिष्कः– कनिष्क महान निर्माता भी था, उसके मुख्य स्मारक तथा कलाकृतियाँ पेशावर, मथुरा, कनिष्कपुर और तक्षशिला में पाई गई है। तक्षशिला के मिरमुख नगर उसी का स्थापित किया हुआ था। जिसमें बड़ा भवन, विहार और अन्य भवन थे। मथुरा उसके समय में एक महान कला केन्द्र बन गया। इस समय का एक मख्य अवशेष कनिष्क की सिर रहित एक मूर्ति है।

विज्ञान की उन्नतिः– जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि कनिष्क शिक्षा एवं साहित्य का महान् संरक्षक था, फलस्वरूप उसके काल में साहित्य की विविध विधाओं का सर्वांगीण विकास हुआ। इस काल में पहली बार संस्कृत लेख लिखे गये। अश्वघोष, भास और शूद्रक इस विधा के महान साहित्यकार थे। संस्कृत भाषा और उसकी उन्नति के साथ ही पाली व प्राकृत भाषा में भी इस युग में उत्कृष्ट रचनाएँ लिखी गई। बौद्ध सम्प्रदाय की प्रगति के फलस्वरूप अनगिनित अवदानों की रचना हुई जैसे दिव्यावदान आदि। कनिष्क का दरबार विद्वानों, दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों का पोषक था। चरक और सुश्रुत महान चिकित्सक एवं आयुर्वेदाचार्य थे। नागार्जुन इस युग का महान वैज्ञानिक था जिसने सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। यूनानियों के सम्पर्क के बाद इस युग में भारतीय ज्योतिष में नवीन सिद्धान्तों की स्थापना हुई और खगोल विद्या की वैज्ञानिक प्रामाणिकता बढ़ी। मध्य एवं रोमन साम्राज्य के सम्पर्कों के परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नई तकनीक विकसित जैसे तांबे के कुषाणकालीन सिक्के रोमन स्वर्ण मुद्राओं की नकल थे।

गान्धार कला (50 ई.पू. से 500 ई.)– गान्धार कला के विकास के लिए कुषाण युग प्रसिद्ध हैं। मूर्तिकला की गान्धार शैली को ग्रीको–रोमन, ग्रीकों–बुद्धिष्ट, हिन्द–यूनानी आदि नामों से भी जाना गया है। यद्यपि उस पर यूनानी–रोमन कलाओं का प्रभाव अधिक था किन्तु इसका विकास भारतीयों ने किया था। भारत के गान्धार प्रदेश में विकास होने के कारण ही इसे गाँधार शैली कहा गया। गांधार में भारतीय शिल्पकारों का एशियाई, यूनानी व रोमन शिल्पियों से सम्पर्क हुआ। इससे नई शैली का उद्भव हुआ उसमें बुद्ध की प्रतिमाएँ यूनान व रोम मिश्रित शैली में बनायी गई। कनिष्क के समय में महायान धर्म के उत्थान के कारण एवं विदेशी शासकों द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने से बुद्ध की मूर्तियॉ यूनानी ढंग से बनने लगी जो यूनानियों के पवित्र देवता 'अपोलो' की भांति लगती है। भारतीय मूर्तिकला में यूनानियों की महत्वपूर्ण देन है। गान्धार कला की विषय–वस्तु भारतीय थी केवल निर्माता यूनानी थे। इनमें यूनानी श्रृंगार तथा अलंकार की प्रधानता हैं ये भूरे या सलेटी रंग पत्थरों से बनती थी, बाद में चूने प्लास्टर का प्रयोग होने लगा भारी ओष्ठ, खिंची हुई आँखे, घुँघराले बाल, लम्बी मूँछे, बोझिल, हट युक्त वस्त्रों से ढकी मूर्तियों में बुद्ध की आकृति यथार्थतः के निकट लाने का प्रयास किया गया है। कुषाणकाल में ही मूर्तिकला की गांधार व अमरावती शैलियों का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ था और उसमें भी श्रेष्ठतम कलाकृतियों का निर्माण हुआ।

शक सम्वत्– कनिष्क का स्मरण केवल उसको विजय के कारण ही नहीं किया जाता है। बल्कि अधिकांश इतिहासकार एक मत है कि कनिष्क ने 'सिंहसानुरुद्ध होने के समय 78 ई. से एक नया सम्वत् शुरू किया, यह शक सम्वत कहलाता है। इसका प्रचलन आज भी हमारे देश में है।

विदेशी व्यापार की उन्नति (आर्थिक स्थिति)

इस युग में विदेशी व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण भारत आर्थिक दृष्टि सम्पन्न राष्ट्र बन गया था और लोगों के

आर्थिक जीवन में समृद्धि के चिन्ह दिखाई देने लगे। स्थलमार्गों एवं नदी मार्गों के विकास ने जहाँ आन्तरिक व्यापार में वृद्धि की, वहीं समुद्री मार्गों ने विदेशी व्यापार को सुदृढ़ता प्रदान की। स्थल मार्ग से पाटलिपुत्र ताम्रलिप्ति से जुड़ा हुआ था और वहाँ से जहाज बर्मा और श्रीलंका जाते थे। मध्य एशिया व पश्चिम एशिया को जाने वाले विभिन्न मार्गों का विकास हुआ। एक स्थल मार्ग से तक्षशिला काबुल से तथा दूसरे मार्ग से कन्धार ईरान से जुड़ा था। कुषाणों ने उस 'रेशम के मार्ग' (Silk Route) पर नियंत्रण कर लिया जो चीन से चलकर मध्य एशिया होते हुए रोमन साम्राज्य तक पहुँचता था। यह रेशम मार्ग कुषाणों का बहुत बड़ा आय का स्त्रोत था। इस प्रकार भारत के व्यापारी दक्षिणी अरब और लाल सागर क्षेत्रों से जुड़ गए थे। इसके परिणामस्वरूप कुषाण काल में भारत को रोमन साम्राज्य के साथ समृद्धि बहुत बढ़ी।

इसी समय भारतीय व्यापारियों ने चीनी सिल्क व्यापार में मध्यस्थ के रूप में भाग लेना शुरू कर दिया। भारत के व्यापारी चीन से रेशम खरीदकर रोमन साम्राज्य के व्यापारियों तक पहुँचाते थे, जिससे उन्हें बड़ा लाभ होता था। भारत में हाथीदाँत का सामान, काली मिर्च, लौंग, मसाले, सुगन्धित पदार्थ और औषधियाँ तथा सूती व रेशमी कपड़े बड़ी मात्रा में रोम निर्यात किये जाते थें भारत की बारीक मलमल रोम में बहुत लोकप्रिय हुई। इस व्यापार का केन्द्र केरल प्रदेश था। बाद में रोम से प्रतिवर्ष लाखों की स्वर्ण मुद्राएँ भारत आने लगी। ऐसी बहुत ही मुद्राएँ खुदाई में प्राप्त हुई हैं। चीन व रोम के अलावा भारत का व्यापार बर्मा, जावा, सुमात्रा, चम्पा आदि दक्षिण–पूर्वी एशिया देशों के साथ भी था। व्यापार में वृद्धि के साथ–साथ मुद्रा का भी विकास हुआ। इण्डोग्रीक शासकों व कुषाण शासकों ने बड़ी संख्या में सोने के सिक्के चलाए। मुद्रा का व्यापक प्रचलन इस युग की सबसे बड़ी देन है। मुद्रा एवं व्यापार के कारण देश में कई नगरों का विकास हुआ। नगरीकरण से विकसित नगरीय संस्कृति के प्रमाण और अवशेष भारत और मध्य एशिया में भी मिले हैं। यह हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि स्वयं सम्राट कनिष्क एक बड़ा निर्माता था जिसने कनिष्कपुर और सिरमुख सहित अनेक नगरों की स्थापना की थी। पुरूषपुर या पेशावर उसकी प्रथम और मथुरा उसकी द्वितीय राजधानी थी, जो कुषाण कालीन समृद्धि का प्रतीक बन गई थी। मथुरा के सोंख क्षेत्र की खुदाई से कुषाणकालीन संस्कृति सात स्तरों से प्राप्त हुई है। पंजाब में जालन्धर, लुधियाना व रोपड़ से कुषाणकालीन श्रेष्ठ निर्माण प्राप्त होते हैं।

धार्मिक जीवन –मौर्योत्तर काल में राजत्व की एक विशिष्ठ अवधारणा उभर कर आई इसमें कुषाण राजाओं ने अपनी तुलना देवताओं से की। उन्होंने देवपुत्र की उपाधी धारण की। वस्तुतः इन विदेशी शासकों की सामाजिक स्वीकृति हेतु धार्मिक वैधता आवश्यक थी। ऐसी पद्धति समकालीन रोमन, यूनानी और ईरानी पद्धति में विद्यमान थी, इन्होंने सिक्कों पर भी अपने चित्र छापकर अपने प्रभामण्डल को राजतत्त्व से देवतत्त्व सिद्धान्त जैसा प्रतिपादित किया है।

सामाजिक जीवन– कुषाण कालीन समाज समृद्ध था। महिलाओ को पर्याप्त स्वतन्त्रता थी, घर में उनके पृथक कक्ष होते थे। पोशाक में एकरूपता नहीं थी, गन्धार क्षेत्र के लोग सामान्यतया धोती बाँध थे। कमर में फेंटा लगाते थे और सिर पर रूमाल या साफा बाँध थे। समाज समृद्धि, विविधताओं तथा अनेक गतिविधियों से परिपू था। यह मथुरा के शिलालेखों से स्पष्ट है जिसमें जीवन को अने गतिविधियों वाला बताया गया है। नाचने–गाने वाद्य यन्त्रों उपयोग, नाटकों जादू–टोने व साहित्य का उल्लेख है।

कुषाण साम्राज्य का उद्देश्य एवं प्रभाव – मौर्य साम्राज्य पतन के पश्चात् पहली बार एक विशाल साम्राज्य बना जिसमें केवल समस्त उत्तरी भारत ही सम्मिलित था बल्कि उसके बाहर कई प्रदेश भी सम्मिलित थे जो मध्य एशिया तक फैले थे। इ प्रकार भारत बाहर की दुनिया के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में आया।

इस युग में धर्म, साहित्य और मूर्तिकला का भी महत्वपू विकास हुआ, विशेष कर महायान बौद्ध धर्म का उदय, गान्धार कल और बौद्धमूर्ति का आगमन एच. जी. रालिन्सन का मत है ''कुषा युग भारतीय संस्कृति के इतिहास का महत्वशाली युग है।

निश्चित ही यह कला–साहित्य, ज्ञान–विज्ञान व निर्माण का दौर था। कुषाण काल भारत के इतिहास को ऊंचाइयाँ प्रदा करता है। असंख्य कुषाण भारतीय धर्मों के अनुयायी बन ग कुषाणों ने भारतीय ढ़ंग को अपना लिया, समय के साथ वह भार भूमि में एकाकार हो गए। अन्त में कुषाणों ने भारत की संस्कृति क आत्मसात कर उसकी मुख्यधारा में विलीन हो गए।

कनिष्क का मूल्यांकन

साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि लगभग 23 वर्ष त शासन करने के पश्चात् भी कनिष्क निरन्तर युद्धरत रहा, इसी त आकर उसके सेनापतियों ने उसकी हत्या कर दी थी। कनिष प्राचीन भारत के महान्तम शासकों में एक था। एक महान् योद्ध साम्राज्य निर्माता, कलाकारों तथा विद्वानों का आश्रयदाता था अपनी सैन्य सफलताओं में वह समुद्रगुप्त का अग्रगामी था हर्षवर्धन के समान वह बौद्ध धर्म का प्रचारक था तथा अशोक क ही तरह एक महान् निर्माता भी था। बौद्ध अनुश्रुतियों में कनिष्क अनेक निर्माणों का उल्लेख मिलता है। कनिष्क की तुलना अशो से की गई है। बौद्ध धर्म के प्रभाव से दोनों में महान् परिवर्तन हुए धर्माचरण में कनिष्क हमें अशोक का स्मरण कराता है। बौद्ध धर्म सुधार के लिये उसने अशोक की तरह बौद्ध संगीति का आयोज किया। धर्मात्मा होने के साथ–साथ वह विद्यानुरागी भी था उसका दरबार सम्राट विक्रमादित्य के समान विद्वानों से अलंकृ था। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त एक यूनान अभियन्त 'आगिसिल्स' भी उसके दरबार में था। विद्वानों के सहयोग से उस संस्कृत भाषा की उन्नति में सहयोग दिया। कनिष्क अपनी मुद्राओ के लिए भी इतिहास में प्रसिद्ध है। उसकी स्वर्ण मुद्राएँ यह बता हैं कि देश उस समय कितना सम्पन्न था। रोमन साम्राज्य मैत्रीपूर्ण सम्बंध होने के कारण भारत–रोम व्यापार में उस सम असीमित उन्नति हुई। भारत में वस्त्र, आभूषण व प्रसाधन सामग्र निर्यात की जाती थी तथा उसके स्थान पर सोना भारत आता था व्यापार का प्रमुख केन्द्र व प्रमुख व्यापारिक मार्गों से जुड़ा होने

कारण बैक्ट्रिया कनिष्क के साम्राज्य का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। उपर्युक्त उपलब्धियों के आधार पर कनिष्क को प्राचीन भारत के विदेशी शासकों में महानतम् स्थान देना उचित ही है।

कुषाण साम्राज्य का पतन– महान कुषाण साम्राज्य कनिष्क प्रथम के समय में अपने गौरव के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। इसी समय में कुषाण साम्राज्य से केवल भारत के ही नहीं बल्कि मध्य एशिया के शासक भी भय खाते थे। किन्तु इस गौरव को कनिष्क प्रथम के उत्तराधिकारी अक्षुण्ण न रख सके। और उनके अधिकांश राज्य भारतीय शासकों के हाथ में आ गए। उसमें मुख्यतः नाग, मालव और कुणिन्द वंश अथवा जातियां थी। एक मत के अनुसार उनके पतन के जिम्मेदार कारणों में महत्वपूर्ण कारण उनका भारतीय जातियों में घुल–मिल जाना रहा है। इरान में सस्सैनियम साम्राज्य के उदय को भी कुछ इतिहासकार उनकी अवनति के कारणों में गिनते हैं। जिसके कारण कुषाण साम्राज्य समाप्त हो गया।

हूण

हूणों की उत्पत्ति को लेकर इतिहासकारों में एक मत का अभाव है। अधिकतर इतिहासकारों का मत है कि हुण मंगोलों की तरह ही मध्य एशिया की एक खनाबदोश व बर्बर जाति थी इन्होंने भारत की धन सम्पदा को खूब लूटा, कुछ इतिहासकार इनको बंजारो व गुर्जरों की उपजाति की संज्ञा भी देते है तो कुछ राजपूतों के पूर्वज के रूप में भी इन्हें स्वीकार करते है। हूणों की उत्पत्ति मूलतः काकेशस से मानी जाती है। वहां से इन्होंने अपना विस्तार मध्य व दक्षिणी ऐशिया के अन्य देशों में फैलाना शुरू किया। भारत में इनका प्रवेश पश्चिम से हुआ। जिसका समय लगभग 450 ईस्वी माना जाता है। हूणों द्वारा चलाए गए स्वर्ण सिक्के को हूण कहा जाता था। इस जाति के लोगों को चीन में हुयान या हूण कहा जाता है जो चीन के हुन्नाव प्रदेश से संबंधित है।

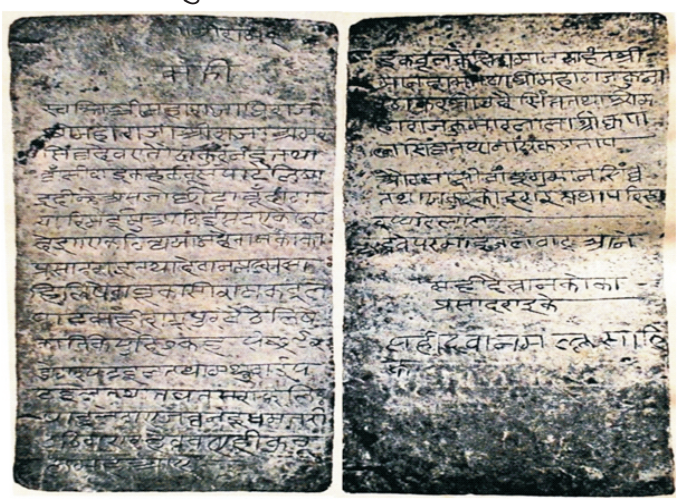

हूण शासकों की लिपि

स्कन्दगुप्त एवं हूण आक्रमण

हूण भारत के राजनैतिक नक्षत्र पर तब आते है जब शक्तिशाली गुप्त शासक स्कन्दगुप्त को उनके शासनकाल में मध्य एशिया की इस हूण जाति के लगातार सैकड़ों हमलों के द्वारा ललकारा गया। यद्यपि स्कन्दगुप्त ने उन्हें सफल तो नहीं होने दिया पर स्कन्दगुप्त की विजयश्री भी धुंधली ही रही। स्कन्दगुप्त का अंतिम समय भी इन आक्रान्ताओं के साथ संघर्ष में ही व्यतीत हुआ। कालान्तर में गुप्तकाल की शक्ति के क्षीण होने के संधिकाल में हुणों के राजा तोरमाण ने आर्यावत अर्थात् मालवा (मध्यप्रदेश) को विजय करने के बाद भारत में स्थायी निवास बना लिया। तोरमान के बाद उसके पुत्र मिहिरकुल या मिहिरगुल ने पंजाब पर आक्रमण पर उसे अपने अधीन कर लिया।

हूण राजा तोरमान– तोरमान हूणों का सबसे प्रतापी राजा था, उसके पुत्र मिहिर कुल व तोरमाण ने मथुरा व तक्षशिला में संयुक्त रूप से किया और वहां बहुत रक्तपात किया। जैन ग्रन्थ कुवलयमाल के अनुसार तोरमान चन्द्रभागा नदी के किनारे स्थित पवैय्या नगरी से भारत पर शासन करता था। इतिहासकारों के अनुसार पवैय्या नगरी ग्वालियर के पास स्थित थी।

यशोवर्मन द्वारा हूणों का दमन

हूणों के अत्याचार का मुकाबला स्थानीय शासक यशोवर्मन और बालदित्य ने मिलकर किया। यह समय 528 ईस्वी बताया जाता हैं। यशोवर्मन के आक्रमण से हूण परास्त जरूर हो गये थे, किन्तु वे अपने मूलस्थान मध्यएशिया नहीं गए। बल्कि हिन्दू धर्म व संस्कृति को आत्मसात करके इसके अभिन्न अंग बन गए और इसी में विलीन हो गए।

धर्म – ऐसा माना जाता है कि हुणों का धर्म शैव धर्म था, उन्होंने ही हर–हर महादेव का नारा दिया था। हूण जाति के बहादुर व पराक्रमी होने में कोई संदेह नहीं है। यह बात भी इतिहास सम्मत है कि उन्होंने भारत भूमि को ही आत्मसात कर लिया। अतः इतिहासकारों का यह कहना न्यायसंगत है कि आठवीं शताब्दी के राजपूत युग में हूणों का रक्त मिश्रित रहा होगा।

उद्देश्य एवं प्रभाव – हूण मध्य एशिया से नरसंहारक, क्रूर व बर्बर जाति के रूप में हमलावर की शक्ल लिए भारत पर चढ़ आए थे। किन्तु अन्त में भारतीय संस्कृति के रीति–रिवाजों को आत्मसात करके इसकी मुख्यधारा में विलीन हो गए और अन्य आक्रमणकारियों की तरह सदा–सदा के लिए भारतीय बन गए।

हूणों के आक्रमण से गुप्त शासकों की कमजोरी का पता तो चलता ही है, उसके साथ ही पश्चिमी व मध्य एशिया की जातियों के आक्रमणों का सिलसिला भी शुरू हो चुका था।

अध्ययन बिन्दु

- मौर्योत्तर काल में केन्द्रीय व्यवस्था बिखरी हुई रही जो पुनः गुप्तकाल में स्थापित हो सकी।
- बौद्ध धर्म कुषाण शासक कनिष्क के समय ही हीनयान–महायान में विभाजित हो चुका था।
- यूनानियों के आगमन से सुन्दर सिक्के आरंभ हुए थे।
- राजा पोरस की वीरता की तारीफ सिकन्दर ने की थी।
- मिलिन्दपन्ह पुस्तक में मेनाण्डर व बौद्ध विद्वान भिक्षु नागसेन के बीच के वार्तालाप का विवरण है।
- मूर्तिकला की गांधा शैली में महात्मा बुद्ध के घुँघराले वालों

का उल्लेख है।

- ❖ शक शासकों की पाँच शाखाएँ थी जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण नासिक व उज्जैन शाखा थी।
- ❖ भारतीय समाज की धारा में विदेशियों का समावेश हो चुका था।
- ❖ सिकन्दर व मेनाण्डर दोनों यूनानी शासक थे।
- ❖ मेनाण्डर हिन्द–यवन शासक था।
- ❖ रूद्रदमन महान शक शासक था।
- ❖ कुषाणों का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा कनिष्क था।
- ❖ कुषाणों का कार्यकाल सम्पन्न व समृद्धि का काल था।
- ❖ जूनागढ़ अभिलेख में रूद्रदमन की विजयों का उल्लेख मिलता है।
- ❖ कनिष्क बौद्ध धर्म का प्रचारक व अनुयायी था।
- ❖ महर्षि चरक व सुश्रुत कनिष्क के राजवैद्य थे।
- ❖ शकों की दो शाखाएँ थी पार्थियन व बैक्ट्रीयन।

अभ्यासार्थ–प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. प्राचीन इतिहासकार कल्हण की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है:–
   (अ) इण्डिका (ब) सूर्य–अलंकार
   (स) राजतरंगिनी (द) दिव्यादान ( )

2. चरक संहिता के रचयिता महर्षि चरक किस शासक के दरबार की शोभा बढ़ाते थे :–
   (अ) कनिष्क (ब) रूद्रदमन
   (स) सिकन्दर (द) चन्द्रगुप्त ( )

3. शकों के प्रसिद्ध शासक का नाम निम्नलिखित में से था:–
   (अ) यशोवर्मन (ब) रूद्रदमन
   (स) हर्षवर्द्धन (द) अशोक ( )

4. त्रिपिटक संबंधित है :–
   (अ) बौद्ध धर्म से (ब) जैन धर्म से
   (स) ईसाई धर्म से (द) मुस्लिम धर्म से ( )

5. जूनागढ़ अभिलेख किसकी जानकारी उपलब्ध करवाता है:–
   (अ) चीनी शासक की (ब) कुषाण शासक की
   (स) यूनानी शासक की (द) शक शासक की ( )

6. बौद्ध धर्म का विभाजन किसके काल में हुआ था :–
   (अ) पृथ्वीराज (ब) रूद्रदमन
   (स) उदयराज (द) कनिष्क ( )

7. बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति का स्थान था :–
   (अ) पेशावर (ब) कुण्डलवन (कश्मीर)
   (स) उज्जैन (द) मथुरा ( )

8. हूणों का सर्वाधिक संघर्ष निम्न में किसके साथ हुआ था :–
   (अ) चन्द्रगुप्त (ब) घटोत्कच
   (स) स्कन्दगुप्त (द) समुद्रगुप्त ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (अधिकतम दो पंक्तियों में उत्तर दो)

1. मेगस्थनीज की पुस्तक का नाम बताइए ।
2. शून्यवाद के प्रर्वतक कौन थे ?
3. सिकन्दर कहाँ का शासक था ?
4. हिन्दू राजा पोरस ने किससे मुकाबला किया था ?
5. ''मिलिन्दपन्ह'' पुस्तक किस शासक को समर्पित है ?
6. भारतीय व यूनानी मिश्रण से किस शैली की मूर्तिकला का विकास हुआ था ?
7. शकों को किस चीन जाति ने परास्त किया था ?
8. पराक्रम व साहस के लिए इस काल के शासक किस उपाधि को धारण करते थे ?
9. सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार करवाने वाले शासक का नाम क्या था ?
10. संस्कृत भाषा को बढ़ावा देने वाला शासक कौन था ?
11. कुषाण वंश का संस्थापक कौन था ?
12. ''आक्सस नदी से पूर्व में गंगा नदी तक मध्य एशिया में खुरासन से लेकर उत्तर–प्रदेश में वाराणसी तक'' कौन शासक राज्य करता था ?
13. बौद्ध धर्म किन दो शाखाओं में विभक्त हो गया था ?
14. प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुमित्र ने किस सभा (संगीति) की अध्यक्षता की थी ?
15. विदेशी व्यापार की समृद्धि को प्रदर्शित करने वाले चीन से रोम तक फैले मार्ग को किस नाम से जाना जाता था ?
16. किस विद्वान को भारतीय आइन्स्टीन कहा जाता है?
17. पाटलिपुत्र का संबंध दक्षिण में किस बंदरगाह से था ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (अधिकतम आठ पंक्तियों में उत्तर दो)

1. हूण शासक तोरमाण से मिलकर किन भारतीय शासकों ने मुकाबला किया ?
2. विदेशी आक्रान्तकारी वंशों का नाम क्रमशः लिखिए।
3. बाह्य आक्रमणों की जानकारी देने वाले स्त्रोतों के बारे में संक्षेप में जानकारी दीजिए।
4. महान कवि अश्वघोष की रचनाओं का नाम लिखो।
5. यूनानी आक्रमण के समय भारतीय राजनैतिक स्थिति को अपने शब्दों में लिखो।

6. ''राजा पुरु अथवा पोरस का प्रतिरोध पराक्रम व साहस से परिपूर्ण था'' इस वाक्य को स्पष्ट करें।
7. सिकन्दर की मृत्यु के बाद किस यूनानी शासक ने आक्रमण का दूसरा चरण शुरू किया व उसका क्या परिणाम हुआ ?
8. राजा मेनाण्डर पर 15 पंक्तियाँ लिखिए।
9. मुद्रा (सिक्के) के क्षेत्र में यूनानी मुद्रा की विशेषताएँ बताइए।
10. ''शक शासक रूद्रदमन को जनकल्याण के लिए स्मरण किया जाऐगा'' इसके पक्ष में अपने तर्क संक्षेप में लिखिए।
11. बौद्ध धर्म के उत्थान हेतु अशोक के बाद सर्वाधिक रूप से कुषाण शासक कनिष्क को श्रेय जाता है। समझाइए।
12. कुषाण शासक कनिष्क किन विद्वानों, साहित्यकारों व दार्शनिकों का आश्रयदाता था।
13. विदेशी व्यापार की उन्नति का काल किसे कहेंगे व क्यों ?
14. ''गान्धार कला'' भारतीय मूर्तिकला का नवीन रूप था। इसकी विशेषताओं को बताइए।
15. कनिष्क के सैनिक अभियानों का उल्लेख करिए।
16. यूनानी आक्रमण के प्रभाव को रेखांकित करिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग चार–पाँच पृष्ठों में उत्तर दीजिए)

1. ''भारतीय समाज की धारा में विदेशियों का समावेश'' विषय पर विस्तार से लिखो।
2. कुषाण राजा कनिष्क का एक महान शासक के रूप में मूल्यांकन करते हुए उसके कार्यकाल की विशेषताओं का वर्णन करो।
3. भारतीय यूनानी राजा मेनान्डर की उपलब्धियाँ बताइए।
4. कुषाण कालीन समाज, धर्म व वाणिज्य–व्यापार का वर्णन करिए।
5. ''शक राजा रूद्रदमन एक महान शासक था।'' समझाइए।

उत्तरमाला (बहुचयनात्मक प्रश्नों की)

1.	(स)	2.	(अ)	3.	(ब)	4	(अ)
5.	(द)	6.	(द)	7.	(ब)	8.	(स)

.....

अध्याय 4

मुगल आक्रमण : प्रकार और प्रभाव

अरब आक्रमण

विश्व के किसी भी देश ने अरब तथा तुर्कों के आक्रमण का इतना लम्बा, दृढ़ और सफल मुकाबला नहीं किया जितना मध्य युग के हिन्दुस्तान ने। एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के अनेक देशों ने अरबों के आक्रमणों के आगे कुछ ही वर्षों में घुटने टेक दिए थे। अरबों ने सर्वप्रथम सीरिया पर आक्रमण किया, एक वर्ष (635–36 ई.) में ही राजधानी दमिश्क ने आत्मसमर्पण कर दिया। इराक का पतन भी बिना युद्ध के ही 637 ई. में हो गया। 637 ई. में केसेडिया के प्रसिद्ध युद्ध में विजय प्राप्त करने के पाँच वर्ष के भीतर ही अरबों का फारस के सम्पूर्ण विशाल साम्राज्य पर अधिकार हो गया और 642–50 ई. के दौरान उन्होंने मध्य एशिया को जीत लिया। 643 ई. में अरब सैनिक भारत की सीमा तक पहुँच गए। 711 ई. में सेनापति तारीक ने स्पेन के राजा राड्रिक को पराजित किया किन्तु सिंध ने पिचहत्तर वर्षों तक सफल प्रतिरोध किया।

भारत पर अरब आक्रमणों के कारण

1. इस्लाम ने अरबवासियों को संगठित कर उनमें मजहबी प्रचार की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न कर दी थी।अन्य देशों की तरह भारत में भी इस्लाम के प्रसार के उद्देश्य ने उन्हें आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।

2. खलीफा इस्लामी जगत का मजहबी प्रमुख ही नहीं अपितु राजनैतिक अधिकारी भी होता था। ऐसे में साम्राज्य विस्तार की भावना होना भी स्वाभाविक था।

3. अरबवासी भारत की आर्थिक समृद्धि से परिचित थे। वे यहाँ आक्रमण कर धन प्राप्त करना चाहते थे।

अरब आक्रमण – हजरत मुहम्मद की 632 ई. में मृत्यु के बाद भारत पर अरबी आक्रमणों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। खलीफा उमर के शासनकाल में 636 ई. में भारतीय प्रदेशों को लूटने के लिए मुम्बई के थाना नामक स्थान पर अरबों ने आक्रमण किया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। कालान्तर में उम्मैया वंश के शासनकाल के दौरान अब्दुल्ला के नेतृत्व में अरबी सेना ने सिंध के उस पार किरमार, सीस्तान व मकरान पर अधिकार कर लिया। खलीफा ने अब्दुल्ला को इसके आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी और अरबी आक्रमण यहीं तक सीमित रह गया।

दाहिर सेन

711 ई. में सिंध के समुद्री डाकुओं द्वारा स्थानीय बन्दरगाह देवल पर अरबी जहाज को लूट लिया गया। इस समय सिंध में दाहिर नामक ब्राह्मण राजा का शासन था। दाहिर के राज्य की सीमाएँ उत्तर में कश्मीर और पूर्व में प्रतिहारों के कन्नौज तक फैली हुई थी। पश्चिम में उसकी सीमाओं में मकरान या बलूचिस्तान का प्रदेश सम्मिलित था। दाहिर द्वारा अरबी जहाज लूटने की घटना का उपयुक्त स्पष्टीकरण नहीं दिए जाने को तात्कालिक कारण बनाकर ईराक के गवर्नर हज्जाज ने खलीफा वलीद से अनुमति प्राप्त कर सिंध पर आक्रमण के लिए सेना भेज दी। प्रारम्भिक दो अभियानों में हज्जाज के सेनापतियों उबैदुल्ला तथा बुदैल को असफलता का सामना करना पड़ा और दोनों मौत के घाट उतार दिए गये। इसके बाद हज्जाज ने अपने चचेरे भाई व दामाद सत्रह वर्षीय नवयुवक मुहम्मद बिन कासिम को भेजा। देवल पहुँचते ही उसने नगर का घेरा डालने की तैयारी की परन्तु बीच में पत्थर की सुदृढ दीवार से घिरा हुआ 120 फुट ऊँचा एक विशाल मंदिर आ गया। मंदिर का एक देशद्रोही पुरोहित अरबों से जा मिला और उसने सूचना दी कि जब तक ताबीज बंधा वह लाल झण्डा मंदिर पर लहराता रहेगा, तब तक नगर को जीता नहीं जा सकता। शीघ्र ही मुहम्मद कासिम ने 'मंजनीक' द्वारा इस ध्वज को गिरा डाला। ध्वज गिरने से नगर की रक्षा करने वाले सैनिक हतोत्साहित तथा अरब सेना उत्साहित हुई। कासिम ने नगर पर अधिकार करने के बाद 17 वर्ष से अधिक अवस्था वाले तमाम लोगों को मार डाला तथा छोटे बालक व स्त्रियों को कैद कर लिया। मंदिर की लूट में काफी सामान हाथ लगा जिसका पांचवां हिस्सा हज्जाज के पास भेज दिया गया और शेष सेना में बांट दिया। इसके बाद उसने आगे बढ़कर निरून, सेहवान और सीसम पर भी अपना अधिकार कर लिया। अंत में 20 जून 712 ई. को रावर के युद्ध में भारतीय और अरबी सेनाओं के बीच भयंकर संघर्ष हुआ। दाहिर शत्रुओं को काटता हुआ अपने साथियों सहित अरब सेना के मध्य भाग तक पहुँच गया। हाथी पर सवार दाहिर अपनी सेना के साथ डटकर युद्ध कर रहा था कि अनायास ही एक तीर उसके शरीर में आ घुसा और वह वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके बाद दाहिर की पत्नी रानी बाई ने किले की रक्षा का

प्रयत्न किया किन्तु इसमें असफल रहने पर उसने जौहर कर अपने सम्मान की रक्षा की। रावर की विजय के बाद कासिम ने ब्राह्मणवाद पर अधिकार कर लिया। यहाँ कासिम के हाथ दाहिर की दूसरी रानी लाडी और दो पुत्रियाँ सूर्यदेवी व परमलदेवी लगी। ब्राह्मणवाद के बाद कासिम ने सिंध की राजधानी आरोर (आलोर) और मुल्तान पर भी अधिकार कर लिया। मुल्तान विजय भारत में अरबों की अंतिम विजय थी। यहाँ उनको इतना धन हाथ लगा कि उन्होंने मुल्तान का नाम बदलकर 'स्वर्णनगर' रख दिया।

मुहम्मद बिन कासिम का अंत– इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार दाहिर की राजकुमारियों का रुप–लावण्य देखकर खलीफा ने उनके सामने प्रेम की याचना की। वे दोनों अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहती थी। इस कारण मौका देखकर उन्होंने खलीफा से शिकायत की कि हम आपकी शैय्या पर पैर रखने योग्य नहीं हैं, यहाँ भेजने के पहले ही कासिम ने हमारा कौमार्य भंग कर दिया। इतना सुनते ही खलीफा आगबबूला हो गया और उसने तत्काल आज्ञापत्र लिखवाया कि इसे देखते ही मुहम्मद बिन कासिम को बैल के चमड़े में जीवित सिलाई कर हमारे पास भेज दो। हुक्म की उसी समय तामील हुआ। मार्ग में तीसरे दिन कासिम मर गया और उसी अवस्था में खलीफा के पास पहुँचाया गया। खलीफा ने उन दोनों राजकुमारियों को बुलवाया और उन्हीं के सामने बैल का चमड़ा खुलवा कर कासिम का शव उन्हें दिखलाया और कहा कि खुदा के खलीफा का अपमान करने वालों को मैं इस प्रकार दण्ड देता हूँ। कासिम का मृत शरीर देखते ही राजकुमारी के मुख पर अपना मनोरथ सफल होने की प्रसन्नता छा गई, परन्तु साथ ही मंद मुस्कराइट और कटाक्ष के साथ उसने खलीफा को कहा कि 'ऐ खलीफा! कासिम ने हमारा सतीत्व नष्ट नहीं किया। उसने कभी आंख उठाकर भी हमें कुदृष्टि से नहीं देखा परन्तु उसने हमारे माता, पिता, भाई और देशबंधुओं को मारा था इसलिए उससे अपना बदला लेने के लिए हमने यह मिथ्या दोष उस पर लगाया था। वीर बालिकाओं के ये वचन सुनते ही खलीफा सन्न हो गया और उन दोनों को जिंदा जलवा दिया।'

मुहम्मद बिन कासिम के लौटने के बाद 715 ई. में सिंध में हिन्दू राजाओं का पुनर्जागरण हुआ। बालादूरी के अनुसार "अल–हिन्द के राजाओ ने अपने साम्राज्य में वापसी की और हुल्लीशाह (दाहिर का पुत्र जयसिंह) ब्राह्मणावाद लौट कर मुखिया के पद पर आसीन हो गया।" तारीख–ए–मासूमी में भी लिखा है कि मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु के कुछ समय बाद ही भारत के लोगों ने विद्रोह का शंखनाद कर अरबी शासन को उखाड़ फैंका। जयसिंह ने अपनी स्वाधीनता के लिए सिंध के सूबेदार जुनैद के साथ संघर्ष किया और लड़ता हुआ मारा गया।

भारत से सम्पर्क का अरबों पर प्रभाव – अरबों की सिंध विजय का राजनीतिक परिणाम सिर्फ यह निकला कि सिंध का सम्बन्ध कुछ समय के लिए भारत से टूट गया और वह इस्लामी साम्राज्य का हिस्सा बन गया किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से भारत ने अरबों पर विजय प्राप्त की। भारतीय दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा और ज्योतिष ने अरबों को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने कई भारतीय संस्कृत ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद करवाया जिनमें ब्रह्मगुप्त का 'ब्रह्म सिद्वान्त' तथा 'खण्ड खांड्यक' अधिक प्रसिद्ध हैं। अरब के लोगों ने अंक, दशमलव पद्धति, चिकित्सा व खगोलशास्त्र के कई मौलिक सिद्धान्त भारतीयों से सीखे और कला तथा साहित्य के क्षेत्र में भी भारतीय पद्धतियों को अपनाया। भारतीय दर्शन, साहित्य व कला की अनेक बातें अरबों के माध्यम से यूरोप के लोगों ने सीखी। इस प्रकार अरबों द्वारा भारतीय ज्ञान पश्चिमी देशों में पहुँचने में सफल रहा।

अरबों की सफलता के कारण– सिंध पर अरबों की सफलता के कई कारण थे। दाहिर के शासन में सामान्य वर्ग असंतुष्ट था। राज्य के अधिकांश भागों में असंतोष और अव्यवस्था व्याप्त थी। इस कारण अरब आक्रमण के समय उसे जनसहयोग नहीं मिल पाया। दाहिर स्वयं जनता में अप्रिय था क्योंकि उसका पिता राज्य का वास्तविक अधिकारी नहीं था। समकालीन भारतीय शासकों में आपसी तालमेल, सौहार्द तथा सहयोग की भावना नहीं थी और व्यक्तिगत स्वार्थ पनप रहे थे। सैनिक शक्ति बढ़ाने और विदेशी आक्रमण की संभावना को ध्यान में रखकर किसी भी राज्य ने अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाने की कोशिश नहीं की थी। सैनिक गतिविधियों का उत्तरदायित्व मात्र राजपूतों के कंधों तक सिमट गया था जो पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या के कारण आपस में लड़ने में लगे थे। मुहम्मद बिन कासिम की योग्यता, साहस तथा नेतृत्व शक्ति के साथ अरबों में मजहबी प्रचार के जोश, धन प्राप्ति की प्रबल इच्छा और खलीफा से मिलने वाले सैनिक सहयोग ने भी उनकी सफलता में अपना योगदान दिया।

नागभट्ट

नागभट्ट प्रथम (730–756 ई.) जालौर, अवन्ति और कन्नौज के गुर्जर–प्रतिहार वंश का संस्थापक कहा जाता है। उसने चावड़ों से भीनमाल जीतने के बाद आबू, जालौर आदि स्थानों पर भी अपना अधिकार किया। इस राज्य विस्तार के बाद उसने भीनमाल के स्थान पर जालौर को अपनी राजधानी बना लिया। मालवा में राज्य विस्तार कर उसने अवन्ति (उज्जैन) को भी अपनी राजधानी बनाया।

नागभट्ट प्रथम के समय सिन्ध की दिशा से बिलोचों तथा अरबों ने भारत पर आक्रमण किया। उसने न केवल मुस्लिम आक्रमण से पश्चिम भारत की रक्षा की अपितु उनके रौंदे हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया। ग्वालियर प्रशस्ति में नागभट्ट प्रथम को म्लेच्छों (विदेशी आक्रमणकारी) का दमनकारक और दीनों का उद्धारक होने के कारण 'नारायण' उपाधि से विभूषित किया गया है। मुस्लिम लेखक अल बिलादुरी के विवरण से भी ज्ञात होता है कि समकालीन अरब शासक जुनैद को मालवा के विरुद्ध सफलता नहीं मिली। नौसारी अभिलेख में अरबों द्वारा पराजित राजाओं के नाम दिए गए हैं किन्तु इस सूची में नागभट्ट प्रथम का नाम न होना उपरोक्त तथ्यों को प्रमाणित करता है। अभिलेखों में उसे राम का प्रतिहार, मेघनाथ के युद्ध का अवरोधक

तथा इन्द्र के गर्व का नाश करने वाला बताया गया है। नागभट्ट प्रथम के बाद क्रमशः कुकुस्थ, देवराज व वत्सराज शासक बने।

वत्सराज की मृत्यु के बाद सुन्दरदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (795–833 ई.) गुर्जर–प्रतिहारों के सिंहासन पर बैठा। इसने अपने पराक्रम से गुर्जर–प्रतिहार वंश की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर उसे चरम पर पहुँचा दिया। वह प्रारम्भ में दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट वंश के साथ संघर्ष में पराजित हुआ किन्तु बाद में राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय की घरेलू परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए चक्रायुद्ध को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इस विजय के बाद कन्नौज गुर्जर–प्रतिहारों की नई राजधानी बन गई।

कन्नौज का शासक चक्रायुद्ध बंगाल के शासक धर्मपाल का आश्रित था। अतः धर्मपाल ने नागभट्ट से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। मुंगेर के युद्ध में नागभट्ट विजयी रहा और पराजित धर्मपाल बंगाल भाग गया। चाकसू अभिलेख के अनुसार शंकरगण ने गौड़ (बंगाल) नरेश को हराया और समस्त विश्व को जीतकर अपने स्वामी (नागभट्ट द्वितीय) को समर्पित कर दिया। मुंगेर के युद्ध में मारवाड़ के शासक कक्क तथा सामन्त शंकरगण की उपस्थिति यह सिद्ध करती है कि राजस्थान का बहुत बड़ा भाग नागभट्ट के नियन्त्रण में था। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार ''आंध्र, सिंधु, विदर्भ तथा कलिंग के नरेशों ने उसकी युवाशक्ति के समक्ष इस प्रकार समर्पण किया जिस प्रकार पतंगे अग्नि में करते हैं। उसकी महान् विशेषताओं की ख्याति सभी में फैल गई जबकि उसने आनर्त, मालव, मत्स्य, किरात, तुरुष्क तथा वत्स के पर्वतीय दुर्गों के राजाओं पर बलपूर्वक विजय प्राप्त की।'' यहाँ तुरुष्कों का समीकरण सिंध के अरबों के साथ किया गया है। दलपत विजय की रचना 'खुमानरासो' से गुहिल खुम्माण की मुसलमानों पर विजय की जानकारी मिलती है, जो नागभट्ट द्वितीय का सामन्त था। अपनी विजयों के फलस्वरूप नागभट्ट द्वितीय उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली शासक बन गया। इस उपलक्ष में उसने परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की। चन्द्रप्रभा सूरि के ग्रंथ 'प्रभावक चरित' के अनुसार नागभट्ट द्वितीय ने 833 ई. में गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली। संभवतः यह आत्महत्या न होकर पूर्व के कुछ शासकों द्वारा किये गये अंतिम धार्मिक कृत्य के रूप में मृत्यु को वरण करने के समान था। वह अपने वंश के सबसे योग्य व सफल शासकों में से एक था। राष्ट्रकूट व पाल वंश की तुलना में न्यून साधन होते हुए भी वह एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने में समर्थ हुआ जिसके कारण उसके प्रतिद्वन्द्वियों को अपनी सुरक्षा की चिन्ता रही।

बप्पा रावल

बप्पा रावल को मेवाड़ के गुहिल वंश का वास्तविक संस्थापक कहा जाता है। डॉ. ओझा के अनुसार 'बप्पा रावल' किसी व्यक्ति विशेष का नाम न होकर कालभोज नामक शासक की उपाधि थी। मुहणौत नैणसी की ख्यात के अनुसार वह ऋषि हारीत राशि की गायें चराता था। बप्पा की सेवा से प्रसन्न होकर हारीत राशि ने महादेव को प्रसन्न कर उसके लिए मेवाड़ का राज्य माँग लिया।

बप्पा चित्तौड़ के शासक मान मोरी की सेवा में चला गया। इसी समय विदेशी मुगल सेना ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। राजा मान ने अपने सामन्तों को विदेशी सेना का मुकाबला करने के लिए कहा किन्तु उन्होंने इंकार कर दिया। अंत में बप्पा रावल ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए युद्ध के लिए प्रस्थान किया। बप्पा के अद्भुत पराक्रम के सामने विदेशी आक्रमणकारी टिक नहीं पाये और सिंध की तरफ भाग निकले। शत्रुओं का पीछा करता हुआ बप्पा राजधानी गजनी तक पहुँच गये। गजनी के शासक सलीम को हराकर बप्पा ने अपने भानजे को वहाँ के सिंहासन पर बैठाया। बप्पा ने सलीम की पुत्री के साथ विवाह किया और चित्तौड़ लौट आया।

चित्तौड़ में राजा मान और सामंतों के बीच तनाव पैदा होने के बाद कई सामंत दरबार छोड़कर चले गए। इन विद्रोही सामंतों ने बप्पा को शासक बनने के लिए राजी कर 734 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। बप्पा ने चित्तौड़ पर अधिकार कर तीन उपाधियाँ – 'हिन्दू सूर्य', 'राजगुरु' और 'चक्कवै' धारण की। पचास वर्ष की आयु में बप्पा ने खुरासान पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गई। इतिहासकार ओझा के अनुसार बप्पा का देहान्त नागदा में हुआ और उसका समाधि स्थल 'बापा रावल' के नाम से प्रसिद्ध है।

बप्पा रावल ने अपने पूर्वजों की भाँति सोने के सिक्के का प्रचलन किया जो उसकी प्रतिभा और वैभव का प्रतीक है। 115 ग्रेन के उसके सिक्के के दोनों तरफ कामधेनु, बछड़ा, शिवलिंग, नन्दी, दण्डवत करता हुआ पुरुष, नदी, मछली, त्रिशुल आदि का अंकन है। इतिहासकार सी. वी. वैद्य ने उसकी तुलना 'चार्ल्स

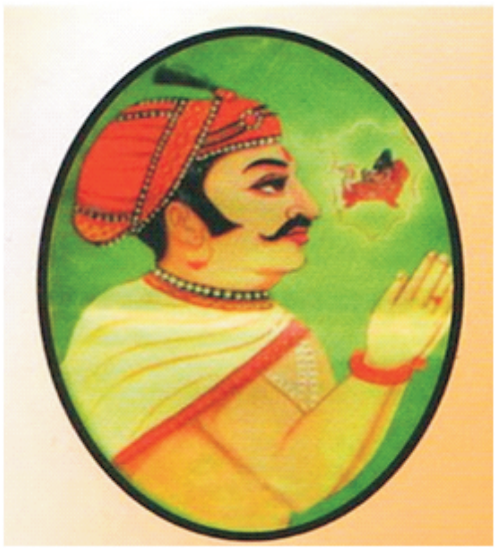

बप्पा रावल

मार्टेल' (मुगल सेनाओं को सर्वप्रथम पराजित करने वाला फ्रांसीसी सेनापति) के साथ करते हुए कहा है कि उसकी शौर्य की चट्टान के सामने अरब आक्रमण का ज्वार–भाटा टकराकर चूर–चूर हो गया। उसने इस्फन हान, कंधार, कश्मीर, इराक, ईरान, तूरान, काफरिस्तान आदि पश्चिमी देशों के शासकों को पराजित कर उन्हीं की पुत्रियों के साथ विवाह किया था। बप्पा के

सैन्य ठिकाने के कारण पाकिस्तान के शहर का नाम रावलपिंडी पड़ा।

तुर्क आक्रमण

आठवीं शताब्दी में होने वाले अरब आक्रमणों के बाद भारत लगभग दो शताब्दियों तक मुगल आक्रमणों से सुरक्षित रहा। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुगल आक्रमणों का सिलसिला एक बार फिर प्रारम्भ हुआ किन्तु इस बार आक्रमण अरबों के स्थान पर तुर्कों द्वारा किए गये थे। भारत पर आक्रमण करने वाला प्रथम तुर्क आक्रमणकारी गजनी का शासक सुबुक्तगीन था। 977 ई. में शासक बनने के बाद उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं का प्रसार करना प्रारम्भ किया। इस समय भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग पर शाही वंश के योग्य राजा जयपाल का शासन था। लम्बे संघर्ष के बाद धोखे व षड़यंत्र से सुबुक्तगीन विजयी रहा और उसने लमघान से पेशावर तक के भारतीय प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गई जिसके बाद उसके पुत्र इस्माइल और महमूद (गजनवी) क्रमशः गजनी के शासक बने। महमूद योग्य व महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने भारत पर कुल 17 बार आक्रमण किए जिनमें 1025 ई. में सोमनाथ मंदिर (गुजरात) पर किया गया उसका सोलहवाँ आक्रमण सर्वाधिक कुख्यात है। महमूद के आगमन की खबर सुनकर राजा भीमदेव अपने अनुयायियों सहित राजधानी छोड़कर भाग गया किन्तु सोमनाथ की साधारण जनता और पुजारी अपने स्थानों पर डटे रहे क्योंकि उनका विश्वास था कि भगवान सोमनाथ की उपस्थिति के कारण वे लोग पूर्णतया सुरक्षित हैं।

फरिश्ता के अनुसार सोमनाथ के लोगों ने पहले दिन आक्रमणकारियों का ऐसा प्रतिरोध किया कि उन्हें पीछे हटना पड़ा। दूसरे दिन शत्रु सेना नगर की दीवारों पर चढ़ने में सफल हो गई किन्तु नगर रक्षकों ने उन्हें वापिस उतरने के लिए बाध्य कर दिया। तीसरे दिन भयंकर प्रत्यक्ष युद्ध हुआ जिसमें अपनी सेना को बिखरता देखकर महमूद खुदा की मदद के लिए इबादत करने लगा। इब्न–अल–असीर के अनुसार हिन्दूओं की नियोजित सुरक्षा टूटने लगी तो उन्होंने आस्था की चरम शक्ति को प्रदर्शित किया। ''सुरक्षाकर्ताओं के झुंड के बाद झुंड सोमनाथ के मंदिर में प्रवेश करते रहे, वे बार–बार यह प्रण करते रहे कि वे मरते दम तक लड़ते रहेंगे यद्यपि कुछ ही जीवित रहे। अन्ततः महमूद ने बिना किसी प्रतिरोध के नगर पर अधिकार कर लिया और कत्लेआम की आज्ञा दी। 50,000 से अधिक स्त्री–पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया गया। विजय के बाद महमूद ने स्वयं सोमनाथ की मूर्ति को तोड़ा और उसके टुकड़ों को गजनी, मक्का व मदीना भिजवाकर वहाँ की प्रमुख मस्जिदों की सीढ़ियों के नीचे डलवा दिया। महमूद का अंतिम आक्रमण 1027 ई. में सिंध के जाटों के विरुद्ध हुआ क्योंकि पिछले आक्रमण के समय सोमनाथ से गजनी लौटते समय उसे इन लोगों द्वारा काफी क्षति पहुँचाई गई थी।

1173 ई. में गौर के शासक गियासुद्दीन ने गजनी पर अधिकार कर लिया और अपने छोटे भाई शिहाबुद्दीन को गजनी का शासक नियुक्त किया। यही शिहाबुद्दीन इतिहास में मुईजुद्दीन मुहम्मद गौरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गौरी महत्त्वाकांक्षी शासक था। गजनी का शासक बनने के बाद उसने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसके भारत पर आक्रमण के निम्नलिखित उद्देश्य थे :–

1. धन सम्पदा प्राप्त करना
2. साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा
3. पंजाब में गजनी और मुल्तान में इस्माइलिया वंश की सत्ता को नष्ट करना
4. इस्लाम धर्म का प्रचार करना

पृथ्वीराज चौहान (1177–1192 ई.)

मुहम्मद गौरी के भारत पर आक्रमणों के समय दिल्ली व अजमेर पर पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का शासन था जो इतिहास में 'रायपिथौरा' के नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज का जन्म 1166 ई. में हुआ था। वह अपने पिता सोमेश्वर की मृत्यु के बाद मात्र 11 वर्ष की आयु में चौहान साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। पृथ्वीराज की माँ कर्पूरदेवी कुशल राजनीतिज्ञा थी। इस कारण उसने प्रधानमंत्री कदम्बवास और सेनापति भुवनमल्ल की सहायता से राज्य का शासन आसानी से संभाल लिया। एक वर्ष तक माता के संरक्षण में रहने के बाद 1178 ई. में पृथ्वीराज ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। शीघ्र ही उसने उच्च पदों पर अपने विश्वसनीय अधिकारियों की नियुक्ति कर विजय नीति को क्रियान्वित करने का बीड़ा उठाया। इतिहासकार गोपीनाथ शर्मा के अनुसार इस विजय नीति के तीन पक्ष थे – स्वजनों के विरोध से मुक्ति पाना, पड़ौसी राज्यों का दमन तथा विदेशी शत्रुओं का मुकाबला।

सम्राट पृथ्वीराज चौहान

पृथ्वीराज चौहान की विजयें– पृथ्वीराज को अल्पव्यस्क देख कर उसके चाचा अपरगांग्य ने शासक बनने के लिए विद्रोह कर

दिया। पृथ्वीराज ने उसे परास्त कर उसकी हत्या कर डाली किन्तु विरोधी दल शांत नहीं हुआ। अपरगांग्य के छोटे भाई नागार्जुन ने विद्रोह का बिगुल बजाते हुए गुरूग्राम (गुड़गांव) पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज द्वारा सेना भेजने पर नागार्जुन गुरूग्राम (गुड़गांव) छोडकर भाग गया। उसके सेनापति देवभट्ट ने कुछ समय तक गुरूग्राम (गुड़गांव) को बचाने का प्रयास अवश्य किया किन्तु पृथ्वीराज की सेना सफल रही। विद्रोहियों को मौत के घाट उतार दिया गया और उनके सिर नगर की प्राचीरों पर लटका दिये गये जिससे भविष्य में अन्य शत्रु उनके विरोध का साहस न कर सकें। 1182 ई. में पृथ्वीराज ने गुड़गांव व हिसार के आसपास बसी हुई भण्डानक नामक उपद्रवी जाति को पराजित कर अपने राज्य की उत्तरी सीमा को सुरक्षित किया। समसामयिक लेखक जिनपति सूरि ने पृथ्वीराज द्वारा भण्डानकों के दमन का उल्लेख किया है।

प्रारम्भिक सफलताओं के बाद पृथ्वीराज ने प्राचीन भारतीय शासकों के समान दिग्विजय नीति अपनाने का फैसला किया। भण्डानकों के दमन के बाद उसकी सीमाएँ चन्देलों के महोबा राज्य से मिलने लग गई थी। अपने कुछ सैनिकों की हत्या का बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने 1182 ई. में महोबा राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में चंदेल शासक परमर्दीदेव के दो सेनापति आल्हा व ऊदल लड़ते हुए मारे गए। विजयी पृथ्वीराज पंजुनराय को महोबा का अधिकारी नियुक्त कर लौट आया।

पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने आबू की राजकुमारी इच्छिनी से विवाह कर गुजरात के चालुक्य शासक भीमदेव द्वितीय को अप्रसन्न कर दिया क्योंकि भीमदेव भी इच्छिनी के साथ विवाह का इच्छुक था। डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार दोनों शासकों के बीच संघर्ष का वास्तविक कारण उनके राज्यों की सीमाएँ मिलना और दोनों शासकों की महत्त्वाकांक्षायें थी। दोनों शासकों के बीच छोटी–मोटी झड़पों के बाद जगदेव प्रतिहार की मध्यस्थता से संधि हो गई किन्तु इस संधि से परम्परागत वैमनस्य समाप्त नहीं हुआ और चौहान–चालुक्य द्वेष भीतर ही भीतर सुलगता रहा।

पृथ्वीराज के पूर्व में स्थित कन्नौज के गहड़वाल राज्य का शासक इस समय जयचन्द्र था। दिल्ली पर नियन्त्रण को लेकर चौहानों और गहड़वालों के बीच परम्परागत वैमनस्य चला आ रहा था। पृथ्वीराज दिग्विजय योजना को पूर्णता प्रदान करने के लिए कन्नौज को अपने राज्य में मिलाना चाहता था, वहीं जयचन्द्र भी उसकी होड़ में विजय योजनाएँ बना रहा था। इस कारण दोनों के बीच संघर्ष होना अवश्यम्भावी था। पृथ्वीराज द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का बलपूर्वक अपहरण कर विवाह किया जाना दोनों शासकों के बीच संघर्ष का चरमोत्कर्ष था। अपनी पुत्री के अपहरण से जयचन्द्र पृथ्वीराज का पक्का शत्रु बन गया और बदला लेने का अवसर ढूंढने लगा। एक प्रचलित मत के अनुसार उसने सहायता का आश्वासन देकर मुहम्मद गौरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। पुरातन प्रबन्ध संग्रह के अनुसार गौरी के हाथों पृथ्वीराज की पराजय की खबर सुनकर जयचन्द्र ने अपनी राजधानी में खुशियाँ मनाई थी।

संयोगिता की कहानी– चन्दरबरदाई की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार जयचन्द्र और पृथ्वीराज चौहान के बीच संघर्ष का कारण पृथ्वीराज चौहान द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का अपहरण कर उसके साथ विवाह करना था। कथानक के अनुसार पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता के बीच प्रेम था किन्तु जयचन्द्र पृथ्वीराज के साथ शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों के चलते अपनी पुत्री संयोगिता का विवाह किसी अन्य राजा के साथ करना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने राजसूय यज्ञ के साथ संयोगिता के स्वयंवर का आयोजन किया। इस आयोजन में उसने पृथ्वीराज को छोड़कर सभी प्रमुख राजा–महाराजाओं को आमन्त्रित किया। इतना ही नहीं जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए उसकी मूर्ति बनवाकर द्वारपाल के स्थान पर लगवा दी। स्वयंवर के समय जब सभी राजा–महाराजा संयोगिता की वरमाला का इन्तजार कर रहे थे उस समय संयोगिता ने पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में वरमाला डाल दी। इसी वक्त पृथ्वीराज अपनी सेना सहित घटनास्थल पर पहुँच गया और संयोगिता को उठाकर ले गया। जयचन्द्र के सैनिकों से पृथ्वीराज को रोकने का प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे। डॉ. आर. एस. त्रिपाठी, गौरीशंकर हीराचन्द और विश्वेश्वरनाथ रेऊ जैसे इतिहासकारों ने इसकी ऐतिहासिकता को मात्र प्रेमाख्यान कहकर अस्वीकार कर दिया है जबकि डॉ. दशरथ शर्मा ने 'दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज' में संयोगिता की घटना को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार किया है।

पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के बीच संघर्ष– गजनी का गवर्नर नियुक्त होने के बाद मुहम्मद गौरी ने 1175 ई. में मुल्तान पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने गुजरात, सियालकोट और लाहौर के युद्धों में विजय हासिल कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। राजस्थानी स्रोतों के अनुसार इस दौरान उसकी पृथ्वीराज चौहान के साथ अनेक बार लड़ाइयाँ हुई और हर बार उसे पराजय का सामना ही करना पड़ा। पृथ्वीराज रासो में 21 तथा हम्मीर महाकाव्य में सात बार गौरी पर पृथ्वीराज की विजयों का दावा किया गया है। दोनों के बीच दो निर्णायक युद्ध हुए। 1191 ई. में लाहौर से रवाना होकर मुहम्मद गौरी तबरहिन्द नामक स्थान पर अधिकार करते हुए तराइन तक पहुँच गया। यहाँ दोनों पक्षों के बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें पृथ्वीराज चौहान के दिल्ली सामंत गोविन्दराज ने अपनी बर्छी के वार से मुहम्मद गौरी को घायल कर दिया। घायल गौरी अपनी सेना सहित गजनी भाग गया। पृथ्वीराज ने तबरहिन्द पर अधिकार कर काजी जियाउद्दीन को बंदी बना लिया जिसे बाद में एक बड़ी धनराशि के बदले रिहा कर दिया गया।

एक वर्ष बाद मुहम्मद गौरी अपनी सेना के साथ तराइन के मैदान में पुनः आ धमका। पृथ्वीराज उसका मुकाबला करने पहुँच गया किन्तु गौरी ने इस बार अपने शत्रु को संधि वार्ता के झांसे में फंसा लिया। कई दिन तक संधि वार्ता चलने के कारण चौहान सेना निश्चिंत होकर आमोद–प्रमोद में डूब गई। इसका फायदा उठाकर गौरी ने एक रात्रि अचानक आक्रमण कर दिया। राजपूत सेना इस अप्रत्याशित आक्रमण को झेल नहीं पाई और पराजित हुई। पराजित पृथ्वीराज चौहान को सिरसा के पास

सरस्वती नामक स्थान पर बंदी बना लिया गया। पृथ्वीराज रासो के अनुसार बंदी पृथ्वीराज को गौरी अपने साथ गजनी ले गया जहाँ शब्द भेदी बाण के प्रदर्शन के समय पृथ्वीराज ने गौरी को मार डाला। जबकि समकालीन इतिहासकार हसन निजामी के अनुसार तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी के अधीनस्थ शासक के रूप में अजमेर पर शासन किया था। इसामी के कथन के पक्ष में एक सिक्के का भी संदर्भ दिया जाता है जिसके एक तरफ मुहम्मद बिन साम और दूसरी तरफ पृथ्वीराज नाम अंकित है।

पृथ्वीराज चौहान की पराजय के कारण– विजेता होने के बावजूद पृथ्वीराज चौहान में दूरदर्शिता व कूटनीति का अभाव था। उसने अपने पड़ौसी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्व सम्बन्ध स्थापित नहीं किये अपितु उनके साथ युद्ध करके शत्रुता मोल ले ली। इसी कारण मुहम्मद गौरी के विरुद्ध संघर्ष में उसे उनका कोई सहयोग नहीं मिला। 1178 ई. में जब मुहम्मद गौरी ने गुजरात के शासक भीमदेव द्वितीय पर आक्रमण किया था, उस समय पृथ्वीराज ने गुजरात की कोई सहायता न कर एक भूल की। तराइन के प्रथम युद्ध में पराजित होकर भागती तुर्क सेना पर आक्रमण न करना भी उसकी एक भयंकर भूल सिद्ध हुई। यदि उस समय शत्रु सेना पर प्रबल आक्रमण करता तो मुहम्मद गौरी भारत पर पुनः आक्रमण करने के बारे में कभी नहीं सोचता। संयोगिता के साथ विवाह करने के बाद उसने राजकार्यों की उपेक्षा कर अपना जीवन विलासिता में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था।

पृथ्वीराज चौहान का मूल्यांकन– पृथ्वीराज एक वीर और साहसी शासक था। अपने शासनकाल के प्रारम्भ से ही वह युद्ध करता रहा जो उसके अच्छे सैनिक और सेनाध्यक्ष होने को प्रमाणित करता है। अनेक युद्धों में सफलता प्राप्त कर उसने 'दलपंगुल' (विश्वविजेता) की उपाधी धारण की। तराइन के द्वितीय युद्ध में मुहम्मद गौरी द्वारा छल–कपट का सहारा लेने से पूर्व वह किसी भी लड़ाई में नहीं हारा था। एक विजेता के साथ–साथ वह विद्यानुरागी था। उसके दरबार में अनेक विद्वान रहते थे जिनमें – विद्यापति गौड़, वागीश्वर, जनार्दन, जयानक, विश्वरूप, आशाधर आदि प्रमुख थे। चन्दरबरदाई उसका राजकवि था जिसका ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।

रणथम्भौर का हम्मीर चौहान (1282–1301 ई.)

हम्मीर अपने पिता जैत्रसिंह का तीसरा पुत्र था। सभी पुत्रों में योग्य होने के कारण उसका राज्यारोहण उत्सव जैत्रसिंह ने अपने जीवनकाल में ही 1282 ई. में सम्पन्न करवा दिया था। शासन का भार संभालने के बाद 1288 ई. तक हम्मीर ने दिग्विजय की नीति का अवलम्बन कर अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। विजित राज्यों को उसने धन लेकर छोड़ दिया। दिग्विजय के बाद हम्मीर ने कोटि यज्ञों का आयोजन किया जिससे उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। मेवाड़ के शासक समरसिंह को पराजित कर हम्मीर ने अपनी धाक सम्पूर्ण राजस्थान में जमा दी।

हम्मीर और जलालुद्दीन खिलजी– हम्मीर को अपनी शक्ति बढ़ाने का मौका इसलिए मिल गया कि इस दौरान दिल्ली में कमजोर सुल्तानों के कारण अव्यवस्था का दौर चल रहा था। 1290 ई. में दिल्ली का सुल्तान बनने के बाद जलालुद्दीन खिलजी ने हम्मीर की बढ़ती हुई शक्ति को समाप्त करने का निर्णय लिया। सुल्तान ने झाँई पर अधिकार कर रणथम्भौर को घेर लिया किन्तु सभी प्रयत्नों की असफलता के बाद शाही सेना को दिल्ली लौट जाना पड़ा। सुल्तान ने 1292 ई. में एक बार फिर रणथम्भौर विजय का प्रयास किया। हम्मीर के सफल प्रतिरोध के कारण इस बार भी उसे निराशा ही हाथ लगी। इस अभियान के समय जब मुगल सेना को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ रही थी, तब जलालुद्दीन ने यह कहते हुए दुर्ग का घेरा हटा लिया कि "मैं ऐसे सैंकड़ों किलों को भी मुसलमान के एक बाल के बराबर महत्त्व नहीं देता।" जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के इन अभियानों का आँखों देखा वर्णन अमीर खुसरो ने 'मिफ्ता–उल–फुतूह' नामक ग्रंथ में किया है।

हम्मीर और अलाउद्दीन खिलजी– 1296 ई. में अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी की हत्या कर दिल्ली का सुल्तान बन गया। कुछ वर्षों बाद ही अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये जिनके निम्नलिखित कारण थे –

1. रणथम्भौर सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण था। अलाउद्दीन खिलजी इस अभेद दुर्ग पर अधिकार कर राजपूत नरेशों पर अपनी धाक जमाना चाहता था।
2. रणथम्भौर दिल्ली के काफी निकट था। इस कारण यहाँ के चौहानों की बढ़ती हुई शक्ति को अलाउद्दीन खिलजी किसी भी स्थिति में सहन नहीं कर सकता था।
3. अलाउद्दीन खिलजी से पहले उसके चाचा जलालुद्दीन खिलजी ने इस दुर्ग पर अधिकार करने के लिए दो बार प्रयास किए थे किन्तु वह असफल रहा। अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा की पराजय का बदला लेना चाहता था।
4. अलाउद्दीन खिलजी एक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी शासक था। रणथम्भौर पर आक्रमण इसी नीति का परिणाम था।

हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोहियों को **शरण देना** – नयनचन्द्र सूरी की रचना 'हम्मीर महाकाव्य' के अनुसार रणथम्भौर पर आक्रमण का कारण यहाँ के शासक हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोही सेनापति मीर मुहम्मद शाह को शरण देना था। मुस्लिम इतिहासकार इसामी ने भी अपने विवरण में इस कारण की पुष्टि की है। उसने लिखा है कि 1299 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने दो सेनापतियों उलूग खां व नूसरत खां को गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। गुजरात विजय के बाद जब यह सेना वापिस लौट रही थी तो जालौर के पास लूट के माल के बंटवारे के प्रश्न पर 'नव–मुसलमानों' (जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के समय भारत में बस चुके वे मंगोल, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था) ने विद्रोह कर दिया। यद्यपि विद्रोहियों का बर्बरता के साथ दमन

कर दिया गया किन्तु उनमें से मुहम्मदशाह व उसका भाई कैहब्रु भाग कर रणथम्भौर के शासक हम्मीर के पास पहुँचने में सफल हो गए। हम्मीर ने न केवल उन्हें शरण दी अपितु मुहम्मदशाह को 'जगाना' की जागीर भी दी। चन्द्रशेखर की रचना 'हम्मीर हठ' के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी की एक मराठा बेगम से मीर मुहम्मदशाह को प्रेम हो गया था और उन दोनों ने मिलकर अलाउद्दीन खिलजी को समाप्त करने का एक षड़यंत्र रचा। अलाउद्दीन खिलजी को समय रहते इस षड़यंत्र की जानकारी मिल जाने के कारण मीर मुहम्मदशाह को बंदी बनाने का प्रयास किया गया किन्तु वह भागकर हम्मीर की शरण में पहुँच गया। अलाउद्दीन खिलजी की तरफ से इन विद्रोहियों को सौंप देने की माँग की गई। इस माँग को जब हम्मीर द्वारा ठुकरा दिया गया तो अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने रणथम्भौर पर आक्रमण कर दिया।

हम्मीर की प्रारम्भिक सफलताएँ– 1299 ई. के अंत में अलाउद्दीन खिलजी ने उलूग खां, अलप खां और नुसरत खां के नेतृत्व में एक सेना रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिए भेजी। इस सेना ने 'रणथम्भौर की कुँजी' झाँई पर अधिकार कर लिया। इसामी के अनुसार विजय के बाद उलूग खां ने झाँई का नाम बदलकर 'नौ शहर' कर दिया। 'हम्मीर महाकाव्य' में लिखा है कि हम्मीर इस समय कोटियज्ञ समाप्त कर 'मुनिव्रत' में व्यस्त था। इस कारण स्वयं न जाकर अपने दो सेनापतियों – भीमसिंह व धर्मसिंह को सामना करने के लिए भेजा। इन दोनों सेनापतियों ने खिलजी सेना को पीछे की तरफ खदेड़ दिया तथा उनसे लूट का माल छिन लिया। राजपूत सेना ने शत्रु सेना पर भयंकर हमला किया जिसमें अलाउद्दीन खिलजी की सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। शाही सेना से लूटी गई सामग्री लेकर धर्मसिंह के नेतृत्व में सेना का एक दल तो रणथम्भौर लौट गया किन्तु भीमसिंह पीछे रह गया। इस अवसर का लाभ उठाकर बिखरी हुई शाही सेना ने अलपखां के नेतृत्व में उस पर हमला कर दिया। इस संघर्ष में भीमसिंह अपने सैंकड़ों सैनिकों सहित मारा गया।

भीमसिंह की मृत्यु के लिए हम्मीर ने धर्मसिंह को उत्तरदायी मानते हुए उसे अंधा कर दिया और उसके स्थान पर भोजराज को नया मंत्री बनाया। भोजराज रणथम्भौर की बिगड़ी हुई स्थिति को संभाल नहीं पाया और शीघ्र ही अलोकप्रिय हो गया। ऐसी स्थिति में धर्मसिंह ने हम्मीर को राज्य की आय बढ़ाने का आश्वासन देकर अपने पुराने अधिकार पुनः प्राप्त कर लिये। धर्मसिंह अपने अपमान का बदला लेना चाहता था इसलिए उसने प्रजा पर कई कर लगा कर उन्हें बलात् वसूल करना प्रारम्भ कर दिया। इससे प्रजा में असंतोष बढ़ने लगा।

उधर भोजराज हम्मीर द्वारा अपनी सेवा से निकाले जाने पर नाराज होकर अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में चला गया। उसने सुल्तान को रणथम्भौर पर आक्रमण के लिए उकसाना प्रारम्भ कर दिया। सुल्तान ने रणथम्भौर विजय के लिए सेना भेज दी किन्तु हिन्दुवाट की घाटी में हुई मुठभेड़ में चौहान सेना ने शाही सेना को बुरी तरफ पराजित किया।

इस अपमानजनक पराजय की जानकारी मिलने पर सुल्तान ने उलूगखां और नुसरतखां के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी। इस सेना ने झाँइ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। झाँई विजय के बाद उलूग खां ने मेहलनसी नामक दूत के साथ हम्मीर के पास अलाउद्दीन खिलजी का संदेश पुनः भिजवाया। इस संदेश में दोनों विद्रोहियों – मुहम्मदशाह व उसके भाई कैहब्रु को सौंपने के साथ हम्मीर की बेटी देवलदी का विवाह सुल्तान के साथ करने की माँग की गई थी। यद्यपि देवलदी ने राज्य की रक्षा के लिए इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने की सुझाव दिया किन्तु हम्मीर ने संघर्ष का रास्ता चुना।

उलूग खां ने रणथम्भौर दुर्ग पर घेरा डालकर उसके चारों तरफ पाशिब व गरगच बनवाये और मगरबों द्वारा दुर्ग रक्षकों पर पत्थरों की बौछार की। दुर्ग में भी भैरव यंत्र, ठिकुलिया व मर्कटी यंत्र नामक पत्थर बरसाने वाले यंत्र लगे थे जिनके द्वारा फैंका गया एक पत्थर संयोग से नुसरत खां को लगा। नुसरतखां इसमें घायल हुआ और कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई। इससे शाही सेना में निराशा की स्थिति पैदा हो गई। हम्मीर ने इस स्थिति का फायदा उठाने के लिए दुर्ग से बाहर निकलकर शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण से घबराकर उलूग खां को झाँई की तरफ पीछे हटना पड़ा।

अलाउद्दीन खिलजी का रणथम्भौर आना व रणथम्भौर पर अधिकार– उलूग खां की असफलता के बाद अलाउद्दीन खिलजी स्वयं रणथम्भौर पहुँचा। अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'खजाईन–उल–फुतूह' में इस अभियान का आंखों देखा वर्णन करते हुए लिखा है कि सुल्तान ने इस आक्रमण में पाशेब, मगरबी व अर्रादा की सहायता ली। काफी प्रयासों के बाद भी जब अलाउद्दीन खिलजी दुर्ग को जीतने में असफल रहा तो उसने छल और कूटनीति का आश्रय लेते हुए हम्मीर के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। हम्मीर द्वारा संधि के लिए अपने सेनापति रतिपाल को भेजा गया। अलाउद्दीन खिलजी ने रतिपाल व उसकी सहायता से हम्मीर के एक अन्य सेनापति रणमल को रणथम्भौर दुर्ग का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। चौहान रचनाओं में इस बात का उल्लेख किया गया है कि अलाउद्दीन ने हम्मीर के एक अधिकारी को अपनी तरफ मिलाकर दुर्ग में स्थित खाद्य सामग्री को दूषित करवा दिया। इससे दुर्ग में खाद्यान सामग्री का भयंकर संकट पैदा हो गया। अमीर खुसरो ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''सोने के दो दानों के बदले में चावल का एक दाना भी नसीब नहीं हो पा रहा था।'' खाद्यान के अभाव में हम्मीर को दुर्ग के बाहर निकलना पड़ा किन्तु रणमल और रतिपाल के विश्वासघात के कारण उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। युद्ध के दौरान हम्मीर लड़ता हुआ मारा गया और उसकी रानी रंगदेवी के नेतृत्व में राजपूत वीरांगनाओं द्वारा जौहर किया गया। यह रणथम्भौर का प्रथम साका कहा जाता है। जोधराज की रचना 'हम्मीर रासो' के अनुसार इस जौहर में मुहम्मदशाह की स्त्रियाँ भी रंगदेवी के साथ चिता में भस्म हो गई। कुछ स्थानों पर उल्लेख है कि रंगदेवी ने किले में स्थित 'पदमला तालाब' में जल जौहर किया था। इस प्रकार 11 जुलाई, 1301 ई. को अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर अधिकार कर लिया।

युद्ध में मीर मुहम्मदशाह भी हम्मीर की तरफ से संघर्ष

करते हुए घायल हुआ। घायल मुहम्मदशााह पर नजर पड़ने पर अलाउद्दीन खिलजी ने उससे पूछा कि 'अगर तुझे ठीक करवा दिया जाए तो तुम क्या करोगे?' इस पर बड़ी बहादूरी के साथ मुहम्मदशाह ने जवाब दिया कि ''अगर मुझे ठीक करवाया गया तो मैं दो काम करूँगा – पहला तुम्हें मार दूँगा और दूसरा हम्मीर के किसी वंशज को रणथम्भौर के सिंहासन पर बैठा दूँगा।'' ऐसा जवाब सुनकर अलाउद्दीन खिलजी काफी क्रोधित हुआ और उसने हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा कर मुहम्मदशाह की हत्या करवा दी।

मूल्यांकन – हम्मीर ने अपने जीवन में कुल 17 युद्ध लड़े जिनमें से 16 में वह विजयी रहा। बार–बार के प्रयासों के बाद भी जलालुद्दीन खिलजी का रणथम्भौर पर अधिकार नहीं कर पाना हम्मीर की शूरवीरता व सैनिक योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है। वह वीर योद्धा ही नहीं अपितु एक उदार शासक भी था। विद्वानों के प्रति हम्मीर की बड़ी श्रद्धा थी। विजयादित्य उसका सम्मानित दरबारी कवि तथा राघवदेव उसका गुरु था। कोटियज्ञ के सम्पादन के द्वारा उसने अपनी धर्मनिष्ठा का परिचय दिया। हम्मीर अपने वचन व शरणागत की रक्षा के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। उसने अपनी शरण में आए अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोहियों को न लौटाने का हठ कर लिया। इसी हठ के कारण हम्मीर ने अपना परिवार व राज्य खो दिया :–

सिंघ सवन, सत्पुरूष वचन, कदली फलै इक बार।
तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार।।

(शेरनी जंगल का राजा बनने वाले एक ही शिशु को जन्म देती है, सत्पुरुष द्वारा दिया गया वचन भी बदला नहीं जा सकता, कैले का पौधा भी एक ही बार फलता है, स्त्री के सिर पर (लग्नार्थ) दूसरी बार तेल सिंचित नहीं किया जाता, उसी प्रकार हम्मीर द्वारा दिया हुआ वचन कभी नहीं बदलता।)

उसके इन गुणों की प्रशंसा के बावजूद उसकी भूलों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उसने अपने पड़ौसी राज्यों को छेड़कर और उनसे धन की वसूली कर अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ा ली। अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध संगठन के प्रयास न करना भी उसकी रणनीतिक भूल थी। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण से पहले अपनी जनता पर करवृद्धि के कारण उसकी लोकप्रियता में कमी आई। इन कमियों के बावजूद हम्मीर को इतिहास में श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। डॉ. दशरथ शर्मा ने लिखा है कि ''यदि उसमें कोई दोष भी थे तो वे उसके वीरोचित युद्ध, वंश प्रतिष्ठा की रक्षा तथा मंगोल शरणागतों की रक्षा के सामने नगण्य हो जाते हैं।'' नयनचन्द्र सूरी की रचना हम्मीर महाकाव्य, व्यास भाण्ड रचित हम्मीरायण, जोधराज रचित हम्मीर रासो, अमृत कैलाश रचित 'हम्मीर बन्धन' और चन्द्रशेखर द्वारा रचित 'हम्मीर हठ' नामक ग्रंथों की रचना इसी हम्मीर को नायक बनाकर की गई है।

रावल रत्नसिंह (1302–1303 ई.)

रावल समरसिंह (1273–1302 ई.) की मृत्यु के बाद 1302 ई. में मेवाड़ के सिंहासन पर उसका पुत्र रत्नसिंह बैठा। रत्नसिंह को केवल एक वर्ष ही शासन करने का अवसर मिला जो दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के लिए प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के प्रमुख कारण इस प्रकार थे :–

1. अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा– अलाउद्दीन खिलजी एक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी शासक था। वह सिकन्दर के समान विश्व विजेता बनना चाहता था जिसका प्रमाण उसकी उपाधि 'सिकन्दर सानी' (द्वितीय सिकन्दर) थी। दक्षिण भारत की विजय और उत्तर भारत पर अपने अधिकार को स्थायी बनाये रखने के लिए राजपूत राज्यों को जीतना आवश्यक था। चित्तौड़ पर उसका आक्रमण इसी नीति का हिस्सा था।

2. मेवाड़ की बढ़ती हुई शक्ति– जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह जैसे पराक्रमी शासकों के काल में मेवाड़ की सीमाओं में लगातार वृद्धि होती जा रही थी। इल्तुतमिश, नासिरुद्दीन महमूद और बलबन जैसे सुल्तानों ने मेवाड़ की इस बढ़ती शक्ति पर लगाम लगाने का प्रयास किया किन्तु वे सफल नहीं हुए। 1299 ई. में मेवाड़ के रावल समरसिंह ने गुजरात अभियान के लिए जाती हुई शाही सेना का सहयोग करना तो दूर, उल्टे उससे दण्ड वसूल करके ही आगे जाने दिया। अलाउद्दीन खिलजी उस घटना को भूल नहीं पाया था।

3. चित्तौड़ का भौगोलिक एवं सामरिक महत्त्व– दिल्ली से मालवा, गुजरात तथा दक्षिण भारत जाने वाला प्रमुख मार्ग चित्तौड़ के पास से ही गुजरता था। इस कारण अलाउद्दीन खिलजी के लिए मालवा, गुजरात और दक्षिण भारत पर राजनीतिक एवं व्यापारिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए चित्तौड़ पर अधिकार करना आवश्यक था। मौर्य राजा चित्रांगद द्वारा निर्मित चित्तौड़ का दुर्ग अभी तक किसी भी मुस्लिम आक्रमणकारी द्वारा जीता नहीं जा सका था। यह भी अलाउद्दीन खिलजी के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी।

4. पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा– कुछ इतिहासकारों के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी मेवाड़ के शासक रत्नसिंह की सुन्दर पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करना चाहता था। उसने रत्नसिंह को संदेश भिजवाया कि वह सर्वनाश से बचना चाहता है तो अपनी पत्नी पद्मिनी को शाही हरम में भेज दे। रत्नसिंह द्वारा इस प्रस्ताव को अस्वीकार किए जाने पर अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। शेरशाह सूरी के समय 1540 ई. के लगभग लिखी गई मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' के अनुसार इस आक्रमण का कारण पद्मिनी को प्राप्त करना ही था।

अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण– 28 जनवरी 1303 ई. को दिल्ली से रवाना होकर अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ को घेर लिया। रत्नसिंह ने शाही सेना को मुँह तोड़ जवाब दिया जिसके कारण दो माह की घेरेबंदी के बाद भी शाही सेना कोई सफलता अर्जित नहीं कर पाई। ऐसी स्थिति में सुल्तान को अपनी रणनीति में परिवर्तन करना पड़ा। उसने दुर्ग की दीवार के पास ऊँचे–ऊँचे चबूतरों का निर्माण करवाया और उन पर 'मंजनिक' तैनात करवाये। किले की दीवारों पर भारी पत्थरों के प्रहार शुरू हुए किन्तु दुर्भेध दीवारें टस से मस नहीं हुई। लम्बे घेरे के कारण दुर्ग में खाद्यान सामग्री नष्ट होने लग गई थी। चारों तरफ सर्वनाश के

चिह्न दिखाई देने पर राजपूत सैनिक किले के द्वार खोल कर मुस्लिम सेना पर टूट पड़े। भीषण संघर्ष में रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ और उधर पद्मिनी के नेतृत्व में चित्तौड़ का पहला जौहर हुआ। इस प्रकार 26 अगस्त 1303 ई. को चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार हो गया। अगले दिन सुल्तान ने अपने सैनिकों को आम जनता के कत्लेआम का आदेश दिया। इस अभियान के दौरान मौजूद अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'खजाईन–उल–फुतूह' (तारीखे अलाई) में लिखा है कि एक ही दिन में लगभग 30,000 असहाय लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ का नाम बदलकर 'खिज्राबाद' कर दिया और अपने बेटे खिज्रखां को वहाँ का प्रशासन सौंप कर दिल्ली लौट आया। खिज्रखां ने गंभीरी नदी पर एक पुल का निर्माण करवाया। उसने चित्तौड़ की तलहटी में एक मकबरा भी बनवाया जिसमें लगे हुए एक फारसी लेख में अलाउद्दीन खिलजी को ईश्वर की छाया और संसार का रक्षक कहा गया है।

पद्मिनी की कहानी– ''सिंहल द्वीप (श्रीलंका) में गंधर्वसेन नामक राजा था। उसकी पटरानी चंपावती से पद्मिनी नामक एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उसके पास हीरामन नाम का एक सुन्दर और चतुर तोता था। एक दिन वह पिंजरे से उड़ गया और एक बहेलिए द्वारा पकड़ा जाकर एक ब्राह्मण के हाथ बेचा गया। उस ब्राह्मण ने उसको चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह को एक लाख रुपये में बेच दिया। रत्नसिंह की रानी नागमती ने एक दिन श्रृंगार कर तोते से पूछा – क्या मेरी जैसे सुंदरी जगत में कोई है? इस पर तोते ने उत्तर दिया कि जिस सरोवर में हंस नहीं आया, वहाँ बगुला ही हंस कहलाता है। रत्नसिंह तोते के मुख से पद्मिनी के रूप, गुण आदि की प्रशंसा सुनकर उस पर मुग्ध हो गया और योगी बनकर तोते सहित सिंहल को चला। अनेक संकट सहता हुआ वह सिंहल द्वीप पहुँचा। तोते ने पद्मिनी के सम्मुख रत्नसिंह के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की प्रशंसा कर कहा कि तेरे योग्य वर तो यही है और वह तेरे प्रेम से मुग्ध होकर यहाँ आ पहुँचा है। वसंत पंचमी के दिन वह बन–ठनकर उस मंदिर में गई, जहाँ रत्नसिंह ठहरा हुआ था। वहाँ दोनों एक दूसरे को देखते ही परस्पर प्रेम–बद्ध हो गए। अंत में गंधर्वसेन ने उसके वंश आदि का हाल जानकर दोनों का विवाह कर दिया। विवाह के बाद रत्नसिंह पद्मिनी के साथ अपनी राजधानी चित्तौड़ लौट आया।

रत्नसिंह द्वारा मेवाड़ से निकाले गए राघव चेतन नामक तांत्रिक ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए दिल्ली जाकर सुल्तान अलाउद्दीन के समक्ष पद्मिनी के रूप की तारीफ की और उसे चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस पर अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ पर चढ़ आया। आठ वर्ष तक घेरा डालने के बाद भी जब सुल्तान चित्तौड़ को नहीं जीत पाया तो उसने प्रस्ताव रखा कि यदि उसे पद्मिनी का प्रतिबिम्ब ही दिखा दिया जाये तो वह दिल्ली लौट जायेगा। राणा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दर्पण में पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देखकर जब अलाउद्दीन वापिस लौट रहा था, उस समय उसने रत्नसिंह को कैद कर लिया और रिहाई के बदले पद्मिनी की मांग की। सारा वृत्तांत ज्ञात होने पर पद्मिनी ने राणा को छुड़ाने की योजना बनाई और अलाउद्दीन के पास अपनी 1600 सहेलियों के साथ आने का प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव स्वीकार होने पर पद्मिनी सहेलियों के स्थान पर पालकियों में राजपूत यौद्धाओं को बैठाकर रवाना हो गई। दिल्ली के पास पहुँचकर शाही हरम में शामिल होने से पहले उसने अंतिम बार अपने पति से मिलने की इच्छा प्रकट की जिसे सुल्तान द्वारा स्वीकृति दे दी गई। जब दोनों पति–पत्नी मिल रहे थे उसी समय राजपूत योद्धा सुल्तान की सेना पर टूट पड़े और उन्हें सुरक्षित चित्तौड़ निकाल दिया। अलाउद्दीन को छल का पता लगा तो उसने ससैन्य राजपूतों का पीछा किया। रत्नसिंह अपने सेनानायकों गोरा व बादल के साथ लड़ता हुआ मारा गया और पद्मिनी ने जौहर किया।''

पद्मिनी की कहानी का ऐतिहासिक उल्लेख मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' में किया गया है। इसके बाद अबुल फजल (अकबरनामा), फरिश्ता (गुलशन–ए–इब्राहिमी), हाजी उद्दवीर (जफरूलवली), कर्नल टॉड (एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटिज ऑफ राजस्थान), फ्रांसीसी यात्री मनूची (स्टीरियो डी मेगोर) तथा मुहणौत नैणसी (नैणसी री ख्यात) ने भी इस कहानी का कुछ हेर–फेर के साथ उल्लेख किया है। बूंदी के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल मिश्रण व कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने पद्मिनी की कहानी की ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं किया है।

महाराणा कुम्भा (1433–1468 ई.)

महाराणा कुम्भा 1433 ई. में मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा। उसके पिता का नाम महाराणा मोकल तथा माता का नाम सौभाग्य देवी था। शासक बनने के बाद उसने अपने यशस्वी पराक्रम द्वारा न केवल आंतरिक और बाह्य कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना किया अपितु अपनी युद्धकालीन और सांस्कृतिक उपलब्धियों द्वारा मेवाड़ के गौरव को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

कुम्भा की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ– शासक बनने के समय कुम्भा के सामने अनेक आन्तरिक और बाह्य समस्याएँ थी। मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह (1364–82 ई.) की उपपत्नी की संतान चाचा और मेरा उसके पिता मोकल की हत्या कर मेवाड़ पर अधिकार करने के लिए प्रयासरत थे। इस कारण मेवाड़ी सरदार दो भागों में विभाजित हो चुके थे – एक गुट कुम्भा समर्थक तथा दूसरा गुट उसके विरोधियों चाचा, मेरा व महपा पंवार का समर्थक। इस अव्यवस्था का लाभ उठाकर अनेक राजपूत सामन्त अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के प्रयास करने लगे थे। कुम्भा द्वारा रणमल व राघवदेव के नेतृत्व में भेजी गई सेना ने शीघ्र ही विद्रोहियों का दमन कर दिया। चाचा और मेरा अपने अनेक समर्थकों के साथ मारे गए किन्तु चाचा का पुत्र एक्का व महपा पंवार भागकर मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी की शरण में पहुँचने में सफल हो गए।

मेवाड़–मालवा सम्बन्ध – मेवाड़ और मालवा दोनों एक–दूसरे के पड़ौसी राज्य थे और यहाँ के शासक अपने–अपने राज्यों की सीमाओं का विस्तार करना चाहते थे। इस कारण दोनों राज्यों के बीच संघर्ष होना आवश्यक था किन्तु दोनों के बीच संघर्ष का तात्कालीक कारण मालवा के सुल्तान द्वारा कुम्भा के विद्रोही सरदारों को अपने यहाँ शरण देना बना। मोकल के हत्यारे महपा पंवार ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी के पास शरण ले रखी

थी। कुम्भा ने सुल्तान को पत्र लिखकर महपा की मांग की, जिसे सुल्तान द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इसलिए कुम्भा ने मालवा पर आक्रमण करने का फैसला किया। 1437 ई. में सारंगपुर नामक स्थान पर दोनों की सेनाओं के बीच घनघोर संघर्ष हुआ जिसमें पराजित होकर महमूद भाग गया। कुम्भा ने महमूद का पीछा करते हुए मालवा को घेर लिया और उसे कैद कर चित्तौड़ ले आया। 6 माह तक सुल्तान को अपने यहाँ कैद रखने के बाद कुम्भा ने उसे बिना शर्त रिहा कर दिया।

महमूद खिलजी ने अपनी पहली पराजय का बदला लेने के लिए 1443 ई. में कुम्भलगढ़ पर आक्रमण कर दिया। कुम्भा ने किले के दरवाजे के नीचे बाण माता के मंदिर के पास दीपसिंह के नेतृत्व में एक मजबूत सेना नियुक्त कर रखी थी। सात दिन तक चले भयंकर संघर्ष में दीपसिंह व उसके साथियों की मृत्यु के बाद ही मंदिर पर शत्रु सेना अधिकार कर पाई। इस मोर्चे को तोड़ने में महमूद की सेना को इतनी हानि उठानी पड़ी कि मंदिर को नष्ट–भ्रष्ट कर उसकी टूटी हुई मूर्तियाँ कसाईयों को माँस तौलने के लिए दे दी गई। नन्दी की मूर्ति का चूना पकाकर राजपूतों को पान में खिलाया गया। महमूद की इस सेना ने चित्तौड़ पर अधिकार करने का प्रयास भी किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। 1446 ई. में महमूद ने एक बार फिर मांडलगढ़ व चित्तौड़ पर अधिकार करने का प्रयास किया किन्तु सफलता उसे इस बार भी न मिल सकी। 1456 ई. में महमूद ने मांडलगढ़ पर अधिकार करने का अंतिम असफल प्रयास किया।

मेवाड़–गुजरात सम्बन्ध– कुम्भा के समय गुजरात की अव्यवस्था समाप्त हो चुकी थी और वहां के शासक अपने प्रभाव क्षेत्र के विस्तार के लिए लालायित थे। मालवा–मेवाड़ के बीच चलने वाले संघर्ष तथा सिरोही व गुजरात की राजनीतिक स्थिति ने मेवाड़–गुजरात के बीच के संघर्ष को आवश्यक बना दिया। 1456 ई. में फिरोज खां की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शम्सखां नागौर का नया स्वामी बना किन्तु फिरोज के छोटे भाई मुजाहिदखां ने शम्सखां को पराजित कर नागौर पर अपना अधिकार कर लिया। शम्सखां ने महाराणा कुम्भा की सहायता से नागौर पर पुनः अधिकार कर लिया किन्तु शीघ्र ही उसने कुम्भा की शर्त के विपरीत नागौर के किले की मरम्मत करवानी प्रारम्भ कर दी। नाराज कुम्भा ने नागौर पर आक्रमण कर अपना अधिकार कर लिया।

शम्सखां ने गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन के साथ अपनी लड़की का विवाह कर उससे सहायता की मांग की। इस पर कुतुबुद्दीन मेवाड़ पर आक्रमण के लिए रवाना हुआ। सिरोही के देवड़ा शासक की प्रार्थना पर उसने अपने सेनापति मलिक शहबान को आबू विजय के लिए भेजा और स्वयं कुम्भलगढ़ की तरफ चला। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार राणा से धन मिलने के बाद सुल्तान गुजरात लौट आया। इसी समय कुतुबुद्दीन के सामने महमूद खिलजी के प्रतिनिधि ताजखां ने मेवाड़ पर गुजरात–मालवा के संयुक्त आक्रमण की योजना रखी जिसके अनुसार मेवाड़ के दक्षिणी भाग पर गुजरात और मेवाड़ के खास भाग व अहीरवाड़ा पर मालवा का अधिकार होना था। 1456 ई. में चम्पानेर नामक स्थान पर हुई इस आशय की संधि के बाद कुतुबुद्दीन आबू पर अधिकार कर चित्तौड़ की तरफ बढ़ा, वहीं महमूद खिलजी ने मालवा की तरफ से मेवाड़ पर आक्रमण किया। फरिश्ता के अनुसार कुम्भा ने धन देकर आक्रमणकारियों को विदा किया जबकि कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति और रसिकप्रिया के अनुसार कुम्भा ने दोनों सुल्तानों को पराजित कर दिया। मुगल शासकों पर विजय के कारण कुम्भा 'हिन्दू सुरत्राण' (हिन्दू बादशाह) के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

महाराणा कुम्भा की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ– कुम्भा एक वीर योद्धा ही नहीं अपितु कलाप्रेमी और विद्यानुरागी शासक भी था। इस कारण उसे 'युद्ध में स्थिर बुद्धि' कहा गया है। एकलिंग माहात्म्य के अनुसार वह वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद, व्याकरण, राजनीति और साहित्य में बड़ा निपुण था। महान् संगीतज्ञाता होने के कारण उसे 'अभिनव भरताचार्य' तथा 'वीणावादन प्रवीणेन' कहा जाता है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के अनुसार वह वीणा बजाने में निपुण था। संगीतराज, संगीत मीमांसा, संगीत क्रम दीपिका व सूड प्रबन्ध उसके द्वारा लिखे प्रमुख ग्रंथ हैं। 'संगीतराज' के पाँच भाग – पाठरत्नकोश, गीतरत्नकोश, वाद्यरत्नकोश, नृत्यरत्नकोश और रसरत्नकोश हैं। उसने चण्डीशतक की व्याख्या, जयदेव के संगीत ग्रंथ गीतगोविन्द और शारंगदेव के संगीतरत्नाकर की टीकाएं भी लिखी। कुम्भा ने महाराष्ट्री (मराठी), कर्णाटी (कन्नड़) तथा मेवाड़ी भाषा में चार नाटकों की रचना की। उसने कीर्तिस्तम्भों के विषय पर एक ग्रंथ रचा और उसको शिलाओं पर खुदवाकर विजय स्तम्भ पर लगवाया जिसके अनुसार उसने जय और अपराजित के मतों को देखकर इस ग्रंथ की रचना की थी। उसका 'कामराज रतिसार' नामक ग्रंथ सात अंगों में विभक्त है।

कुम्भा को 'राणौ रासो' (विद्वानों का संरक्षक) कहा गया है। उसके दरबार में एकलिंग महात्म्य का लेखक कान्ह व्यास तथा प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री मण्डन रहते थे। मण्डन ने देवमूर्ति प्रकरण (रूपावतार),प्रासादमण्डन, राजवल्लभ (भूपतिवल्लभ), रूपमण्डन, वास्तुमण्डन, वास्तुशास्त्र और वास्तुकार नामक वास्तु ग्रंथ लिखे। मण्डन के भाई नाथा ने वास्तुमंजरी और पुत्र गोविन्द ने उद्धारधोरिणी, कलानिधि एवं द्वारदीपिका नामक ग्रंथों की रचना की। 'कलानिधि' देवालयों के शिखर विधान पर केन्द्रित है जिसे शिखर रचना व शिखर के अंग–उपांगों के सम्बन्ध में कदाचित एकमात्र स्वतन्त्र ग्रंथ कहा जा सकता है। आयुर्वेदज्ञ के रूप में गोविन्द की रचना 'सार समुच्चय' में विभिन्न व्याधियों के निदान व उपचार की विधियाँ दी गई हैं। कुम्भा की पुत्री रमाबाई को 'वागीश्वरी' कहा गया है, वह भी अपने संगीत प्रेम के कारण प्रसिद्ध रही है।

कवि मेहा महाराणा कुम्भा के समय का एक प्रतिष्ठित रचनाकार था। उसकी रचनाओं में 'तीर्थमाला' प्रसिद्ध है जिसमें 120 तीर्थों का वर्णन है। मेहा कुम्भा के समय के दो सबसे महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्यों कुम्भलगढ़ और रणकपुर जैन मंदिर के समय उपस्थित था। उसने बताया है कि हनुमान की जो मूर्तियां सोजत और नागौर से लाई गई थी, उन्हें कुम्भलगढ़ और रणकपुर में स्थापित किया गया। रणकपुर जैन मंदिर के प्रतिष्ठा समारोह में भी मेहा स्वयं उपस्थित हुआ था। हीरानन्द मुनि को

कुम्भा अपना गुरु मानते थे और उन्हें 'कविराज' की उपाधि दी।

कविराज श्यामलदास की रचना 'वीर विनोद' के अनुसार मेवाड़ के कुल 84 दुर्गों में से अकेले महाराणा कुम्भा ने 32 दुर्गों का निर्माण करवाया। अपने राज्य की पश्चिमी सीमा व तंग रास्तों को सुरक्षित रखने के लिए नाकाबंदी की और सिरोही के निकट बसन्ती का दुर्ग बनवाया। मेरों के प्रभाव को रोकने के लिए मचान के दुर्ग का निर्माण करवाया। केन्द्रीय शक्ति को पश्चिमी क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली बनाने व सीमान्त भागों को सैनिक सहायता पहुँचाने के लिए 1452 ई. में परमारों के प्राचीन दुर्ग के अवशेषों पर अचलगढ़ का पुनर्निर्माण करवाया। कुम्भा द्वारा निर्मित कुम्भलगढ़ दुर्ग का परकोटा 36 किमी. लम्बा है जो चीन की दीवार के बाद विश्व की सबसे लम्बी दिवार मानी जाती है। रणकपुर (पाली) का प्रसिद्ध जैन मंदिर महाराणा कुम्भा के समय में ही धारणक शाह द्वारा बनवाया गया था।

कुम्भा को अपने अंतिम दिनों में उन्माद का रोग हो गया था और वह अपना अधिकांश समय कुम्भलगढ़ दुर्ग में ही बीताता था। यहीं पर उसके सत्तालोलुप पुत्र उदा ने 1468 ई. में उसकी हत्या कर दी।

चित्तौडगढ़ दुर्ग

कुम्भलगढ़दुर्ग

कुम्भलगढ़ शिलालेख में उसे 'धर्म और पवित्रता का अवतार' तथा दानी राजा भोज व कर्ण से बढ़कर बताया गया है। वह निष्ठावान वैष्णव था और यशस्वी गुप्त सम्राटों के समान स्वयं को 'परमभागवत्' कहा करता था। उसने आदिवाराह की उपाधि भी अंगीकार की थी –'वसुंधरोद्धरणादिवराहेण'(विष्णु के प्राथमिक अवतार वाराह के समान वैदिक व्यवस्था का पुनर्संस्थापक)।

विजय स्तम्भ – चित्तौड़ दुर्ग के भीतर स्थित नौ मंजिले और 122 फीट ऊँचे विजय स्तम्भ का निर्माण महाराणा कुम्भा ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी पर विजय की स्मृति में करवाया। इसका निर्माण प्रधान शिल्पी जैता व उसके तीन पुत्रों – नापा, पोमा और पूंजा की देखरेख में हुआ। अनेक हिन्दू देवी–देवताओं की कलात्मक प्रतिमायें उत्कीर्ण होने के कारण विजय स्तम्भ को 'पौराणिक हिन्दू मूर्तिकला का अनमोल खजाना' (भारतीय मूर्तिकला का विश्वकोष) कहा जाता है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने इसे 'हिन्दू देवी–देवताओं से सजाया हुआ एक व्यवस्थित संग्रहालय' तथा गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'पौराणिक देवताओं के अमूल्य कोष' की संज्ञा दी है। मुख्य द्वार पर भगवान विष्णु की प्रतिमा होने के कारण विजय स्तम्भ को 'विष्णु ध्वज' भी कहा जाता है। महाराणा स्वरूपसिंह (1842–61 ई.) के काल में इसका पुनर्निर्माण करवाया गया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान विजय स्तम्भ ने क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा स्रोत का कार्य किया। प्रसिद्ध क्रांतिकारी संगठन 'अभिनव भारत समिति' के संविधान के अनुसार प्रत्येक नए सदस्य को मुक्ति संग्राम से जुड़ने के लिए विजय स्तम्भ के नीचे शपथ लेनी पड़ती थी।

महाराणा कुम्भा

विजय स्तम्भ

मुगल आक्रमण

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना 1526 ई. में बाबर द्वारा की गई। उसका जन्म 1483 ई. में फरगना नामक स्थान पर हुआ था। पिता उमर शेख मिर्जा की ओर से वह तैमूर का पाँचवाँ वंशज तथा माता कुतलुगनिगार खानम की ओर से चंगेजखा का चौदहवाँ वंशज था। इस प्रकार उसकी रगों में मध्य एशिया के दो महान् विजेताओं का रक्त दौड़ रहा था। (चंगेजखाँ हान वंश का मंगोल था। मंगोलों ने इस्लाम को अपना लिया और मंगोल

मुगल कहलाए।) 1494 ई. में अपने पिता की असामयिक मृत्यु के बाद बाबर मात्र 11 वर्ष की आयु में फरगाना के पैतृक राज्य का उत्तराधिकारी बना किन्तु परिस्थितियोंवश उसका शासन वहाँ स्थायी नहीं रह पाया। अंततः स्थायी शासन के लिए उसने भारत पर अधिकार करने का निर्णय लिया। उसके आक्रमण के समय भारत का सबसे शक्तिशाली शासक मेवाड़ का महाराणा सांगा था, जो इतिहास में महाराणा संग्रामसिंह प्रथम के नाम से प्रसिद्ध है।

महाराणा सांगा (1509–1528 ई.)

सांगा अपने पिता महाराणा रायमल की मृत्यु के बाद 1509 ई. में 27 वर्ष की आयु में मेवाड़ का शासक बना। मेवाड़ के महाराणाओं में वह सबसे अधिक प्रतापी योद्धा था।

उत्तराधिकार के लिए संघर्ष – रायमल के जीवनकाल में ही सत्ता के लिए पुत्रों के बीच आपसी संघर्ष प्रारम्भ हो गया। कहा जाता है कि एक बार कुंवर पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह ने अपनी–अपनी जन्मपत्रियाँ एक ज्योतिषी को दिखलाई। उन्हें देखकर उसने कहा कि ग्रह तो पृथ्वीराज और जयमल के भी अच्छे हैं परन्तु राजयोग संग्रामसिंह के पक्ष में होने के कारण मेवाड़ का स्वामी वही होगा। यह सुनते ही दोनों भाई संग्रामसिंह पर टूट पड़े। पृथ्वीराज ने हूल मारी जिससे संग्रामसिंह की एक

महाराणा सांगा

महाराणा उदयसिंह

आंख फूट गई। इस समय तो सांरगदेव (महाराणा रायमल के चाचा) ने बीच–बचाव कर किसी तरह उन्हें शांत किया, किन्तु दिनों–दिन कुंवरों में विरोध का भाव बढ़ता ही गया। सारंगदेव ने उन्हें समझाया कि ज्योतिषी के कथन पर विश्वास कर तुम्हें आपस में संघर्ष नहीं करना चाहिये।

इस समय सांगा अपने भाइयों के डर से श्रीनगर (अजमेर) के कर्मचन्द पंवार के पास अज्ञातवास बिता रहा था। रायमल ने उसे बुलाकर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

गुजरात के सुल्तान के साथ संघर्ष – सांगा के समय गुजरात और मेवाड़ के बीच संघर्ष का तात्कालीक कारण ईडर का प्रश्न था। ईडर के राव भाण के दो पुत्र सूर्यमल और भीम थे। राव भाण की मृत्यु के बाद सूर्यमल गद्दी पर बैठा किन्तु उसकी भी 18 माह बाद ही मृत्यु हो गई। अब सूर्यमल के स्थान पर उसका बेटा रायमल ईडर की गद्दी पर बैठा। रायमल के अल्पायु होने का लाभ उठाकर उसके चाचा भीम ने गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। रायमल ने मेवाड़ में शरण ली, जहाँ महाराणा सांगा ने अपनी पुत्री की सगाई उसके साथ कर दी। 1515 ई. में रायमल ने महाराणा सांगा की सहायता से भीम के पुत्र भारमल को हटाकर ईडर पर पुनः अधिकार कर लिया।

भारमल को हटाकर रायमल को ईडर का शासक बनाए जाने से गुजरात का सुल्तान मुजफ्फर बहुत अप्रसन्न हुआ क्योंकि भीम ने उसी की आज्ञानुसार ईडर पर अधिकार किया था। नाराज सुल्तान मुजफ्फर ने अहमदनगर के जागीरदार निजामुल्मुल्क को आदेश दिया कि वह रायमल को हटाकर भारमल को पुनः ईडर की गद्दी पर बैठा दे। निजामुल्मुल्क द्वारा ईडर पर घेरा डालने पर रायमल पहाड़ों में चला गया और पीछा करने पर निजामुल्मुल्क को पराजित किया। ईडर के आगे रायमल का अनावश्यक पीछा किए जाने से नाराज सुल्तान ने निजामुल्मुल्क को वापिस बुला लिया। इसके बाद सुल्तान द्वारा मुवारिजुल्मुल्क को ईडर का हाकिम नियुक्त किया गया। एक भाट के सामने एक दिन मुवारिजुल्मुल्क ने सांगा की तुलना एक कुत्ते से कर दी। यह जानकारी मिलने पर सांगा वागड़ के राजा उदयसिंह के साथ ईडर जा पहुँचा। पर्याप्त सैनिक न होने के कारण मुवारिजुल्मुल्क ईडर छोड़कर अहमदनगर भाग गया। सांगा ने ईडर की गद्दी पर रायमल को बैठा दिया और अहमदनगर, बड़गनर, वीसलनगर आदि स्थानों को लूटता हुआ चित्तौड़ लौट आया।

सांगा के आक्रमण से हुई बर्बादी का बदला लेने के लिए सुल्तान मुजफ्फर ने 1520 ई. में मलिक अयाज तथा किवामुल्मुल्क की अध्यक्षता में दो अलग–अलग सेनाएं मेवाड़ पर आक्रमण के लिए भेजी। मालवा का सुल्तान महमूद भी इस सेना के साथ आ मिला किन्तु मुस्लिम अफसरों में अनबन के कारण मलिक अयाज आगे नहीं बढ़ सका और संधि कर उसे वापिस लौटना पड़ा।

दिल्ली सल्तनत के साथ संघर्ष – सांगा ने सिकन्दर लोदी के समय ही दिल्ली के अधीनस्थ इलाकों पर अधिकार करना शुरू कर दिया था किन्तु अपने राज्य की निर्बलता के कारण वह महाराणा के साथ संघर्ष के लिए तैयार नहीं हो सका। सिकन्दर लोदी के उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी ने 1517 ई. में मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। खातोली (कोटा) नामक स्थान पर दोनों पक्षों के बीच युद्ध हुआ जिसमें सांगा की विजयी हुई। सुल्तान युद्ध के मैदान से भाग निकलने में सफल रहा किन्तु उसके एक शाहजादे को कैद कर लिया गया। इस युद्ध में तलवार से सांगा का बायां हाथ कट गया और घुटने पर तीर लगने से वह हमेशा के लिए लंगड़ा हो गया। खातोली की पराजय का बदला लेने के लिए 1518 ई. में इब्राहीम लोदी ने मियां माखन की अध्यक्षता में सांगा के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजी किन्तु सांगा ने बाड़ी (धौलपुर) नामक स्थान पर लड़े युद्ध गए में एक बार फिर शाही सेना को पराजित किया।

मलवा के साथ सम्बन्ध – मेदिनीराय नामक एक हिन्दू सामंत ने मालवा के अपदस्थ सुल्तान महमूद खिलजी द्वितीय को पुनः शासक बनाने में सफलता प्राप्त की थी। इस कारण सुल्तान महमूद ने उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। सुल्तान के मुस्लिम अमीरों को मेदिनीराय की बढ़ती हुई शक्ति से काफी

ईर्ष्या हुई और उन्होंने सुल्तान को उसके विरुद्ध बरगलाने में सफलता प्राप्त कर ली। मेदिनीराय महाराणा सांगा की शरण में मेवाड़ आ गया, जहाँ उसे गागरोण व चंदेरी की जागीरें दे दी गई। 1519 ई. में सुल्तान महमूद मेदिनीराय पर आक्रमण के लिए रवाना हुआ। इस बात की खबर लगते ही सांगा भी एक बड़ी सेना के साथ गागरोण पहुँच गया। यहाँ हुई लड़ाई में सुल्तान की बुरी तरह पराजय हुई। सुल्तान का पुत्र आसफखां इस युद्ध में मारा गया तथा वह स्वयं घायल हुआ। सांगा सुल्तान को अपने साथ चित्तौड़ ले गया, जहाँ उसे तीन माह कैद रखा गया।

एक दिन महाराणा सांगा सुल्तान को एक गुलदस्ता देने लगा। इस पर उसने कहा कि किसी चीज के देने के दो तरीके होते हैं। एक तो अपना हाथ ऊँचा कर अपने से छोटे को देवें या अपना हाथ नीचा कर बड़े को नजर करें। मैं तो आपका कैदी हूँ इसलिए यहाँ नजर का तो कोई सवाल ही नहीं और भिखारी की तरह केवल इस गुलदस्ते के लिए हाथ पसारना मुझे शोभा नहीं देता। यह उत्तर सुनकर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और गुलदस्ते के साथ सुल्तान को मालवा का आधा राज्य सौंप दिया। सुल्तान ने अधीनता के चिह्नस्वरूप रत्नजटित मुकुट तथा सोने की कमरपेटी महाराणा को सौंप दिये। आगे के अच्छे व्यवहार के लिए महाराणा ने सुल्तान के एक शाहजादे को जमानत के तौर पर चित्तौड़ रख लिया। महाराणा के इस उदार व्यवहार की मुस्लिम इतिहासकारों ने काफी प्रशंसा की है किन्तु राज्य के लिए यह नीति हानिकारक रही।

बाबर और सांगा– पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) में इब्राहीम लोदी को पराजित कर बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। शीघ्र ही बाबर और सांगा के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो गया जिसके निम्नलिखित कारण थे :–

1. सांगा पर वचनभंग का आरोप– तुर्की भाषा में लिखी अपनी आत्मकथा 'तुजुक–ए–बाबरी' में बाबर ने लिखा है कि 'सांगा ने काबुल में मेरे पास दूत भेजकर दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए कहा, उसी समय सांगा ने स्वयं आगरा पर हमला करने का वायदा किया था किन्तु सांगा अपने वचन पर नहीं रहा। मैंने दिल्ली और आगरा पर अधिकार जमा लिया तो भी सांगा की तरफ से हिलने का कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं हुआ।' सांगा पूर्व में इब्राहीम लोदी को अकेला ही दो बार पराजित कर चुका था, ऐसे में उसके विरुद्ध काबुल से बाबर को भारत आमन्त्रित करने का आरोप तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

2. महत्त्वकांक्षाओं का टकराव– बाबर की इब्राहीम लोदी पर विजय के बाद सम्पूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। 'हिन्दूपत' (हिन्दू प्रमुख) सांगा को पराजित किए बिना ऐसा संभव नहीं था। दोनों का उत्तरी भारत में एक साथ बने रहना ठीक वैसा ही था जैसे एक म्यान में दो तलवारें।

3. राजपूत–अफगान मैत्री– यद्यपि पानीपत के प्रथम युद्ध में अफगान पराजित हो गए थे किन्तु वे बाबर को भारत से बाहर निकालने के लिए प्रयासरत थे। इस कार्य के लिए सांगा को उपयुक्त पात्र समझकर अफगानों के नेता हसनखां मेवाती और मृतक सुल्तान इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी उसकी शरण में पहुँच गए। राजपूत–अफगान मोर्चा बाबर के लिए भय का कारण बन गया। अतः उसने सांगा की शक्ति को नष्ट करने का फैसला कर लिया।

4. सांगा द्वारा सल्तनत के क्षेत्रों पर अधिकार करना– पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी की पराजय से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए सांगा ने खण्डार दुर्ग (रणथम्भौर के पास) व उसके निकटवर्ती 200 गांवों को अधिकृत कर लिया जिससे वहाँ के मुस्लिम परिवारों को पलायन करना पड़ा।

दोनों शासकों ने भावी संघर्ष को देखते हुए अपनी–अपनी स्थिति सुदृढ़ करनी प्रारम्भ कर दी। मुगल सेनाओं ने बयाना, धौलपुर और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया जिससे बाबर की शक्ति में वृद्धि हुई। इधर सांगा के निमन्त्रण पर अफगान नेता हसनखां मेवाती और महमूद लोदी, मारवाड़ का मालदेव, आमेर का पृथ्वीराज, ईडर का राजा भारमल, वीरमदेव मेड़तिया, वागड़ का रावल उदयसिंह, सलूम्बर का रावत रत्नसिंह, चंदेरी का मेदिनीराय, सादड़ी का झाला अज्जा, देवलिया का रावत बाघसिंह और बीकानेर का कुंवर कल्याणमल ससैन्य आ डटे।

फरवरी 1527 ई. में सांगा रणथम्भौर से बयाना पहुँच गया, जहाँ इस समय बाबर की तरफ से मेंहदी ख्वाजा दुर्ग रक्षक के रूप में तैनात था। सांगा ने दुर्ग को घेर लिया जिससे दुर्ग में स्थित मुगल सेना की स्थिति काफी खराब हो गई। बाबर ने बयाना की रक्षा के लिए मोहम्मद सुल्तान मिर्जा की अध्यक्षता में एक सेना भेजी किन्तु राजपूतों ने उसे खदेड़ दिया। अंततः बयाना पर सांगा का अधिकार हो गया। बयाना विजय बाबर के विरुद्ध सांगा की एक महत्त्वपूर्ण विजय थी।

इधर बाबर युद्ध की तैयारियों में जुटा था किन्तु महाराणा की तीव्रगति, बयाना की लड़ाई और वहाँ से लौटे हुए शाहमंसूर किस्मती आदि से राजपूतों की वीरता की प्रशंसा सुनकर चिंतित हो गया। इसी समय एक मुस्लिम ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ ने भविष्यवाणी की कि 'मंगल का तारा पश्चिम में है, इसलिए पूर्व से लड़ने वाले पराजित होंगे।' बाबर की सेना की स्थिति पूर्व में ही थी। चारों तरफ निराशा का वातावरण देख बाबर ने अपने सैनिकों को उत्साहित करने के लिए कभी शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और शराब पीने की कीमती सुराहियां व प्याले तुड़वाकर गरीबों में बांट दिये। सैनिकों के मजहबी भावों को उत्तेजित करने के लिए उसने कहा ''सरदारों और सिपाहियों! प्रत्येक मनुष्य, जो संसार में आता है, अवश्य मरता है। जब हम चले जायेंगे तब एक खुदा ही बाकी रहेगा। जो कोई जीवन का भोग करने बैठेगा, उसको अवश्य मरना भी होगा। जो इस संसाररूपी सराय में आता है, उसे एक दिन यहाँ से विदा भी होना पड़ता है। इसलिए बदनाम होकर जीने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना अच्छा है। मैं भी यही चाहता हूँ कि कीर्ति के साथ मृत्यु हो तो अच्छा होगा, शरीर तो नाशवान् है। खुदा ने हम पर बड़ी कृपा की है कि इस लड़ाई में हम मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाजी कहलायेंगे। इसलिए सबको कुरान हाथ में लेकर कसम खानी चाहिए कि प्राण रहते कोई भी युद्ध में पीठ दिखाने का विचार न करे।'' इसके साथ ही बाबर ने रायसेन के सरदार सलहदी तंवर के माध्यम से सुलह की बात भी चलाई। महाराणा ने इस प्रस्ताव पर अपने सरदारों से बात की किन्तु सरदारों को सलहदी की मध्यस्थता पसंद नहीं

आई। इसलिए उन्होंने अपनी सेना की प्रबलता और बाबर की निर्बलता प्रकट कर संधि की बात बनने न दी। संधि वार्ता का लाभ उठाते हुए बाबर तेजी से अपनी तैयारी करता रहा और खानवा के मैदान में आ डटा।

कविराज श्यामलदास कृत 'वीर विनोद' के अनुसार 16 मार्च 1527 ई. को सुबह खानवा (भरतपुर) के मैदान में युद्ध प्रारम्भ हुआ। पहली मुठभेड़ में बाजी राजपूतों के हाथ लगी किन्तु अचानक सांगा के सिर में एक तीर लगने के कारण उसे युद्ध भूमि से हटाना पड़ा। युद्ध संचालन के लिए अब सरदारों ने सलूम्बर के रावत रत्नसिंह चूण्डावत से सैन्य संचालन के लिए प्रार्थना की। रत्नसिंह ने यह कहते हुए उक्त प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया कि मेरे पूर्वज मेवाड़ का राज्य छोड़ चुके हैं इसलिए मैं एक क्षण के लिए भी राज्य चिह्न धारण नहीं कर सकता परन्तु जो कोई राज्यछत्र धारण करेगा, उसकी पूर्ण रूप से सहायता करूंगा और प्राण रहने तक शत्रु से लडूंगा। इसके बाद झाला अज्जा को हाथी पर बिठा कर युद्ध जारी रखा गया। राजपूतों ने अंतिम दम तक लड़ने का निश्चय किया किन्तु बाबर की सेना के सामने उनकी एक न चली और उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा। विजय के बाद बाबर ने गाजी की पदवी धारण की और विजय–चिह्न के रूप में राजपूत सैनिकों के सिरों की एक मीनार बनवाई।

सांगा की पराजय के कारण

1. इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार सांगा की पराजय का मुख्य कारण बयाना विजय के तुरन्त बाद ही युद्ध न करके बाबर को तैयारी करने का पूरा समय देना था। लम्बे समय तक युद्ध को स्थगित रखना महाराणा की बहुत बड़ी भूल सिद्ध हुई। महाराणा के विभिन्न सरदार देशप्रेम के भाव से इस युद्ध में शामिल नहीं हो रहे थे। सभी के अलग–अलग स्वार्थ थे, यहाँ तक कि कईयों में तो परस्पर शत्रुता भी थी। संधि वार्ताओं के कारण कई दिन शांत बैठे रहने से उनमें युद्ध के प्रति वह जोश व उत्साह नहीं रहा जो युद्ध के लिए रवाना होते समय था।

2. राजपूत सैनिक परम्परागत हथियारों से युद्ध लड़ रहे थे। वे तीर–कमान, भालों व तलवारों से बाबर की तोपों के गोलों का मुकाबला नहीं कर सकते थे।

3. हाथी पर सवार होकर भी सांगा ने बड़ी भूल की क्योंकि इससे शत्रु को उस पर ठीक निशाना लगाकर घायल करने का मौका मिला। उसके युद्ध भूमि से बाहर जाने से सेना का मनोबल कमजोर हुआ।

4. राजपूत सेना में एकता और तालमेल का अभाव था क्योंकि सम्पूर्ण सेना अलग–अलग सरदारों के नेतृत्व में एकत्रित हुई थी।

5. अपनी गतिशीलता के कारण राजपूतों की हस्ति सेना पर बाबर की अश्व सेना भारी पड़ी। बाबर की तोपों के गोलों से भयभीत हाथियों ने पीछे लौटते समय अपनी ही सेना को रौंद कर नुकसान पहुँचाया।

खानवा युद्ध के परिणाम

1. भारत में राजपूतों की सर्वोच्चता का अंत हो गया। राजपूतों का वह प्रताप–सूर्य जो भारत के गगन के उच्च स्थान पर पहुँच कर लोगों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा था, अब अस्तांचल की ओर खिसकने लगा।

2. मेवाड़ की प्रतिष्ठा और शक्ति के कारण निर्मित राजपूत संगठन इस पराजय के साथ ही समाप्त हो गया।

3. भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य स्थापित हो गया और बाबर स्थिर रूप से भारत का बादशाह बन गया।

अंतिम दिन– खानवा के युद्ध के बाद मूर्छित सांगा को बसवा ले जाया गया। होश आने पर सारा वृतांत जानकर सांगा काफी दुःखी हुआ और युद्ध स्थल से इतनी दूर लाने के लिए अपने सरदारों को भला–बुरा कहा। बाबर से अपनी पराजय का बदला लेने के लिए जब सांगा चंदेरी जा रहा था तब मार्ग में इरिच नामक स्थान पर उसके युद्ध विरोधी सरदारों ने जहर दे दिया। विष का प्रभाव होने पर कालपी नामक स्थान पर 30 जनवरी 1528 ई. को मात्र 46 वर्ष की आयु में सांगा का देहान्त हो गया। अमरकाव्य वंशावली के अनुसार सांगा का अंतिम संस्कार माण्डलगढ़ में किया गया।

मूल्यांकन– महाराणा सांगा वीर, उदार, कृतज्ञ, बुद्धिमान और न्यायपरायण शासक था। अपने शत्रु को कैद करके छोड़ देना और राज्य वापिस लौटा देने का कार्य सांगा जैसा वीर पुरुष ही कर सकता था। प्रारम्भ से ही विपत्तियों में पलने के कारण वह एक साहसी वीर योद्धा बन गया था। अपने भाई पृथ्वीराज के साथ झगड़े में उसकी एक आंख फूट गई, इब्राहीम लोदी के साथ हुए खातोली के युद्ध में उसका हाथ कट गया और एक पैर से वह लंगड़ा हो गया। मृत्यु समय तक उसके शरीर पर तलवारों व भालों के कम से कम 80 निशान लगे हुए थे जो उसे 'एक सैनिक का भग्नावशेष' सिद्ध कर रहे थे। शायद ही उसके शरीर का कोई अंश ऐसा हो जिस पर युद्धों में लगे हुए घावों के चिह्न न हो। अपने पुरुषार्थ द्वारा सांगा ने मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। अपने समय का वह सबसे बड़ा हिन्दू नरेश था जिसके आगे बड़े–बड़े शासक सिर झुकाते थे। जोधपुर और आमेर के राज्य भी उसका सम्मान करते थे। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, कालपी, चन्देरी, बूंदी, गागरोन, रामपुरा और आबू के राजा उसके सामंत थे। वह भारत का अंतिम नरेश था जिसके नेतृत्व में राजपूत नरेश विदेशियों को भारत से निकालने के लिए इकट्ठे हुए थे। बाबर ने उसकी प्रशंसा में लिखा है कि ''राणा सांगा अपनी बहादुरी और तलवार के बल पर बहुत बड़ा हो गया था। मालवा, दिल्ली और गुजरात का कोई अकेला सुल्तान उसे हराने में असमर्थ था। उसके राज्य की वार्षिक आय दस करोड़ थी। उसकी सेना में एक लाख सैनिक थे। उसके साथ 7 राजा, 9 राव और 104 छोटे सरदार रहा करते थे।'' आपसी वैमनस्य के लिए प्रसिद्ध राजपूत शासकों को एक झण्डे के नीचे लाना सांगा की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

सांगा धर्म और राजनीति के बड़े मर्मज्ञ थे। अंगहीन होने पर एक बार उन्होंने अपने सरदारों के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि 'जिस प्रकार एक टूटी हुई मूर्ति पूजने योग्य नहीं रहती, उसी प्रकार मेरी आंख, भुजा और पैर अयोग्य होने के कारण मैं सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं हूँ। इस स्थान पर जिसे उचित समझें, बैठावें। राणा के इस विनीत व्यवहार से सरदार

बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि रणक्षेत्र में अंग–भंग होने से राजा का गौरव घटता नहीं अपितु बढ़ता है।' महमूद खिलजी को गिरफ्तार करने की खुशी में सांगा ने चारण हरिदास को चित्तौड़ का सम्पूर्ण राज्य दे दिया था, किन्तु हरिदास ने सम्पूर्ण राज्य न लेकर 12 गांवों में ही अपनी खुशी प्रकट की।

एक बड़ा राज्य स्थिर करने वाला होने के बावजूद भी सांगा को राजनीति में अधिक निपुण नहीं कहा जा सकता। अपने शत्रु को पकड़कर छोड़ देना उदारता की दृष्टि भले ही उत्तम कार्य हो परन्तु राजनीति के विचार से बुरा ही था। इसी तरह गुजरात के सुल्तान को हराकर उसके इलाकों पर अधिकार न करना भी उसकी भूल थी। अपने छोटे लड़कों को रणथम्भौर जैसी बड़ी जागीर देकर उसने भविष्य के लिए कांटा बो दिया। राणा की विशेष प्रीतिपात्रा होने के कारण हाड़ी रानी कर्मावती ने अपने दोनों पुत्रों विक्रमादित्य और उदयसिंह के लिए रणथम्भौर की जागीर लेकर अपने भाई सूरजमल हाड़ा को उनका संरक्षक नियुक्त करवा लिया था।

राव चन्द्रसेन (1562–1581 ई.)

राव चन्द्रसेन जोधपुर के प्रसिद्ध शासक राव मालदेव (1532–62 ई.) के कनिष्ठ पुत्र थे। राव मालदेव के समय दिल्ली के शासक शेरशाह सूरी ने मारवाड़ पर आक्रमण किया था। दोनों पक्षों के बीच 1544 ई. में लड़े गए गिरी–सुमेल (पाली) युद्ध में छल–कपट के सहारे शेरशाह जीत हासिल करने में सफल रहा किन्तु राव मालदेव के पराक्रमी सेनापतियों जैता और कूंपा ने युद्ध के दौरान उसे ऐसी कड़ी टक्कर दी कि इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार शेरशाह अपने घोड़े से नीचे उतर कर सफलता के लिए अल्लाह से दुआ मांगने लगा। शेरशाह के भय का पता उसकी इस स्वीकारोक्ति से चलता है, जिसमें उसने युद्ध के बाद कहा था कि 'मैं एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दूस्तान की बादशाहत खो बैठता।'

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार चन्द्रसेन का जन्म 1541 ई. में हुआ। राव मालदेव अपने ज्येष्ठ पुत्र राम से अप्रसन्न था, जबकि उससे छोटे पुत्र उदयसिंह को पटरानी स्वरूपदे (चन्द्रसेन की माँ) ने राज्याधिकार से वंचित करवा दिया। इस कारण मालदेव की मृत्यु के बाद उसकी इच्छानुसार 31 दिसम्बर 1562 ई. को चन्द्रसेन जोधपुर की गद्दी पर बैठा। मालदेव के काल में उसे बीसलपुर और सिवाना की जागीर मिली हुई थी।

आन्तरिक विद्रोह का दमन– शासक बनने के कुछ ही समय बाद चन्द्रसेन ने आवेश में आकर अपने एक चाकर की हत्या कर दी। इससे जैतमाल और उससे मेल रखने वाले कुछ अन्य सरदार अप्रसन्न हो गए। नाराज सरदारों ने चन्द्रसेन को दण्डित करने के लिए उसके विरोधी भाइयों राम, उदयसिंह और रायमल के साथ गठबंधन कर उन्हें आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया। राम ने सोजत और रायमल ने दूनाड़ा प्रान्त में उपद्रव शुरू कर दिया तथा उदयसिंह ने गांगाणी और बावड़ी पर अधिकार कर लिया। सूचना मिलते ही चन्द्रसेन ने इन उपद्रवों को शांत करने के लिए अपनी सेना भेजी जिससे राम और रायमल तो अपनी–अपनी जागीरों में लौट गए किन्तु उदयसिंह ने लोहावट नामक स्थान पर संघर्ष किया। इस युद्ध में उदयसिंह घायल हुआ और चन्द्रसेन विजयी रहा। 1563 ई. में राव चन्द्रसेन और उदयसिंह की सेनाओं के बीच नाडोल नामक स्थान पर पुनः संघर्ष हुआ किन्तु विजय की आशा न देखकर उदयसिंह बादशाह अकबर के पास चला गया।

जोधपुर पर मुगलों का अधिकार– राव चन्द्रसेन के नाराज भइयों राम, उदयसिंह व रायमल के साथ आपसी कलह के कारण अकबर को हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। उसने शीघ्र ही हुसैनकुली खां की अध्यक्षता में एक सेना भेजी जिसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। जोधपुर की ख्यात में मुगल अभियान का अतिरंजित वर्णन करते हुए कहा गया है कि शाही सेना ने जोधपुर पर तीन बार हमला किया और लगभग दस माह के घेरे के बाद चन्द्रसेन को अन्न–जल की कमी के कारण गढ़ का परित्याग कर भाद्राजूण जाना पड़ा। जोधपुर हाथ से निकलने के बाद चन्द्रसेन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी और वह अपने रत्न आदि बेचकर खर्च चलाने लगा।

पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने अकबर द्वारा जोधपुर पर आक्रमण का प्रमुख कारण जोधपुर के राव मालदेव द्वारा उसके पिता हुमायूं के प्रति किए गए असहयोग को माना है।

नगौर दरबार– 1570 ई. में अपनी अजमेर यात्रा के समय अकबर मारवाड़ क्षेत्र में दुष्काल की खबरें सुनकर नागौर पहुंचा। इस अवसर पर उसने अपने सैनिकों से दुष्काल निवारणार्थ एक तालाब खुदवाया, जो 'शुक्र तालाब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वास्तव में इस दरबार का उद्देश्य मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करना था।

चन्द्रसेन के खिलाफ मुगल अभियान– नागौर दरबार के कुछ समय बाद मुगल सेना ने भाद्राजूण पर आक्रमण कर दिया। फरवरी 1571 ई. में चन्द्रसेन भाद्राजूण का परित्याग कर सिवाणा की तरफ चला गया। 1572 ई. में एक तरफ जहाँ गुजरात में विद्रोह फैला हुआ था, वहीं दूसरी तरफ महाराणा प्रताप के शासक बनने से मेवाड़ के भी आक्रामक होने का खतरा पैदा हो गया। ऐसी स्थिति में अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का शासक बनाकर गुजरात की तरफ भेजा ताकि महाराणा प्रताप गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुँचा सके।

1573 ई. में अकबर ने चन्द्रसेन को अपने अधीन बनाने के लिए शाहकुली खाँ के साथ जगतसिंह, केशवदास मेड़तिया, बीकानेर के रायसिंह आदि को भेजा। यह सेना सोजत में चन्द्रसेन के भतीजे कल्ला को पराजित करते हुए सिवाना पहुँची। अपने सेनानायकों के परामर्श के अनुसार चन्द्रसेन किले की रक्षा का भार पत्ता राठौड़ को सौंपकर पहाड़ों में चला गया और वहीं से किले को घेरने वाली मुगल सेना के पार्श्वों पर छापामार पद्धति से आक्रमण कर उसे क्षति पहुँचाने लगा। पत्ता राठौड़ और चन्द्रसेन के सम्मिलित सफल प्रतिरोध के कारण रायसिंह ने अकबर से अतिरिक्त सैन्य सहायता की मांग की। अकबर की तरफ से एक बड़ी सेना भेजे जाने पर चन्द्रसेन पहाड़ों में चला गया। यद्यपि मुगल सेना ने उसका पीछा किया किन्तु चन्द्रसेन को पकड़ने में वह असफल रही। इस असफलता से निराश अकबर ने अपने अमीरों को कड़ी फटकार लगाई।

चन्द्रसेन को अपने अधीन बनाने के लिए अकबर ने

1575 ई. में जलाल खाँ के नेतृत्व में सिवाना की तरफ एक बड़ी सेना भेजी जिसमें सैयद अहमद, सैयद हाशिम, शिमाल खाँ आदि अमीर भी शामिल थे। लम्बे संघर्ष के दौरान एक दिन अवसर पाकर चन्द्रसेन ने अपने सहयोगी देवीदास के साथ मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में जलाल खाँ मारा गया। इस घटना से शाही सेना की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। अब अकबर ने शाहबाज खां को भेजा। उसने शीघ्र ही देवकोर और दूनाड़ा पर अधिकार कर सिवाना को घेर लिया। खाद्य सामग्री समाप्त होने के कारण सिवाना दुर्ग के रक्षक को किला छोड़ना पड़ा। इस प्रकार 1575 ई. में सिवाना के दुर्ग पर अकबर का अधिकार हो गया।

'संकटकालीन राजधानी' सिवाणा हाथ से निकलने के बाद अक्टूबर 1575 ई. में जैसलमेर के रावल हरराय ने पोकरण पर आक्रमण कर दिया। इस समय पोकरण में राव चन्द्रसेन की तरफ से किलेदार आनन्दराम पंचोली था। चार माह के घेरे के बाद रावल हरराय ने चन्द्रसेन के सामने प्रस्ताव रखा कि 'एक लाख फदिये के बदले मुझे पोकरण दे दो, जोधपुर पर अधिकार होने के बाद एक लाख फदिये लौटाकर पोकरण मुझसे वापिस ले लेना।' संकटापन्न आर्थिक दशा के कारण चन्द्रसेन ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर जनवरी 1576 ई. में पोकरण भाटियों को दे दिया।

पोकरण के रूप में अंतिम आश्रयस्थल भी हाथ से निकल जाने के उपरान्त भी चन्द्रसेन हताश नहीं हुआ। लगभग डेढ़–दो वर्ष तक सिरोही, डूंगरपुर और बांसवाड़ा में घूमते रहने के बाद 1579 ई. में चन्द्रसेन ने सरवाड़ के मुगल थाने को लूटकर अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद उसने अजमेर प्रांत पर भी धावे मारने शुरू कर दिये। यह समाचार मिलने पर बादशाह अकबर ने पायंदा मोहम्मद खाँ के नेतृत्व में सेना भेजी। चन्द्रसेन ने 1580 ई. में इस सेना का सामना किया किन्तु उसे असफल होकर पुनः पहाड़ों में लौटना पड़ा। कुछ दिनों बाद चन्द्रसेन ने सेना को पुनः संगठित किया और 7 जुलाई 1580 ई. को सोजत पर हमला कर दिया। सोजत पर अधिकार कर उसने सारण के पर्वतों में अपना निवास कायम किया। यहीं 11 जनवरी 1581 ई. को उसकी मृत्यु हो गई। जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार चन्द्रसेन के एक सामंत वैरसल ने विश्वासघात कर भोजन में जहर दे दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

राव चन्द्रसेन अकबरकालीन राजस्थान का प्रथम स्वतन्त्र प्रकृति का शासक था। उसके भाई शाही सत्ता का सुख भोगते रहे, वहीं उसे अपने रत्न–आभूषण बेचकर गुजारा चलाना पड़ा। चन्द्रसेन ने जोधपुर राज्य को छोड़कर रात–दिन पहाड़ों में घूमना और मुगल सेना से लड़ते रहना अंगीकार कर लिया किन्तु अधीनता स्वीकार नहीं की। संघर्ष की जो शुरूआत चन्द्रसेन ने की थी उसी राह पर आगे चलकर महाराणा प्रताप ने बड़ा नाम कमाया। इस कारण चन्द्रसेन को 'प्रताप का अग्रगामी' तथा 'मारवाड़ का प्रताप' भी कहा जाता है।

इतिहास में समुचित महत्व न मिलने के कारण चन्द्रसेन को 'मारवाड़ का भूला बिसरा नायक' कहा जाता है। चन्द्रसेन का नाम इतिहास में विस्मृत होने का प्रमुख कारण यही है कि एक तरफ प्रताप की मृत्यु के बाद जहाँ मेवाड़ का राज्य उनके पुत्र–पौत्रादि के हाथों में रहा, वहीं चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद मारवाड़ की गद्दी पर उसके भाई उदयसिंह का अधिकार हो गया। चन्द्रसेन और उदयसिंह के बीच विरोध चलता आया था।

चन्द्रसेन और प्रताप– राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप दोनों मुगल बादशाह अकबर के साथ आजीवन संघर्ष के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके बारे में कहा गया कि –

अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियो चीत।
सारे हिन्दुस्तान तणै सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत।।

(उस समय सारे हिन्दुस्तान में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो वीर ऐसे थे, जिन्होंने न तो अकबर की अधीनता स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही दाग लगने दिया तथा जिनके शस्त्र हमेशा ही मुगल–सम्राट के विरुद्ध चमकते रहे।)

चन्द्रसेन व प्रताप दोनों को अपने भाई–बन्धुओं के विरोध का सामना करना पड़ा। प्रताप की भांति चन्द्रसेन के अधिकार में मारवाड़ के कई भाग नहीं थे। मेवाड़ के माण्डलगढ़ और चित्तौड़ पर तो मारवाड़ के मेड़ता, नागौर, अजमेर आदि स्थानों पर मुगलों का अधिकार था। समानता के साथ दोनों शासकों की गतिविधियों में मूलभूत अन्तर भी पाया जाता है। दोनों शासकों ने अपने–अपने पहाड़ी क्षेत्रों में रहकर मुगलों को खूब छकाया किन्तु प्रताप के समान चन्द्रसेन चावंड जैसी कोई स्थायी राजधानी नहीं बसा पाया। विशेष अवसर पर चन्द्रसेन की उपस्थिति व मुगल सेना को विकेन्द्रित करने से प्रताप को सहयोग मिला।

महाराणा प्रताप (1572–1597 ई.)

अकबर द्वारा चित्तौड़ आक्रमण और जयमल–पत्ता का प्रतिरोध– मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के समय 23 अक्टूबर 1567 को अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। उदयसिंह के सेनापति जयमल और पत्ता ने लम्बे समय तक दुर्ग की रक्षा के लिए सफल प्रतिरोध किया किन्तु चार माह के लम्बे घेरे के बाद मुगल सेना बारूद की सहायता से दुर्ग की दीवार तोड़ने में सफल रही। प्रत्यक्ष संघर्ष में अकबर की बन्दूक से घायल होने के बावजूद जयमल ने अपने कुटुम्बी कल्ला के कंधों पर बैठकर शत्रु से लोहा लिया। जयमल और पत्ता की मृत्यु के बाद ही अकबर 25 फरवरी 1568 को चित्तौड़ पर अधिकार कर पाया।

इस सम्बन्ध में एक कहावत भी प्रचलित है–

भूख न मेटे मेड़तो, न मेटे नागोर।
रजवट भूख अनोखड़ी, मर्‌याँ मिटे चित्तौड़।।

अकबर इन दोनों योद्धाओं की वीरता से इतना मुग्ध हुआ कि आगरा के किले के प्रवेश द्वार पर उनकी गजारूढ़ प्रतिमायें स्थापित करवाई जिनको देखने का उल्लेख फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने अपने यात्रा वृत्तांत 'ट्रेवल्स इन द मुगल एम्पायर' में किया है। धर्मांध औरंगजेब के समय इन मूर्तियों को कालान्तर में हटवा दिया गया।

प्रारम्भिक जीवन व राज्यारोहण– महाराणा प्रताप का जन्म विक्रम संवत् 1597, ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया (9 मई, 1540 ई.) को कुम्भलगढ़ दुर्ग में हुआ। वे मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के जयेष्ठ पुत्र थे तथा उनकी माँ का नाम जैवन्ता बाई (जीवंत कंवर

या जयवंती बाई) था। किन्तु उदयसिंह की एक अन्य रानी धीरकंवर थी। धीरकंवर अपने पुत्र जगमाल को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाने के लिए उदयसिंह को राजी करने में सफल रही। उदयसिंह की मृत्यु के बाद जगमाल ने स्वयं को मेवाड़ का महाराणा घोषित कर दिया किन्तु सामन्तों ने प्रताप का समर्थन करते हुए उसे मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा दिया। इस प्रकार होली के त्यौंहार के दिन 28 फरवरी, 1572 ई. को गोगूंदा में महाराणा प्रताप का राजतिलक हुआ।

महाराणा प्रताप के राज्यारोहण के समय मेवाड़ की स्थितियाँ काफी खराब थी। मुगलों के साथ चलने वाले दीर्घकालीन युद्धों के कारण मेवाड़ की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो चुकी थी। चित्तौड़ सहित मेवाड़ के अधिकांश भागों पर मुगलों का अधिकार हो चुका था और अकबर मेवाड़ के बचे हुए क्षेत्र पर भी अपना अधिकार करना चाहता था। इस समय के चित्तौड़ के विध्वंस और उसकी दीन दशा को देखकर कवियों ने उसे 'आभूषण रहित विधवा स्त्री' की उपमा तक दे दी थी।

शासक बनने पर प्रताप ने आमेर, बीकानेर व जैसलमेर जैसी रियासतों की तरह अकबर की अधीनता स्वीकार न कर मातृभुमि की स्वधीनता को महत्व दिया और अपने वंश की प्रतिष्ठा के अनुकूल संघर्ष का मार्ग चुना। मेवाड़ पर मुगलों के आक्रमणों से प्रताप के अन्य सांमतों के साहस में कमी आने लगी। ऐसी स्थिति में प्रताप ने सब सांमतों को एकत्रित कर उनके सामने रघुकुल की मर्यादा की रक्षा करने और मेवाड़ को पूर्ण स्वतंत्र करने का विश्वास दिलाया और प्रतिज्ञा की कि जब तक मेवाड़ को स्वतंत्र नहीं करा लूंगा तब तक राज महलों में नहीं रहुंगा, पलंग पर नहीं सोऊंगा और पंच धातु (सोना, चांदी, तांबा और पीतल, काँसा) के बर्तनों में भोजन नहीं करूँगा। आत्मविश्वास के साथ मेवाड़ के स्वामीभक्त सरदारों तथा भीलों की सहायता से शक्तिशाली सेना का संगठन किया और मुगलों से अधिक दूर रहकर युद्ध का प्रबन्ध करने के लिए अपनी राजधानी गोगुन्दा से कुंभलगढ़ स्थानान्तरित की।

अकबर को प्रताप द्वारा मेवाड़ राज्य में उसकी सत्ता के विरुद्ध किए जा रहे प्रयत्नों की जानकारी मिलने लगी। अतः अकबर ने पहल करते हुए प्रताप के राज्यारोहण के वर्ष से ही उसे अधीनता स्वीकार करवाने के लिए एक के बाद एक चार दूत भेजे। महाराणा प्रताप के सिंहासन पर बैठने के छः माह बाद सितम्बर 1572 ई. में अकबर ने अपने अत्यन्त चतुर व वाक्पटु दरबारी जलाल खां कोरची के साथ संधि प्रस्ताव भेजा। अगले वर्ष अकबर ने प्रताप को अपने अधीन में करने के लिए क्रमशः तीन अन्य दरबारी – मानसिंह, भगवंतदास और टोडरमल भेजे किन्तु प्रताप किसी भी कीमत पर अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

हल्दीघाटी का युद्ध– मेवाड़ पर आक्रमण की योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मार्च 1576 ई. में अकबर स्वयं अजमेर जा पहुँचा।वहीं पर मानसिंह को मेवाड़ के विरूद्ध भेजी जाने वाली सेना का सेनानायक घोषित किया। 3 अप्रेल 1576 ई. को मानसिंह सेना लेकर मेवाड़ विजय के लिए चल पड़ा। दो माह माण्डलगढ़ में रहने के बाद अपने सैन्य बल में वृद्धि कर मानसिंह खमनौर गांव के पास आ पहुँचा। इस समय मानसिंह के साथ गाजीखां बदख्शी, ख्वाजा गयासुद्दीन अली, आसिफ खां, सैयद अहमद खां, सैयद हाशिम खां, जगन्नाथ कछवाह, सैयद राजू, मिहत्तर खां, भगवंतदास का भाई माधोसिंह, मुजाहिद बेग आदि सरदार उपस्थित थे। मुगल इतिहास में यह पहला अवसर था जब किसी हिन्दू को इतनी बड़ी सेना का सेनापति बना कर भेजा गया था। मानसिंह को मुगल सेना का प्रधान सेनापति बनाये जाने से मुस्लिम दरबारियों में नाराजगी फैल गई। बदायूंनी ने अपने संरक्षक नकीब खां से भी इस युद्ध में चलने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया कि ''यदि इस सेना का सेनापति एक हिन्दू न होता, तो मैं पहला व्यक्ति होता जो इस युद्ध में शामिल होता।''

ग्वालियर के राजा रामशाह और पुराने अनुभवी यौद्धाओं ने राय दी कि मुगल सेना के अधिकांश सैनिकों को पर्वतीय भाग में लड़ने का अनुभव नहीं है। अतः उनको पहाड़ी भाग में घेर कर नष्ट कर देना चाहिए। किन्तु युवा वर्ग ने इस राय को चुनौती देते हुए इस बात पर जोर दिया कि मेवाड़ के बहादुरों को पहाड़ी भाग से बाहर निकल कर शत्रु सेना को खुले मैदान में पराजित करना चाहिए। अंत में मानसिंह ने बनास नदी के किनारे मोलेला में अपना शिविर स्थापित किया तथा प्रताप ने मानसिंह से छः मील दूर लोसिंग गांव में पड़ाव डाला।

मुगल सेना में हरावल (सेना का सबसे आगे वाला भाग) का नेतृत्व सैयद हाशिम कर रहा था। उसके साथ मुहम्मद बादख्शी रफी, राजा जगन्नाथ और आसफ खां थे। प्रताप की सेना के दो भाग थे, प्रताप की सेना के हरावल में हकीम खां सूरी, अपने पुत्रों सहित ग्वालियर का रामशाह, पुरोहित गोपीनाथ, शंकरदास, चारण जैसा, पुरोहित जगन्नाथ, सलूम्बर का चूड़ावत कृष्णदास, सरदारगढ़ का भीमसिंह, देवगढ़ का रावत सांगा, जयमल मेड़तिया का पुत्र रामदास आदि शामिल थे। दूसरे भाग का नेतृत्व सेना के केन्द्र में रह कर स्वयं महाराणा कर रहे थे, जिनके साथ भामाशाह व उनका भाई ताराचन्द था।

चेतक स्मारक

महाराणा प्रताप

18 जून 1576 प्रातःकाल प्रताप ने लोसिंग से हल्दीघाटी में गोगुन्दा की ओर बढ़ती सेना का सामना करने का निश्चय कर कूच किया। युद्ध के प्रथम भाग में मुगल सेना का बल तोड़ने के लिए राणा ने अपने हाथी लूना को आगे बढ़ाया जिसका मुकाबला

मुगल हाथी गजमुख (गजमुक्ता) ने किया। गजमुख घायल होकर भागने ही वाला था कि लूना का महावत तीर लगने से घायल हो गया और लूना लौट पड़ा। इस पर महाराणा के विख्यात हाथी रामप्रसाद को मैदान में उतारना पड़ा।

युद्ध का प्रारम्भ प्रताप की हरावल सेना के भीषण आक्रमण से हुआ। मेवाड़ के सैनिकों ने अपने तेज हमले और वीरतापूर्ण युद्ध–कौशल द्वारा मुगल पक्ष की अग्रिम पंक्ति व बायें पार्श्व को छिन्न–भिन्न कर दिया। बदायूंनी के अनुसार इस हमले से घबराकर मुगल सेना लूणकरण के नेतृत्व में भेड़ों के झुण्ड की तरह भाग निकली। इस समय जब प्रताप के राजपूत सैनिकों और मुगल सेना के राजपूत सैनिकों के मध्य फर्क करना कठिन हो गया तो बदायूंनी ने यह बात मुगल सेना के दूसरे सेनापति आसफ खां से पूछी। आसफ खां ने कहा कि ''तुम तो तीर चलाते जाओ। राजपूत किसी भी ओर का मारा जाय, इससे इस्लाम का तो लाभ ही होगा।'' मानसिंह को मुगल सेना का सेनापति बनाने का बदायूंनी भी विरोधी था, किन्तु जब उसने मानसिंह को प्रताप के विरूद्ध बड़ी वीरता और चातुर्य से लड़ते देखा तो प्रसन्न हो गया।

युद्ध के दौरान सैयद हाशिम घोड़े से गिर गया और आसफ खां ने पीछे हटकर मुगल सेना के मध्य भाग में जाकर शरण ली। जगन्नाथ कछवाहा भी मारा जाता किन्तु उसकी सहायता के लिए चंदावल (सेना में सबसे पीछे की पंक्ति) से सैन्य टुकड़ी लेकर माधोसिंह कछवाहा आ गया। मुगल सेना के चंदावल में मिहतर खां के नेतृत्व में आपात स्थिति के लिए सुरक्षित सैनिक टुकड़ी रखी गई थी। अपनी सेना को भागते देख मिहतर खां आगे की ओर चिल्लाता हुआ आया कि ''बादशाह सलामत एक बड़ी सेना के साथ स्वयं आ रहे हैं।'' इसके बाद स्थिति बदल गई और भागती हुई मुगल सेना नये उत्साह और जोश के साथ लौट पड़ी।

राणा प्रताप अपने प्रसिद्ध घोड़े 'चेतक' पर सवार होकर लड़ रहा था और मानसिंह 'मरदाना' नामक हाथी पर सवार था। रणछोड़ भट्ट कृत संस्कृत ग्रंथ 'अमरकाव्य' में वर्णन है कि प्रताप ने बड़े वेग के साथ चेतक के अगले पैरों को मानसिंह के हाथी के मस्तक पर टिका दिया और अपने भाले से मानसिंह पर वार किया। मानसिंह ने होदे में नीचे झुक कर अपने को बचा लिया किन्तु उसका महावत मारा गया। इस हमले में मानसिंह के हाथी की सूंड पर लगी तलवार से चेतक का एक अगला पैर कट गया। प्रताप को संकट में देखकर बड़ी सादड़ी के झाला बीदा ने राजकीय छत्र स्वयं धारण कर युद्ध जारी रखा और प्रताप ने युद्ध को पहाड़ों की ओर मोड लिया। हल्दीघाटी से कुछ दूर बलीचा नामक स्थान पर घायल चेतक की मृत्यु हो गई, जहाँ उसका चबूतरा आज भी बना हुआ है। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की तरफ से झाला बीदा, मानसिंह सोनगरा, जयमल मेड़तिया का पुत्र रामदास, रामशाह और उसके तीन पुत्र (शालिवाहन, भवानीसिंह व प्रतापसिंह) वीरता का प्रदर्शन करते हुए मारे गए। सलूम्बर का रावत कृष्णदास चूड़ावत, घाणेराव का गोपालदास, भामाशाह, ताराचन्द आदि रणक्षेत्र में बचने वाले प्रमुख सरदार थे।

जब युद्ध पूर्ण गति पर था,तब प्रताप ने युद्ध स्थिति में परिवर्तन किया। युद्ध को पहाड़ों की ओर मोड़ दिया। मानसिंह ने मेवाड़ी सेना का पीछा नहीं किया। मुगलों द्वारा प्रताप की सेना का पीछा न करने के बदायूनी ने तीन कारण बताये हैं–

1.जून माह की झुलसाने वाली तेज धूप
2.मुगल सेना की अत्यधिक थकान से युद्ध करने क्षमता न रहना।
3. मुगलों को भय था कि प्रताप पहाड़ों में घात लगाए हुए है और उसके अचानक आक्रमण से अत्यधिक सैनिकों का जीवन खतरे में पड़ जाएगा।

इस तरह अकबर की इच्छानुसार वह न तो प्रताप को पकड़ सका अथवा मार सका और न ही मेवाड़ की सैन्य शक्ति का विनाश कर सका।अकबर का यह सैन्य अभियान असफल रहा तथा पासा महाराणा प्रताप के पक्ष में था। युद्ध के परिणाम से खिन्न अकबर ने मानसिंह और आसफ खां की कुछ दिनों के लिये ड्योढ़ी बंद कर दी अर्थात् उनको दरबार में सम्मिलित होने से वंचित कर दिया। शंहशाह अकबर की विशाल साधन सम्पन्न सेना का गर्व मेवाड़ी सेना ने ध्वस्त कर दिया।

जब राजस्थान के राजाओं में मुगलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उनकी अधीनता मानने की होड़ मची हुई थी, उस समय प्रताप द्वारा स्वतन्त्रता का मार्ग चुनना निसंदेह सराहनीय कदम था।

शाहबाज खां के अभियान– हल्दीघाटी युद्ध के बाद अकबर ने प्रताप को पूरी तरह से कुचलने के लिए मीरबख्शी शाहबाज खां को तीन बार प्रताप के विरूद्ध भेजा। 15 अक्टूबर 1577 ई. को शाहबाज खां को प्रथम बार मेवाड़ के लिए रवाना किया गया। प्रथम आक्रमण के समय शाहबाज खां ने केलवाड़ा गांव पर अधिकार कर कुम्भलगढ़ का घेरा डाला, फिर भी उसको लेने में सफलता नहीं मिली और कुछ समय बाद प्रताप ने पुनः अधिकार कर लिया।प्रताप राव अक्षयराज के पुत्र भाण सोनगरा को किलेदार नियुक्त कर अपने सैनिकों के साथ ईडर की तरफ निकल गया और चुलिया गांव में ठहरा। यहाँ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने पच्चीस लाख रूपये एवं बीस हजार अशर्फियां राणा को भेंट की। भामाशाह की सैनिक एवं प्रशासनिक क्षमता को देखकर प्रताप ने इसी समय रामा महासहाणी के स्थान पर उसे मेवाड़ का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया।

भामाशाह से आर्थिक सहायता प्राप्त हो जाने के बाद प्रताप ने सेना का पुनर्गठन किया और जुलाई 1582 ई. में अवसर देखकर दिवेर (राजसमंद) के दर्रे पर कायम मुगल थाने पर हमला किया। इस थाने पर अकबर के चाचा सुल्तान खां का नियन्त्रण था। संघर्ष के दौरान अमरसिंह ने अपना भाला इतनी शक्ति से मारा कि वह सुल्तान खां मुगल को बेधता हुआ उसके घोड़े के भी आर–पार हो गया। दिवेर की विजय के बाद इस पर्वतीय भाग पर प्रताप का अधिकार हो गया। कर्नल टॉड ने दिवेर के युद्ध को 'मेवाड़ के मेराथन' की संज्ञा दी है।

प्रताप के विरूद्ध अंतिम अभियान– अकबर ने 6 दिसम्बर 1584 ई. को जगन्नाथ कछवाहा (आमेर के राजा भारमल का छोटा पुत्र) को अजमेर का सूबेदार बनाकर मेवाड़ पर आक्रमण के लिए भेजा। जगन्नाथ कुछ भी विशेष नहीं कर पाया और निराश होकर 1585 ई. में मेवाड़ से चला गया। जगन्नाथ कछवाह का आक्रमण मेवाड़ पर प्रताप के समय अंतिम आक्रमण सिद्ध हुआ। अब अकबर को विश्वास हो गया कि महाराणा प्रताप को पकड़ पाना अथवा उससे अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार कराने का प्रयत्न केवल एक कल्पना मात्र है। साथ ही अकबर अब पश्चिमोत्तर समस्या में उलझ गया गया था। इस कारण प्रताप के विरुद्ध अभियान हमेशा के लिए बंद कर दिए गए।

धनुष की प्रत्यंचा खींचने के प्रयत्न में प्रताप घायल हो गया और उनका 19 जनवरी 1597 ई. को 57 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। चावंड से ढ़ाई किलोमीटर दूर बण्डोली गांव के निकट बहने वाले नाले के किनारे उनका दाह–संस्कार किया गया। दूरसा आढ़ा ने प्रताप के बारे में लिखा है :–

अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी।
गौ आडा गवड़ाय, जिको बहतो धुरवामी।।
नवरोजे नह गयो, नगौ आतसां नवल्ली।
नगौ झरोखा हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली।।

(जिसने कभी अपने घोड़ों को शाही सेना में भेज कर दाग नहीं लगवाया, जिसने अपनी पगड़ी किसी के आगे नहीं झुकाई, जो सदा शत्रुओं के प्रति व्यंग्य भरी कविताएं गाता था, जो समस्त भारत के भार की गाड़ी को बायें कन्धे से खींचने में समर्थ था, जो कभी नौरोज में नहीं गया, जो शाही डेरों में नही गया और जिस अकबर के झरोखे की प्रतिष्ठा विश्व भर में व्याप्त थी, वह उसके नीचे भी नहीं आया। ऐसा गहलोत (महाराणा प्रताप) विजय के साथ मृत्यु के पास चला गया।)

प्रताप को लगभग 12 वर्ष शांति और स्वाधीनता का उपयोग करने का अवसर मिला। इस अवसर का लाभ उठाकर उसने मेवाड़ के उत्तर–पश्चिम, उत्तर–पूर्व तथा मध्य भाग में फैले हुए मुगल थानों पर धावे बोलने प्रारम्भ कर दिये। शीघ्र ही उसने 36 स्थानों के मुगल थाने उठा दिये, जिनमें उदयपुर, मोही, गोगुन्दा, मांडल, पानरवा आदि प्रमुख थे। उदयपुर से प्राप्त 1588 ई. के एक लेख में प्रताप द्वारा त्रिवेदी सादुलनाथ को जहाजपुर के निकट मंडेर की जागीर प्रदान करने का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि प्रताप ने उस समय तक मेवाड़ के उत्तर–पूर्वी प्रदेश पर पुनः अधिकार कर लिया था और अपने विश्वसनीय अनुयायियों को जागीरें प्रदान कर पुनर्निर्माण के कार्य में व्यस्त था।1585 ई. के बाद उसने अपनी राजधानी चावण्ड के विकास पर पूरा ध्यान दिया और यहाँ अनेक महल व मंदिर बनवाए। जीवधर की रचना 'अमरसार' के अनुसार प्रताप ने ऐसा सुदृढ़ शासन स्थापित कर लिया था कि महिलाओं और बच्चों तक को किसी से भय नहीं रहा। आन्तरिक सुरक्षा भी लोगों को इतनी प्राप्त हो गई थी कि बिना अपराध के किसी को कोई दण्ड नहीं दिया जाता था। उसने शिक्षा प्रसार के भी प्रयत्न किए।

विद्वानों के संरक्षक के रूप में प्रताप– 1588 ई. के अंत तक प्रताप ने चित्तौड़, माण्डलगढ़ तथा अजमेर से उनको जोड़ने वाले अंतर्वर्ती क्षेत्रों के अतिरिक्त प्रायः सम्पूर्ण मेवाड़ पर अधिकार कर लिया। मुगल आक्रमण बंद होने के कारण प्रताप ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष चावंड में शांतिपूर्वक राज्य करते हुए बिताए। शांतिकाल में राजधानी चावंड ने बड़ी तरक्की की। यहाँ कलात्मक भवनों एवं मंदिरों का निर्माण हुआ। व्यापार–वाणिज्य, कला, साहित्य और संगीत को प्रोत्साहन मिलने लगा। प्रताप के संरक्षण में चावण्ड में रहते हुए चक्रपाणि मिश्र ने तीन संस्कृत ग्रंथ – राज्याभिषेक पद्धति, मुहुर्त्तमाला एवं विश्ववल्लभ लिखे। ये ग्रंथ क्रमशः गद्दीनशीनी की शास्त्रीय पद्धति, ज्योतिषशास्त्र और उद्यान विज्ञान के विषयों से सम्बन्धित है। प्रताप के राज्यकाल में भामाशाह के भाई ताराचंद की प्रेरणा से 1595 ई. में हेमरत्न सूरि द्वारा 'गोरा बादल कथा पद्मिनी चौपई' काव्य ग्रंथ की रचना की गई। सैनिकों में त्याग और बलिदान की भावना उत्पन्न करने के लिए चारण कवि रामा सांदू और माला सांदू प्रताप की सेना के साथ रहते थे। रामा सांदू ने प्रताप के शौर्य का गुणगान करते हुए लिखा है कि 'अकबर एक पक्षी के समान है जिसने अनन्त आकाश रुपी प्रताप की थाह पाने के लिए उड़ान भर ली, पर वह उसका पार नहीं पा रहा है। अंत में हार कर उसे अपनी हद में रहना पड़ा।' इसी काल में चावंड में प्रसिद्ध चित्रकार निसारदी (नासिरूद्दीन) हुआ।

महाराणा की चारित्रिक विशेषताएं

1.निहत्थे पर वार नहीं करना– उन्होंने कभी भी निहत्थे पर वार नहीं करने का प्रण ले रखा था। वे सदैव दो तलवार रखते थे– एक तलवार दुश्मन को देने के लिए भी रखते थे।

2. मेवाड का राजचिह्न सामाजिक समरसता प्रतीक है। एक तरफ क्षत्रिय व एक तरफ भील योद्धा, सर्व समाज समभाव का सूचक है। महाराणा प्रताप सभी के प्रिय थे, सब लोग उनके लिए प्राण देने के लिए तैयार रहते थे।

3. स्वतंत्रता प्रेमी– महाराणा प्रताप स्वाधीनता प्रेमी थे। अनेक कष्टों के बाद भी किसी भी कीमत पर अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए।

4. धर्म रक्षक व राजचिह्न सम्मान – धर्म रक्षक व राजचिह्न की सदैव रक्षा की। उनकी मान्यता थी, जो दृढ़ राखे धर्म को तिहि राखे करतार।

5. शील–स्त्री सम्मान – नारी सम्मान के लिए भारतीय परम्परा का उदाहरण प्रस्तुत किया। कुंवर अमरसिंह ने 1580 ई. में जब अचानक शेरपुर के मुगल शिविर पर आक्रमण कर सूबेदार अब्दुर्रहीम खानखाना के परिवार को बंदी बना लिया गया, तब प्रताप ने खानखाना की स्त्रियों एवं बच्चों को ससम्मान एवं सुरक्षित वापस लौटाने के आदेश भिजवाये।

6. प्रेरणा पुरूष– महाराणा प्रताप बाद में शिवाजी, छत्रसाल से लेकर अंग्रेजों के विरूद्ध स्वाधीनता संग्राम में स्वातंत्र्य योद्धाओं के प्रेरता बने।

7. उनकी विलक्षण सहयोगी प्रतिभा के कारण ही भामाशाह ने अपनी समस्त सम्पदा महाराणा के चरणों में समर्पित कर दी।

वीर दुर्गादास राठौड़ (1638–1718 ई.)

प्रारम्भिक जीवन – दुर्गादास का जन्म 1638 ई. में सालवा गांव में हुआ। वे जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की सेवा में रहने वाले आसकरण की तीसरी पत्नी की संतान थे। आसकरण को मारवाड़ में सालवा की जागीर मिली हुई थी और कालान्तर में मुहणौत नैणसी के बाद उसे मारवाड़ का प्रधानमंत्री भी नियुक्त किया गया था। अपनी पत्नी से प्रेम न रहने के कारण उसने पत्नी–पुत्र दोनों को अलग कर दिया। बालक दुर्गादास अपनी माता के साथ लूणावे गांव में रहकर खेती–बाड़ी द्वारा गुजारा चलाने लगा। 1655 ई. में आपसी कहा–सुनी के बाद उसने अपने खेत से होकर सांडनियाँ (मादा ऊँट) ले जाने पर राजकीय चरवाहे को मार डाला। खबर मिलने पर महाराजा ने आसकरण से सफाई मांगी। आसकरण ने कहा कि उसके सब बेटे राज्य की सेवा में हैं और गांव में कोई बेटा नहीं है। तब महाराजा ने दुर्गादास को बुलाकर सारी बात पूछी। दुर्गादास ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि उक्त चरवाहे की लापरवाही के कारण न केवल किसानों की फसल नष्ट हो रही थी अपितु उसने आपके दुर्ग को भी अपशब्दों के साथ 'बिना छज्जे का धोळा ढूंढा' (बिना छत का सफेद खण्डहर) कहा। इस कारण मैंने उसकी हत्या कर दी। पूरी जानकारी प्राप्त कर महाराजा ने आसकरण से जब यह पूछा कि 'तुम तो कहते थे गांव में मेरा कोई बेटा नहीं है' तो आसकरण ने कहा कि 'कपूत को बेटों में नहीं गिनते।' महाराजा जसवंतसिंह बोले 'यह आपका भ्रम है। यही कभी डगमगाते हुए मारवाड़ को कंधा देगा' और इसके बाद दुर्गादास को अपनी सेवा में रख लिया।

1667 ई. में दुर्गादास को 12,000 रुपये की वार्षिक आय वाले पांच गांव झांवर, समदड़ी, जगीसा कोठड़ी, आम्बा–रो–वाड़ो और अमरसर प्रदान किए गये। कालान्तर में जसवंतसिंह द्वारा मारवाड़ के रायमल बालो, जवण देसर और बांभसेण गांवों के साथ रोहतक परगने का लुणोद गांव भी दुर्गादास को जागीर के रूप में दिया गया।

जोधपुर पर शाही नियन्त्रण स्थापित होना– महाराजा जसवंतसिंह और मुगल बादशाह औरंगजेब के बीच प्रायः विरोध की स्थिति बनी रही। इस कारण औरंगजेब ने जसवंतसिंह को मारवाड़ से बहुत दूर जमरूद (अफगानिस्तान) के थाने पर नियुक्त कर दिया। 1678 ई. में जमरूद में जसवंतसिंह की मृत्यु की खबर सुनते ही औरंगजेब के मुँह से निकल पड़ा – 'दरवाजा ए कुफ्र शिकस्त' (आज मजहब विरोध का दरवाजा टूट गया)। पर जब महल में बेगम ने यह हाल सुना तो कहा –आज शोक का दिन है कि बादशाहत का ऐसा स्तम्भ टूट गया। जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने जोधपुर को खालसा घोषित कर ताहिर खां को फौजदार, खिदमतगुजार खां को किलेदार, शेर अनवर को अमीन और अब्दुर्रहीम को कोतवाल बनाकर प्रबन्ध के लिए नियुक्त कर दिया।

मारवाड़ पर पूरी तरह नियन्त्रण स्थापित हो जाने के बाद खानजहां बहादुर मन्दिरों के तोड़ने से एकत्रित हुई मूर्तियों को गाड़ियों में भरवाकर अप्रैल 1679 ई. में दिल्ली पहुँच गया। बादशाह ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और मूर्तियां दरबार के जलूखाने (आंगन) तथा जुमा मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे डाली जाने की आज्ञा दी ताकि ये लोगों के पैरों के नीचे कुचली जा सकें।

26 मई 1679 ई. को औरंगजेब ने इन्द्रसिंह (जसवंतसिंह के बड़े भाई अमरसिंह का पौत्र) को जोधपुर का राज्य, राजा का खिताब, खिलअत, जड़ाऊ साज की तलवार, सोने के साज–सहित घोड़ा, हाथी झंडा और नक्कारा दिया। उसने भी बादशाह को छत्तीस लाख रुपये की पेशकशी

अजीत सिंह राठौड़

स्वामीभक्त दुर्गादास राठौड़

देना स्वीकार कर लिया। इन्द्रसिंह न तो जोधपुर का प्रबन्ध कर पाया और न वहाँ होने वाले उपद्रवों को शांत कर पाया जिसके कारण बादशाह ने लगभग दो माह बाद ही उसे वापस बुला लिया।

अजीतसिंह की सुरक्षा– जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद राठौड़ सरदार उनकी दोनों गर्भवती रानियों को लेकर जमरूद से रवाना हुए किन्तु शाही परवाना न होने के कारण अटक नदी पर अफसरों ने उन्हें रोक लिया। इन अफसरों से लड़ाई कर राठौड़ दल ने अटक नदी को पार किया। वहीं दोनों रानियों ने 19 फरवरी 1679 ई. को आधे घण्टे के अन्तराल पर क्रमशः अजीतसिंह और दलथंभन नामक पुत्रों को जन्म दिया। जोधपुर की ख्यात के अनुसार इन कुंवरों के जन्म का समाचार मिलने पर बादशाह ने व्यंग्य से मुस्कराते हुए कहा कि ''बंदा कुछ सोचता है और खुदा उससे ठीक उल्टा करता है।'' शाही आज्ञा ने इन बालकों को वहाँ से दिल्ली ले जाया गया।

दिल्ली में दोनों कुंवरों व रानियों को किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की हवेली में ठहराया गया। बादशाह की नियत साफ न देखकर राठौड़ रणछोड़दास, भाटी रघुनाथ, राठौड़ रूपसिंह, राठौड़ दुर्गादास आदि सरदारों ने फैसला किया कि यहाँ रहकर मरने में कोई लाभ नहीं, यदि जिंदा रहे तो संघर्ष कर जोधपुर पर अधिकार कर लेंगे। इसलिए प्रमुख–प्रमुख राठौड़ सरदारों को दिल्ली से जोधपुर भेजने का फैसला किया गया। इस योजना का एक लाभ तो यह था कि जोधपुर पहुँचने वाले सरदार वहाँ अपनी शक्ति संगठित कर सकेंगे, वहीं बादशाह को उनकी अपने प्रति स्वामीभक्ति पर भी शक नहीं

होगा। इतिहासकार गोपीनाथ शर्मा के अनुसार इस सम्पूर्ण योजना के पीछे दुर्गादास का मस्तिष्क ही था।

जब राठौड़ सरदार एक–एक कर दिल्ली से विदाई लेने लगे तो औरंगजेब ने इनकी शक्ति कम होती देख राजपरिवार के प्रति अधिक कठोर नीति अपनानी प्रारम्भ कर दी। उसने कोतवाल फौलाद खां को आदेश दिया कि राठौड़ रानियों और राजकुमारों को रूपसिंह की हवेली से हटाकर नूरगढ़ पहुँचा दिया जाए और अगर राठौड़ इससे आनाकानी करें तो उन्हें दण्ड दिया जाये। सौभाग्य से इसके एक दिन पहले ही दुर्गादास और चांपावत सोनिंग अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ के लिए निकल गए थे। बादशाह को जब राजकुमारों के भागने की खबर लगी तो उसने पीछा करने का आदेश दिया। दुर्गादास ने मार्ग में शाही सेना को रोक दिया जिसके कारण अजीतसिंह सुरक्षित जोधपुर पहुँचने में सफल रहा। इधर बादशाह ने एक जाली अजीतसिंह का नाम मोहम्मदीराज रखकर अपनी पुत्री जेबुन्निसा को परवरिश के लिए सौंप दिया।

राठौड़–सिसोदिया गठबंधन– अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ के सरदार जोधपुर पहुँचे किन्तु जोधपुर पर शाही अधिकार हो जाने के कारण वे अजीतसिंह की सुरक्षा को लेकर चिंतित थे। इस कारण बालक अजीतसिंह को उनकी विमाता देवड़ाजी की सलाह पर कालिंद्री (सिरोही) भेज दिया गया। यहाँ उसे पुष्करणा ब्राह्मण जयदेव के संरक्षण में रखा गया और सुरक्षा के लिए गुप्त रूप से मुकुन्ददास खींची को नियुक्त कर दिया गया।

महाराजा जसवंतसिंह की सबसे बड़ी रानी जसवंतदे बूंदी के राव छत्रसाल की पुत्री थी। उसकी सौतेली बहन काननकुमारी का विवाह महाराणा राजसिंह के साथ हुआ था। इस कारण दुर्गादास ने काननकुमारी के माध्यम से उनके बहनोई महाराणा राजसिंह के पास अजीतसिंह को सुरक्षा देने की प्रार्थना भिजवाई। पूरे मामले से मेवाड़ की सुरक्षा भी जुड़ी हुई थी। इस कारण राजसिंह ने प्रार्थना को स्वीकार करते हुए अजीतसिंह को बारह गांवों सहित केलवे का पट्टा दे दिया। औरंगजेब को जब इस बात की जानकारी मिली तो उसने महाराणा के पास फरमान भेजकर अजीतसिंह की मांग की किन्तु महाराणा ने उस पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया।

शाहजादा अकबर का विद्रोह– दुर्गादास ने महाराणा राजसिंह के साथ मिलकर शाहजादे मुअज्जम (जो देबारी के पास उदयसागर पर ठहरा हुआ था) को बादशाह के खिलाफ खड़ा करने का प्रयास किया किन्तु मुअज्जम अपनी माता नवाबबाई की सलाह के कारण राजपूतों की इस योजना से सहमत नही हुआ। इसके बाद उन्होंने शाहजादा अकबर को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया। यद्यपि इसी दौरान अक्टूबर 1680 ई. में महाराणा राजसिंह की मृत्यु हो गई किन्तु नए महाराणा जयसिंह के साथ भी यह वार्ता चलती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि 1 जनवरी 1681 ई. को अकबर ने नाडोल में स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया और राजपूत सेना को साथ लेकर औरंगजेब के विरुद्ध अजमेर के लिए रवाना हो गया। औरंगजेब की सेना ने अजमेर के पास दौराई नामक स्थान पर पड़ाव डाल रखा था। 15 जनवरी को औरंगजेब ने छल–कपट का सहारा लेते हुए अकबर के मुख्य सेनापति तहव्वरखां (अजमेर का फौजदार जो औरंगजेब का साथ छोड़कर अकबर के साथ हो गया था) को उसके ससुर इनायतखां (बादशाह का सेनापति) के द्वारा इस आशय का खत लिखाकर अपने पास बुलाया कि यदि वह चला आयेगा तो उसका अपराध क्षमा कर दिया जायेगा, अन्यथा उसकी स्त्रियाँ सबके सामने अपमानित की जायेंगी और बच्चे कुत्तों के मूल्य पर गुलामों के तौर पर बेच दिए जाएँगे। इस धमकी के कारण तहव्वरखां सोते हुए अकबर और दुर्गादास को सूचित किए बिना ही औरंगजेब के पास चला आया, जहाँ शाही नौकरों ने उसे मार डाला। इसके बाद औरंगजेब ने अकबर और राजपूतों के बीच विरोध पैदा करने के लिए एक और चाल चली। उसने एक जाली पत्र अकबर के नाम इस आशय का लिखा कि तुमने राजपूतों के साथ खूब धोखा किया है और उन्हें मेरे सामने लाकर बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया है। अब तुम्हें चाहिये कि उन्हें हरावल (युद्ध में सेना का सबसे आगे वाला भाग) में रखो, जिससे कल प्रातःकाल के युद्ध में उन पर दोनों तरफ से हमला किया जा सके। यह पत्र किसी तरह दुर्गादास के डेरे के पास पहुँचा दिया गया जिसे पढ़ते ही उसके मन में खटका हो गया। दुर्गादास उसी समय अकबर के डेरे पर गया किन्तु अर्द्ध रात्रि के समय उसे किसी भी दशा में जगाने की आज्ञा नहीं थी। इसके बाद उसने तहव्वरखां को बुलाने के लिए आदमी भेजे तो पता लगा कि वह तो बादशाह के पास जा चुका है। ऐसे में उसका संदेह विश्वास में बदल गया और प्रातःकाल होने से पहले ही राजपूत सेना अकबर का सामान लूटते हुए मारवाड़ की तरफ चली गई। सुबह अकबर अपने को अकेला पाकर राजपूतों के पीछे भागा। दो दिन तक वह निराश्रित जान बचाता भागता रहा। तब दुर्गादास को औरंगजेब की चाल समझ में आई। उसने अकबर को अपने साथ लिया और सुरक्षित मराठा राज्य में पहुँचाया।

दुर्गादास को मारने का प्रयास– जोधपुर में विद्रोह की संभावना से भयभीत औरंगजेब ने 1701 ई. में शहजादे आजम को लिखा कि वह दुर्गादास को शाही सेवा में भेजने का प्रयत्न करें या उसे मार डाले। आजम ने धोखे से दुर्गादास को गिरफ्तार करने का प्रयास किया किन्तु संदेह का पूर्व ज्ञान हो जाने के कारण दुर्गादास बच निकला। मारवाड़ पहुँचकर दुर्गादास मुगल क्षेत्रों में खुल्लमखुल्ला विद्रोह करने लगा।

महाराजा अजीतसिंह व दुर्गादास के बीच अनबन– शिशु अजीतसिंह को औरंगजेब की चंगुल से बचाने का सर्वाधिक श्रेय दुर्गादास को ही है। दिल्ली से सुरक्षित निकालने के बाद दुर्गादास की योजनानुसार ही उसे गुप्त स्थान पर रखा गया था। अप्रैल 1687 ई. में दक्षिण से लौटने पर दुर्गादास यह जानकर काफी व्यथित हुआ कि उसके निर्देशों के बावजूद उसके मारवाड़ लौटने से पहले ही 23 मार्च 1687 ई. को अज्ञातवाश से निकालकर अजीतसिंह को पालड़ी गांव (सिरोही) में सार्वजनिक किया जा चुका है। इस समय तक दुर्गादास से अप्रसन्न राठौड़ सामंत अजीतसिंह के आसपास एकत्र हो चुके थे। अब दुर्गादास की स्थिति में परिवर्तन आ गया और वह अजीतसिंह के भाग्य को निर्धारित करने वाली केन्द्रीय शक्ति नहीं रहा। इस कारण उसने दूर रहकर बदलती हुई परिस्थितियों का समझने का फैसला

किया। अक्टूबर 1687 ई. में अजीतसिंह ने भीमरलाई गांव में दुर्गादास से मिलकर गिले–सिकवे दूर किये।

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु की खबर मिलने के बाद अजीतसिंह ने जोधपुर के नायब फौजदार जाफरकुली को भगाकर अपने पैतृक राज्य पर कब्जा कर लिया। यह आक्रमण इतना जल्दी हुआ कि किले में मौजूद 'कुछ मुसलमानों को जान बचाने के लिए हिन्दुओं का वेश बनाकर भागना पड़ा।'

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा गया है कि सांभर विजय (3 अक्टूबर 1708 ई.) के बाद वहाँ डेरे होने पर दुर्गादास ने अपनी सेना सहित अलग डेरा किया। महाराजा ने उसे मिसल (सरदारों की पंक्ति) में डेरा करने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि मेरी तो उमर अब थोड़ी रह गई है, मेरे पीछे के लोग मिसल में डेरा करेंगे। अजीतसिंह के व्यवहार से आहत दुर्गादास मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय की सेवा में चला गया और वहाँ से बुलाने पर भी जोधपुर नहीं लौटा।

अजीतसिंह ने दुर्गादास की अभिरक्षा में अकबर के बच्चों की सुरक्षा करने वाले रघुनाथ सांचोरा को सार्वजनिक रूप से कोड़े मारकर अपमानित किया और काल–कोठरी में भूखा–प्यासा रखकर मरने के लिए बाध्य कर दिया (अक्टूबर 1707 ई.)। जुलाई 1708 ई. में अपने महामंत्री मुकुन्ददास चांपावत तथा उसके भाई रघुनाथ चांपावत की हत्या करवा दी। इतिहासकार रघुबीर सिंह के अनुसार इन घटनाओं से दुर्गादास को अहसास हो गया कि अगली बारी उसी की है।

अंतिम समय– महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने उसे विजयपुर की जागीर देकर अपने पास रखा और उसके लिए पाँच सौ रुपये रोजाना नियत कर दिए। बाद में वह रामपुरा का हाकिम नियत किया गया, जहाँ रहते हुए 22 नवम्बर 1718 ई. में उज्जैन में उसकी मृत्यु हो गई। उसका अंतिम संस्कार क्षिप्रा नदी के तट पर किया गया, जहाँ आज भी उनकी छतरी बनी हुई है।

मूल्यांकन– शाहजहां के पुत्रों के बीच हुए उत्तराधिकार युद्ध के दौरान दुर्गादास ने महाराजा जसवंतसिंह के साथ धरमत के युद्ध में भाग लिया था। दुर्गादास के सम्पर्क में रहे समकालीन लेखक कुंभकर्ण सांदू की रचना 'रतनरासो' में इस युद्ध के दौरान दुर्गादास की वीरता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि "दुर्गादास राठौड़ ने एक के बाद एक चार घोड़ों की सवारी की और जब चारों एक–एक कर मारे गए तो अंत में वह पांचवें घोड़े पर सवार हुआ, लेकिन यह पांचवां घोड़ा भी मारा गया। तब तक न केवल उसके सारे हथियार टूट चुके थे बल्कि उसका शरीर भी बुरी तरह से घायल हो चुका था। अंततः वह भी रणभूमि में गिर पड़ा। ऐसा लगता था जैसे एक और भीष्म शरशैय्या पर लैटा हुआ हो। जसवंतसिंह के आदेश से घायल दुर्गादास को युद्धस्थल से हटा लिया गया और जोधपुर भेज दिया गया।"

दुर्गादास एक कुशल कुटनीतिज्ञ था। उसने न केवल अजीतसिंह की रक्षा की अपितु जोधपुर के सिंहासन पर आसीन भी किया। इसके लिए उसने न केवल मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के साथ मिलकर 'राठौड़–सिसोदिया गठबंधन' किया अपितु शाहजादा अकबर को बादशाह के विरुद्ध विद्रोह के लिए प्रेरित भी किया। अकबर का विद्रोह असफल होने के बाद उसे दक्षिण में सुरक्षित ले गया और उसके ईरान जाने तक साथ ही रहा। अकबर के पुत्र बुलन्द अख्तर और पुत्री सफीयतुन्निसा को न केवल अपने पास रखकर दुर्गादास ने मित्रता निभाई, वरन् अपने धर्म–दर्शन 'सर्वपंथ समादर' का परिचय भी दिया। उसने दोनों बच्चों की देखरेख और शिक्षा–दीक्षा की भी ठीक वैसी ही व्यवस्था की जो कि एक सुन्नी मतावलम्बी के लिए आवश्यक होती है। अवसर आने पर उन्हें सम्मानपूर्वक बादशाह के पास भेज दिया। दुर्गादास ने अपने इन्हीं वीरोचित्त गुणों द्वारा औरंगजेब जैसे पाषाण हृदय व्यक्ति का दिल जीत लिया और मनसब प्राप्त किया। कर्नल जेम्स टॉड ने उसे 'राठौड़ों का यूलीसैस' कहा है।

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'जोधपुर राज्य का इतिहास' का दूसरा खण्ड दुर्गादास राठौड़ को ही समर्पित किया है।

शिवाजी (1627–1680 ई.)

शिवाजी मराठा सरदार शाहजी भोंसले व जीजाबाई की संतान थे। उनका जन्म 20 अप्रैल 1627 को पूना (महाराष्ट्र) के समीप शिवनेर के पहाड़ी किले में हुआ था। शिवाजी का बाल्याकाल संरक्षक दादा कोंडदेव की देखरेख में पिता से दूर माता जीजाबाई की गोद में बीता। बालक शिवाजी को अपनी माता तथा संरक्षक द्वारा हिन्दू धर्मशास्त्रों के साथ सैनिक शिक्षा दी गई। शिवाजी ने बाल्यावस्था में ही रामायण, महाभारत तथा दूसरे हिन्दू–शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। 12 वर्ष की आयु में उन्हें अपने पिता की जागीर पूना प्राप्त हो गई।

बीजापुर के विरुद्ध सैन्य अभियान– शिवाजी ने अपने जीवनकाल के प्रारम्भिक सैन्य अभियान बीजापुर राज्य के विरुद्ध किये। इस समय बीजापुर का सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह लम्बी

छत्रपति शिवाजी

बाद मृत्युशैया पर पड़ा था और राज्य अस्त–व्यस्त दशा में था।

बीमारी के 1646 ई. में शिवाजी ने बीजापुर के तोरण नामक पहाड़ी किले पर अधिकार कर लिया। इस किले से उसे दो लाख हूण का खजाना मिला। शिवाजी ने इस धन से अपनी सेना का विस्तार किया और तोरण किले से पाँच मील पूर्व में मुरुम्बगढ़ के क्षत–विक्षित दुर्ग को नया रूप देकर उसे राजगढ़ नाम दिया। शिवाजी द्वारा बीजापुर के प्रमुख मंत्रियों को घूस देकर अपनी तरफ मिला लेने तथा अपनी कमजोर स्थिति के कारण बीजापुर सुल्तान शिवाजी के विरुद्ध इस समय कोई कार्यवाही नहीं कर सका।

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति से सुल्तान आदिलशाह भयभीत हो गया। यहाँ तक कि बीजापुर का कोई भी सेनापति शिवाजी के विरुद्ध अभियान के लिए तैयार नहीं हुआ। अंत में अफजलखां नामक सेनापति ने यह कहते हुए बीड़ा उठाया कि ''मैं अपने घोड़े से उतरे बिना शिवाजी को बंदी बनाकर ले आऊँगा।'' 1659 ई. में अफजलखां एक बड़ी फौज लेकर शिवाजी के विरुद्ध रवाना हुआ। अफजलखां ने छल का सहारा लेते हुए अपने दूत कृष्णजी भास्कर को भेजकर शिवाजी के सामने संधि वार्ता का प्रस्ताव रखा। शिवाजी ने अफजलखां के छिपे हुए मन्तव्य को समझ लिया और सावधानी के साथ वार्ता के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। निश्चित दिन शिवाजी वस्त्रों के नीचे कवच और लोहे की टोपी पहनकर अफजलखां से मिलने पहुँचे। अपने बायें हाथ में बाघनख और सीधी बाँह में बिछवा नामक तेज कटार छुपा रखे थे। मुलाकात के दौरान अफलजखां ने शिवाजी को गले लगाते समय गर्दन दबोच कर तलवार से वध करने का प्रयास किया, किन्तु शिवाजी का कुछ नहीं बिगाड़ सका। उसी समय शिवाजी ने बाघनख का प्रयोग कर अफजलखां को मार डाला। अफजलखां के मरते ही इधर–उधर जंगलों में छिपे हुए मराठा सैनिकों ने आक्रमण कर बीजापुरी सेना को खदेड़ दिया। इस घटना ने शिवाजी की प्रतिष्ठा में अद्वितीय वृद्धि कर दी। अफजलखां के बाद भी बीजापुर ने शिवाजी के विरुद्ध अनेक अभियान भेजे किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

शिवाजी और मुगल– शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति ने औरंगजेब को भी चिंतित कर दिया। उसने शिवाजी के दमन के लिए अपने मामा शाइस्ताखां को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। शाइस्ताखां ने शीघ्र ही पूना पर अधिकार कर लिया और वहीं से शिवाजी के विरुद्ध कार्यवाही का संचालन करने लगा। शाइस्ताखां पूना के उसी महल में ठहरा हुआ था जहाँ शिवाजी ने अपना बचपन बिताया था। 15 अप्रैल 1663 की संध्या शिवाजी लगभग 400 सैनिकों के साथ पूना पहुँचे। जब वे शाइस्ताखां के निवास स्थान के पास पहुँचे तो मुगल रक्षकों ने उन्हें टोका। शिवाजी ने उन्हें यह कहकर असावधान कर दिया कि वे मुगल सेना के ही मराठे सैनिक हैं और अपने–अपने स्थान पर जा रहे हैं। अर्द्धरात्रि के समय शिवाजी ने अपने सैनिकों के साथ शाइस्ताखां के डेरे पर मार–काट आरम्भ कर दी। शाइस्ताखां की एक उँगली कट गई किन्तु वह रात्रि के अंधकार का फायदा उठाकर भागने में सफल रहा। उसके एक पुत्र और छः पत्नियों सहित अनेक मुगल सैनिक इस अभियान में मारे गए। औरंगजेब को जब इस अभियान की जानकारी मिली तो उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने शाइस्ताखां को उसकी असफलता का दण्ड देने के अभिप्राय से बंगाल भेज दिया।

शाइस्ताखां के बाद औरंगजेब ने शिवाजी के दमन के लिए शाहजादा मुअज्जम और मारवाड़ के जसवंतसिंह को भेजा किन्तु वे भी इस उद्देश्य में असफल रहे। इससे शिवाजी का हौंसला बढ़ा और वह निर्भय होकर मुगल प्रदेशों में लूटमार करने लगा। जनवरी 1664 ई. में उसने सूरत के समृद्ध नगर को लूट लिया। इस लूट से शिवाजी को एक करोड़ रुपये के आभूषण, रत्न आदि हाथ लगे। अब औरंगजेब ने आमेर के कुशल कूटनीतिज्ञ मिर्जाराजा जयसिंह के साथ सेनानायक दिलेरखां और ताजखां को भेजा। मिर्जाराजा जयसिंह ने कहा था कि ''हम उसे वृत के घेरे की तरह बांध लेंगे।'' कूटनीतिज्ञ जयसिंह ने शिवाजी के विरोधियों को ही नहीं अपितु प्रलोभन देकर अनेक मराठों को भी अपने पक्ष में कर लिया। मराठा राज्य पर आक्रमण करते हुए उसने शिवाजी को पुरन्दर के किले में घेर लिया। विवश शिवाजी को जून 1665 ई. को जयसिंह के साथ पुरन्दर की संधि करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार अपने 23 दुर्ग मुगलों के हवाले कर दिये और आवश्यकता पड़ने पर बीजापुर के विरुद्ध मुगलों की सहायता करने का आश्वासन दिया। शिवाजी को व्यक्तिगत रूप से दरबार में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया गया। इस संधि के समय फ्रांसीसी यात्री बर्नियर भी मौजूद था।

संधि की धाराओं में स्पष्ट उल्लेख था कि शिवाजी को मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा। इसके बावजूद जयसिंह ने शिवाजी को आगरा चलने के लिए तैयार कर लिया। संभवतः शिवाजी ने भी मुगल दरबार से सम्पर्क तथा उत्तरी भारत की स्थिति को जानने के लिए एक अच्छा अवसर समझा। मई 1666 ई. में शिवाजी आगरा के मुगल दरबार में उपस्थित हुए। औरंगजेब ने शिवाजी को उचित सम्मान न देकर उनके प्रति रूखा व्यवहार किया और मनसबदारों की तृतीय पंक्ति में खड़ा कर दिया। शिवाजी ने देखा कि जसवंतसिंह उनके सामने खड़ा है तो दुःखी होकर कहा 'जिस जसवंतसिंह की पीठ मेरे सैनिकों ने देखी थी, मुझे उसके पीछे खड़ा होना पड़ रहा है।' दरबार में सम्मानजनक व्यवहार न मिलने पर नाराज शिवाजी वहाँ से रामसिंह (मिर्जाराजा जयसिंह का पुत्र) के निवास पर लौट आये। औरंगजेब ने शिवाजी को 'जयपुर भवन' में बंदी बना लिया और मार डालने का निश्चय किया। इस गंभीर स्थिति में भी शिवाजी ने अपना धैर्य नहीं खोया और मुगलों की चंगुल से बच निकलने का उपाय खोजने लगे। शिवाजी ने बीमार होने का बहाना किया और हिन्दू परम्परा के अनुसार दीन–दुःखियों को मिठाई, फल आदि दान देना आरम्भ कर दिया। प्रतिदिन बंदीगृह में मिठाई और फलों के टोकरे आने लगे। शुरू–शुरू में तो पहरेदार टोकरों की गहन छानबीन करते थे किन्तु बाद में काफी लापरवाह हो गए। अवसर देखकर शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी के साथ इन टोकरों में बैठकर बंदीगृह से निकल कर महाराष्ट्र पहुँचने में सफल हो गए।

बंदी जीवन व कठिन यात्रा के कारण शिवाजी का स्वास्थ्य काफी गिर गया। उधर नया मुगल सूबेदार मुअज्जम आरामतलब आदमी था और उसका सहयोगी जसवंतसिंह

शिवाजी से सहानुभूति रखता था। दोनों पक्ष इस समय युद्ध विराम चाहते थे। 1667 ई. में जसवंतसिंह की मध्यस्थता से मुगल–मराठा संधि सम्पन्न हो गई जिसके अनुसार औरंगजेब ने शिवाजी को स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर 'राजा' की उपाधि को मान्यता दे दी। संधि के बावजूद औरंगजेब शिवाजी के विरुद्ध चाल चलने से बाज नहीं आया। इस कारण 1670 ई. में शिवाजी ने सूरत को पुनः लूट लिया और अपने खोये हुए प्रदेशों पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया।

राज्याभिषेक– शिवाजी ने बनारस के गंगाभट्ट नामक ब्राह्मण को बुलाकर जून 1674 ई. को राजधानी रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक करवाया और 'छत्रपति', 'हिन्दू धर्मोद्धारक', 'गौ ब्राह्मण प्रतिपालक' आदि उपाधियाँ धारण की।

शिवाजी के अंतिम दिन चिंता में बीते। एक तरफ तो वे अपने पुत्र शम्भाजी के मुगलों की शरण में जाने से दुःखी थे, दूसरी तरफ उनकी पत्नी सोयराबाई अपने पुत्र राजाराम को उत्तराधिकारी बनाने के लिए षड्यंत्र रच रही थी। इन परिस्थितियों में अप्रैल 1680 ई. में शिवाजी की मृत्यु हो गई। शिवाजी ने देश के लोगों में नवजीवन का संचार करने तथा स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना के उद्देश्य से आजीवन संघर्षरत रहे। एक बड़ी सीमा तक वे अपने उद्देश्य में सफल रहे। सर जदूनाथ सरकार के अनुसार शिवाजी 'हिन्दू प्रजाति का अंतिम प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति और राष्ट्र निर्माता शासक' था। जिस समय वह महाराष्ट्र के रंगमंच पर आये, उस समय मराठे विदेशी शासकों के अधीन दक्षिण में सर्वत्र बिखरे हुए थे। शिवाजी ने उन्हें संगठित कर सिद्ध कर दिया कि वे एक राज्य की स्थापना ही नहीं अपितु एक राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। मुगलों का कड़ा प्रतिरोध कर उन्होंने मराठा स्वराज्य की स्थापना की।

शिवाजी की धार्मिक नीति– विद्वान ब्राह्मणों को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने एक पृथक धनराशि की व्यवस्था की थी। आग्रही हिन्दू होने के कारण शिवाजी एक धर्म–सहिष्णु शासक थे। उन्होंने अपनी मुस्लिम प्रजा को विचार और नमाज की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी तथा मुसलमान फकीर व पीरों को समान रूप से आर्थिक सहायता प्रदान की। उन्होंने केलोशी के बाबा याकूत के लिए आश्रम बनवाया। युद्ध अभियानों के समय उनके सैनिकों के हाथ अगर कुरान लग जाती थी तो वे उसे अपने मुस्लिम साथियों को पढ़ने के लिए दे देते थे। मुस्लिम इतिहासकार खाफीखां ने शिवाजी की धर्म–सहिष्णुता व हमले में मिली हुई मुस्लिम महिलाओं व बच्चों के प्रति किए गये सम्मानजनक व्यवहार की प्रशंसा की है। कल्याण के बीजापुरी गवर्नर मुल्ला अहमद नवायत की सुन्दर पुत्रवधू को मराठा सेना ने लूट के साथ शिवाजी को भेंट करना चाहा था किन्तु शिवाजी ने उसे वस्त्राभूषण सहित ससम्मान बीजापुर वापिस भिजवा दिया। राज्य सेवा में भी उन्होंने धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया और मुसलमानों को सेना तथा जहाजी बेड़े में विश्वसनीय पदों पर नियुक्त किया।

हिन्दू स्वराज्य– इतिहासकार सरदेसाई के अनुसार शिवाजी महाराष्ट्र तक सीमित न रहकर भारत में स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे। इस कथन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क हैं :–

1. 1645 ई. के आरम्भ में शिवाजी ने दादाजी नरसप्रभु को 'हिन्दवी स्वराज्य' की योजना के सम्बन्ध में लिखा था जिससे उनका अभिप्राय सम्पूर्ण भारत के हिन्दूओं को धार्मिक स्वतन्त्रता दिलाना था। विचारशील व क्रियाशील मराठों ने उनके विचारों को इसी संदर्भ में समझा।

2. शिवाजी द्वारा चौथ व सरदेशमुखी करों की वसूली सम्पूर्ण भारत में राज्य विस्तार का ही साधन थे।

3. शिवाजी के आगरा जाने का उद्देश्य अपनी आँखों से उत्तरी भारत की दशा देखकर यह जानना था कि क्या उत्तरी भारत मुगल साम्राज्य के पंजे से मुक्त होने के लिए तैयार है?

4. मुगलों से युद्ध करते समय शिवाजी ने राजपूत राजाओं से संघर्ष के स्थान पर मेलजोल की नीति अपनाई।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान स्वतन्त्रता सेनानियों ने भारत के गौरवमयी अतीत का महिमामण्डन कर आम जनता में देशभक्ति का भाव जगाने के लिए अनेक प्रतीक चिह्नों का प्रयोग किया गया। उनमें मराठा जननायक 'शिवाजी' की स्मृति में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा 1895 ई. में प्रारम्भ किया गया 'शिवाजी उत्सव' काफी प्रसिद्ध रहा।

पेशवा (1713–1740 ई.)

शिवाजी के कमजोर उत्तराधिकारियों के समय मराठा साम्राज्य की बागडोर उनके पेशवा (प्रधानमंत्री) के हाथों में आ गई। पेशवाओं के शासन का प्रारम्भ बालाजी विश्वनाथ (1713–20 ई.) के समय हुआ जिसे इस पद पर मराठा शासक शाहू द्वारा 1713 ई. में नियुक्त किया गया था। इसके समय में सैय्यद बन्धु – अब्दुल्लाखां और हुसैनअली दिल्ली के शासक निर्माता थे। सैय्यद बन्धुओं ने बहादुरशाह प्रथम को हटाकर फर्रुखसियर को मुगल सिंहासन पर बैठाया था किन्तु वह शीघ्र ही इन दोनों भाईयों के खिलाफ षड़यंत्र करने लगा। दक्खन में मौजूद मीरबख्शी हुसैनअली को जब इस षड़यंत्र की जानकारी हुई तो उसने फर्रुखसियर पर प्रहार करने के लिए मराठा शासक शाहू के साथ 1719 ई. में एक संधि की। इस संधि के अनुसार :–

1. मुगलों द्वारा शाहू को वे सब प्रदेश लौटा दिए जाएँगे जो शिवाजी के 'स्वराज' नाम से प्रसिद्ध हैं।

2. खानदेश, बरार, गोंडवाना, हैदराबाद और कर्नाटक में मराठों द्वारा हाल ही में जीते गए प्रदेशों पर उनका अधिकार स्वीकार कर लिया जाएगा।

3. मराठों को दक्खन के छः प्रान्तों में चौथ और सरदेशमुखी नामक कर वसूल करने की अनुमति दे दी जायेगी। चौथ के बदले 15,000 मराठा सैनिक मुगल सम्राट की सेवा में रहेंगे।

4. दिल्ली में नजरबंद शाहू की माता यसूबाई व पत्नी सहित मराठा राजपरिवार के सदस्यों को मुक्त कर वापिस भेज दिया जाएगा।

हुसैनअली के दिल्ली की तरफ प्रस्थान करने पर संधि के अनुसार बालाजी विश्वनाथ व खाण्डेराव धमादे के नेतृत्व में 15,000 मराठा सैनिकों ने उसका साथ दिया। सैय्यद बन्धुओं ने

फर्रुखसियर को अपदस्त कर रफी–उद–दरजात को मुगल बादशाह बना दिया जिसने उपरोक्त संधि को स्वीकृति प्रदान कर दी। दक्खन में चौथ और सरदेशमुखी की वसूली के अधिकार प्राप्त करना बालाजी विश्वनाथ की बहुत बड़ी सफलता थी। उसे मराठा साम्राज्य का 'द्वितीय संस्थापक' (संस्थापक – शिवाजी) कहा जाता है।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद उसके बड़े पुत्र बाजीराव (1720–40 ई.) को पेशवा पद पर नियुक्त किया गया। इस समय उसकी आयु मात्र 20 वर्ष थी। मुगल साम्राज्य की शोचनीय दशा का लाभ उठाकर वह उसके अधिक से अधिक प्रदेशों को छीन लेना चाहता था। उसने अपनी तर्कपूर्ण व्याख्या द्वारा यह कहते हुए शाहू का समर्थन हासिल कर लिया कि ''हमारे लिए यही समय है कि हम विदेशियों को देश से निकालकर कीर्ति प्राप्त कर लें। हमें सूखे वृक्ष की जड़ों पर प्रहार करना चाहिए, शाखाएँ तो अपने आप गिर जायेंगी।'' पेशवा की योजना से प्रभावित होकर शाहू ने कहा ''तुम मराठा पताका को हिमालय की चोटी पर फहरा दोगे। तुम वास्तव में योग्य पिता के योग्य पुत्र हो।''

अपनी नीति के अनुसार बाजीराव ने नर्मदा पार कर 1724 ई. में मालवा जीत लिया। शाही सेवा में मौजूद जयपुर का शासक सवाई जयसिंह मराठों से सहानुभूति रखने के कारण शीघ्र ही पेशवा का मित्र बन गया। इस कारण पेशवा को बहुत कम विरोध का सामना करना पड़ा। पेशवा को सबसे जटिल समस्या का सामना मुगल साम्राज्य के सबसे शक्तिशाली सरदार निजाम–उल–मुल्क के साथ सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में करना पड़ा। निजाम स्वयं को दक्खन का न्यायोचित शासक मानता था। इस क्षेत्र में मराठा अभियानों के कारण वह उन्हें अपना सबसे बड़ा शत्रु समझने लगा। इस कारण उसने 1719 ई. की संधि का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया और शाहू के स्थान पर उसके विरोधी शम्भाजी को मराठा साम्राज्य के मुखिया के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। मार्च 1728 ई. को औरंगाबाद के पास पालखेड़ नामक स्थान पर पेशवा ने निजाम की सेनाओं को पराजित कर उसे मुंगी शिवगांव की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया। इस संधि के अनुसार –

1. निजाम ने शम्भाजी की सुरक्षा की जिम्मेदारी छोड़कर उसे पन्हाला भेजना स्वीकार कर लिया।

2. छीने गये मराठा प्रदेश तथा मराठा कैदियों को छोड़ देने का निर्णय लिया गया।

3. 1719 ई. की संधि के अनुसार शाहू के चौथ तथा सरदेशमुखी कर की वसूली के अधिकार को मान लिया।

कुछ समय बाद चौथ और सरदेशमुखी के बदले पेशवा ने प्रतिज्ञा कर ली कि वह निजाम के प्रदेशों पर आक्रमण नहीं करेगा और निजाम ने मराठों के उत्तरी भारत पर आक्रमण में तटस्थ रहना स्वीकार कर लिया। अब पेशवा ने उत्तर भारत पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए 1728 ई. में मालवा और बुन्देलखण्ड के मुगल प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। मार्च 1737 ई. में अवध के सूबेदार सआदतखाँ ने मराठा सेनापति मल्हारराव होल्कर को पराजित किया और इस विजय की डींग मारते हुए दिल्ली में सूचना भेजी कि उसने मराठों को चम्बल के पार खदेड़ दिया। बाजीराव इस विजय का खण्डन करने के लिए 14 दिन का सफर मात्र दो दिन में तय कर दिल्ली पर टूट पड़ा। इस आक्रमण से भयभीत मुगल सम्राट को बाजीराव ने संदेश भेजा कि उसके अभियान का उद्देश्य कुछ प्राप्त करना नहीं अपितु सिर्फ यह दिखाना है कि वह अभी तक जिन्दा है। दिल्ली से लौटने के बाद पेशवा ने निजाम को पराजित कर 17 जनवरी 1738 ई. को दोराहा सराय की संधि करने के लिए बाध्य किया। इस संधि के अनुसार उसने सम्पूर्ण मालवा तथा नर्बदा से लेकर चम्बल तक के प्रदेश को बाजीराव के आधिपत्य में छोड़ दिया। 1740 ई. में बाजीराव ने निजाम–उल–मुल्क के द्वितीय पुत्र नासिरजंग को परास्त कर मुंगी शिवगांव की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इसके अनुसार नासिरजंग ने हांडिया और खरगांव के जिले मराठों को सौंप दिये। 8 मई 1740 ई. को नर्मदा नदी के किनारे रावर नामक स्थान पर अचानक बाजीराव की मृत्यु हो गई।

अध्ययन बिन्दु

- रामप्रसाद : 'रामप्रसाद' महाराणा प्रताप के प्रसिद्ध हाथी का नाम था। अकबर इस अत्यन्त कुशल और प्रशिक्षित हाथी को प्राप्त करने का इच्छुक था। हल्दीघाटी के युद्ध में इस पर अधिकार करने के बाद बदायूंनी के साथ इसे अकबर के पास फतेहपुर सीकरी भेजा गया। अकबर ने रामप्रसाद का नाम बदलकर 'पीरप्रसाद' रख दिया।
- हल्दीघाटी : हल्दीघाटी राजसमंद जिले में स्थित प्रसिद्ध युद्ध का मैदान है। 18 जून 1576 ई. को महाराणा प्रताप और मानसिंह कछवाह (अकबर का सेनापति) के मध्य लड़े गए युद्ध को कर्नल जेम्स टॉड ने हल्दीघाटी का युद्ध व हल्दीघाटी को 'मेवाड़ की थर्मोपली' कहा है। अकबरनामा के लेखक अबुल फजल ने इस युद्ध को 'खमनौर का युद्ध' तो 'मुन्तखब–उल–तवारीख' के लेखक अब्दुल कादिर बदायूंनी ने 'गोगुन्दा का युद्ध' कहा है। बदायूंनी ने अपने उक्त ग्रंथ में युद्ध का आंखों देखा वर्णन किया है।
- फारस के शासक दारा द्वारा यूनान पर आक्रमण किए जाने पर मेराथन के युद्ध (490 ई.पू.) में यूनानी सेना ने फारसी सेना को पराजित कर खदेड़ दिया। इस पराजय का बदला लेने के लिए दारा के उत्तराधिकारी जेरेक्सीज ने 480 ई.पू. में यूनान पर आक्रमण किया। थर्मोपली के युद्ध में लियोनिडास अपने देश की रक्षा करता हुआ मारा गया और फारसी सेनाएँ विजयी रही। कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि ''राजपूताने में छोटे से छोटा राज्य भी ऐसा नहीं है, जहाँ लियोनिडास जैसा वीर और थर्मोपली जैसा युद्ध का मैदान न हो।''
- निसारदी : महाराणा प्रताप के संरक्षण में उनकी संकटकालीन राजधानी चावण्ड में रहने वाला मुस्लिम

चित्रकार। 1605 ई. में महाराजा अमरसिंह के काल में उसके द्वारा बनाये गए 'रागमाला' चित्र काफी प्रसिद्ध हुए। निसारदी की चित्रकला चावंड शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. यह किसने कहा था कि ''हमें सूखे वृक्ष की जड़ों पर प्रहार करना चाहिए, शाखाएँ तो अपने आप गिर जाएँगी''?
(अ) शिवाजी (ब) शाहू
(स) बालाजी विश्वनाथ (द) बाजीराव प्रथम

2. इनमें से कौनसी एक उपाधि बप्पा रावल ने धारण नहीं की थी?
(अ) हिन्दू सूर्य (ब) राजगुरु
(स) चक्कवै (द) हिन्दू सुरत्राण

3. पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के बीच युद्ध किस स्थान पर लड़े गए?
(अ) तराइन (ब) पानीपत
(स) खानवा (द) हल्दीघाटी

4. रणथम्भौर पर अलाउद्दीन खिलजी ने किस वर्ष अधिकार किया?
(अ) 1299 ई. (ब) 1300 ई.
(स) 1301 ई. (द) 1303 ई.

5. मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण का कारण था?
(अ) अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा
(ब) मेवाड़ की बढ़ती हुई शक्ति
(स) चित्तौड़ का भौगोलिक एवं सामरिक महत्त्व
(द) पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा

6. कौनसा राजस्थानी शासक अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है?
(अ) महाराणा सांगा (ब) महाराणा कुम्भा
(स) महाराणा प्रताप (द) पृथ्वीराज चौहान

7. महाराणा सांगा ने बाबर की सेना को किस स्थान पर पराजित किया?
(अ) खानवा (ब) बयाना
(स) बाड़ी (द) खातोली

8. दुर्गादास राठौड़ ने राजस्थान की किस रियासत की रक्षा के लिए औरंगजेब से लम्बे समय तक संघर्ष किया?
(अ) आमेर (ब) मारवाड़
(स) मेवाड़ (द) कोटा

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. महाराणा प्रताप को समझाने के लिए अकबर द्वार किन–किन दरबारियों को भेजा गया?
2. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में चित्तौड़ के विजय स्तम्भ क क्या महत्त्व है?
3. शिवाजी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
4. हल्दीघाटी का युद्ध कब और किनके मध्य लड़ा गया?
5. मारवाड़ के राव चन्द्रसेन को 'प्रताप का अग्रगामी' क्य कहा जाता है?
6. चम्पानेर की संधि किन–किन के मध्य हुई?
7. महमूद गजनवी का अंतिम भारतीय अभियान कब औ किस शक्ति के विरुद्ध हुआ?
8. दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाला अंतिम हिन्दू सम्राट कौन था?
9. हम्मीर देव चौहान की जानकारी के कोई चार साहित्यिक स्त्रोतों का नाम लिखिए।
10. 'हिन्दूपत' किस राजस्थानी शासक को क्या जाता है औ क्यों?
11. मारवाड़ की संकटकालीन राजधानी किसे कहा जाता है?
12. किस मुस्लिम इतिहासकार ने हल्दीघाटी के युद्ध मे अकबर की तरफ से भाग लिया था?
13. कौन–कौन सी दो उपाधियाँ महाराणा कुम्भा के महान संगीतज्ञाता होने की प्रमाण हैं?
14. महाराणा सांगा को 'एक सैनिक का भग्नावशेष' क्यों कह गया है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत पर अरबों के आक्रमण के क्या कारण थे?
2. अरबों की सिंध विजय के सांस्कृतिक परिणामों का उल्लेख कीजिए।
3. नागभट्ट प्रथम के मुस्लिम प्रतिरोध का वर्णन कीजिए।
4. मुहम्मद गौरी के विरुद्ध पृथ्वीराज चौहान की असफलत के क्या कारण थे?
5. मारवाड़ के इतिहास में राव चन्द्रसेन को समुचित महत्त्व क्यों नहीं मिल पाया?
6. आप कैसे कह सकते है कि महाराणा प्रताप धार्मिक रूप से सहिष्णु शासक था?
7. खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा की पराजय के क्य कारण थे?
8. औरंगजेब के विरुद्ध राठौड़–सिसोदिया गठबंधन क मूल्यांकन कीजिए।
9. पुरन्दर की संधि की प्रमुख शर्तों का उल्लेख कीजिए।
10. महाराणा सांगा के समय मेवाड़ और दिल्ली सल्तनत के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।

11. शिवाजी की धार्मिक नीति का मूल्यांकन कीजिए।
12. महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन में क्या–क्या समानता व असमानता थी?
13. अगर हम्मीर चौहान के स्थान पर आप होते तो अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोहियों को लौटाने के प्रति क्या निर्णय लेते और क्यों?
14. एक विजेता के रूप में बप्पा रावल की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाराणा कुम्भा की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।
2. महाराणा सांगा व बाबर के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।
3. दुर्गादास राठौड़ के जीवन चरित्र व उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
4. चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कारणों का उल्लेख करते हुए पद्मिनी की कहानी अपने शब्दों में लिखिए।
5. महाराणा प्रताप द्वारा किए गये मुगल प्रतिरोध का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तरतालिका – 1. द 2. द 3. अ 4. स 5. द 6. ब 7. ब 8. ब

.....

अध्याय–5.

उपनिवेशवादी आक्रमण

पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने आर्थिक हितों की पूर्ति करने के लिए नये देशों की खोज करके वहां अपना प्रभाव स्थापित किया, व्यापार की सुविधाएँ प्राप्त की और बाद में साम्राज्य स्थापित किया। 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी देशों ने अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए पुर्तगाल, स्पेन, इंग्लैण्ड, हालैण्ड और फ्रांस ने भौगोलिक खोजों के माध्यम से उचित व अनुचित तरीकों से औपनिवैशिक आक्रमण किये। उपनिवेशवाद के परिणाम स्वरुप इन शक्तियों ने अपने उपनिवेशों में निरंकुश शासन की स्थापना की, आर्थिक शोषण कर उनके अमूल्य खनिजों की खानों व महत्वपूर्ण वस्तुओं पर नियंत्रण किया। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्र में मूल निवासियों के साथ अत्याचार व बर्बरता का व्यवहार किया गया। मूल निवासियों को सभ्य बनाने के नाम पर उपनिवेशवादी शक्तियों ने स्थानीय लोगों का धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनाया और अपने धर्म व सभ्यता का प्रसार किया। अफ्रीका महाद्वीप में इनका व्यवहार अमानवीय था।अफ्रीकीयों को गुलाम बनाकर अमेरिका भेजा जाता था और उन पर अमानुषिक अत्याचार किया जाता था, कोड़े बरसाये जाते थे।

दक्षिणी अफ्रीका में मुख्य रूप से इंग्लैण्ड और फ्रांस दो शक्तियों का औपनिवैशिक आधिपत्य रहा। अंग्रेजों ने यहां भी रंग भेद की नीति अपनायी। अश्वेतों का शोषण एवं उन पर अत्याचार किया जाता था। यहाँ दास प्रथा का प्रचलन था। पश्चिमी देशों के लोग दासों का व्यापार करते थे।

भारत प्राचीन काल से ही एक समृद्धशाली देश रहा है। भारत की सांस्कृतिक धरोहर आर्थिक समृद्धि और आध्यात्मिक उन्नति ने संसार को सदैव आकर्षित किया है। प्राचीन काल में भारतीय समृद्विएवं संस्कृति का संचार व्यापक रूप से विश्व में हो चुका था। अपने अतीत में भारत को सोने की चिड़िया और विश्व का आध्यात्मिक गुरु कहा जाता था। इस लिए विश्व की निगाहें प्राचीनकाल से सदैव भारत की ओर रही हैं। प्राचीनकाल से ही भारत के रोम एवं पश्चिम एशिया देशों से सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध रहे हैं।

17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत भूमि के प्रति यूरोपीयों का आकर्षण अधिक बढ गया, और इन्हें इस प्राचीन देश की ओर खींच लाया। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान कुछ यूरोपीय देशों में जब पूँजीवाद परिपक्वता की ओर अग्रसर हुआ तो औपनिवेशिक विस्तार की नीति सीधे पूँजीवादी विकास की आवश्यकताओं से जुड़ गई। औपनिवेशिक व्यापारियों का मूल उद्देश्य खरीद फरोख्त द्वारा मुनाफा कमाना ही नहीं वरन् उनकी रूचि अपनी पूँजी और प्रौद्योगिकी का उपयोग कर उत्पादन बढ़ाना और जहाँ तक सम्भव हो कच्चा माल प्राप्त कर माल तैयार करना था। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए औपनिवेशिक शक्तियों ने कम्पनी प्रशासन द्वारा या फिर सीधे शासन में हस्तक्षेप द्वारा स्थानीय उद्योगों, व्यापारियों आदि को माल खरीदने के लिए बाध्य किया। ऐसे में यूरोपीय देशों में अधिक से अधिक उपनिवेश प्राप्त करने की होड़ मच गई।

17वीं शताब्दी में भारत संसार के सबसे धनी देशों में से एक था। इस कथन की पुष्टि टेवर्नीयर, ऐडम स्मिथ, वर्नियर जैसे लेखकों ने की है।

कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने यूरोपवासियों के भारत आने का उद्देश्य भारतीयों को सभ्य बनाना बताया है, लेकिन वास्तविकता यह है कि धन की प्राप्ति, व्यापार में वृद्वि और ईसाई मत का प्रसार करना ही इनका प्राथमिक उद्देश्य था, जो आगे चलकर राजनैतिक प्रसार व साम्राज्यवाद में बदल गया।भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की स्थापना छल–कपट, अत्याचार व शोषण से हुई। परिणामस्वरुप यहाँ की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को आधारभूत क्षति पहुँची। उन्होंनें भारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं का सच्चा चित्र प्रस्तुत न कर भारत के इतिहास का विकृत रुप प्रस्तुत किया।

भारत में औपनिवेशिक शक्तियों का प्रवेश और विस्तार

पुर्तगाल– भारत के व्यापारिक सम्बन्ध यूरोप से प्राचीन काल से थे। व्यापार के तीन प्रमुख मार्ग थे। पहला मार्ग मध्य एशिया की आकंसस नदी से केस्पियन व काले सागर तक दूसरा मार्ग सीरिया होता हुआ भूमध्य सागर को और तीसरा मार्ग लाल सागर

से होता हुआ मिस्र तक और भूमध्य सागर पार करके यूरोप जाता था। 15वीं शताब्दी में ये मार्ग असुरक्षित होने लगे और 1453 ई. में कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों के अधिकार में आने पर ये मार्ग बन्द हो गये। अब भारतीय माल, वस्त्र, मसाले आदि प्राप्त करने के लिए यूरोपीय लोग नये समुद्री मार्ग खोजने लगे। स्पेनवासी कोलम्बस 1492 में भारत की खोज में निकला लेकिन वह अमेरिका पहुँच गया।

प्रथम यूरोपीय जिसने यूरोप से भारत के लिए सीधे समुद्री मार्ग की खोज की वह वास्को–डि– गामा था, जो आशा अन्तरीप के रास्ते होता हुआ मोजाँबिक पहुँचने पर एक भारतीय पथ प्रदर्शक द्वारा 17 मई 1498 में कालीकट पहुँचा, जहाँ हिन्दू शासक जमोरिन ने अतिथि देवोभव की परम्परा से उसका स्वागत किया तथा कुछ सुविधाएँ प्रदान की। लगभग तीन माह भारत में रहकर वह वापस चला गया। 1502 में वास्को–डि –गामा दूसरी बार भारत आया और कन्नानोर, कालीकट, कोचीन में व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये।

डी. अल्मेडा भारत में पुर्तगाली अधिकृत प्रदेशों का पहला वायसराय था। उसने अपनी समुद्री सैन्य शक्ति को बढ़ाया जिसे नीले पानी की नीति (Blue Water Policy) कहा जाता है। अलफांसो डि अलबुकर्क, भारत में दूसरा पुर्तगाली वायसराय था। इसके समय में पुर्तगाली शक्ति एवं प्रभाव में वृद्धि हुई। बीजापुर शासक युसूफ आदिल खां से संघर्ष कर 1510 में गोवा पर अधिकार कर लिया, अब गोआ पुर्तगालियों का प्रधान केन्द्र बन गया। 17वीं शताब्दी के आरम्भ से पुर्तगाली शक्ति का ह्रास होना शुरू हो गया और केवल गोआ, दमन तथा दीव तक सीमित होकर रह गये। 1961 ई. में पुर्तगाली सरकार से स्वतन्त्र होकर ये राज्य भारत के अविभाज्य अंग बन गए।

डच– डच हॉलैण्ड निवासी थे। डच यूनाईटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कुछ व्यापारियों ने मिलकर 1602 ई. में की। डच सरकार ने कम्पनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार दे दिया। डचों नें बांटम, मलक्का, जावा, सुमात्रा भारत के मछलीपट्टनम तथा निजामपट्टम में व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर दिये।

भारत में डच और अंग्रेज पूर्व में मित्र रूप में दाखिल हुए लेकिन आगे चलकर दोनों शक्तियों में प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ी की 1623 में डचों ने इण्डोनेशिया के अम्बोयना से अंग्रेजों को खदेड़ दिया। इस घटना के बाद अंग्रेजों ने मुख्य रूप से भारत में ही शरण ली। भारत में डचों के अधिकार में मद्रास तट पर नागापट्टम तथा बंगाल में चिन्सुरा के प्रदेश थे। आरम्भ से अन्त तक भारत में डचों की स्थिति महत्वपूर्ण नहीं रही।

डेनमार्क वासी– अन्य यूरोपीय देशों की तरह डेनमार्क के निवासियों ने भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तन्जौर जिले में एक स्थान पर एक आबादी की स्थापना की। 1676 में उन्होंने सीरामपुर पर कब्जा कर लिया। इतने पर भी यह अपनी नींव दृढ़ न कर सके और अपनी बस्तियाँ 1845 में अंग्रेजों को बेच दी।

अंग्रेज– 1588 ई. में अंग्रेजों की स्पेनिश आर्मेडा पर विजय होने के बाद भारत और सुदुर पूर्व में सीधे व्यापार करने की इच्छा बढ़ने लगी। सितम्बर 1599 में लार्ड मेयर की अध्यक्षता में प्रमुख ब्रिटिश व्यापारियों ने एक प्रस्ताव स्वीकृत किया, जिसमें भारत के साथ सीधे व्यापार करने के लिए एक संस्था बनाने का निश्चय किया। 31 दिसम्बर 1600 को महारानी ऐलिजाबेथ ने पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने वाले लन्दन के व्यापारियों की कम्पनी दी गर्वनर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेन्टस ऑफ लन्दन ट्रेडिंग इनटू दी ईस्ट इण्डिज (The Governer and Company of Marchents of London Trading into the East Indies.) तथा उनके गर्वनर को व्यापार का एक अधिकार पत्र प्रदान किया। कप्तान हॉकिन्स के नेतृत्व 1608 ई. में पहला ब्रिटिश व्यापारिक जहाज "हेक्टर" सूरत बन्दरगाह पहुँचा। 1612 ई. में कप्तान बेस्ट ने सूरत के समीप पुर्तगालियों को पराजित किया। परिणाम स्वरूप अंग्रेजी प्रभाव में वृद्धि हुई और अंग्रेज कम्पनी को सूरत में व्यापारिक कोठी खोलने की अनुमति प्राप्त हो गई। 1615 ई. में सर टॉमस रो को ब्रिटिश सम्राट जेम्स प्रथम द्वारा जहाँगीर के दरबार में भेजा गया जहाँ उसे अंग्रेज कम्पनी के लिए व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हो गई। अहमदाबाद, बुरहानपुर, अजमेर और आगरा में भी व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये गए। 1616 ई. में कालीकट, 1633 ई. में मच्छलीपट्टम में, तथा 1640 ई. में मद्रास में फोर्ट सेन्ट जार्ज (FORT ST. GEORGE) व्यापारिक कोठियों की अनुमति प्राप्त हुई।

ब्रिटिश सम्राट चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाल की राजकुमारी से विवाह करने पर दहेज के रूप में जो बम्बई मिला था वह कम्पनी को 1661 में मात्र 10 पौण्ड वार्षिक किराये पर प्राप्त हो गया। 1651 में हुगली में कारखाना और 1696 में कलकत्ता(कोलकत्ता) में कारखाने के साथ ही एक दुर्ग बनाया गया इसे फोर्ट विलियम (FORT WILLIAM) नाम दिया गया। डॉ. विलियम हेमिल्टन ने सम्राट फर्रूखसीयर को रोगमुक्त करने से प्रसन्न होने पर सम्राट ने 1717 ई. में फरमान से कम्पनी को 3000 रूपये वार्षिक के बदले बंगाल में कम्पनी के माल को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया तथा ''दस्तक'' (विशेष अनुमति पत्र चुंगी शुल्क से मुक्ति के लिए) जारी करने का अधिकार दिया गया। बंगाल में शान्ति व सुव्यवस्था के कारण इस क्षेत्र में कम्पनी का व्यापार व प्रभाव बढ़ता चला गया। कम्पनी के अधिकार में धीरे धीरे बम्बई, मद्रास, कलकत्ता के अलावा कुछ और प्रदेश भी आ गये। दक्षिण भारत की राजनीति में अभी उथल–पुथल मची हुई थी ऐसे में अंग्रेजों ने कर्नाटक के तीन युद्धों में फ्रांसीसियो को पराजित कर भारत में अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली।

फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी– भारत की समृद्धि और व्यापारिक लोभ से फ्रांसीसी भी स्वयं को दूर न रख सके और सबसे बाद में अपने भाग्य की परीक्षा करने भारत पहुँचे। 14वें लुई व उसके मंत्री कोलबर्ट के नेतृत्व में 1664 ई. में फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। दिसम्बर 1667 में कम्पनी के डायरेक्टर जनरल फ्रांसिस केरन द्वारा सूरत में पहली फ्रांसीसी व्यापारिक कोठी स्थापित की गई। 1669 में मच्छलीपट्टम में व्यापारिक कोठी बनी। 1672 में लेफ्टिनेंट मार्टिन को कम्पनी का महानिदेशक बनाया गया जिसने पाण्डिचेरी में फ्रांसीसी बस्ती की

स्थापना कर उसे विकसित किया। चन्द्र नगर, बालासोर, कासिम बाजार, में भी फ्रांसीसियों की अपनी बस्तियाँ थी। कम्पनी ने मालाबार तट पर माही तथा कोरोमण्डल तट पर कारीकल में व्यापार का विस्तार किया।

1742 में डूप्ले फ्रांसीसी गवर्नर बनकर भारत आया। इसके समय भारत में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के उद्देश्य से फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष आरम्भ हुए, जिन्हें कर्नाटक के युद्धों के नाम से जाना जाता है। इसमें अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को परास्त कर भारत में उनके प्रभाव का अंत कर दिया।

.फ्रांसीसियों की असफलता के कारण– ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी एक निजी कम्पनी होने के कारण अपने काम काज में स्वतन्त्र थी, जबकि फ्रांसीसी कम्पनी को धन के लिए अपने देश (फ्रांस) पर निर्भर रहना पडता था। इससे उसका व्यापार अंग्रेजों जितना समृद्ध नही हो सका और अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप के कारण उसका संगठन भी अच्छा ना रह सका।

1. अंग्रेजों का जहाजी बेड़ा फ्रांसीसियों से कहीं अधिक मजबूत था।
2. फ्रांसीसी कर्मचारियों में आपसी समन्वय नहीं था।
3. अंग्रेजों के अधीन भारत का समृद्ध बंगाल प्रान्त आ गया, जिससे उन्हें भोजन तथा अन्न मिलता था। जबकि फ्रांसीसियों को इस प्रकार की कोई सहायता प्राप्त नहीं थी।
4. अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों से युद्ध के समय भी व्यापार की तरफ ध्यान दिया जबकि फ्रांसीसियों ने ऐसा नहीं किया जिससे उन्हें अधिक कठिनाइयों का सामना करना पडा।
5. फ्रांसीसी गर्वनर डुप्ले को फ्रांस सरकार ने ऐसे मौके पर भारत से वापस बुला लिया जब यहाँ (भारत) पर उसकी बहुत जरूरत थी।

18 वीं शताब्दी में भारत की राजनैतिक स्थिति और उपनिवेशवादी आक्रमण –

18 वीं शताब्दी में भारत– औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही भारत के इतिहास में एक नये युग का पदार्पण हुआ, मुगल साम्राज्य शक्तिहीन हो गया और अंत में उसका पतन हो गया । इस राजनैतिक अस्थिरता में विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया और यूरोपीयों को भारत में अपने पैर जमाने का मौका मिल गया।

मुगल– औरंगजेब के पश्चात इसके उत्तराधिकारी सामान्यतया अयोग्य, कमजोर सत्ता लोलुप और विलासी थे। मुगल दरबार इरानी, तुरानी, भारतीय अमीरों में बटा हुआ था इन्होंनें स्पष्ट उत्तराधिकारी नियम के अभाव में सम्राट पद को कठपुतली बना दिया। भारतीय अमीरों में सैयद बन्धुओं ने दरबार को षडयंत्रों का घर बना दिया। 1739 में नादिरशाह के आक्रमण तथा 1761 में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद मुगल साम्राज्य लगभग समाप्त हो गया। 1857 तक बहादुर शाह जफर नाम मात्र का सम्राट था।

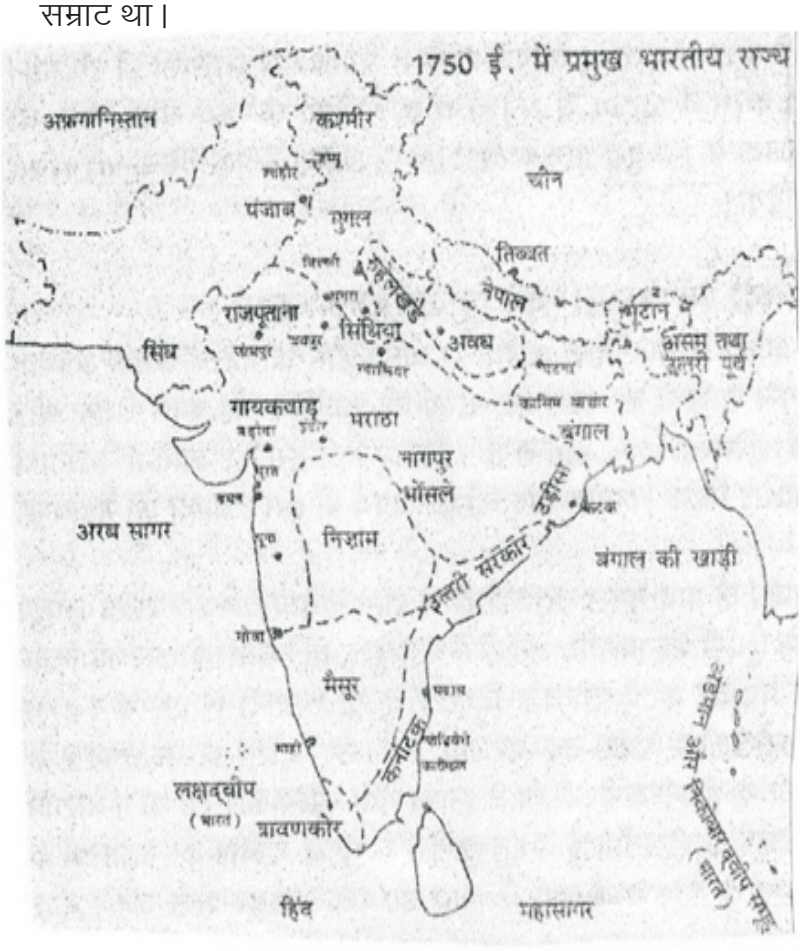

1750 ई0 मे प्रमुख भारतीय राज्य

मराठा– 18 वीं शताब्दी में मराठों ने पेशवाओं के नेतृत्व में अपनी शक्ति का विस्तार उत्तर भारत में भी किया। उन्होंने मुगल साम्राज्य की सुरक्षा का दायित्व ले रखा था, इस कारण पानीपत का तृतीय युद्ध (14 जनवरी 1761) मराठों व अहमदशाह अब्दाली के मध्य लड़ा गया। इस युद्ध में मराठे पराजित हुए अगर इस युद्ध में मराठे पराजित नहीं होते तो उनका प्रभुत्व जम जाता और अंग्रेज मराठों से लोहा लेने का साहस नहीं करते। इस समय केवल मराठों में शक्ति, साहस, शौर्य, कूटनीति आदि गुण थे जो देश की रक्षा में सहायक होते। लेकिन अंग्रेजों की कूटनीति के कारण आगे चलकर उनमें फूट पैदा हो गई और वे विभाजित हो गये जिन्हें अंग्रेजों ने एक एक करके पराजित कर दिया।

अवध– 1728 ई. में अवध के सूबेदार सादत खां (मीर मुहम्मद आमीन) ने मुगल साम्राज्य के नियन्त्रण से मुक्त हो अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली, लेकिन मुगल दरबार से सम्बन्ध समाप्त नहीं किये। सादत खां ने मुगल दरबार में निजाम के प्रभाव को कम करने के लिए ईरान के शासक नादिर शाह से सम्पर्क स्थापित किए। लेकिन दांव उल्टा पड़ने के कारण उसे 1739 में आत्म हत्या करनी पडी। सादत खॉ के बाद उसका भतीजा सफदर जंग नवाब बना। वह मुगल साम्राज्य का वजीर बना। सफरदर जंग की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शुजाउद्दौला अवध का नवाब बना। 1764 में बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों के

विरूद्व संघर्ष किया, लेकिन हारने के बाद इलाहाबाद की सन्धि कर ली, जिससे अवध कम्पनी का आश्रित राज्य बन गया। 1801 में वेलेजली ने अवध के साथ सहायक सन्धि की और 1856 में डलहौजी ने इसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

बंगाल– बंगाल मुगल साम्राज्य का सबसे महत्वपूर्ण और समृद्ध प्रदेश था। मुर्शीद कुली खां ने बंगाल में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। 1727 में उसकी मृत्यु के बाद उसका दामाद शुजाउद्दीन सूबेदार बना। 1739 में शुजाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात सरफराज खां नवाब बना। उसके एक अधिकारी अलीवर्दी खां ने सरफराज को हरा स्वयं को नवाब घोषित कर, मुगल सम्राट से फरमान जारी करवा लिया। अलीवर्दी खां के अंग्रेजों से अच्छे सम्बंधो के बावजूद बंगाल में उन्हें किलेबन्दी नहीं करने दी। अलीवर्दी खां के बाद सिराजुद्दौला नवाब बना। जून 1757 को अंग्रेजों और सिराजुद्दौला के मध्य प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला पराजित हुआ। बंगाल से ही भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना हुई।

मैसूर– 1761 ई. में हैदर अली ने मैसूर की सत्ता पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया और 1766 में राजा की मृत्यु के बाद वह मैसूर का शासक बन गया। उसने सेना का पुर्नगठन व राज्य का विस्तार किया। हैदर अली की मृत्यु के बाद उसका पुत्र टीपू सुल्तान शासक बना। दोनों ने अंग्रेजों से कड़ा संघर्ष किया।

जाट राज्य– जाटों में औरंगजेब की धार्मिक और दमनात्मक नीति के विरोध का नेतृत्व राजाराम और चूडामन ने सम्भाला। चूडामन की मृत्यु के बाद उसके भतीजे बदन सिंह ने जाटों का नेतृत्व सम्भाला। बदन सिंह ने डीग, कुम्हेर, भरतपुर और बेर में सुदृढ दुर्गों का निर्माण करवाया। बदन सिंह भरतपुर का प्रथम शासक था, उसकी मृत्यु के बाद सूरजमल जाट राज्य का शासक बना। उसने अपनी रियासत में शांति एवं समृद्धि प्रदान की।

1732ई. में सूरजमल ने सोगर के जागीर डॉ. खेमकरण सिंह को पराजित किया। इसी वर्ष भरतपुर में किले का निर्माण शुरू किया। 1745 ई. में मुगल सम्राट मुहम्मदशाह व रूहेलों को हराया। 1756 ई. में राजा सूरजमल ने अलवर को अधीन कर लिया। सूरजमल ने अपनी कूटनीति से 1754 ई. मुगल व मराठों की संयुक्त सेना को कुम्हेर से लौटा दिया।

पानीपत के तीसरे युद्ध के समय सदाशिवराव भाऊ की सेना के लिए खाद्य सामग्री व अन्य सामान की व्यवस्था की। पानीपत की पराजय के बाद लगभग एक लाख मराठे भरतपुर आये। महाराजा सूरजमल ने उनके लिए भोजन व वस्त्रों की व्यवस्था की। अपनी तटस्थ नीति के कारण अब्दाली के प्रकोप से अपने राज्य को बताया।

25 दिसम्बर 1763 ई. में हिण्डन नदी के किनारे 6 हजार घुड़सवारो के साथ मुगलों पर आक्रमण किया। मुगल सेना को भागकर जगंल में छिपना पड़ा। महाराज सूरजमल वीर साहसी, कुशाग्र, बुद्धिमान व जाट राज्य का सर्वाधिक योग्य शासक था। अपनी वीरता साहस और चतुराई से अपनी दो जागीरों से राज्य को पूर्व में आगरा, एटा, दक्षिण में धौलपुर, चम्बल, उत्तर में मथुरा, अलीगढ़, लक्ष्मणगढ़, पंजाब व हरियाणा तक विस्तृत था। बुद्विमता और राजनैतिक कुशलता के कारण उसे जाट जाति का ''प्लेटो'' कहा जाता है। महाराजा सूरजमल के समय जाट राज्य

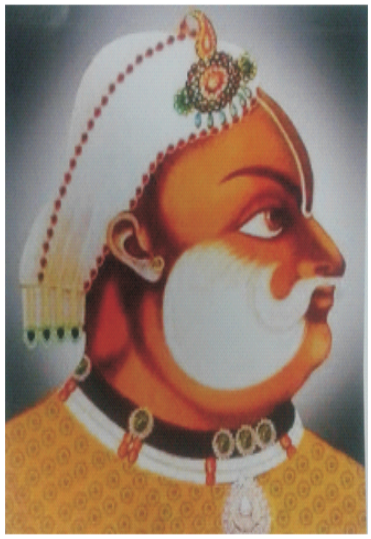

महाराजा सूरजमल

सदाशिवराव भाउ

अपने चर्मोत्कर्ष पर था। 1763 में सूरजमल की मृत्यु के बाद जाट राज्य की शक्ति कमजोर होने लगी।

सिक्ख राज्य– एक प्रमुख राजनैतिक शक्ति के रूप में पंजाब में सिक्ख राज्य का उदय हो चुका था। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय सिक्खों ने पंजाब में उसे टिकने नहीं दिया। समस्त पंजाब को सिक्ख सरदारों ने 12 मिसलों में बांट दिया। आगे चल कर रणजीत सिंह ने इन मिसलों को मिला कर एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की।

राजपूत राज्य– मुगलकाल में केन्द्रीय शक्ति के कमजोर होने पर कुछ राजपूत राज्यों ने स्वतन्त्र होने के प्रयास किए। औरंगजेब की मृत्यु के बाद अजीत सिंह ने पूरे मारवाड पर अपना अधिकार कर लिया। उधर आमेर दूसरा महत्वपूर्ण राज्य था जिसके शासक सवाई जयसिंह के मुगल और मराठों से घनिष्ठ संबंध थे। जयसिंह और बाजीराव दोनो ही मालवा मे हिन्दू प्रभुत्व स्थापित करने को उत्सुक थे। लेकिन आगे चल कर बूँदी के उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर राजपूत व मराठा सबंध खराब हो गए।

रूहेलखण्ड– अली मुहम्मद खां ने नादिर शाह के आक्रमण पश्चात फैली अव्यवस्था का लाभ उठा रूहेलखण्ड में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। यह उपजाऊ प्रदेश गंगा तट से कुमायुँ की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। आन्दला (बरेली) को अपनी राजधानी बनाया। रूहेलों का जाटों, मराठों से लगातार संघर्ष होता रहता था।

पानीपत का तृतीय युद्ध–

मुगल साम्राज्य के पतन ने उत्तरी भारत को शक्ति शून्य कर दिया था। उधर अफगानिस्तान के शासक अहमद शाह अब्दाली अपने पूर्व में नादिरशाह द्वारा अधिकृत भारतीय प्रदेशों पर अपना अधिकार मानता था। कुछ रूहेल और अफगान पठान भी अब्दाली को भारत पर आक्रमण के लिए प्रेरित कर रहे थे। दूसरी ओर मराठा शक्ति का उत्तर भारत में विस्तार हो चुका था। उन्होंने मुगलों से 1752 में सन्धि कर सुरक्षा व सहायता का वायदा किया। 1757 में अब्दाली ने दिल्ली पर आक्रमण किया

और बिना प्रतिरोध प्रचुर धन सम्पदा लेकर वह पुनः अफगानिस्तान लौट गया। लेकिन लाहौर और पश्चिमोत्तर क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया। पेशवा बालाजी बाजीराव ने रघुनाथ राव को उत्तर भारत में भेजा। रघुनाथ राव ने दिल्ली में अब्दाली के प्रतिनिधि नजीबुद्दौला को अपदस्थ कर 1758 में पंजाब की ओर बढा और अब्दाली के पुत्र को निकाल कर साबाजी सिन्धिया को पंजाब का गवर्नर बनाया गया। लाहौर भी अब इनके अधिकार में आ गया।

पानीपत का तृतीय युद्ध– (14 जनवरी 1761)

1759 के अन्तिम दिनों में अब्दाली पंजाब में मराठा प्रतिनिधि को खदेड कर दिल्ली के निकट पहुँच गया। पेशवा ने अपने चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊ व पुत्र विश्वास राव के नेतृत्व में विशाल सेना अब्दाली के विरूद्ध भेजी, जिसने दिल्ली को अपने नियन्त्रण में ले, पानीपत के मैदान में पहुँच गई। 14 जनवरी 1761 दोनों के मध्य पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ। प्रारम्भिक सफलता के बाद मराठों की अन्त में पराजय हुई। सदाशिव राव भाऊ और विश्वास राव वीर गति को प्राप्त हुए। पेशवा इस घटना को अधिक समय तक सहन नहीं कर सका और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई।

मराठों की पराजय के कारण और महत्व– मराठों की दोषपूर्ण सेन्य संगठन व अनुशासन की कमी तथा भारतीय राजाओं और सरदारों में एकता का अभाव हार का प्रमुख कारण था। मराठों को जाट, राजपूत आदि भारतीय शक्तियों से आपसी तालमेल के अभाव में उनके सहयोग से वंचित होना पडा और कुछ देशद्रोही शासकों के अब्दाली को सहयोग करने के कारण मराठों को अकेले संघर्ष करना पडा। इस युद्ध से उत्तरी भारत में मराठा शक्ति को गहरा आघात लगा। मुगल और कमजोर हो गये। ऐसे में पंजाब में सिक्ख शक्ति का विकास हुआ और भारत में अंग्रेजों की सत्ता स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

भारत में उपनिवेशवादी आक्रमण– 18वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भिन्न भिन्न यूरोपिय शक्तियां पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य का स्थान लेने एवं भारतीय व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करने हेतु संघर्षरत थी। धीरे–धीरे पुर्तगालियों और डचों की शक्तियां कमजोर होती चली गई और भारत में अंग्रेज और फ्रांसिसी ही मुख्य प्रतिद्वन्द्वी रह गये । दोनो शक्तियों ने भारत के देशी राज्यों के पारस्परिक झगड़ों तथा उनके उत्तराधिकार के मामलों ने हस्तक्षेप कर उन्हें सैनिक सहायता देना आरम्भ कर दिया । सहायता के बदले उन्होने भारतीय शासकों से भूमि, धन और व्यापारिक सुविधाऐं प्राप्त कर ली, धीरे–धीरे ये व्यापारी एक राजनैतिक शक्ति बन गये और भारत में राजनैतिक प्रभुत्व के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया। दक्षिण भारत में फ्रांसिसीयों और अंग्रेजों के मध्य तीन संघर्ष हुए जिन्हे कर्नाटक के युद्ध के नाम से जाना जाता है । प्रथम युद्ध 1746–48 के मध्य, द्वितीय 1749–54 के मध्य और तृतीय 1758–63 के मध्य हुए इन युद्धों ने पूर्ण रूप से भारत में फ्रासिसी साम्राज्य की स्थापना की सम्भावना नष्ट कर दी। अलफ्रेड लायल के कथनानुसार '' भारत में व्यापारिक एवं सैनिक सफलता की दो मुख्य शर्तें थी – तटीय प्रदेशों में दृढ़ मोर्चाबन्दी तथा ऐसी नौ सेना का होना जो यूरोप के साथ संचार का मार्ग खोल सकें। अंग्रेज समुद्र पर अपना गौरव बढ़ा चुके थें और फ्रासिसी स्थल पर भी अपनी शक्ति खो रहे थे।''

बंगाल– मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत आने वाले प्रान्तों में बंगाल सर्वाधिक सम्पन्न प्रान्त था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को 1717 ई. मे मुगल शासक फर्रूखसियर द्वारा दी गई सुविधाओं के परिणाम स्वरूप बंगाल से सीधा सम्पर्क हो गया और उनका हस्तक्षेप बढ़ गया। 1740 ई. में अलीवर्दी खान ने बंगाल में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। उसने अंग्रेज और फ्रांसीसीयों को बंगाल में किलेबन्दी की आज्ञा नहीं दी। 1756 ई. में अलवर्दी खान की मृत्यु के पश्चात उसका पोता सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। नवाब के राजनीतिक, आर्थिक व अन्य मामलों में अंग्रेजों से मतभेद बढ़ते चले गये जिसके परिणाम स्वरूप 1757 ई. में प्लासी का युद्ध हुआ।

प्लासी के युद्ध के कारण

(1) राजनीतिक– नवाब के विरोधी घसीटी बेगम, राज बल्लभ, शौकत जंग आदि उसको हटाने का षडयंत्र रच रहे थे। दूसरी तरफ अंग्रेजों का यह विश्वास था नवाब भावी संघर्ष में हार जायेगा। इसलिए इन्होंने विरोधियों का साथ दिया और नवाब के किलेबंदी न करने के आदेश की अवहेलना की ताकि भविष्य में उन्हें अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हो सके।

(2) नवाब के प्रति अशिष्टता– भारत में प्रायः राज्याभिषेक के अवसर पर शासक के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए महत्वपूर्ण व्यक्ति मूल्यवान भेंट प्रदान करते थे।जब सिराजुद्दौला का सिंहासनारोहण हुआ तो अंग्रेजो ने न तो भेंट दी और न ही उपस्थित हुए। नवाब ने अंग्रेजों की कासिम बाजार फैक्ट्री को देखने की इच्छा व्यक्त की तो अंग्रेजों ने दिखाने से मना कर दिया। उनकी यह कार्यवाही एक प्रकार से नवाब के प्रति अशिष्टता थी।

(3) व्यापारिक झगडा– 1717 ई. में मिले अपने अधिकारों का अंग्रेज दुरूपयोग कर रहे थे। वे अपने दस्तक (Free Pass) को भारतीय व्यापारियों को बेच देते थे। इससे नवाब को आर्थिक नुकसान हो रहा था।

(4) किलेबन्दी करना और आज्ञा का पालन न करना– आंग्ल फ्रांसिसी प्रतिस्पर्धा के कारण अपनी अपनी बस्तियों में किले बन्दी कर रहे थे। नवाब के किलेबंदी न करने के आदेश को फ्रांसीसियों ने मान लिया। नवाब ने अंग्रेजो को लिखा भी "तुम व्यापारी हो, तुम्हें किले की क्या आवश्यकता है, मेरी सुरक्षा में रहते हुए तुम्हें किसी शत्रु का भय नहीं होना चाहिये" लेकिन अंग्रेजों ने किलेबंदी जारी रखी।

(5) नवाब के शत्रुओं को संरक्षण देना– अंग्रेजो की बस्ती नवाब के शत्रुओं के लिए आश्रय स्थल बनी हुई थी। जिनमें दीवान राजवल्लभ और उसका पुत्र कृष्ण वल्लभ प्रमुख थे। जब नवाब ने अंग्रेजों से इन्हें माँगा तो अंग्रेजो ने ऐसा करने से मना कर दिया।

इस प्रकार सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष आरम्भ होने के कारण बन गये। 4 जून 1756 को नवाब ने अंग्रेजों की कासिम बाजार कोठी पर आक्रमण कर कब्जा कर लिया। 15 जून को नवाब की सेना ने फोर्ट विलियम पर घेरा डाला। पराजय

सिराजुद्दौला लॉर्ड क्लाइव

और मृत्यु को सामने देख गवर्नर डेक व अन्य अंग्रेज अधिकारी फुल्टा टापू चले गए।

ब्लैक हॉल दुर्घटना – (कलकत्ता की काल कोठरी घटना)

विद्वानों के अनुसार कलकत्ता के एक छोटे कक्ष जो 18 फुट लम्बे और 14 फुट 10 इंच चौडे छोटे कक्ष में सिराजुद्दौला द्वारा 146 अंग्रेज बन्दियों को 20 जून को रात्रि को बन्द कर दिया गया तथा उनमें से अगले दिन प्रातः मात्र 23 व्यक्ति ही बचे। 123 व्यक्ति दम घुटने से मारे गये। जे. जैड. हॉलवेल जो शेष जीवित में से एक था उसे इसे कथा का रचयिता माना जाता है, जो काल्पनिक प्रतीत होती है, क्योंकि इतने छोटे कक्ष में 146 व्यक्तियों को एकसाथ बन्द करना सम्भव नहीं था। कहा जाता है कि ब्लेक हॉल की कहानी केवल इसनिए गढ़ी गई ताकि भारत स्थित अंग्रेजों के क्रोध को भड़काया जा सके। अंग्रेजों ने छल व कूटनीति के द्वारा अमीचन्द, जगत सेठ, सेनापति सादिक खॉ, राजा मानक चन्द व मीर जाफर के सहयोग से एडमिरल वाटसन व रोबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में 2 जनवरी 1757 को कलकत्ता पर पुनः नियन्त्रण कर लिया। 9 फरवरी 1757 को नवाब को अंग्रेजों से अलीनगर की संधि करनी पडी जिससे अंग्रेजों को कलकत्ता की किलेबन्दी, सिक्के ढालने का अधिकार व पुनः व्यापारिक सुविधाएँ बहाल की गई। क्षतिपूर्ति के रूप में नवाब ने कम्पनी को 3 लाख रूपये देना स्वीकारा, बदले में कम्पनी ने नवाब की सुरक्षा का आश्वासन दिया।सप्त वर्षीय युद्ध छिड़ने के कारण अंग्रेजों नें फ्रांसीसियों से चन्द्रनगर छीन लिया। राबर्ट क्लाइव कुटिल व घूर्त था उसने दिखावे के तौर पर सिराजुद्दौला से समझौता किया परन्तु उसके अस्तित्व को समाप्त करने के लिए षडयंत्र रचना आरम्भ कर दिए।

अलीनगर की संधि की पालना को लेकर दोनों में मतभेद बढ गए। क्लाइव ने नवाब के प्रधान सेनापति मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाने का आश्वासन, प्रभावशाली साहूकार जगत सेठ राय दुर्लभ व अमीचन्द को धन का लालच दे अपनी ओर मिला लिया। क्लाइव ने अमीचन्द को तीन लाख रूपये देने का एक संधि पत्र जिस पर 30,000 पाउण्ड एडमिनरल वाटसन के जाली हस्ताक्षर थे, तैयार किया।

प्लासी का युद्ध– मुर्शिदाबाद के दक्षिण में 22 मील की दूरी पर प्लासी के मैदान में 23 जून 1757 को यह युद्ध नाम मात्र का लड़ा गया। नवाब के पास 50000 सैनिक थे जबकि क्लाइव के पास 950 पैदल, 100 तोपची, 50 नाविक तथा 2100 भारतीय सैनिक थे। मोहनलाल व मीरमदान ने नवाब की ओर से वीरतापूर्वक अंग्रेजों का सामना किया तो दूसरी तरफ षड़यन्त्र के अनुरूप मीर जाफर व दुर्लभ राय के नेतृत्व वाला नवाब की सेना का दल निष्क्रिय रहा। नवाब को युद्ध के मैदान से भागना पड़ा। लेकिन पकड़ा गया और मीरजाफर के पुत्र मीरन के हाथों मारा गया।

प्लासी के युद्ध के परिणाम

यद्यपि सैनिक दृष्टि से प्लासी का युद्ध कोई बड़ा युद्ध नहीं था। मेलीसन ने इस युद्ध को निर्णायक युद्ध बताया है, लेकिन यह एक सैनिक झड़प से अधिक कुछ नहीं था। के. एम. पन्निकर के अनुसार "यह एक सौदा था जिसमें बंगाल के धनी सेठों तथा मीर जाफर ने नवाब को अंग्रेजों के हाथ बेच डाला।"

1. बंगाल अंग्रेजों के अधीन हो गया व फिर स्वतन्त्र नहीं हो सका।
2. बंगाल का नवाब मीर जाफर को बनाया गया जो अंग्रेजों की कठपुतली था।
3. 24 परगनो का प्रदेश अंग्रेजों को जागीर के रूप में प्राप्त हुआ तथा कम्पनी के कर्मचारियों को बिना कर चुकाए व्यापार की सुविधा प्राप्त हुई।
4. कलकत्ता में स्वतन्त्र टकसाल की शुरूआत हुई और अगस्त 1757 कम्पनी ने प्रथम सिक्का जारी किया।
5. कम्पनी के बड़े बड़े अधिकारियों व स्वयं क्लाईव को भेंट स्वरूप नवाब द्वारा बहुमूल्य उपहार दिए गए।

प्लासी की विजय वीरता का नहीं बल्कि विश्वासघात एवं षड़यन्त्र का परिणाम थी।

मीर जाफर व बंगाल की द्वितीय क्रांति– 1757–60 तक मीर जाफर बंगाल का कठपुतली नवाब बना रहा इस दौरान वास्तविक शक्ति क्लाइव के हाथों में रही। नवाब ने अपने समय 3 करोड़ रूपये अंग्रेजो को दिये लेकिन अंग्रेजों की मॉग बढती गई। खजाना खाली हो गया, राज्य में कई स्थानों पर विद्रोह आरम्भ हो गये। 1760 में क्लाइव इंग्लैण्ड लौट गया। कार्यवाहक गवर्नर हौलवेल के बाद वेन्सीटार्ट गवर्नर बनकर आया। उसने मीर जाफर द्वारा धन की पूर्ति न किये जाने के कारण बंगाल का नया नवाब मीर कासिम को बना दिया।

वेन्सीटार्ट सन्धि– (27 सितम्बर 1760)

मीर कासिम को भावी नवाब बनाने के लिए वेन्सीटार्ट की यह एक गुप्त संधि थी जिसकी प्रमुख शर्तें निम्न थी:–

1. कम्पनी को बर्दवान मिदनापुर व चटगांव के जिले मिले सैनिक व्यय के रूप में देगा।
2. तीन वर्ष तक सिल्हट के चूने के व्यापार में आधा भाग कम्पनी का होगा।
3. मीर कासिम कम्पनी के मित्र अथवा शत्रुओं को अपना मित्र अथवा शत्रु मानेगा।
4. कम्पनी के दक्षिण अभियान के लिए मीर कासिम 5 लाख रूपये देगा।
5. मीर कासिम वेन्सीटार्ट को 50,000 पोण्ड हालवेल को 27000 पोण्ड, तथा कलकत्ता कोन्सिल के अन्य सदस्यों को 25000 पोण्ड प्रति सदस्य देना स्वीकार किया।

सुरक्षा एवं पेंशन (निर्वाह भत्ता) का आश्वासन के बाद मीर जाफर ने मीर कासिम के लिए गद्दी छोड़ दी और कलकत्ता चला गया।

बक्सर का युद्ध– (22 अक्टूबर 1764)

बंगाल में कम्पनी एक कठपुतली शासक चाहती थी जो समझदार और भीरू हो, जो उनके हितों को पूरा करता रहे। मीर कासिम अंग्रेजों की शक्ति को अधिक बढने से और अपनी शक्ति को कम होने से रोकना चाहता था। इसके लिए उसने प्रशासनिक पुर्नगठन का प्रयास किया, लेकिन भ्रष्टाचार और ब्रिटिश हस्तक्षेप के कारण वह सफल नहीं हुआ। अब आर्थिक मामलों व विभिन्न सुविधाओं को लेकर दोनों में मतभेद बढ़ने लगे जिसका परिणाम बक्सर के युद्ध के रूप में निकला।

युद्ध के कारण

1. नवाब की सम्प्रभुता की चाह अंग्रेजों को पसन्द नहीं आई, नवाब का राजधानी मुर्शिदाबाद से मुंगेर ले जाना, सेना को यूरोपियन विशेषताओं से प्रशिक्षित कराना, शस्त्र निर्माण व गोला बारूद के कारखाने खोलने जैसे कार्यों ने अंग्रेज और नवाब के मतभेद बढ़ा दिए।

2. मुगल सम्राट शाहआलम को अंग्रेजों द्वारा नवाब को नजराने के रूप में 12 लाख रूपये देने के लिए विवश करने को नवाब ने अपनी स्वतन्त्रता पर आघात माना।

3. कम्पनी व उसके अधिकारी बंगाल में मिली व्यापारिक सुविधाओं का दुरूपयोग कर रहे थे। इससे नवाब को राजकोष हानि हो रही थी। नवाब ने भारतीय व्यापारियों को भी यह छूट दे दी। इससे अंग्रेज नवाब से नाराज हो गए।

4. 1760 की संधि में सैनिक व्यय के लिए कम्पनी को मिले तीन जिले बर्दवान, मिदनापुर व चटगांव व उनसे वसूले गये राजस्व को नवाब द्वारा लौटाने की माँग की गई, क्योंकि सेना का प्रयोग नवाब के विरूद्वकिया जा रहा था।

5. मीर कासिम व अंग्रेज के मध्य संघर्ष– कलकत्ता कौंसिल व नवाब के मध्य समझौते के प्रयास असफल रहे दोनों के मध्य युद्ध छिड़ गया। जून 1763 में मेजर ऐंडमज को मीर कासिम के विरूद्व युद्ध करने के लिये भेजा गया। नवाब की सेनाओं के साथ बहुत सी लड़ाईयाँ लड़ी गई तथा इनमें सबसे प्रसिद्व लड़ाई कटवाह, गिरिआ, सूती तथा उदयनाला की थी। जब मीर कासिम का पक्ष दुर्बल पड़ गया तो वह पटना की ओर चला गया। अंग्रेजों ने मीर जाफर को पुनः नवाब बनाया।

6. गठबन्धन का निर्माण– मीर कासिम पराजित होने के बाद बचकर अवध के नवाब शुजाउद्वौला के पास सहायता के लिए पहुंचा। इस समय मुगल सम्राट शाह आलम भी अवध मे था। तीनों ने मिलकर अंग्रेजों को बंगाल से बाहर निकालने की योजना बनाई।

बक्सर का युद्ध– 22 अक्टूबर 1764 को बक्सर में अंग्रेजों और तीनों की सम्मिलित सेना (बंगाल का नवाब मीर कासिम, अवध का नवाब शुजाउद्वौला व मुगल सम्राट शाह आलम) के मध्य हुआ। इस युद्ध में अंग्रेज विजयी हुए।

महत्व– इस युद्ध ने प्लासी के निर्णयों पर पक्की मोहर लगा दी। राजनैतिक व सैनिक दृष्टि से इसका महत्व ज्यादा है। भारत में अब अंग्रेजों को चुनौती देने वाला कोई दूसरा नहीं रह गया था। अब नया नवाब इनकी कठपुतली था तो अवध का नवाब उनका आभारी तथा मुगल सम्राट उनका पेन्शनर था। स्मिथ के शब्दों में "बक्सर के युद्ध ने प्लासी के अधूरे कार्य को पूरा किया" के.के. दत्ता ने लिखा है प्लासी के युद्ध की अपेक्षा बक्सर का युद्ध परिणामों की दृष्टि से अधिक निर्णायक था। इस युद्ध से इलाहाबाद तक का प्रदेश अंग्रेजों के नियन्त्रण में आ गया तथा दिल्ली का मार्ग भी खुल गया। इलाहाबाद की संधि द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार भी कम्पनी के पास चले गये। इस युद्ध ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अखिल भारतीय शक्ति बना दिया। अब वे समस्त भारत पर दावा करने लगे थे।

अंग्रेजों का मराठा व मैसूर पर आक्रमण

18वीं शताब्दी में मराठा शक्ति भारत में एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी। अंग्रेजों का शिवाजी के राज्यरोहण के समय से, पेशवाओं के दरबार में लगातार आवागमन चलता रहा। प्रारम्भ में शक्तिशाली मराठों से टक्कर

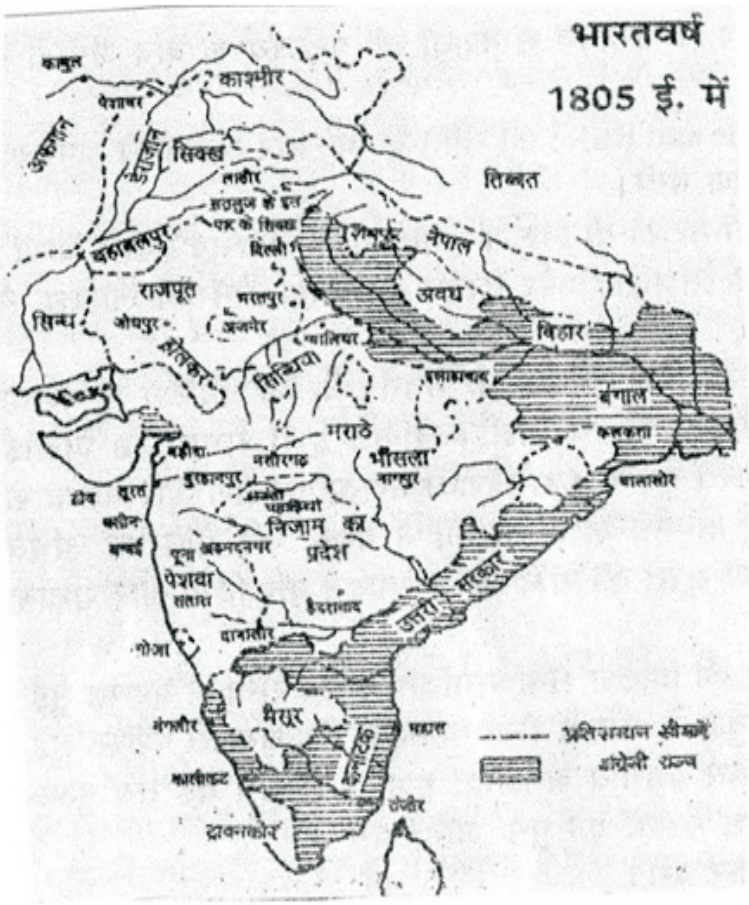

लेने का साहस अंग्रेजों मे नही था। 14 जनवरी 1761 को पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय से उनकी शक्ति को करारा आघात लगा। अंग्रेज अवसर की तलाश में थे क्योंकि मराठा शक्ति ही उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती थी।

1772 ई. में पेशवा माधवराव की मृत्यु के पश्चात उसका भाई नारायण राव पेशवा बना, किन्तु चाचा रघुनाथ राव (राघोबा) जो पेशवा का अंगरक्षक भी था, ने नारायण राव की हत्या कर

1773 में पेशवा बन गया। मराठा नेताओं द्वारा राघोबा के अनैतिक काम का विरोध किया गया और मराठा सरदारों की सभा ने नाना फडनवीस के संरक्षण में नारायण राव के नवजात बच्चे को माधवराव द्वितीय के नाम से पेशवा बना दिया। पेशवा पद प्राप्त करने के लिए अपदस्थ राघोबा ने बम्बई की कम्पनी सरकार से सहायता मांगी और सूरत की संधि कर ली। संधि के अनुसार :–

1. अंग्रेज पेशवा बनने में सहयोग करेंगे और 2500 ब्रिटिश सैनिक पेशवा की रक्षा के लिए पूना में रखे जायेंगे।
2. रघुनाथ राव अंग्रेजों को बम्बई के पास बेसिन, साल्सिट, भडोच व सूरत के लगान का आधा हिस्सा देगा।
3. कम्पनी की अनुमति के बिना किसी से न तो संधि करेगा, न ही किसी यूरोपीयन को नौकरी पर रखेगा।

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध – (1775–1782)

संघर्ष के कारण

रघुनाथ राव के पेशवा बनने की महत्वाकांक्षा और अंग्रेजों द्वारा की गई उसके साथ सूरत की संधि ने संघर्ष को आवश्यक बना दिया।

1. मराठा चुनौती ने अब तक अंग्रेजों की महत्वाकांक्षा को रोक रखा था लेकिन पानीपत के तृतीय युद्ध (1761) में मराठों की पराजय से ये स्थिति बदल गई।
2. मराठा सरदारों की आपसी फूट ने भी अंग्रेजों को मराठों के विरूद्व आक्रमण का अवसर प्रदान किया।
3. बम्बई सरकार के गर्वनर हार्नवे की साल्सिट तथा बेसिन का प्रदेश प्राप्त करने की लालसा ने मराठा राजनीति में हस्तक्षेप को प्रोत्साहित किया।
4. अपदस्थ पेशवा राघोबा के साथ अंग्रेजों द्वारा की गई संधि इस युद्ध का कारण बनी।
5. राघोबा ने सैनिक व्यय के लिए बम्बई सरकार को 6 लाख रूपये दिये और बम्बई सरकार ने कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में पेशवा के विरूद्ध सेना भेज दी। इस सेना ने ''अर्रा'' के युद्ध में मराठों को पराजित कर दिया। लेकिन इसी समय गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज ने सूरत की संधि को अवैध घोषित कर पेशवा से पुरन्दर की संधि (1 मार्च 1776) कर ली। लेकिन कम्पनी संचालकों ने बम्बई की संधि को मान्यता दी। परिस्थितियों को देख वारेन हेस्टिंग्ज ने सूरत की संधि का अनुमोदन कर राघोबा को सहायता देने का निश्चय किया।

पुनः युद्ध का आरम्भ– 1778 में संगठित मराठा सेना ने कर्नल इंगर्टन की अंग्रेज सेना को पराजित कर दिया। अतः 29 जनवरी 1779 को मराठा और अंग्रेजों के मध्य बड़गांव की अपमानजनक संधि हुई जिसमें यह तय हुआः–

1. अंग्रेजों द्वारा मराठों के विजित क्षेत्र पुनः मराठों को लौटा देंगे।
2. हर्जाने के रूप में अंग्रेज मराठों को 41000 रूपये देंगे।
3. राघोबा को पेशवा को सौंप दिया जाएगा।
4. भड़ोच जिले की आय सिन्धिया को दी जाएगी।
5 बन्धक के रूप में दो अंग्रेज अधिकारी (फारमर और स्टीवर्ट) मराठों के पास रहेंगे।

यह संधि संगठित मराठा शक्ति की सफलता थी और अंग्रेजों के लिए अपमानजनक घूँट था। वे मराठों से बदला लेने के लिए आतुर थे। वारेन हेस्टिंग्ज ने संधि को अस्वीकार करते हुए कहा था "संधि की शर्तों को पढ़ते ही मैं शर्म से डूब गया" और 1780–81 में पुनः संघर्ष आरम्भ हो गया। अंग्रेज सेनापती गोडार्ड ने पेशवा के विरूद्ध पूना पर आक्रमण किया, लेकिन पराजित हुआ। हेस्टिंग्ज की दूसरी सेना जो पोफम के नेतृत्व में थी उसने सिन्धिया को पराजित किया। सीपरी में सिन्धिया पुनः कर्नल कामक की अंग्रेज सेना से पराजित हुआ। सिन्धिया ने पेशवा और अंग्रेजों के मध्य सालबाई (1782) को सन्धि करवा दी। इस सन्धि के साथ ही प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध समाप्त हुआ।

सालबाई संधि की मुख्य शर्ते

1 माधवराव (द्वितीय) को पेशवा के रूप में मान्यता देना तथा राघोबा को वार्षिक पेंशन दे दी गई। अंग्रेजों ने राघोबा का साथ छोड़ने का आश्वासन दिया गया।

2 साल्सिट पर अंग्रेज अधिकार स्वीकार कर लिया गया तथा शेष सभी क्षेत्र मराठों को अंग्रेजों द्वारा लौटा दिये गयो। जिसमें यमुना के पश्चिम में सिन्धिया के क्षेत्र पुनः सिधिंया को मिल गये।

3 फतह सिंह गायकवाड़ को बड़ौदा का शासक स्वीकार कर उसके सारे प्रदेश लौटा दिये गए।

परिणाम – इस संधि से अंग्रेजों व मराठों के मध्य लगभग 20 वर्षों तक शान्ति बनी रही लेकिन संधि से अंग्रेजो को मराठा शक्ति का आकलन करने का अवसर मिला और अपनी शक्ति में वृद्वि का समय मिला। नाना फड़नवीस और सिन्धिया के मतभेद खुलकर सामने आ गये।

द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध– (1802–04)– यह युद्ध दो चरणों में हुआ पहला 1802–04 व द्वितीय युद्ध 1804–05 तक। 1798 ई. में साम्राज्यवादी लार्ड वैलेजली गवर्नर जनरल बनकर आया। 1800ई. में मराठा दरबार में सिन्धिया और होल्कर में नाना फडनवीस की मृत्यु के बाद अपना वर्चस्व स्थापित करने को लेकर मतभेद प्रारम्भ हो गया। इस समय बाजीराव द्वितीय पेशवा पर सिन्धिया नियन्त्रण स्थापित करने में सफल रहा। 1801 में पेशवा ने जसवन्त राव होल्कर के भाई बिट्टू जी होल्कर की हत्या करवा दी। होल्कर ने पेशवा पर आक्रमण कर दिया। अक्टूबर 1802 को होल्कर ने पेशवा और सिन्धिया की संयुक्त सेना को पराजित कर दिया और विनायक राव को पेशवा बना दिया गया। बाजीराव पेशवा पद की पुनः प्राप्ति के लिए अंग्रेजों की शरण में चला गया जिससे अंग्रेजों को पुनः मराठा राजनीति में हस्तक्षेप का अवसर मिल गया।

युद्ध के कारण

1 पेशवा बाजीराव द्वितीय की अयोग्यता– पेशवा अपने ही मराठा सरदारों की समस्याओं का ठीक प्रकार से समाधान नहीं कर पाया। वह नाना फड़नवीस से मुक्ति पाने के लिए दौलत राव सिन्धिया से सम्बन्ध सुदृढ़ करने का प्रयास कर रहा था, इसी मध्य होल्कर व सिन्धिया के बीच संघर्ष छिड़ गया तो बाजीराव द्वितीय अंग्रेजों की शरण में चला गया।

2 मराठा सरदारों में आपसी द्वेष– मराठा राजनीति में अपना अपना वर्चस्व स्थापित करने को लेकर होल्कर व सिन्धिया में प्रतिस्पर्धा थी, इस फूट का लाभ अंग्रेजों को मिला।

3 नाना फड़नवीस की मृत्यु– 1800 ई. में नाना फड़नवीस की

मृत्यु के पश्चात् मराठों को एक करने वाला कोई नेता नहीं रहा। परिणाम स्वरूप मराठा सरदारों में आपसी कलह बढ़ता चला गया और जिसकी परिणिति युद्ध के रूप में हुई।

4 साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा– 1798 में लार्ड वेलेजली गवर्नर जनरल बनकर भारत आया जिसका प्रमुख उद्देश्य अपने अंग्रेज साम्राज्य का प्रसार करना था। मराठों पर आक्रमण करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने अपदस्थ पेशवा के साथ बेसिन की संधि कर ली।

बेसिन की संधि– (31दिसम्बर 1802)

सन्धि की शर्तें–

1 स्थायी रूप से एक अंग्रेज सेना पूना दरबार में रहेगी जिसका वार्षिक खर्चा 26 लाख रूपये पेशवा अंग्रेजों को देगा।

2 कम्पनी की सहमति के बिना पेशवा न तो किसी से युद्ध अथवा सन्धि करेगा, और न ही किसी यूरोपीयन को अपनी सेना में रखेगा।

3 सूरत शहर अंग्रेजों को सौंप दिया जाएगा।

4 निजाम, गायकवाड़ के साथ सभी विवाद अंग्रेजों को पंच बनाकर निपटाएगा।

5 पेशवा ने निजाम के राज्य से चौथ वसूली का दावा त्याग दिया।

1803ई. में बाजीराव पुनः अंग्रेज सेना के संरक्षण में पेशवा बन गया। जी. एस. सरदेसाई ने लिखा है– "बेसिन की संधि ने शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा स्वतन्त्रता का अंत कर दिया"। लार्ड केलसर ने लिखा है– "इस संधि ने अंग्रेजों को अन्तहीन और विवादास्पद झगड़ों में फंसा दिया है और साथ ही तीन महान शक्तियों से शत्रुता में उलझा दिया है।"

युद्ध– यह युद्ध मराठा सरदारों से उत्तर भारत व दक्षिण भारत में एक साथ लड़ा गया। दक्षिण भारत में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व आर्थर वेलेजली(ड्यूक ऑफ वेंलिग्टन) के पास था। भौंसले ने अंग्रेजों से संघर्ष किया। अरगांव के युद्ध(1803) में पराजित होने पर भौंसले ने अंग्रेजों से देवगांव की संधि कर ली। उत्तर में जनरल लेक नें सिन्धिया की राजधानी ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। लासवाड़ी के युद्ध में पराजित होने पर सिन्धिया ने दिसम्बर 1803 में सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि कर ली। सन्धि से गंगा जमुना के दोआब का प्रदेश अंग्रेजों के पास आ गया। उसने अंग्रेज सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया।

द्वितीय चरण (1804–05)– अंग्रेजों का अभी मराठा नेता होल्कर से संघर्ष शेष था। अंग्रेज जब सिन्धिया और भौंसले से युद्ध में व्यस्त थे तब व्यस्तता का लाभ उठाकर होल्कर ने जयपुर पर आक्रमण कर दिया। जयपुर के अंग्रेजों के साथ अच्छे संबंध होने के कारण इस आक्रमण से वे होल्कर से नाराज हो गये। होल्कर ने अपने क्षेत्र में नियुक्त तीन अंग्रेज अधिकारी (विकर्स, डॉन, धान) को मौत के घाट उतार दिया। वेलेजली ने कर्नल मोन्सन के नेतृत्व में होल्कर के विरूद्धसेना भेज दी। जिसे होल्कर ने मुकन्दरा के दर्रे (राजस्थान) मे न केवल बुरी तरह पराजित किया, वरन उसकी 5 बटालियन तथा 6 कम्पनियां पूरी तरह नष्ट कर दी। इसके बाद होल्कर दिल्ली की ओर बढा, लेकिन कर्नल लेक ने डीग के युद्ध में व पुनः फर्रूखाबाद में होल्कर को पराजित कर दिया। होल्कर ने अपने मित्र भरतपुर के राजा के यहाँ शरण ली लेक ने भरतपुर दुर्ग घेर लिया, किन्तु अधिकार न कर सका। जाटों व मराठों की वीरता से सहस्त्रों अंग्रेज सैनिक मारे जाने से अंग्रेजों का मनोबल टूट गया व कम्पनी प्रशासन भी हिल गया। 1805 कार्नवालिस को पुनः भेजा गया, लेकिन शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। इसी वर्ष उसका उत्तराधिकारी जार्ज बार्लो ने मराठों के साथ शान्ति एवं मैत्री की नीति अपनाने का निश्चय किया। नवम्बर 1805 में सिन्धिया से नई सन्धि की गई जिसके अनुसार चम्बल नदी को दोनों की सीमा मान ली गई। होल्कर से संघर्ष अनिर्णित रहा, लेकिन इसकी शक्ति कम हो गई। अंग्रेजों व होल्कर के मध्य जनवरी 1806 में राजपुर घाट की सन्धि हो गई। इससे होल्कर को उत्तरी क्षेत्र के प्रदेशों से अपना अधिकार छोड़ना पडा। अंग्रेजों ने होल्कर को टोंक व रामपुर के क्षेत्र लौटा दिये, होल्कर ने राजपूताने के आन्तिरिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया।

तृतीय आंग्ल मराठा युद्ध(1817–18)

1813 में लार्ड हैंस्टिंग्ज गर्वनर जनरल बना। वह भी वेलेजली की तरह अंग्रेजी साम्राज्य के प्रसार का समर्थक था और भारत में अंगजों की सर्वोच्चता स्थापित करना चाहता था। पेशवा ने अपने मंत्री त्रम्बक राव की सलाह से मराठा संघ के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने का प्रयास किया। लेकिन हेस्टिग्ज के निर्देशानुसार पूना में ब्रिटिश रेजिडेन्ट एलफिन्सटन ने पेशवा को नई संधि करने के लिए बाध्य किया। 13 जून 1817 को की गई संधि के अनुसार पेशवा ने मराठा संघ के अध्यक्ष पद को त्याग दिया। 5 नवम्बर 1817 को दौलतराव सिन्धिया के साथ भी नई संधि की गई। जिसके अनुसार पिण्डारियों को सहयोग नहीं करने का वचन दिया। राजपूतों से सीधे सन्धियाँ करने का अधिकार अंग्रेजों को सिन्धिया से प्राप्त हुआ। पेशवा ने इस दिन पूना स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। रेजिडेन्ट एलफिन्सटन को भाग कर एक सैनिक छावनी में शरण लेनी पड़ी। इसके साथ ही तृतीय मराठा युद्ध आरम्भ हो गया। पेशवा के साथ होल्कर व भौंसले रहे, जबकि सिन्धिया व गायकवाड युद्ध से पृथक रहे। फरवरी 1818 में "अष्टी" के युद्ध में पेशवा की अन्तिम पराजय हुई।

मराठा संघ का विघटन

18 जून 1818 को मेल्काम ने पेशवा से सन्धि कर ली। इसके अनुसार पेशवा पद समाप्त कर उसे 8 लाख रूपये की पेंशन दे बिठूर (कानपुर) भेज दिया। 1852 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। भौंसले सीताबलदी के युद्ध में और होल्कर महीदपुर के युद्ध में अंग्रेजों से पराजित हुए। अंग्रेज व होल्कर के मध्य मन्दसौर संधि के साथ ही अंग्रेजों का भारत में प्रभुत्व स्थापित हो गया ।

अंग्रेजों का मैसूर पर आक्रमण

हैदर अली– 1722 में हैदर अली का जन्म मैसूर के एक फौजदार व बून्दीकोट के जागीरदार फतहमुहम्मद के यहाँ हुआ था। पिता की मृत्यु के पश्चात् बड़ा होने पर वह अपनी योग्यता से डिंडीगल का फौजदार बना। मैसूर का राजा कृष्ण राज नाम मात्र का शासक था। सम्पूर्ण शक्ति वहां के मंत्री देवराज व नंदराज के

हाथों में थी। 1761 में हैदर अली मैसूर के नंदराज से सत्ता छीन स्वयं सर्वे सर्वा बन गया। अंग्रेजों को उसकी बढ़ती हुई शक्ति खटकने लगी।

प्रथम आंग्ल– मैसूर युद्ध के कारण(1767–69)

1 हैदर अली और फ्रांसीसियों के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों से अंग्रेज नाराज थे।

2 कर्नाटक के नवाब और हैदर अली की शत्रुता थी जबकि अंग्रेज कर्नाटक के मित्र थे इससे भी हैदर अली और अंग्रेजों के सम्बन्ध र

टीपू सुल्तान

हैदर अली

3 मालाबार जो अंग्रेजों का मित्र था, हैदर अली द्वारा उसके भूभाग पर अधिकारी करने से अंग्रेज नाराज हो गये।

अंग्रेजों ने मराठों व निजाम के साथ मिलकर हैदर अली के विरूद्ध एक त्रिगुट संगठन बना लिया। हैदर अली अपनी शक्ति को जानता था, उसने कूटनीति से काम लिया। मराठों को 35 लाख रूपये देकर युद्ध में तटस्थ रहने की बात स्वीकार करवा ली, निजाम को प्रादेशिक लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया। 1767 में हैदर अली व निजाम की संयुक्त सेना ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। लेकिन वे अंग्रेजों से पराजित हुए। निजाम ने अंग्रेजों से संधि कर ली। मैंगलोर को हैदर अली ने अंग्रेजों को पराजित कर अपने अधिकार में ले लिया। 1769ई से हैदर अली ने मद्रास पर आक्रमण कर उसे घेर लिया। लाचार अंग्रेजों ने उसके साथ 4 अप्रेल 1769 को मद्रास की संधि कर ली। इस संधि के अनुसार दोनों ने एक दूसरे के जीते प्रदेश लौटा दिये तथा बाह्य आक्रमण के समय एक दूसरे को सहयोग देने का वचन दिया।

द्वितीय आंग्ल–मैसूर युद्ध (1780–84)

कारण –

1 अंग्रेज प्रथम युद्ध की हार व अपमान का बदला लेने के लिए आतुर थे।

2 मद्रास की संधि की पालना की दृष्टि से अंग्रेज निष्ठावान नहीं थे और जब मराठों ने मैसूर पर आक्रमण किया तो हैदर अली को सैनिक सहयोग नहीं किया, इससे हैदर अली नाराज था।

3 गुंटूर पर अंग्रेजी अधिकार से हैदर अली नाराज हो गया।

इस बार हैदर अली ने अंग्रेजों के विरूद्ध त्रिगुट बना लिया जिसमें वह स्वयं, निजाम और मराठा शामिल थे। हैदर अली ने जुलाई 1780 में कर्नाटक पर आक्रमण कर अकार्ट घेर लिया, नवाब पराजित हो अंग्रेजों की शरण में मद्रास चला गया। हैदर अली को सफलता मिल रही थी कि दुर्भाग्य से 1782 में उसकी मृत्यु हो गई। मराठा युद्ध से अलग हो गये। हैदर अली के पुत्र टीपु सुल्तान ने युद्ध जारी रखा। युद्ध से परेशान दोनों ने 11 मार्च 1784 को मंगलोर की संधि कर ली, जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे के विजित क्षेत्र व बन्दियों को रिहा कर दिया तथा अंग्रेजों ने मैसूर में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया।

तृतीय आंग्ल–मैसूर युद्ध (1790 –92)

मंगलोर की संधि दोनों पक्षों की मजबूरी थी। मैसूर के प्रभाव को समाप्त करने के लिए अंग्रेज, मराठा और निजाम से मिल गये। टीपू ने फ्रांसिसी सहायता प्राप्ति के लिए असफल प्रयास किये। वह मालाबार की सुरक्षा के लिए कोचीन में स्थित डच दुर्ग खरीदना चाहता था, लेकिन अंग्रेज समर्थित ट्रावनकोर के राजा ने इन्हें खरीद टीपू को नाराज कर दिया, यही तृतीय आग्ल मैसूर युद्ध का तात्कालिक कारण था। कार्नवालिस ने विशाल सेना लेकर मैसूर पर आक्रमण कर दिया। टीपू अधिक समय तक संघर्ष नहीं कर सका और 1792 में श्रीरंगपट्टम की संधि कर ली। इसके अनुसार टीपू का आधा राज्य उससे छीन अंग्रेज और उसके समर्थकों को मिल गया। टीपू ने अंग्रेजों को 3 करोड रूपये क्षतिपूर्ति की राशि और बन्धक के रूप में अपने दो पुत्रों को भी रखना स्वीकार किया।

चतुर्थ–आंग्ल मैसूर युद्ध (1799)

कारण–

1 श्रीरंग पट्टम की संधि टीपू के लिए अपमानजनक थी और राज्य के अंग भंग से वह अंग्रेजों से बदला लेना चाहता था।

2 टीपू द्वारा फ्रांसीसियों से सहयोग व भारत आने के लिए नेपोलियन से किया गया पत्र व्यवहार ने भी मतभेद बढा दिए।

3 टीपू सुल्तान ने वैलेजली की सहायक सन्धि करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

4 टीपू ने फ्रांसीसियों को सेना में ऊँचे पद दिये व सम्मानित किया जिससे अंग्रेज नाराज हो गए।

5 वैलेजली मैसूर को ब्रिटिश सत्ता के अधीन करना चाहता था।

फरवरी 1799 में वैलेजली ने युद्ध की घोषणा कर दी। विशाल अंग्रेज सेना का मुकाबला टीपू ने बड़ी वीरता के साथ किया और मारा गया, उसी के साथ उसका राज्य समाप्त हो गया। जुलाई 1799 में नवस्थापित मैसूर के नये शासक के साथ सहायक संधि करके उसे ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन कर लिया गया।

लार्ड वैलेजली व सहायक सन्धि

अंग्रेजों ने भारत में देशी रियासतों के साथ सन्धि करके अपने अधीन लाने और भारत में अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने का नया तरीका अपनाया जिसे सहायक संधि प्रथा के नाम से जाना जाता है। इसका श्रेय सामान्यतया लार्ड वैलेजली को दिया जाता है।

सहायक संधि प्रथा की प्रमुख शर्तें

1 इस संधि को स्वीकार करने वाले राज्यों को अपने यहाँ सुरक्षा व शान्ति के लिए एक अंग्रेज सेना रखनी पड़ती थी। जिसका पूर्ण नियंत्रण कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों के हाथ में था। इसका

व्यय राज्यों को ही वहन करना होता था।
2 राज्यों को कम्पनी की अनुमति के पश्चात् ही किसी यूरोपीय को राज्य की सेवा में रखा जा सकता था।
3 राज्य की राजधानी में एक अंग्रेज रेजिडेन्ट रखना होता था।
4 कम्पनी की अनुमति के बिना वह अपने विदेशी सम्बन्ध नहीं रख सकता था।
5 इसके बदले कम्पनी राज्यों की सुरक्षा की जिम्मेदारी अपने पर लेती थी।
6 कम्पनी राज्यों को आश्वासन देती थी कि वे उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी।
इस संधि से भारतीय राज्य निःशक्त हो कम्पनी पर आश्रित हो गये, अब कम्पनी को रियासतों के व्यय पर विशाल सेना मिल गई। फ्रांसीसियों का रियासतों में प्रभाव पूर्णतया समाप्त हो गया और कम्पनी का रियासतों की विदेश नीति पर नियन्त्रण हो गया।
सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले प्रमुख राज्य–
(1) हैदराबाद 1798 (2) मैसूर 1799
(3) अवध 1801 (4) पेशवा 1802

सहायक सन्धि

कम्पनी को लाभः–

1. यह प्रणाली साम्राज्य निर्माण के कार्य में भेदिए शत्रु की भूमिका निभाने लगी। भारतीय राज्य निःशस्त्र हो गए।
2. भारतीय राज्यों के व्यय पर एक बड़ी सेना मिल गई।
3. भारतीय राजाओं की राजधानियों में कम्पनी की सेना रखने से कम्पनी का बहुत से सामरिक महत्व के स्थानों पर नियंत्रण हो गया है।
4. कम्पनी की सेना उसकी राजनीतिक सीमाओं से बहुत आगे चले जाने में सफल हुई।
5. भारत में अन्य यूरोपीय देशों विशेषकर फ्रांसिसी चालों को विफल करने में पूर्णतः सफल हो गई।
6. भारतीय शासकों के आपसी विवादों में मध्यस्थ बन गई।
7. राज्यों में स्थित अंग्रेज रेजिडेन्ट प्रभावशाली हो गए और इनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगे।

देशी राज्यों को हानियाँ

1. निशस्त्रीकरण से और विदेशी सम्बन्धों को कम्पनी के अधीन स्वीकार करने से वे अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे।
2. रेजिडेन्टो ने राज्यों के प्रशासन में अत्यधिक हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।
3. कमजोर और उत्पीड़क राजा की रक्षा हुई लेकिन जनता को अपनी अवस्था सुधारने से वंचित रखा।

सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य शीघ्र ही दिवालिया हो गये। कम्पनी ने प्रायः राज्य की आय का 1/3 भाग आर्थिक सहायता के रूप में राज्यों से लिया।

पंजाब पर आक्रमण और उसका विलय

सिक्खों के 10वें गुरू गोविन्द सिंह जी ने व्यक्तिरूप गुरू के सिद्धान्त को समाप्त करके खालसा पंथ की स्थापना की। अब सिक्खों की पवित्र पुस्तक ''गुरू ग्रन्थ साहिब'' ने गुरू का स्थान ले लिया। कालान्तर में दल खालसा की स्थापना की गई, जिसे छोटे छोटे जत्थों में बाँट दिया। इन्हें मिसल कहा जाता था, ये 12 थीं। इनमें से एक मिसल सुकरचकियां के नेता रणजीत सिंह थे जिन्होंने पँजाब में सिक्ख राज्य स्थापित किया। रणजीत सिंह ने बिखरे हुए सिक्ख राज्यों को एक संगठित राज्य में परिवर्तित करने के प्रयास किये। उनकी निगाहें सतलज नदी के पूर्व में स्थित राज्यों पर थी, जिस पर अंग्रेज भी अपना आधिपत्य चाहते थे। अंग्रेजों ने एक मिशन मैत्री प्रस्ताव के लिए चार्ल्स मेटकांफ के नेतृत्व में रणजीत सिंह के पास भेजा, फरवरी 1809 में ऑक्टर लोनी ने सतलज के पूर्वी प्रदेशों पर अंग्रेजी नियन्त्रण की घोषणा कर दी। अप्रेल 1809 में अंग्रेजों और रणजीत सिंह के बीच अमृतसर की संधि हुई।

गुरूगोविन्द सिंह

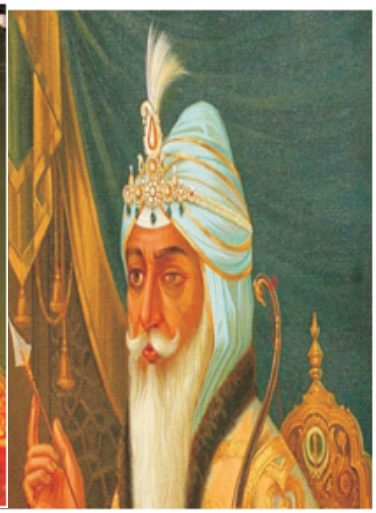

महाराजा रणजीत सिंह

–सतलज नदी को सीमा मान पूर्वी प्रदेशों पर अंग्रेजों के नियन्त्रण को स्वीकार कर लिया गया तथा उत्तर पश्चिम में रणजीत सिंह को विस्तार की छूट दे दी गई।
–संधि की किसी धारा का उल्लंघन पर संधि समाप्त मानी जायेगी।
–दोनों ने एक दूसरे के मित्र बने रहने का वादा किया। लेकिन अंग्रेजों ने उसके बाद राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। इस संधि से अंग्रेजों का वर्चस्व सतलज तक कायम हो गया वे उत्तर में सिक्खों के भय से मुक्त हो गए। इससे सिक्ख राज्य के स्थायित्व पर विपरीत प्रभाव पड़ा। रणजीत सिंह की कमजोरी भी प्रकट हो गई। 1831 में अलेक्जेन्डर बर्न्स ने सिन्ध के मार्ग का सर्वेक्षण किया। 1838 में त्रिपक्षीय संधि (रणजीत सिंह, अग्रेंज और शाहशुजा) के अनुसार सिंध के मामले में रणजीत सिंह ने ब्रिटिश मध्यस्थता को स्वीकार कर लिया। रणजीत सिंह संघर्ष नहीं चाहता था लेकिन अफगान युद्ध के समय ब्रिटिश सेना को पँजाब से निकलने की अनुमति नहीं दी। 27 जून, 1839 को लकवे के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

प्रथम आंग्ल–सिक्ख युद्ध – (1845–46)

रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात सरदारों की महत्वकांशा व स्वार्थ जाग उठे। ऐसे में अंग्रेजी गर्वनर जनरल सिक्ख सेना में असन्तोष उत्पन्न करने की योजना बना रहा था और अंग्रेज अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा को पूरी करने के

लिए सेना व तोपों की संख्या लगातार बढ़ाते जा रहे थे। पंजाब में गुटबंदी और राजनैतिक अराजकता के माहौल में डोगरा सरदार गुलाब सिंह और सिक्ख सेना व सामन्तों के संघर्ष ने स्थिति और अधिक खराब कर दी। उधर खालसा सेना पर रानी जिन्दा तथा लाल सिंह का नियन्त्रण कम हो रहा था तो वे उसे अंग्रेजों से लड़ाने का प्रयास करने लगे। अंग्रेज भी युद्ध की तैयारी में लग गये। 1843 ई. में अंग्रेजों ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया जिससे सिक्ख नाराज हुए लेकिन सिन्ध तक पहुँचने के लिए पंजाब को जीतना अंग्रेजों के लिए आवश्यक हो गया। 13 दिसम्बर, 1845 में हार्डिग्ज ने युद्ध की घोषणा कर दी। पाँच स्थानों पर युद्ध हुआ, सबराओ का युद्ध निर्णायक रहा जिसमें सिक्ख पराजित हुए, लाहौर अंग्रेजों के नियन्त्रण में आ गया। लाहौर की संधि के साथ युद्ध समाप्त हुआ।

लाहौर की संधि – (1 मार्च 1846)

1 महाराजा व उसके उत्तराधिकारियों ने सतलज पार के सभी प्रदेशों पर अपना अधिकार त्याग दिया।

2 दिलीप सिंह को महाराजा और रानी जिन्दाँ को संरक्षक रहने दिया गया।

3 क्षति पूर्ति के रूप में 50 लाख व कश्मीर व हजारा प्रान्त अंग्रेजों के पास चला गया

4 सिक्ख सेना सीमित कर दी गई।

5 लाहौर में अंग्रेज सेना का रहना स्वीकार किया गया।

सिक्खों की शक्ति काफी कमजोर हो गई, दिसम्बर 1846 में "भैरोंवाल की संधि" नाम से एक अन्य सन्धि अंग्रेज सरकार ने लाहौर दरबार के साथ की जिसके अनुसार हेनरी लारेन्स (ब्रिटिश एजेन्ट) की अध्यक्षता में अंग्रेज समर्थक 8 सिक्ख सरदारों की संरक्षण परिषद का गठन किया गया। 22 लाख रूपये अंग्रेज सेना के लाहौर में रहने का व्यय भार लाहौर पर डाला गया। रानी जिन्दाँ को 1.5 लाख रूपये वार्षिक पेंशन देकर बनारस भेज दिया गया। इस संधि से अंग्रेज पंजाब के एक भाग के स्वामी हो गए।

द्वितीय आंग्ल–सिक्ख युद्ध– (1848 –49)

सिक्ख नेताओं के विश्वासघात से मिली पराजय से सिक्ख बहुत क्रुद्ध थे। सेना से मुक्त किए गए सैनिकों में भी असंतोष था। 1847–48 में किये गये सुधार सिक्ख सरदारों के हितों के विपरीत थे। अंग्रेज रेजिडेन्ट व अंग्रेज अधिकारी लगातार सिक्ख राज्यों के आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप कर रहे थे। रानी जिन्दाँ को षड़यंत्र रचने के आरोप में कैद कर चुनार भेज दिया गया इससे सिक्खों में रोष पैदा हो गया। इधर महाराजा दिलीप सिंह के वैवाहिक मामलों में दखल देकर और मुल्तान गर्वनर मूलराज को स्थानीय सैनिक विद्रोह व अधिक लगान की मांग ने अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए विवश कर दिया। 22 नवम्बर 1848 को रामनगर का युद्ध अंग्रेजों व सिक्खों में अनिर्णायक रहा। 13 जनवरी 1849 को चिलियानवाला के युद्ध में भी हार जीत का निर्णय नहीं हो सका। फरवरी 1849 में गुजरात (चेनाब नदी के किनारे) की लड़ाई में सिक्ख सरदारों का राजा को सहयोग न करने सें हार गये तथा 13 मार्च 1849 को युद्ध समाप्त हो गया। लार्ड डलहौजी ने 29 मार्च 1849 को एक घोषणा कर पँजाब को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। घोषणा में कहा गया "कि पँजाब के राज्य का अंत हो गया है। महाराजा दिलीप सिंह के सारे प्रदेश भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य के अंग हैं", कोहीनूर हीरा और पँजाब का राज्य दिलीप सिंह और उसका संरक्षक परिषद ने अंग्रेजों को समर्पित कर दिया।

युद्ध का परिणाम

पंजाब में सिक्ख राज्य का अंत हो गया। महाराजा दिलीप सिंह को पेंशन दे दी गई। नवीन प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए हेनरी लोरेन्स की अध्यक्षता में तीन सदस्यों के बोर्ड का गठन किया गया। ब्रिटिश भारत की सीमाएं अफगानिस्तान तक पहुँच गई।

डलहौजी का व्यपगत नीति या राज्य हडप नीति

डलहौजी द्वारा भारत में ब्रिटिश सार्वभौमिकता की स्थापना के लिए युद्ध के अतिरिक्त बुरे शासन(कुशासन) एवं भ्रष्टाचार के दोष के नाम पर तथा गोद निषेध द्वारा राज्यों को मिलाने के उपायों को व्यपगत का सिद्धान्त के नाम से जाना जाता हैं

गोद निषेध– हिन्दू विधि के अनुसार किसी सत्ताधारी शासक के पुत्र नहीं होता था तो वे अपने निकट संबंधी के पुत्र को गोद लेकर दत्तक पुत्र बना लिया करते थे। शासक की मृत्यु पश्चात दत्तक पुत्र को वे सभी अधिकार प्राप्त होते थे, जो एक वास्तविक पुत्र को होते थे। डलहौजी द्वारा भारतीय निःसन्तान शासकों को गोद लेने से रोक दिया गया क्योंकि उसका मानना था ऐसा करने से उनके राज्य आसानी से ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन जायेंगे। डलहौजी द्वारा गोद लेने के स्थान पर सर्वश्रेष्ठ शक्ति द्वारा व्यपगत का अधिकार स्थापित किया गया क्योंकि जो शक्ति अधिकार देती है, वह ले भी सकती है।

सतारा (1848)– व्यपगत सिद्वान्त के अनुसार सतारा प्रथम राज्य था जिसका विलय किया गया। राजा अप्पा साहिब के कोई पुत्र नहीं था, मृत्यु से पूर्व उन्होंने कम्पनी की अनुमति के बिना अपना दत्तक पुत्र बना लिया था। डलहौजी ने इस गोद लेने की कार्यवाही को अवैधानिक माना और सतारा को आश्रित राज्य घोषित कर इसका विलय कर लिया।

सम्भलपुर (1849)– राजा नारायण के पुत्र नहीं था और न ही वो दत्तक पुत्र बना सके। उनकी मृत्यु पश्चात 1849 में राज्य मिला लिया गया।

झाँसी (1853)– लार्ड हेस्टिग्ज ने पेशवा की पराजय के बाद झाँसी के राजा रामचन्द्र से संधि कर उसे उसके पुत्र और उत्तराधिकारियों को यह राज्य अधीनस्थ सेवाओं की शर्तों पर दे दिया। राजा की मृत्यु के बाद कम्पनी ने राजा के वंशज गंगाधर राव को उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। गंगाधर की मृत्यु के बाद रानी लक्ष्मी बाई ने दामोदर राव को दत्तक पुत्र गोद लिया जिसे डलहौजी ने अस्वीकार कर झाँसी को फरवरी 1854 में अंग्रेंजी साम्राज्य में मिला लिया ।

नागपुर 1854– 1853 राजा रघुजी तृतीय की मृत्यु के बाद रानी

ने राजा की इच्छानुसार यशवन्त राव को गोद लिया। लेकिन डलहौजी ने स्वीकार नहीं किया और इस बड़े व मुख्य कपास उत्पादक राज्य को 1854 में अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया। जैतपुर (1849) बघार (1850) उदयपुर (1852) तंजौर (1855) आदि राज्य भी व्यपगत के सिद्धान्त के अनुसार ब्रिटिश राज्य में मिला लिये गये । डलहौजी की इस नीति का ाासकों ने विरोध किया।

कुशासन व भ्रष्टाचार का आरोप और अवध

लार्ड डलहौजी अवध को भी ब्रिटिश साम्राज्य में विलय करना चाहता था। डलहौजी ने अवध रियासत के बारे में कहा था कि ये (cherry) गिलास फल एक दिन हमारे ही मुँह में आकर गिरेगा। उसने ब्रिटिश रेजिडेन्ट को राज्य का दौरा कर रिपोर्ट देने को कहा, जिसने नवाब वाजिद अली शाह के विरूद्ध बढ़ा – चढ़ा कर प्रस्तुत की और कुशासन का आरोपी बताया। डलहौजी ने नवाब पर कुशासन व सन्धि भंग का आरोप लगाया 13 फरवरी 1856 को अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की घोषणा कर दी।

इस प्रकार 1757 से 1856 के मध्य युद्ध, छल–कपट और कूटनीति से कम्पनी राज्य की सीमा उत्तर में तिब्बत तथा चीनी साम्राज्य तक दक्षिण पूर्व में बंगाल की खाड़ी के तटों व उत्तर पश्चिम में दर्रों तक छूने लगी। भारतीय शासकों की आपसी फूट और आम जनता में राष्ट्रीय चेतना के अभाव ने अंग्रेजों को सफल होने में सहयोग किया।

1857 की क्रान्ति का स्वरूप, कारण एवं परिणाम

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में आते ही आर्थिक शोषण व राजनैतिक हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया था। उनकी हर नीति का उद्देश्य धन की प्राप्ति व साम्राज्य का विस्तार करना था। उनके इस कलुषित उद्देश्य से भारतीयों में भय व असंतोष बढता गया। भारतीयों का असंतोष भिन्न – भिन्न भागों में विद्रोह के रूप में प्रकट हो रहे थे। इनमें 1806 में वैल्लोर, 1824 में बैरकपुर, 1842 में फिरोजपुर में 34वीं रेजीमेन्ट का विद्रोह, 1849 में सातवीं बंगाल कैवलरी विद्रोह 1855–56 में संथालों का विद्रोह इत्यादि इसी प्रकार 1816 में बरेली में उपद्रव, 1831–33 में कौल – विद्रोह, 1848 में काँगडा, 1855–56 में संथालों का विद्रोह ये सब राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक कारणों से हुए थे। धीरे – धीरे सुलगती हुई आग 1857 में धधक उठी और उसने अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया।

1857 की क्रान्ति के कारण

कुछ इतिहासकारों ने सैनिक असंतोष और चर्बी वाले कारतूसों को ही 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का सबसे मुख्य कारण बताया है। लेकिन यह तो केवल एक चिनगारी थी जिसने उन समस्त विस्फोटक पदार्थों को जो राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक कारणों से एकत्रित हुए थे, आग लगा दी और वह दावानल का रूप धारण कर गया।

राजनैतिक एवं प्रशासनिक कारण– अंग्रेजों ने साम्राज्य विस्तार की नीति से भारतीय रियासतों पर प्रभावशाली नियन्त्रण और इन्हें धीरे धीरे समाप्त करने की नीति ने लार्ड वैलेजली के अधीन सहायक सन्धि के रूप में एक निश्चित आकार ले लिया था, लेकिन अधिकांश राजनैतिक कारण लार्ड डलहौजी के शासन काल में व्यपगत सिद्धान्त से पनपे। जिसमें झाँसी, नागपुर, उदयपुर, सतारा बघार, निजाम, मैसूर, मराठा, आदि और कुशासन का बहाना लेते हुए अवध का विलय जो अंग्रेजों के प्रति हमेशा वफादार रहा अवध के सैनिकों में असंतोष तेज हो गया।

• अंग्रेजों ने कई भारतीय जमींदारों के साथ अपमानजनक व्यवहार किया और इनकी भूमि को छीन कर उन्हें नाराज कर दिया।

• भारतीय मुसलमान अंग्रेजों से इस कारण नाराज थे क्योंकि अंग्रेज मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के प्रति अपमानजनक व्यवहार करते थे। बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात बादशाह पद को समाप्त करने की लार्ड केनिंग की घोषणा, ऐलनबेरा द्वारा बादशाह को भेंट देनी बन्द करना और सिक्कों से नाम हटाना तथा डलहौजी द्वारा लाल किले को खाली कराने की बातों ने मुसलमानों में और अधिक रोष उत्पन्न कर दिया।

• अंग्रेजों की शासन व्यवस्था से भारतीय संतुष्ट नहीं थे। अंग्रेजी न्याय व्यवस्था और उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार एवं लूट खसोट ने भारतीयों में असंतोष बढ़ा दिया।

• 1833 के चार्टर एक्ट में यह स्पष्ट उल्लेख था कि धर्म, जाति, रंग, वंश आदि के आधार पर सैनिक और असैनिक सभी सार्वजनिक सेवाओं में बिना भेदभाव नियुक्ति दी जायेगी। लेकिन अंग्रेजों ने इस नीति का पालन नहीं किया। उच्च पद केवल अंग्रेजों के लिए सुरक्षित थे।

• **आर्थिक कारणः–** भारत में अंग्रेजी शासन का मूल उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण था। इनकी आर्थिक शोषण की नीतियों ने भारतीयों में असंतोष की भावना पैदा कर दी। भारत में आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की जो विशेषताएं थी अंग्रेजों की शोषण की नीति ने नष्ट कर दी। अंग्रेजों की भूराजस्व पद्धतियॉ भी कृषकों के शोषण का कारण बनी। भूराजस्व की अधिकता और वसूली में सेना का सहारा लेना पडता था।

• भारत में निर्मित माल जो निर्यात किया जाता था उस पर बहुत अधिक निर्यात कर था जबकि भारत के कच्चे माल पर कम निर्यात कर था। इंग्लेण्ड से जो माल भारत आता था उस पर बहुत न्यून आयात कर था। भारत से निर्यात किया जाने वाला मल–मल, सूती और रेशमी कपड़ों पर इंग्लैण्ड में 71 प्रतिशत तक कर लिया जाता था। भारतीय कपड़े के मुकाबले जब अंग्रेजी कपड़े की माँग न बढ सकी तो अंग्रेजों ने भारतीय कपड़ों का आयात ही बन्द कर दिया। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि भारत का कपडा उद्योग नष्ट होने लग गया।

• इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के कारण भारतीय उद्योग जो अंग्रेजों के व्यापारिक नीति से पहले ही जर्जर थे, मशीनों से सज्जित अंग्रेजों के उद्योगों का सामना न कर सके। परिणाम स्वरूप हस्तकला उद्योग नष्ट हो गये, कारीगर बेरोजगार हो गए और बस्तियाँ और नगर उजड़ गए।

• कम्पनी के समय भारतीय धन का लगातार निष्कासन हुआ और वो इंग्लैण्ड पहुँचा इससे अंग्रेज अमीर और भारतीय निर्धन बनते

चले गये।
इस प्रकार अंग्रेजों की विनाशकारी औपनिवेशिक नीतियों के कारण भारत में अंग्रेजों के प्रति गहरा असंतोष था।

सामाजिक कारणः— अंग्रेज जातिभेद की भावना से प्रेरित थे और भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। भारतीयों के प्रति उनका व्यवहार भी अपमानजनक था। रेल्वे की प्रथम श्रेणी में भारतीयों के लिए यात्रा वर्जित थी, वे अंग्रेजों के साथ किसी प्रकार के सामाजिक उत्सवों में भाग नहीं ले सकते थे। यूरोपीय व्यवसायियों द्वारा संचालित होटलों और क्लबों में भारतीयों का प्रवेश वर्जित था। अंग्रेजों की मनोवृत्ति का अनुमान आगरा के एक मजिस्ट्रेट के आदेश से लगाया जा सकता है, जिसमें उसने कहा था प्रत्येक भारतीय को चाहे उसका पद कुछ भी हो, इस बात के लिए विवश किया जाना चाहिए कि वह सड़क पर चलने वाले हर अंग्रेज को सलाम करे। यदि भारतीय घोड़े पर या गाडी में सवार हो तो उसे नीचे उतर कर तब तक खड़े रहना चाहिए जब तक कि अंग्रेज वहाँ से निकल न जाए।
पाश्चात्य शिक्षा नीति ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर दिया। उनकी शिक्षा नीति का उद्देश्य शासन के लिए लिपिक प्राप्त करना और काले अंग्रेज तैयार करना था। स्थानीय लोगों में गुलामी की मानसिकता तैयार करने के लिए इतिहास का अपने अनुकूल लेखन करवाया। आर्य आक्रमण, मूल निवासी, आर्य–द्रविड़ जैसे भेद खड़े किये। इन बातों से भारतीयों में अंग्रेजों के विरूद्व तीव्र असंतोष था।

धार्मिक कारण— हिन्दू उत्तराधिकार नियमानुसार कोई भी मतांतरण करने पर पैतृक सम्पत्ति से वंचित हो जाता था। लेकिन अंग्रेजों द्वारा पैतृक सम्पत्ति सम्बन्धी कानून बनाया गया। जिसमें अब ईसाई बनने पर वह पेतृक सम्पत्ति के अधिकार से वंचित नहीं होता था। इस तरह हिन्दू धर्म को छोड़ कर ईसाई बनने वालों को अंग्रेजों ने प्रोत्साहित किया। ईसाई मिशनरियों द्वारा आर्थिक प्रलोभन व अन्य उपायों से मतांतरण का नियोजित अभियान किया गया इन्हें राजकीय सहायता मिलती थी। जो व्यक्ति ईसाई मत को स्वीकार कर लेता था, उसे अनेक सुविधाओं के साथ राजकीय सेवा का अवसर मिलता था। इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने मतों को खतरे में अनुभव करने लगे।
ईसाई पादरियों को 1813 के अधिनियम द्वारा भारत में मजहबी प्रचार की स्वीकृति मिल गई, इन्होंने मत प्रचार के उद्देश्य से न केवल विद्यालयों की स्थापना की वरन् सेना में भी नियुक्ति होने लगी और छावनियों में ईसाई साहित्य का वितरण होने लगा। भारत में मन्दिरों और मस्जिदों की सम्पत्ति अब तक कर मुक्त रही थी, लेकिन इन पर भी अंग्रेजों द्वारा कर लगा दिया गया। कम्पनी के निदेशक मण्डल के प्रधान मैग्लीज ने हाउस ऑफ कामन्स में वक्तव्य दिया ''गॉड ने हिन्दुस्तान के विशाल साम्राज्य को इंग्लैण्ड को इसलिए सौंपा है ताकि ईसाई धर्म का झण्डा हिन्दुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक सफलता पूर्वक लहराता रहे। ऐसी धटनाओं से भारतीयों में यह शंका व्याप्त हो गई कि अंग्रेज उनके धर्म और संस्कृति को नष्ट करने पर तुले हुए हैं ।

सैनिक कारणः— 1857 की क्रान्ति से पूर्व भी भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरूद्व विद्रोह कर बगावत की थी। बंगाल में 1764 में सिपाही विद्रोह, 1806 में बैल्लुर में, 1824 में बैरकपुर में सैनिकों द्वारा समुद्री मार्ग से बर्मा जाने से इंकार, 1844 में बिना अतिरिक्त भत्ते के सिन्ध जाने से इंकार कर दिया। 1849 में 22वें एन.आई., 1850 में 66वीं एन.आई और 1852 में 38वीं एन.आई. ने विद्रोह कर दिया।

अफगान युद्व(1839) में अंग्रेजों को पराजय का सामना करना पड़ा और पंजाब के संघर्ष से उन्हें बहुत क्षति हुई। सेना मे अंग्रेजों की तुलना में भारतीय सैनिकों की संख्या लगातार बढती जा रही थी। 1856 में भारतीय सेना में 2,33,000 भारतीय सैनिक और 45,322 यूरोपीय सैनिक थे। क्रिमिया युद्व में अंग्रेजों की पराजय ने भारतीयों में उनके अजेय होने का भ्रम तोड़ दिया।अवध का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय ने बंगाल की सेना में तीव्र आक्रोश व असंतोष उत्पन्न किया क्योंकि बंगाल की सेना में अवध के सैनिकों की संख्या अधिक थी।वेतन, भत्ते, पद व पदौन्नति के संबंध में भारतीय सैनिकों के साथ भेदभाव कर उनकी उपेक्षा की जाती थी। भारतीय सैनिक को वेतन 9 रूपये मासिक जबकि यूरोपीय सैनिक को 60 से 70 रूपये मासिक दिया जाता था।

1856 में लार्ड केनिंग ने सामान्य सेना भर्ती अधिनियम पास कर दिया जिससे अब भारतीय सैनिकों को भारत के बाहर समुद्र पार भी सरकार आवश्यकतानुसार जहाँ सेना भेजे, उन्हें वहाँ जाना पडेगा। इसी प्रकार 1854 में डाकघर अधिनियम के द्वारा सैनिकों को मिल रही निःशुल्क डाक सुविधा को समाप्त कर दिया गया।,इन सब बातों से सैनिकों में अंग्रेजों के विरूद्व विद्रोह की भावना आ चुकी थी। उसे केवल एक चिनगारी की जरूरत थी और वह चिनगारी चर्बी लगे हुए कारतूसों ने प्रदान कर दी।

तात्कालिक कारणः— 1856 में भारत सरकार ने पुरानी बन्दूक ''ब्राउन बैस'' के स्थान पर नई एनफील्ड राईफल्स जो अधिक अच्छी थीं, प्रयोग करने का निश्चय किया । इस नई राइफल से कारतूस के ऊपरी भाग को मुँह से काटना पड़ता था, । जनवरी 1857 में बगांल की सेना में यह बात फैल गई कि नई राईफल्स के कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी का प्रयोग किया गया है। से गाय हिन्दूओं के लिए पवित्र थी और मुसलमानों के लिए सूअर निषिद्ध था। । कारतूसों में चर्बी होने की जाँच की गई। जॉन केयी व लार्ड राबर्टस ने भी इस सत्य को स्वीकारा है। इस घटना से सैनिक भड़क उठे, अंग्रेजों के विरूद्व आक्रोश फैल गया। उनकी यह धारणा बन गई की अंग्रेज हिन्दू और मुस्लिम दोनों का ही धर्म भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं। चर्बी लगे कारतूसों की घटना ने विद्रोह की चिनगारी सुलगा दी और उससे जो धमाका हुआ उसने भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ें हिला दी।

क्रान्ति का विस्तार एवं प्रमुख नायकः

अधिकांश यूरोपीय इतिहासकारों ने 1857 की क्रान्ति को आकस्मिक घटना बताने का प्रयास किया। जबकि अधिकांश विद्वानों का मानना था कि यह क्रान्ति पूर्व नियोजित एक सोची समझी योजना का परिणाम थी। जिसका नेतृत्व विभिन्न प्रदेशों में अलग अलग नेताओं ने किया। योजना के कर्णधार मुख्यरूप से

नाना साहब(बाजीराव के दत्तक पुत्र) उनके भाई बाला साहब और वकील अजी मुल्ला थे। क्रान्ति का एक जगह से दूसरी जगह प्रचार का तरीका चपातियाँ और लाल कमल था। क्रान्ति योजना के अनुसार सम्पूर्ण भारत में एक साथ 31 मई 1857 को आरम्भ करनी थी। लेकिन चर्बी वाले करतूसों की घटना से क्रान्ति तय समय से पूर्व ही हो गई। 29 मार्च 1857 को बैरकपुर की छावनी में सैनिक मंगल पाण्डे ने चर्बी वाले कारतूस को मुँह से काटने से मना कर दिया। उसे बंदी बना लिया गया और फॉसी दे दी गईं। यह इस संघर्ष का प्रथम बलिदान था। मेरठ में 85 सैनिकों ने इन कारतूसों को प्रयोग करने से मना कर दिया, परिणाम स्वरूप उन्हें कैद कर कारावास का दण्ड दिया गया। 10 मई 1857 को सैनिकों ने विद्रोह कर सभी कैदी सैनिकों को मुक्त करवा लिया और वे दिल्ली की ओर चल दिए।

दिल्ली (बहादुर शाह जफर)– क्रान्तिकारियों ने 12 मई को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। मुगल सम्राट बहादुर शाह द्वितीय ने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया, उसे भारत का सम्राट घोषित किया गया। इस समय लेफिटनेंट विलोबी ने क्रान्तिकारियों का कुछ प्रतिरोध किया लेकिन पराजित हुआ और भाग निकला। सत्ता के प्रतीक के रूप में दिल्ली पर अधिकार के साथ ही इसे 1857 की क्रान्ति का आरम्भ माना जाता है। विद्रोह शीघ्र ही उत्तरी और मध्य भारत में फैल गया। भारतीय नरेशों को संग्राम में सम्मलित होने के लिए पत्र लिखे गये। लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार के कुछ क्षेत्र झाँसी और कुछ अन्य प्रदेश सभी में विद्रोह हो गया।लार्ड केनिंग ने शीघ्र ही क्रान्ति के दमन की योजना बनाई। भारतीय नरेशों व नेताओं के आपसी सामन्जस्य की कमी का लाभ अंग्रेजों ने उठाया। दिल्ली पर मात्र 5 दिन में ही अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया और दिल्ली की जनता से प्रतिशोध लिया गया। दिल्ली में क्रान्ति का वास्तविक नेतृत्व बहादुर शाह जफर के सेनापति बख्त खॉ ने किया। सम्राट को बन्दी बना लिया गयाऔर निर्वासित कर रंगून भेज दिया, जहॉ 1862 में उसकी मृत्यु हो गई।

अवध (बेगम हजरत महल)– लखनऊ में विद्रोह 4 जून को आरम्भ हुआ। बेगम हजरत महल ने अपने अल्प वयस्क पुत्र को नवाब घोषित कर अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया। जमींदारों, किसानों और सैनिकों ने साथ दिया और अंग्रेज रेजिडेन्सी में आग लगा दी जिसमें रेजिडेन्ट हेनरी लारेन्स मारा

बहादुरशाह जफर

कुँवर सिंह

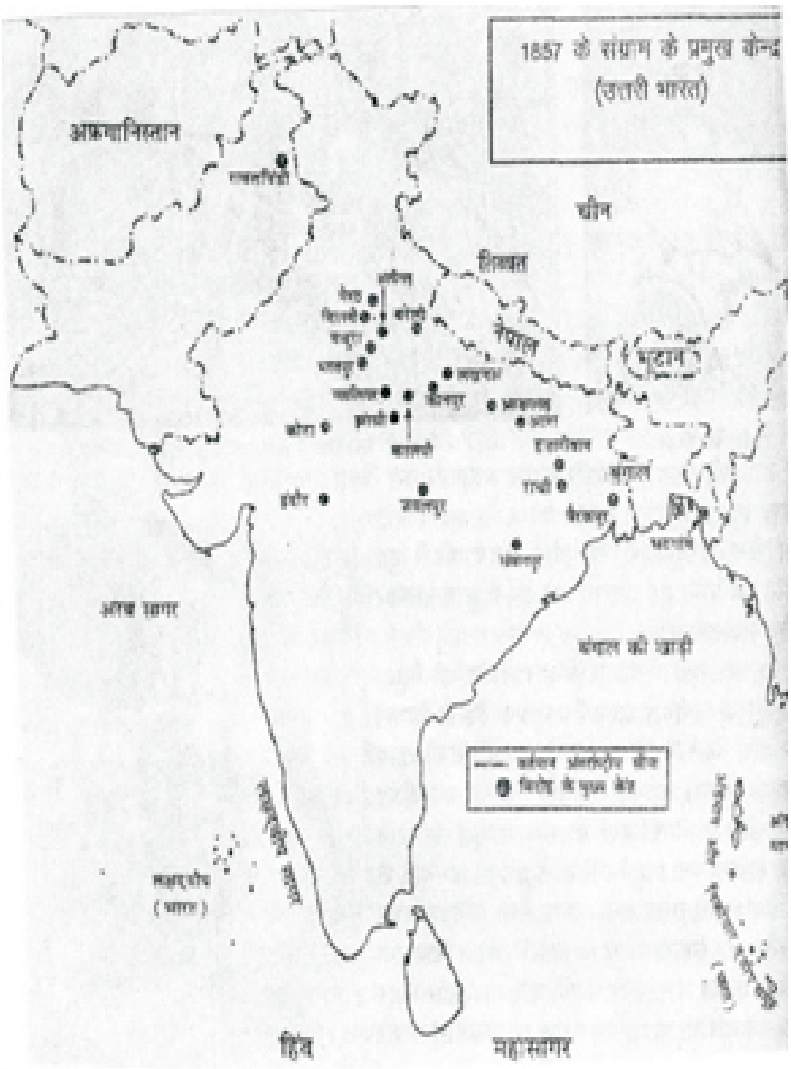

गया। जनरल हेवलॉक और आउट्रम को भी सफलता नहीं मिली ऐसी परिस्थितियों में सर कॉलिन कैम्बेल ने गोरखा रेजिमेन्ट की सहायता से पुनः लखनऊ पर अधिकार स्थापित कर लिया।

कानपुर (नाना साहब व तांत्या टोपे)–

नाना साहब ने अपने दक्ष सहायक तांत्या टोपे और अजीमुल्ला के सहयोग से 5 जून 1857 को कानपुर अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। सर कालिन कैम्बेल के नेतृत्व में अंग्रेजों ने पुनः दिसम्बर में अधिकार कर लिया। तांत्या टोपे बच निकले और झाँसी की रानी से जा मिले।

झाँसी (रानी लक्ष्मी बाई)–

जून 1857 के आरम्भ में सैनिकों ने झाँसी में भी विद्रोह कर दिया। ह्यूरोज ने झाँसी पर आक्रमण कर पुनः उस पर अधिकार कर लिया। पराजित होने पर लक्ष्मीबाई काल्पी पहुंची और तांत्या टोपे के सहयोग से ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। जून 1858 में अंग्रेजों ने पुनः अधिकार कर लिया, रानी लक्ष्मी बाई वीरता पूर्वक संघर्ष करते हुए वीर गति को प्राप्त हुई। तांत्या टोपे भागने में सफल रहे।

बिहार (कुँवर सिंह)–

बिहार के जगदीशपुर के जमींदार 80 वर्षीय कुँवर सिंह ने क्रान्ति का नेतृत्व किया। उन्होंने आरा जिले के आस पास के

क्षेत्रों को अंग्रेजों से मुक्त करा दिया। अंग्रेज सेनापति मिलमेन, कर्नल डेक्स, मार्क और मेजर डगलस को इस

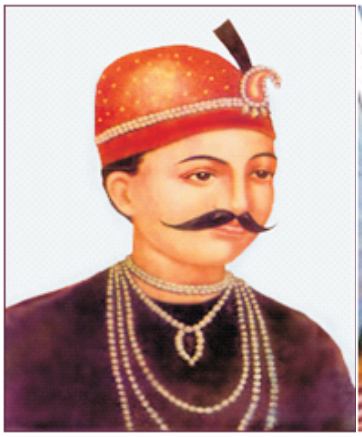

तत्या टोपे रानी लक्ष्मी बाई

बूढ़े शेर ने धूल चटाई उसने गंगा पार कर अपनी रियासत जगदीशपुर पर अधिकार कर लिया। 26 अप्रेल 1858 को कुँवर सिंह ने अंग्रेजों से युद्ध किया लेकिन उसे अंग्रेजो के विरूद्ध सफलता नहीं मिली।

राजस्थान और 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम

राजस्थान में बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, अलवर, डूँगरपुर, बाँसवाडा, कोटा, बूंदी, धौलपुर, जैसलमेर और सिरोही के शासकों की सहानुभूति अंग्रेजों के प्रति थी। लेकिन राजस्थान की वीर भूमि में स्वतन्त्रता प्रेमियों की कमी नहीं थी। आऊवां के ठाकुर खुशाल सिंह सहित नसीराबाद, नीमच और ऐरनपुरा की अंग्रेज सैनिक छावनियों में क्रान्ति का बिगुल बजाया। मेवाड़ में जनता ने क्रान्तिकारियों को सहयोग किया, कोटा में विद्रोह ने उग्र रूप धारण कर लिया और मेजर बर्टन के दो पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। ठाकुर खुशाल सिंह ने अंग्रेज रेजिडेन्ट माक मासन की गर्दन अलग कर उसे आऊवां के किले पर लटका दिया, लेकिन अंग्रेज सेना ने शीघ्र ही आऊवां पर अधिकार कर लिया। आमजन ने इस क्रान्ति में अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया, लेकिन उचित नेतृत्व व शासकों के असहयोग से विद्रोह सुव्यवस्थित और सफल न हो सका।

रूहेलखण्ड– रूहेलखण्ड में अहमदुल्ला ने क्रान्ति का नेतृत्व किया तो मेवात में सदरूदीन नामक किसान के नेतृत्व में क्रान्ति हुई। जालन्धर, अम्बाला रोहतक, पानीपत क्रान्ति के अन्य प्रमुख केन्द्र थे।

दक्षिण भारत में स्वतन्त्रा संग्राम

नवीनतम अनुसंधान यह स्पष्ट करते हैं कि क्रान्ति का प्रभाव दक्षिण भारत के गोवा, पाण्डिचेरी सहित सुदूर दक्षिण तक रहा।महाराष्ट्र में रंगा बापूजी ने अंग्रेजों के विरूद्ध जन सेना तैयार कर बेलगाँव, सतारा, कोल्हापुर, आदि स्थानों पर उसका नेतृत्व किया। सतारा और पंढ़रपुर में क्रान्ति आरम्भ हुई उसके बाद नासिक, रत्नगिरी और बीजापुर में क्रान्ति की घटनाएँ हुई।विशाखापटनम में अंग्रेजों के विरूद्ध तेलगु भाषा में पोस्टर चस्पा किये गये। गोलकुण्डा में चिन्ताभूपति ने विद्रोह किया। बैंगलौर में मद्रास सेना की 8वीं घुड़सवार सेना और 20वीं पैदल ने

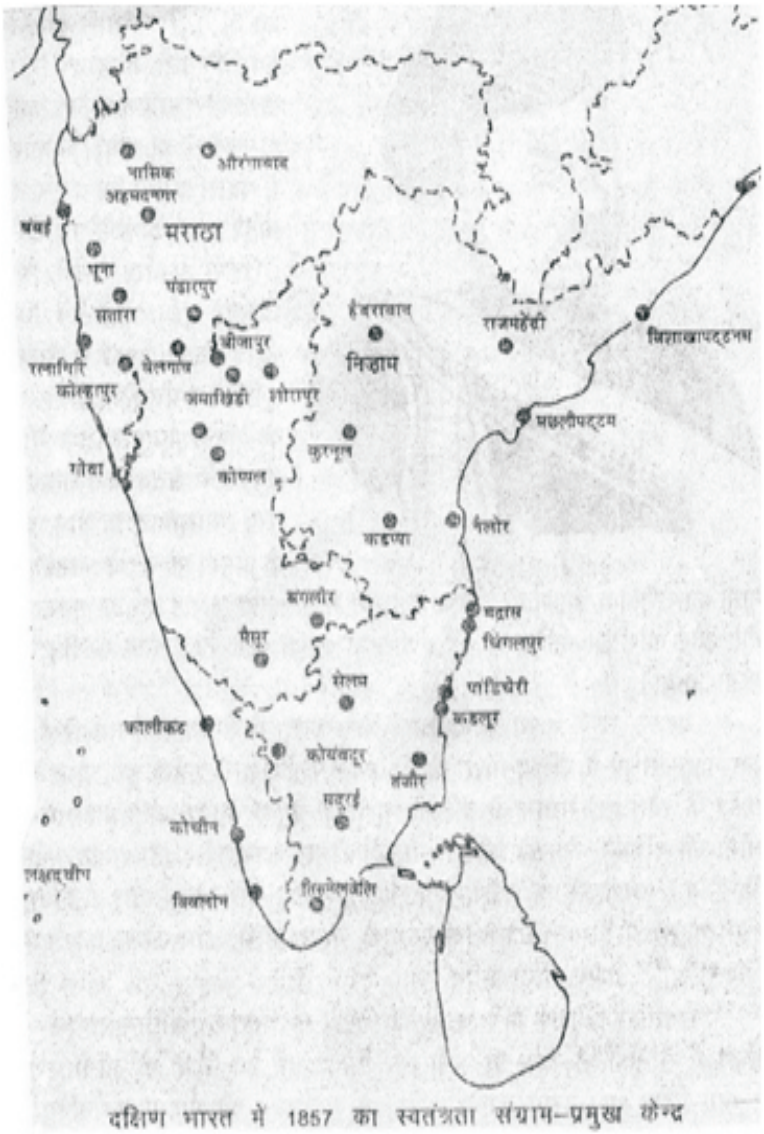

दक्षिण भारत में 1857 का स्वतंत्रता संग्राम–प्रमुख केन्द्र

बगावत कर दी। मद्रास में दो हिन्दू मन्दिर क्रान्तिकारी गतिविधियों के गुप्त केन्द्र थे। उत्तरी अर्काट, तंजौर में भी क्रान्तिकारी घटनाएँ हुई। वैल्लौर में जमींदारों नें अंग्रेजों के विरूद्व संघर्ष किया। मदुराई में क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण अनेक क्रान्तिकारियों को कैद कर लिया गया। मालाबार, कालीकट, कोचीन, आदि क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र थे। गोवा में दीपू जी रागा ने क्रान्ति का शंखनाद किया तो दमन व दीव भी क्रान्ति से अछूते नहीं रहे।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में यद्यपि उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में क्रान्तिकारियों की संख्या कम थी, फिर भी अनेक क्रान्तिकारी शहीद हुए, व कैद किये गये।दक्षिण भारत में क्रान्तिकारियों के प्रमुख नेतृत्व करने वालों में रंगा बापू जी गुप्ते(सतारा), सोना जी पण्डित, रंगाराव पांगे व मौलवी सैयद अलाउद्दीन(हैदराबाद), भीमराव व मुंडर्गी, छोटा सिंह (कर्नाटक),अण्णाजी फडनवीस (कोल्हापुर), गुलाम गौस व सुल्तान बख्श (मद्रास) अरणागिरि, कृष्णा (चिंगलफुट) मुलबागल स्वामी(कोयम्बटूर) मुल्ला सली, कोन जी सरकार और विजय कुदारत कुंजी मामा (केरल) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता संग्राम सम्पूर्ण भारत में व्याप्त था।

1857–58 के मध्य असैनिक और सैनिक विद्रोह

2 फरवरी, 1857	19वीं स्थानीय सेना का बहरामपुरम में विप्लव
10 मई, 1857	मेरठ में सैनिकों का विप्लव
11–30 मई, 1857	दिल्ली, फिरोजपुर, बम्बई,मुरादाबाद, शाहंजहांनपुर तथा अन्य उत्तर प्रदेश के नगरों में विद्रोह कर फूटना।
जून 1857	ग्वालियर, भरतपुर,, झाँसी, इलाहाबाद, फैजाबाद, सुलतानपुर, लखनऊ, आदि में विप्लव गंगा और सिन्ध के मैदानों में, राजपूताने में, मध्य भारत तथा बंगाल के कुछ भागों में असैनिक विद्रोह।
जुलाई 1857	इन्दौर, महू, सागर, झेलम और स्यालकोट, जैसे पँजाब के कुछ स्थानों पर विप्लव।
अगस्त 1857	सागर और नर्मदा घाटी के समस्त प्रदेश में असैनिक विद्रोह।
सितम्बर 1857	दिल्ली पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार। मध्य भारत में विद्रोह।
नवम्बर 1857	विद्रोहियों ने जनरल विण्डहम को कानपुर के समीप परास्त किया।
दिसम्बर 1857	कानपुर का युद्ध सर कॉलिन कैम्बल ने जीता और तांत्या टोपे भाग निकला
मार्च 1858	लखनऊ पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार
अप्रेल 1858	झाँसी पर अंग्रेजी अधिकार,, बिहार (जगदीशपुर) में कुँवर सिंह का विद्रोह।
मई 1858	अंग्रेजों ने बरेली, जगदीशपुर, काल्पी को पुनः जीता। रूहेलखण्ड में विद्रोहियों द्वारा छापामार आक्रमण आरम्भ किए।

क्रान्ति की असफलता के कारण

1857 की क्रान्ति अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने का सशस्त्र प्रयास था। भारतीय सेना संख्या में अंग्रेजों से सात गुना अधिक थी और जनता का सहयोग भी प्राप्त था। इतने पर भी अंग्रेज विद्रोह का दमन करने में सफल रहे और भारतीयों को हार का सामना करना पड़ा।

कुशल एवं योग्य नेतृत्व का अभाव– इस संग्राम को सही तरह से संचालित करने वाले कुशल एवं योग्य नेतृत्व का अभाव था। बहादुर शाह, वृद्ध और कमजोर शासक था। नाना साहब, रानी लक्ष्मी बाई, वाजिद अली शाह, हजरत महल, कुँवर सिंह, बख्त खां, अजीमुल्ला आदि के हाथ में विद्रोहियों की बागडोर थी, लेकिन वे अपने उद्देश्य पर दृढ़ थे। इनमें आपसी समन्वय व नेतृत्व क्षमता का अभाव था।

क्रान्ति का समय से पूर्व होनाः– क्रान्ति की पूर्व योजनानुसार 31 मई 1857 का दिन एक साथ विद्रोह करने हेतु तय किया गया था, लेकिन मेरठ में 10 मई,1857 को तय समय से पूर्व आरम्भ हो गया। ऐसे में अलग अलग समय और स्थानों पर हुई क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेज सफल हो गये। मेलिसन ने लिखा है, "यदि पूर्व योजना के अनुसार 31 मई 1857 को एक साथ सभी स्थानों पर स्वाधीनता का संग्राम आरम्भ होता तो अंग्रेजों के लिए भारत को पुनः विजय करना किसी भी प्रकार सम्भव न होता।"

भारतीय नरेशों का असहयोग– अधिकांश रियासतों के राजाओं ने अपने स्वार्थवश इस विद्रोह का दमन करने में अंग्रेजों का साथ दिया। लार्ड केनिंग ने इन राजाओं को "तूफान को रोकने में बाघ" की तरह बताया है।अपनी वीरता के लिए प्रसिद्व राजपूताने, मराठे, मैसूर, पँजाब, पूर्वी बंगाल आदि के शासक शान्त रहे। डब्ल्यू एच रसेल ने लिखा है "यदि भारतीय उत्साह और साहस के साथ अंग्रेजों का विरोध करते तो वे (अंग्रेज) शीघ्र ही समाप्त हो जाते। यदि पटियाला या जींद के राजा हमारे मित्र न होते, यदि पंजाब में शान्ति न बनी रहती तो दिल्ली पर हमारा अधिकार करना सम्भव न होता।"

जमींदारों, व्यापारियों व शिक्षित वर्ग की तटस्थता– बडे जमींदारों, साहूकारों और व्यापारियों ने अंग्रेजों को सहयोग किया। शिक्षित वर्ग का समर्थन भी क्रान्तिकारियों को न मिल सका।

सीमित साधन– अंग्रेजों के पास यूरोपीय देश के प्रशिक्षित और आधुनिक हथियारों से सुसज्जित अनुशासित सेना थी, समुद्र पर अपने नियन्त्रण का लाभ भी उन्हें मिला। भारतीय सैनिकों में अनुशासन, सैनिक संगठन व योग्य नेतृत्व का अभाव था साथ ही इन्हें धन, रसद और हथियारों की कमी का सामना भी करना पडा।

निश्चित लक्ष्य एवं आर्दश का अभाव– क्रान्तिकारियों द्वारा अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए किया गया यह संग्राम यद्यपि व्यापक था और अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए किया गया था लेकिन अंग्रेजों के यहाँ से जाने के बाद भावी प्रशासनिक स्वरूप के संबंध में कोई आदर्श या योजना क्रान्तिकारियों के सामने नहीं थी। वी.डी. सावरकर ने लिखा है– "लोगों के सामने यदि कोई स्पष्ट आदर्श रखा होता, जो उनको हृदय से आकृष्ट कर सकता, तो क्रान्ति का अन्त भी इतना अच्छा होता जितना कि प्रारम्भ।"

अंग्रेजों की अनुकूल परिस्थितियाँः– 1857 का वर्ष अंग्रेजों के लिए हितकारी रहा। क्रीमिया व चीन से युद्ध में विजय के पश्चात अंग्रेज सैनिक भारत पहुँच गए। अंग्रेजों ने 3,10,000 की एक अतिरिक्त सेना का गठन भी कर लिया था। यातायात और संचार में डलहौजी द्वारा रेल, डाकतार की व्यवस्था भी इनके लिए अनुकुल रही।

कैनिंग और अंग्रेजों की कूटनीतिः– अंग्रेज अपनी कूटनीति से पंजाब, पश्चिमत्तोर सीमा प्रान्त के पठानों, अफगानों, सिन्धिया व निजाम का सहयोग प्राप्त करने में सफल रहे। क्रान्तिकारियों को शान्त करने में केनिंग की उदार नीति का भी प्रभाव पड़ा। आर. सी. मजूमदार ने अंग्रेजों की कूटनीति को उनकी सफलता की चाबी बताया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय भावनाओं की कमी, पारस्परिक समन्वय और सर्वमान्य नेतृत्व का अभाव 1857 की क्रान्ति की असफलता का प्रमुख कारण था।

1857 की क्रान्ति के परिणाम

यद्यपि 1857 की क्रान्ति असफल रही, लेकिन इसके परिणाम अभूतपूर्व, व्यापक और स्थायी सिद्ध हुए। क्रान्ति ने अंग्रेजों की आंखें खोल दी और इन्हें अपनी प्रशासनिक, सैनिक, भारतीय नरेशों के प्रति नीति आदि में परिवर्तन के लिए मजबूर होना पडा।

कम्पनी शासन का अंत– 1 नवम्बर 1858 को महारानी ने घोषणा के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से लेकर भारत सरकार अधिनियम (1858) द्वारा ब्रिटिश सम्राट के हाथों में दे दिया। बोर्ड ऑफ कंट्रोल और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को समाप्त कर भारत के शासन संचालन हेतु 15 सदस्यों की एक परिषद इंडिया कौंसिल का गठन किया गया जिसके सभापति को भारतीय राज्य सचिव कहा गया। गर्वनर जनरल का पदनाम वायसराय कर दिया गया।

सेना का पुर्नगठन– क्रान्ति का आरम्भ सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ था, अतः सेना का पुर्नगठन आवश्यक था। 1861 की सेना सम्मिश्रण योजना "(Army Amalgamation Scheme" के अनुसार कम्पनी की यूरोपीय सेना सरकार को हस्तांतरित कर दी गई। 1861 में पील कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार सेना में अब ब्रिटिश सैनिकों की संख्या बढा दी गई। सेना और तोपखाने के मुख्य पद केवल यूरोपीयों के लिए आरक्षित कर दिए गए। इस बात का भी ध्यान रखा गया समुदाय या क्षेत्र के भारतीय सैनिक एक साथ सैनिक टुकड़ियों में न रहे।

भारतीय नरेशों के प्रति नीति परिवर्तन – महारानी की घोषणा के अनुसार ''क्षेत्रों का सीमा विस्तार की नीति'' समाप्त कर दी गई और स्थानीय राजाओं के अधिकार, गौरव तथा सम्मान की रक्षा का विश्वास दिलाया गया। भारतीय शासकों को दत्तक पुत्र गोद लेने की अनुमति दी गई।

फूट डालो और राज करो नीति को बढ़ावा– 1857 के क्रान्ति में साम्प्रदायिक सौहार्द से घबरा कर अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षैत्रवाद आदि संकुचित प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। फूट डालो और शासन करो उनकी नीति का प्रमुख आधार बन गई।

आर्थिक शोषण का आरम्भः 1857 की क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने प्रादेशिक विस्तार की नीति को छोड कर अपना घ्यान धन की ओर अधिक लगाया। क्रान्ति को दबाने पर होने वाले समस्त वित्तीय का भार भारतीयों पर डाल दिया गया। सार्वजनिक ऋण का ब्याज प्रभार और यहाँ की अर्जित पूँजी लाभ के रूप में भारतीय धन का निष्कासन होकर इंग्लैण्ड जाने लगा।

राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रोत्साहन– 1857 की क्रान्ति के सामूहिक प्रयास से भारतीय के राष्ट्रीय आन्दोलन को गति मिली। क्रान्ति के नायक कुँवर सिंह, लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे, बहादुर शाह जफर, नाना साहब और रंगाजी बापू, गुप्ते आदि स्वतन्त्रता आन्दोलन के अग्रदूत के रूप प्रेरक बने।

क्रान्ति का स्वरूप

इतिहासकारों में क्रान्ति के स्वरूप पर भिन्न भिन्न मत प्रकट किये हैं। यूरोपीय विद्वानों ने इसे सैनिक विद्रोह, मुसलमानों का षडयन्त्र अथवा सामन्ती वर्ग का विद्रोह बताया है। कुछ इसे ईसाईयों के विरूद्वधर्म युद्ध अथवा श्वेत और काले लोगों के मध्य श्रेष्ठता के लिए संघर्ष मानते हैं। कुछ ने बर्बरता तथा सजगता के बीच युद्ध बताया। सैनिक असंतोष से शुरू हुए इस संघर्ष को जन समर्थन से राष्ट्रीय विद्रोह व स्वतन्त्रता संग्राम का रूप प्राप्त हुआ। वीर सावरकर ने भी अपनी पुस्तक में यही मत प्रकट किया है। अंग्रेजों के विरूद्ध यह प्रथम सामूहिक प्रहार था। इसे स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कहा जा सकता है।

प्रमुख मत

सैनिक विद्रोह– रॉबर्टस जान लारेन्स और सीलें के अनुसार यह केवल ''सैनिक विद्रोह'' था अन्य कुछ नहीं। चार्ल्स राईक्स के अनुसार यह विद्रोह वास्तव में एक सैनिक विद्रोह ही था, यद्यपि कहीं कहीं पर यह जन विद्रोह भी बन गया। दुर्गादास बंधोपाध्याय और सर सैयद अहमद खां ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये। निःसन्देह यह विद्रोह एक सैनिक विद्रोह के रूप में आरम्भ हुआ लेकिन समाज के प्रत्येक वर्ग ने इसमें भाग लिया, अतः इसे पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता।

मुस्लिम प्रतिक्रिया– सर जेम्स आउट्रम व डब्ल्यू टेलर के अनुसार यह विद्रोह हिन्दू शिकायतों की आड़ में मुस्लिम षडयंत्र था। यह मुस्लिम शासन की पुनःस्थापना का प्रयास था। मॉलिसन व कूपलैण्ड भी इसी मत का समर्थन करते हैं। लेकिन हिन्दुओं के अधिक संख्या में भाग लेने से यह मत भी पूर्णतया सही नहीं है।

जन क्रांति– कुछ इतिहासकारों का मानना है कि किसान, जमींदार सैनिक और विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों ने इसमें भाग लिया। सर जे केयी के अनुसार यह क्रान्ति श्वेत लोगों के विरूद्व काले लोगों का संघर्ष थी। लेकिन अंग्रेज सेना में अनेक भारतीय थे अतः यह कहना भी सही नहीं है, जिस तीव्र गति से यह विद्रोह फैला उससे यह बात प्रकट होती है कि विद्रोह को जनता का प्रबल समर्थन प्राप्त हुआ। बहुत से स्थानों पर जनता ने क्रान्तिकारियों को पूर्ण सहयोग दिया। डब्ल्यू एच रसेल ने लिखा है कि भारत में गोरे आदमी की गाड़ी को कोई भी मैत्री पूर्ण नजर से नहीं देखता था। केनिंग ने लिखा अवध में हमारी सत्ता के विरूद्ध किया गया विद्रोह बहुत व्यापक था। जोन ब्रूस नार्टन ने इसे जन विद्रोह बताया है। मॉलिसन ने इस विद्रोह को अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने का सामूहिक प्रयास बताया है।

किसान विद्रोह– कुछ विद्वानों ने विद्रोह में किसानों की महत्वपूर्ण भूमिका रहने पर इसे किसान विद्रोह भी बताया है।

किसानों ने कम्पनी सरकार के साथ ही जमींदारों व बढ़े ताल्लुकदारों के विरूद्ध भी विद्रोह किए। लेकिन इसे पूर्णतया सही नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रीय विद्रोह– बेन्जामिन डिजरेली जो इंग्लैण्ड के प्रमुख नेता थे, इन्होंने इसे "राष्ट्रीय विद्रोह" कहा है। अशोक मेहता ने भी अपनी पुस्तक "दी ग्रेट रिबेलियन" (The Great Rebellion) में यह सिद्व करने का प्रयत्न किया है कि विद्रोह का स्वरूप राष्ट्रीय था। वीर सावरकर ने भी इस विद्रोह को "सुनियोजित स्वतन्त्रता संग्राम" की संज्ञा दी है। लेकिन पश्चिमी इतिहासकार राष्ट्रीयता का अर्थ यूरोप की 20वीं सदी की राष्ट्रीयता से लेते हुए इसे राष्ट्रीय विद्रोह नहीं मानते। डा. सत्या राय ने अपनी पुस्तक ''भारत में राष्ट्रवाद'' में लिखा है हमे भारतीय परिप्रेक्ष में यूरोपीय परिभाषाओं को लागू नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय भावना के कारण ही सभी वर्गो के लोगों ने बिना मतभेद के आपसी वैमनस्य भुलाकर अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने का सामूहिक प्रयास किया जो राष्ट्रीय विद्रोह की श्रेणी में आता है।

भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम– कई विद्वानों ने इसे भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम बताया है। भारत को अंग्रेजों से स्वतन्त्र कराने का यह पहला सामूहिक और राष्ट्र व्यापी संघर्ष था। डा. एस.एन. सेन ने लिखा है "जो युद्ध धर्म रक्षा के नाम पर आरम्भ हुआ उसने शीघ्र ही स्वतन्त्रता संग्राम का रूप धारण कर लिया और इसमें संदेह नहीं कि भारतीय अंग्रेज सरकार को समाप्त करना चाहते थे। वी.डी. सावरकर ने अपनी पुस्तक "वार ऑफ इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स" (भारत का स्वातंत्र्य समर) में इसे स्वतन्त्रता का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम बताया है। डा. आर.सी. मजूमदार ने इस तथ्य की और ध्यान आकर्षित करते हुए बताया कि इस विद्रोह का अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय महत्व था। इसका वास्तविक स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, शीघ्र ही यह विद्रोह भारत में अंग्रेजी सत्ता के लिए चुनौती बन गया और इसे अंग्रेजों के विरूद्व राष्ट्रीय स्वतन्त्रता युद्ध का गौरव प्राप्त हुआ। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "भारत एक खोज" में लिखा है– सैनिक विद्रोह के रूप में आरम्भ हुआ यह विद्रोह सैनिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा शीघ्र ही यह जन विद्रोह एवं स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में परिवर्तित हो गया। डा. ताराचन्द, डा. विश्वेश्वर प्रसाद, एस.बी. चौधरी ने भी इसे स्वतन्त्रता संग्राम माना है।

1857 की क्रान्ति के समय पूरे भारत में अंग्रेज विरोधी भावनाएँ थी। जन साधारण और सभी क्रान्तिकारियों का एक ही लक्ष्य था, अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना। यही लक्ष्य सामूहिक संघर्ष की प्रेरणा बना। अतः इसे भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम उद्घोष कहना उचित होगा, जिसमें राष्ट्रवादी तत्वों का समावेश था।

अध्ययन बिन्दु

- भारत की समृद्धिने यूरोप वासियों को अपनी और आकर्षित किया।
- वास्कोडिगामा समुद्री मार्ग से भारत आने वाला प्रथम यूरोपियन था जिसका कालीकट के राजा जमोरिन ने अतिथि के रूप में स्वागत किया।
- पूर्व से व्यापार करने के उद्देश्य से 1600 ई. ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी, 1602 डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी और 1664 ई. में फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गई ।
- 1717 में अंग्रेजो को मुगल सम्राट के फरमान द्वारा अनेक व्यापारिक सुविधाऐं प्राप्त हुई ।
- अंग्रेजो ने कर्नाटक के युद्धों में फ्रांसिसीयों को पराजित कर भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किया ।
- 18वीं शताब्दी में मैसूर, बंगाल, हैदराबाद, अवध, मराठा और जाट प्रमुख प्रान्तीय शक्तियाँ थी।
- 1757 में प्लासी का युद्ध, 1761 में पानीपत का तृतीय युद्ध तथा 1764 में बक्सर का युद्ध लड़ा गया।
- महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाब में सिख राज्य की स्थापना की। अंग्रेजो ने 1849 में अपनी साम्राज्य वादी भूख का शिकार बना कर उसी कम्पनी राज्य में मिला लिया ।
- लार्ड वैलेजली की सहायक सन्धि प्रथा तथा डलहौजी के व्यपगत के सिद्धान्त द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया ।
- गोद निषेध प्रथा से झाँसी, सतारा, बघाट, उदयपुर, सम्भलपुर, नागपुर आदि तथा कुशासन के आधार पर अवध का कम्पनी राज्य में विलय कर लिया गया ।
- अंग्रेजो की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सैनिक नीति 1857 ई. की क्रान्ति का कारण बना।
- 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के महानायकों में तांत्या टोपे, बहादुर शाह जफर, लक्ष्मी बाई, नाना साहेब, कुँवर सिंह, मंगल पाण्डे, रंगा बापू जी गुप्ते आदि प्रमुख थे ।
- मेरठ, झाँसी, कानपुर, जगदीशपुर, हैदराबाद, नागपुर, मद्रास, दिल्ली आदि क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र थे।
- विनायक दामोदर राव सावरकर एंव अन्य कई विद्वानों ने 1857 की क्रान्ति को भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम कहा है ।
- क्रान्ति की असफलता के मुख्य कारण सर्वमान्य नेतृत्व व आपसी समन्वय का अभाव तथा देशी रियासतों के शासकों का सहयोग न मिलना रहा ।
- 1858 के अधिनियम द्वारा भारत में कम्पनी शासन का अन्त कर ब्रिटिश क्राउन को सौंप दिया ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न (सही विकल्प लिखिए)

1. प्रथम यूरोपीय जिसने यूरोप से भारत के लिए सीधे समुद्री मार्ग की खोज की वह था –
   अ. जमोरिन ब. कोलम्बस
   स. टामस रो द. वास्को डी गामा
2. प्लासी का युद्ध लड़ा गया था–
   अ. 1764 ब. 1857
   स. 1864 द. 1757
3. बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को 1717 में किस मुगल शासक द्वारा विशेष सुविधाएँ दी गई –
   अ. जहाँगीर ब. शाहआलम
   स. फरूखसियर द. बहादुर शाह
4. पंजाब में सिख मिसल सुकरचकिया का सम्बन्ध था –
   अ. गुलाब सिंह से ब. रणजीत सिंह से
   स. दिलीप सिंह से द. रानी जिन्दा से

5 1857 की क्रान्ति को पूर्व योजना अनुसार किस समय में एक साथ विद्रोह शुरू करना तय किया गया था–
   अ. 31 मई 1857 ब. 10 मई 1857
   स. 31 जनवरी 1857 द. 10 जून 1857

6. 10 मई 1857 को स्वाधीनता संग्राम की शुरूआत कहाँ से हुई –
   अ. मेरठ ब. दिल्ली
   स. बैरकपुर द. कानपुर

7. गोद निषेध नीति लागू करने वाला गवर्नर जनरल था –
   अ. लार्ड डलहौजी ब. वारेन हैस्टिंग्ज
   स. लार्ड वैजेजली द. कार्नवालिस

8. दक्षिण भारत में 1857 के संग्राम को गति देने वाला नायक था–
   अ. कुँवर सिंह ब. रंगा बापू जी गुप्ते
   स. तांत्या टोपे द. कुशाल सिंह

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (दो पंक्ति में उत्तर दीजिए)

1. 1764 में बक्सर का युद्ध किन किन के मध्य लड़ा गया ?
2. नीले पानी की नीति किसे कहा जाता है ?
3. जाट जाति का प्लेटो किसे कहा जाता है ?
4. पानीपत का तृतीय युद्ध कब व किन के मध्य लड़ा गया ?
5. प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध की समाप्ति किस सन्धि के द्वारा हुई ?
6. प्रथम आंग्ल मैसूर युद्ध में हैदरअली के विरूद्ध बने त्रिगुट में कौन–कौन शामिल थे ?
7. व्यपगत नीति किस गवर्नर जनरल द्वारा लागू की गई ?
8. ब्रिटिश राज्य में अवध राज्य का विलय किस आधार पर किया गया था?
9. 1857 से पूर्व अंग्रेजो के विरूद्वहोने वाले दो प्रमुख विद्रोहों के नाम बताइए ?
10. 1857 ई. का संघर्ष किसके नेतृत्व में किया गया ?
11. 1857 ई. की क्रान्ति को किन इतिहासकारों मुस्लिम षड़यन्त्र का परिणाम बताया है ?
12. दक्षिण भारत के चार प्रमुख केन्द्रो के नाम बताइये जहां 1857 की क्रान्ति की घटनाएँ हुई ?
13. 1857 की क्रान्ति का तात्कालिक कारण बताइए ?
14. 1857 की क्रान्ति में नेतृत्व करने वाली दो महिलाओं के नाम बताइए ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (आठ पंक्ति में उत्तर दीजिए)

1. यूरोपवासी किस उद्देश्य को लेकर भारत आए ?
2. कलकत्ता की काल कोठरी घटना क्या थी ?
3. दस्तक प्रथा से क्या तात्पर्य है ? इसका दुरुपयोग कैसे किया जाता था ।
4. सहायक सन्धि प्रथा का अर्थ बताते हुए इसका वास्तविक उदेश्य बताइए ?
5. डलहौजी की व्यपगत नीति पर टिप्पणी लिखिए?
6. पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के कारण बताइए ?
7. ब्लेक हॉल दुर्घटना क्या है ?
8. 1857 की क्रान्ति के सामाजिक कारण बताइए ?
9. भारतीय सैनिकों द्वारा चर्बी वाले कारतूसों का विरोध क्यों में किया गया ?
10. उत्तरी भारत में क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र व नेतृत्व करने वालों के नाम बताइए ?
11. 1857 की क्रान्ति की असफलता के दो प्रमुख कारण बताइए ?
12. 1857 की क्रान्ति को राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा क्यों दी गई ?
13. 1857 की क्रान्ति के पश्चात सैनिक क्षेत्र में हुए सैनिक परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए?

निबन्धात्मक प्रश्न (तीन पृष्ठों में उत्तर दीजिए)

1. ''बक्सर के युद्ध ने प्लासी के अधूरे कार्य को पूरा किया'' इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

2. हैदरअली व टीपू सुल्तान के अंग्रेजो से संघर्षो का वर्णन कीजिए ।
3. 18वीं शताब्दी में भारत की राजनैतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
4. आंग्ल मराठा युद्धों की प्रमुख परिस्थितियाँ बताइए ।
5. आंग्ल सिक्ख सम्बन्धों पर एक लेख लिखिए।
6. 1857 की क्रान्ति के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
7. 1857 की क्रान्ति का उत्तर व दक्षिण भारत में विस्तार का वर्णन कीजिए।
8. 1857 की क्रान्ति की असफलताओं के कारण बताइए।
9. 1857 की क्रान्ति के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

उत्तरमाला (बहुचयनात्मक प्रश्न)

1 द	5. अ
2. द	6. अ
3. स	7. अ
4. ब	8. ब

अध्याय – 6

आधुनिक भारत का स्वाधीनता आंदोलन

सामाजिक आंदोलन

ब्रिटिश शासन प्रणाली ने भारतीय समाज को प्रभावित किया। ब्रिटिश साम्राज्य एवं औपनिवेशिक संस्कृति के विस्तार के विरूद्ध भारतीय जनता में प्रतिक्रिया हुई। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में ऐसे आंदोलन का प्रारंभ हुआ, जिसे भारतीय पुनर्जागरण कहा गया। जहाँ एक ओर सामाजिक–धार्मिक क्षेत्र में कालांतर में आई रूढ़ियों को समाप्त करने के प्रयास किए गए वहीं दूसरी ओर भारत के गौरवशाली अतीत को उजागर कर भारतीयों के मन–मस्तिष्क में आत्मसम्मान की भावना जागृत की गयी। सामाजिक व्यवहारों एवं धार्मिक आस्था के बीच गहरा संबंध होने के कारण सामाजिक सुधार के लिए धार्मिक सुधार आवश्यक था। सामाजिक सुधारकों ने तर्क के आधार पर रूढियों को चुनौती दी। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा को समाप्त करने के लिए लोगों को बताया कि अतीत में सती प्रथा को धार्मिक स्वीकृति प्राप्त नहीं थी। दयानंद सरस्वती ने जन्म पर आधारित जाति प्रथा का विरोध वैदिक ग्रंथों को आधार बनाकर किया।

समाज सुधारक उदारवादी एवं मानवतावादी विचारों से प्रभावित थे। इसके मूल में शिक्षित बुद्धिजीवी मध्यमवर्ग था। बुद्धिजीवी भारतीयों ने देश की दुर्दशा एवं पिछड़ेपन के कारणों को खोजकर देश का उत्थान करना चाहा। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन जैसे सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से समाज एवं धर्म में सुधार के प्रयास किए गए। सामाजिक आंदोलन के उदय के निम्न प्रमुख कारण थे–

1. अंग्रेज व्यापारियों के साथ ईसाई पादरी एवं धर्म प्रचारक 1813 ई. के बाद बड़ी संख्या में भारत आने लगे। ईसाई मिशनरियों ने हिन्दू धर्म की आलोचना कर भारतीयों को ईसाई बनाना प्रारंभ किया। धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए धार्मिक–सामाजिक आंदोलन आवश्यक प्रतीत होने लगे। भारतीय समाज में कालांतर में आई बुराइयों को समाप्त कर ईसाईकरण को रोकने का प्रयास किया गया।
2. यूरोपीय विद्वान् विलियम जोन्स, मैक्समूलर आदि ने भारतीय इतिहास, धर्म एवं साहित्य का अध्ययन कर यह बताया कि प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की महानतम सभ्यताओं में से एक है। बंगाल की एशियाटिक सोसायटी ने कई प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। अपने गौरवशाली अतीत की जानकारी से भारतीयों में आत्मगौरव एवं आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न हुई।
3. पश्चिमी सभ्यता के प्रसार ने भारतीयों को सशंकित कर दिया। इन्होंने भारत को पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से बचाने का प्रयास किया। समाज सुधारकों ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति में विश्वास बनाए रखने की प्रेरणा भारतीयों को दी और कालांतर में आई रूढ़ियों को समाप्त करने का प्रयास किया।
4. समाचार पत्र–पत्रिकाओं ने भारत के पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंग्रेजों के दुर्व्यवहार के समाचार छपने लगे। समाज सुधारकों ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से समाज में जागृति उत्पन्न की।
5. अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ। इन्होंने पश्चिमी समाजों के अध्ययन तथा वहाँ चल रहे समाज परिवर्तन की जानकारी के आधार पर भारतीयों में सामाजिक समानता एवं एकता की भावना का प्रचार किया।

ब्रह्म समाज एवं राजा राममोहन राय

19वीं सदी में सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन बंगाल से राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। राजा राममोहन राय को बंगाल में नवचेतना एवं क्रांति का अग्रदूत, भारत में नवजागरण का अग्रदूत, सुधार आंदोलनों का प्रवर्तक एवं आधुनिक भारत का पहला नेता कहा गया। इनकी हिन्दू धर्म के

मौलिक सिद्धांतों एवं दर्शन में आस्था थी। ये कालांतर में हिन्दू धर्म एवं समाज में आए आडंबरों को समाप्त करना चाहते थे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानव गरिमा, सामाजिक समानता आदि विचारों को अपनाकर भारत का सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान करना चाहते थे। राजा राममोहन राय का जन्म बंगाल के राधानगर में ब्राह्मण जमींदार परिवार में हुआ। इन्होंने हिन्दू, इस्लाम, ईसाई आदि धर्म एवं इनके महत्वपूर्ण ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। ये अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, लेटिन, हिब्रू आदि कई भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी की किंतु बाद में त्यागपत्र दे दिया। इन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए एकेश्वरवादियों का उपहार (Gift to monotheist) एवं प्रीसेप्टस ऑफ जीसस (precepts of jesus) पुस्तक लिखी। तोहफत–उल–मुहीद्दीन फारसी भाषा में लिखी। फारसी में 'मिरात उल अखबार', बांग्ला में 'संवाद कौमुदी' पत्रिका एवं हिन्दी में 'बंगदूत' निकाला।

1815 ई. में इन्होंने कलकत्ता में आत्मीय सभा की स्थापना की। 1825 ई. में कलकत्ता में वेदान्त कॉलेज की स्थापना की। 1828 ई. में इन्होंने कलकत्ता में 'ब्रह्म सभा' की स्थापना कर अपने विचारों का प्रचार–प्रसार किया। ब्रह्म सभा 'ब्रह्म समाज' कहलाया। देवेन्द्रनाथ टैगोर (रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता) ने राजा राम मोहन राय के विचारों से प्रभावित होकर 1839 ई. में 'तत्वबोधिनी सभा' की स्थापना की। राजा राम मोहन राय के बाद 1843 ई. में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज को पुनर्जीवित किया। केशवचंद्र सेन ने ब्रह्म समाज की लोकप्रियता को बढ़ाया। देवेन्द्रनाथ टैगोर ब्रह्म समाज को राजा राममोहन राय के मार्ग पर चलाना चाहते थे। केशवचंद्र सेन ने ब्रह्म समाज में सभी धर्मों के प्रस्तावों के पाठ की अनुमति दे दी। वे सामाजिक सुधारों में अधिक रूचि लेने लगे। इस कारण दोनों में मतभेद बढ़ता गया। 1867 ई. में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने केशवचंद्र सेन को आचार्य के पद से हटा दिया। ब्रह्म समाज दो भागों में बंट गया। देवेन्द्रनाथ टैगोर का समाज 'आदि ब्रह्म समाज' एवं केशवचन्द्र सेन का समाज 'भारत का ब्रह्म समाज' (भारतीय ब्रह्म समाज) कहलाया। केशवचंद्र सेन ने बाल–विवाह का विरोध बड़ी दृढ़ता से किया, किंतु इन्होंने अपनी 13 वर्षीय अल्पायु बेटी का विवाह बहुत बडी उम्र के कूचविहार के राजा से कर दिया। इस कारण इनके कुछ अनुयायी इनसे रुष्ट हो गए और 1878 ई. में केशवचंद्र सेन के 'भारत का ब्रह्म समाज' में फूट पड़ गयी। अपने को प्रगतिशील मानने वाले लोगों ने 'भारत का ब्रह्म समाज' से पृथक होकर 'साधारण ब्रह्म समाज' की स्थापना की। राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज ने सामाजिक, धार्मिक एवं शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए।

सामाजिक सुधार– राजा राममोहन राय एवं उनके ब्रह्म समाज ने भारतीय समाज में कालांतर में आई कई कुरीतियों का विरोध किया। राजा राममोहन राय ने प्राचीन धार्मिक ग्रंथों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि कई सामाजिक रूढ़ियाँ मौलिक हिन्दू धर्म के विरूद्ध हैं। उन्होंने जाति प्रथा, अस्पृश्यता, सती प्रथा, बहुविवाह, बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि का विरोध किया। उन्होंने सती प्रथा को समाप्त करने के लिए आंदोलन चलाया। उन्होंने मौलिक हिन्दू धार्मिक ग्रंथों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि सती–प्रथा को धार्मिक मान्यता प्राप्त नहीं थी तथा यह कभी भी हिन्दू समाज में एक प्रथा के रूप में मान्य नहीं रही। उन्होंने कहा कि मानव की बुद्धि भी इस प्रथा का समर्थन नहीं कर सकती। राजा राममोहन राय ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से सती प्रथा के विरूद्ध जनमत तैयार किया। राजा राममोहन राय के प्रयासों से ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक के समय 1829 ई. में कानून बनाकर सती प्रथा पर रोक लगा दी गयी। न्यायालयों को आदेश दिए गए कि ऐसे मामलों में मानव हत्या के अनुसार मुकदमा चले एवं दंड दिया जाए। प्रारंभ में यह नियम केवल बंगाल के लिए था। 1830 में इसे बंबई एवं मद्रास में लागू किया गया। राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज ने सामाजिक कुरीतियों का विरोध करते हुए स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। उन्होंने स्त्रियों को आर्थिक अधिकार देने की बात की। स्त्री शिक्षा के प्रयास किए। ब्रह्म समाज ने बालिका विद्यालय की नींव डाली।

धार्मिक सुधार– राजा राममोहन राय ने एक ब्रह्म (एकेश्वरवाद) का उपदेश दिया। उन्होंने वेद, उपनिषद् आदि के माध्यम से इस बात को प्रमाणित करने का प्रयास किया कि हिन्दू धर्म के मौलिक ग्रथों में एक ब्रह्म की बात है। उन्होंने निरर्थक पांथिक अनुष्ठानों एवं आडंबरों का विरोध किया। उनका विश्वास था कि वेदांत दर्शन भी तर्क शक्ति पर आधारित है। राजा राममोहन राय ने कहा कि यदि कोई दर्शन, परंपरा आदि तर्क की कसौटी पर खरा न उतरे और वे समाज के लिए उपयोगी न हो तो मनुष्य को उन्हें त्यागने से हिचकना नहीं चाहिए। इन्होंने ईसाई धर्म में व्याप्त अंधविश्वासों की भी आलोचना की। राजा राममोहन राय विश्व के सभी मत–पंथों की मौलिक एकता में विश्वास करते थे। ब्रह्म समाज ने राजा राम मोहन राय के एकेश्वरवाद एवं मूर्ति पूजा में अविश्वास की मान्यताओं का प्रसार किया।

राजनीतिक विचार– राजा राममोहन राय राजनीतिक क्षेत्र में उदारवादी विचारों के समर्थक थे। उन्होंने भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने में योगदान दिया। राजनीतिक विषयों पर जनआंदोलन का प्रारंभ करने का श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है। उन्होंने वरिष्ठ सेवाओं में भारतीयकरण, कार्यपालिका का न्यायपालिका से पृथक्करण, जूरी द्वारा न्याय प्रदान करना, भारतीयों एवं यूरोपीय लोगों के बीच न्याय की समानता आदि की माँग की। उन्होंने भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए प्रयास किए। अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में रुचि लेते हुए स्वतंत्रता एवं जनतंत्र के लिए विश्व में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलनों का समर्थन किया। इन्हें मुगल बादशाह अकबर द्वितीय ने इग्लैंड भेजा था। राजा राममोहन राय ऐसे पहले भारतीय थे जिनसे ब्रिटिश संसद ने भारतीय मामलों पर परामर्श किया।

आर्थिक विचार– आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने जनसाधारण को आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया। बंगाल के जमींदारों द्वारा कृषकों पर किए जा रहे शोषण का विरोध किया।

शिक्षा के क्षेत्र में कार्य– राजा राममोहन राय पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली एवं अंग्रेजी शिक्षा के समर्थक थे। उनका मानना था कि आधुनिक विचार के प्रसार के लिए आधुनिक शिक्षा आवश्यक है।

उन्होंने कलकत्ता में कॉलेज एवं स्कूल की स्थापना कर अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा दिया। उन्होंने वेद एवं उपनिषदों का बांग्ला भाषा में अनुवाद किया। बांग्ला–व्याकरण का संकलन किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। इसी कारण उन्हें 'भारतीय पत्रकारिता का अग्रदूत' भी कहा जाता है।

इस प्रकार राजा राम मोहन राय एवं उनके ब्रह्म समाज ने हिन्दू धर्म में व्याप्त रूढ़ियों को समाप्त कर हिन्दू धर्म एवं समाज में सुधार कर एकता एवं समानता लाने का प्रयास किया। उन्होंने राजनीतिक चेतना जागृत कर राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया। ईसाईयों के प्रचारवादी प्रहार से हिन्दू धर्म एवं समाज की रक्षा की।

ब्रह्म समाज ने पहली बार बड़ी प्रबलता से भारतीय समाज की समस्याओं को भारतीयों के समक्ष रखा। इससे एक बौद्धिक वातावरण तैयार हुआ।

केशव चंद्र सेन के प्रयासों से ब्रह्म समाज के विचारों से प्रभावित होकर आत्मारंग पांडुरंग ने 1867 ई. में महाराष्ट्र के बंबई में प्रार्थना समाज की स्थापना की। आर. जी. भण्डारकर एवं महादेव गोविन्द रानाडे प्रार्थना समाज के प्रमुख व्यक्ति थे। समाज में सुधार के लिए बंगाल में ब्रह्म समाज द्वारा जो कार्य किए गए वही कार्य महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज द्वारा किए गए।

राजा राममोहन राय

स्वामी दयानंद सरस्वती

आर्य समाज एवं दयानंद सरस्वती

आर्य समाज आंदोलन का उदय ब्रिटिश साम्राज्य एवं पाश्चात्य विचारधारा के प्रभावों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। आर्य समाज तत्कालीन समाज सुधार आंदोलनों से भिन्न था। इसने मुख्य रूप से हिन्दू धर्म एवं समाज में सुधार का कार्य किया। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म एवं समाज में कालान्तर में आई रूढ़ियों को समाप्त कर प्राचीन वैदिक धर्म के शुद्ध रूप को पुनर्स्थापित करना था। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म 1824 ई. में गुजरात के मौरवी के पास टंकारा में ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनका बचपन का नाम मूलशंकर था। इनके पिता अम्बाशंकर वेदों के विद्वान् थे। बचपन से ही दयानंद चिंतनशील थे। 1860 ई. में इनकी मथुरा में स्वामी विरजानंद से भेंट हुई। स्वामी दयानंद विरजानंद से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए। स्वामी दयानंद सरस्वती ने एक धर्म सुधारक एवं समाज सुधारक के रूप में देश के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण कर विद्वानों से शास्त्रार्थ किया। बंगाल के समाज सुधारक केशवचंद्र सेन के परामर्श पर उन्होंने अपने विचारों को संस्कृत के स्थान पर हिंदी में व्यक्त करना प्रारम्भ किया। दयानंद सरस्वती ने अपने विचारों को हिंदी में लिखी 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक में व्यक्त किया। दयानंद सरस्वती ने 1875 ई. में बंबई में आर्य समाज की स्थापना की और इसके सिद्धांत एवं नियम बनाए। लाहौर में 1877 ई. में आर्य समाज के सिद्धांत पुनः सम्पादित किए गए। दयानंद सरस्वती एवं आर्य समाज ने निम्नलिखित कार्य किए –

सामाजिक सुधार– आर्य समाज ने समाज सुधार के कार्य करते हुए सामाजिक समता व समरसता की बात की। आर्य समाज ने वर्ण व्यवस्था को जन्म के स्थान पर कर्म के आधार पर माना। जातिप्रथा एवं छुआछूत का विरोध किया। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया। बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा, बहुविवाह आदि सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया। विधवा स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्न किए। कई विधवा आश्रम स्थापित किये। स्त्री एवं पुरूषों की समानता की बात कही। स्त्री–शिक्षा के कार्य किए। दयानंद सरस्वती ने वेदों के आधार पर बताया कि शूद्रों एवं स्त्रियों को वेद पढ़ने एवं यज्ञोपवीत धारण करने की मनाही नहीं है। उन्होंने कहा कि जिन हिन्दू रीति–रिवाज, परंपराओं एवं मान्यताओं की अनुमति वेद नहीं देता उन सभी को त्याग देना चाहिए।

धार्मिक विचार एवं कार्य– धार्मिक क्षेत्र में दयानंद सरस्वती ने न केवल हिन्दू धर्म में कालान्तर में आई त्रुटियों को सुधारने का प्रयास किया बल्कि ईसाई एवं इस्लाम मजहब में व्याप्त बुराइयों को भी उजागर किया। दयानंद सरस्वती वेद को हिन्दू धर्म का वास्तविक आधार मानते थे। शुद्ध वैदिक परम्परा में विश्वास करते हुए इन्होंने ''वेदों की ओर लौट चलो'' का नारा दिया। वे वेद को ईश्वर प्रेरित मानते थे। वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने के साथ ही उन्होंने कहा कि वैदिक मंत्रों की व्याख्या तर्क की कसौटी पर कसकर विवेक से होनी चाहिए। उनका तर्क था कि वेद की भाषा अत्यन्त प्राचीन है। इसपर जो भाष्य बाद में लिखे गए वे सब सत्य हो यह आवश्यक नहीं है। दयानंद सरस्वती एवं आर्य समाज ने बहुदेववाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, पशुबलि आदि में विश्वास नहीं किया। कर्मकांडों एवं अंधविश्वासों का विरोध किया। इन्होंने ईश्वर को निराकार, सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक माना। 'शुद्धि–आंदोलन' के माध्यम से आर्य समाज ने मतांतरित हिन्दुओं का शुद्धिकरण कर पुनः मूल धर्म में शामिल किया।

राजनीतिक विचार– स्वदेशी राज्य की बात करते हुए दयानंद सरस्वती ने कहा कि विदेशी राज्य चाहे कितना अच्छा हो, लेकिन वह सुखदायक नहीं हो सकता। बुरे से बुरा देशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है। 'स्वराज्य' शब्द का सबसे पहले प्रयोग स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया। उन्होंने स्वदेशी, स्वराज्य, स्वभाषा एवं स्वाभिमान की बात कही।

शिक्षा के क्षेत्र में कार्य– शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज ने उल्लेखनीय कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती के स्वर्गवास होने के बाद 1886 ई. में लाहौर में दयानंद ऐंग्लो वैदिक स्कूल की

स्थापना हुई, जो 1889 ई. में दयानंद ऐंग्लो वैदिक कॉलेज के रूप में अस्तित्व में आया। देश के विभिन्न भागों मे दयानंद ऐंग्लो वैदिक संस्थाओं का विस्तार हुआ। पाश्चात्य शिक्षा–पद्धति से ज्ञान दिए जाने को लेकर आर्य समाज में मतभेद हुआ। वैदिक शिक्षा पद्धति से शिक्षा प्रदान करने के लिए 1902 ई. में हरिद्वार के पास कांगड़ी में गुरूकुल स्थापित किया गया। दयानंद ऐंग्लो वैदिक संस्था एवं गुरूकुल कांगड़ी दोनों ने भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों को बताते हुए भारतीयों के मन में आत्मगौरव का भाव उत्पन्न किया। इन शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से अधंविश्वासों एवं कुरीतियों को समाप्त कर धर्म एवं समाज में सुधार का प्रयास किया गया। इसके अतिरिक्त दयानंद सरस्वती ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया।

रामकृष्ण मिशन एवं स्वामी विवेकानंद

रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता में हुआ। इनके बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त एवं माता भुवनेश्वरी देवी थी। स्वामी विवेकानंद कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे। स्वामी विवेकानंद अपनी धार्मिक एवं आध्यात्मिक जिज्ञासा के कारण रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आए। रामकृष्ण परमहंस कलकत्ता में दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी थे। रामकृष्ण की हिन्दू धर्म में गहरी आस्था थी। रामकृष्ण ईश्वर की प्राप्ति के लिए निःस्वार्थ भक्ति भावना पर बल देते थे। वे सभी मत–पंथों की मौलिक एकता में विश्वास करते थे। रामकृष्ण परमहंस के विचारों से प्रभावित होकर स्वामी विवेकानंद उनके शिष्य बन गए। 1886 ई. में रामकृष्ण की मृत्यु के बाद विवेकानंद ने संन्यास ग्रहण कर लिया। इन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और धार्मिक ग्रंथों का गहनता से अध्ययन किया। खेतड़ी के महाराजा के सहयोग से विवेकानंद सितम्बर 1893 में विश्व धर्म संसद में भाग लेने अमेरिका के शिकागो शहर गए। सितम्बर 1893 में विश्व धर्म सम्मेलन में इन्होंने अपना प्रसिद्ध भाषण प्रिय भाइयों एवं बहनों के सम्बोधन से प्रांरभ किया। अपने भाषण में इन्होंने भारतीय संस्कृति एवं धर्म की महत्ता को बड़े प्रभावशाली तरीके से पश्चिमी जगत के समक्ष रखा। इन्होंने अपने व्याख्यान द्वारा भारत की बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक समृद्धता को प्रमाणित किया। इनके संबंध में अमेरिका के न्यूयार्क हैरल्ड ने लिखा ''शिकागो धर्म सम्मेलन में विवेकानंद ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है। उनके भाषण सुनने के बाद लगता है कि भारत जैसे समुन्नत राष्ट्र में ईसाई प्रचारकों को भेजा जाना कितनी मूर्खता की बात है।'' विवेकानंद ने इसके बाद अमेरिका एवं इग्लैंड में भ्रमण कर हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का प्रचार किया। 1896 ई. में न्यूयार्क में वेदान्त सोसायटी की स्थापना की।

5 मई 1897 में स्वामी विवेकानंद ने वेलूर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस के नाम पर की। इसकी शाखाएँ भारत के विभिन्न भागों एवं विदेशों में खोली गयी। स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार किया। रामकृष्ण मिशन की शिक्षाएँ मुख्य रूप से वेदांत–दर्शन पर आधारित हैं।

सामाजिक विचार एवं कार्य– विवेकानंद ने तत्कालीन भारतीय समाज मे व्याप्त संकीर्णताओं एवं कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने जातीय भेदभावों का विरोध कर समानता की बात की। उनका मत था कि सामाजिक–धार्मिक परम्पराओं एवं मान्यताओं को तभी स्वीकार करना चाहिए जब वे उचित जान पडे। उन्होंने स्त्री पुनरुत्थान की बात कही। वे निर्धनता एवं अज्ञानता को समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने कहा ''जब तक करोड़ों व्यक्ति भूखे और अज्ञानी हैं तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूँ जो उन्हीं के खर्चे पर शिक्षा ग्रहण करता है परन्तु उनकी परवाह नहीं करता।'' विवेकानंद के विचारों को सफल बनाने के लिए रामकृष्ण मिशन ने समाज सेवा एवं परोपकार के कार्यों को बहुत महत्व दिया। अपने कार्यों में मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण रामकृष्ण मिशन अधिक लोकप्रिय हुआ। रामकृष्ण मिशन ने कई विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय आदि स्थापित किए और इसके माध्यम से समाज सेवा के कार्य किए। अकाल, बाढ़ आदि विपदाओं के समय रामकृष्ण मिशन ने सहायतार्थ कार्य कर लोगों को समाज सेवा की प्रेरणा दी।

धार्मिक विचार :– स्वामी विवेकानंद हिन्दू धर्म एवं दर्शन में गहन आस्था रखते थे। इन्होंने हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की मौलिकता एवं इसकी विशेषताओं को लोगों के समक्ष रखा। इन्होंने मनुष्य की आत्मा को ईश्वर का अंश बताया। इनका मानना था कि ईश्वर की आराधना का एक रूप दीन दुःखी और दरिद्रों की सेवा भी है। रामकृष्ण मिशन ने मानव सेवा को ईश्वर की सेवा माना है। 'नर सेवा नारायण सेवा ' उनका ध्येय वाक्य है।

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद का राष्ट्रीय दृष्टिकोण– स्वामी विवेकानंद ने राष्ट्रीयता की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विवेकानंद एवं रामकृष्ण मिशन ने भारतीयों में आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान की भावना का विकास किया। इसी भावना ने युवाओं को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की ओर प्रेरित किया। उन्होंने स्वतंत्रता, समानता एवं स्वतंत्र चिंतन की बात कर युवाओं को नयी दिशा प्रदान की। उन्होंने कहा ''उठो, जागो और तब तक विश्राम न करो जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए।'' वे भारत के पिछड़ेपन, पतन एवं गरीबी से दुःखी थे। वे पश्चिम के अंधानुकरण के विरोधी थे। विवेकानंद आध्यात्मिक उन्नति पर बल देते थे। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति कर पहले वे मनुष्य को मनुष्य बनाना चाहते थे और उसी को संपूर्ण प्रगति का आधार मानते थे। पूरे विश्व में हिन्दू धर्म एवं दर्शन को प्रसारित कर विवेकानंद ने उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव को संसार के समक्ष रखा। उन्होंने ऐसी शिक्षा की बात कही जिससे चरित्र का निर्माण हो। उन्होंने शक्तिमान एवं पौरूष युक्त बनने की बात कही। उन्होंने कहा कि मनुष्य का साहस एवं वीरत्व एक दिन उसे कुपथ त्यागने की प्रेरणा देंगे। विवेकानंद ने खेतड़ी के महाराजा को लिखा ''हर कार्य को तीन अवस्थाओं से गुजरना होता है उपहास, विरोध और स्वीकृति। जो मनुष्य अपने समय से आगे विचार करता है लोग उसे निश्चय ही गलत समझते हैं। इसलिए विरोध और अत्याचार हम सहर्ष स्वीकार करते हैं परन्तु मुझे दृढ़ और पवित्र होना चाहिए और भगवान में अपरिमित विश्वास रखना चाहिए तब ये सब लुप्त हो जाएँगे।''

अन्य सामाजिक आंदोलनों में सत्यशोधक समाज, थियोसोफिकल समाज, यंग बंगाल आंदोलन आदि प्रमुख थे। सत्यशोधक समाज की स्थापना 1875 ई. में ज्योतिबा फूले ने की। इन्होंने 'सार्वजनिक सत्य धर्म' एवं 'गुलामगिरी' नामक पुस्तक लिखी। ज्योतिबा फूले एवं उनके सत्यशोधक समाज ने अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए कार्य किया। थियोसोफिकल समाज की स्थापना 1875 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क में रूसी महिला हेलन पेट्रोवना ब्लावात्सकी एवं अमेरिकन सैनिक अधिकारी एच. एस. अल्कॉट ने की। इसका प्रमुख उद्देश्य मानवता का विकास करना एवं प्राचीन धर्म, दर्शन व वैज्ञानिक ज्ञान के अध्ययन में सहयोग करना। इसने प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन के सिद्धांतों के प्रति सहमति जताई। यंग बंगाल आंदोलन का नेतृत्व हेनरी विलियम डेरोजियो ने किया। इन्होंने स्वतंत्रता एवं समानता की बात कही। तार्किक एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिए कहा। रूढ़िवादी परम्पराओं को त्यागने को कहा। सिख सुधार आंदोलन में पंजाब में 1920–21 ई. में चलाया गया अकाली आंदोलन प्रमुख था। इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य गुरूद्वारों के प्रबंध में सुधार करना था।

इन सामाजिक आंदोलनों के अतिरिक्त मुस्लिमों एवं पारसियों में भी सुधार आंदोलन हुए। अहमदिया आंदोलन के प्रवर्तक गुलाम अहमद कादियानी थे। इस आंदोलन का केन्द्र पंजाब के गुरूदासपुर जिले में कादियां नगर था। अहमदिया आंदोलन ने पाश्चात्य प्रभाव का विरोध करते हुए इस्लामी सिद्धातों को स्थापित करने की बात कही। सर सैय्यद अहमद खाँ ने अपने समूह के माध्यम से अलीगढ़ में जो आंदोलन चलाया, वह 'अलीगढ़ आंदोलन' कहलाया। सर सैय्यद अहमद खाँ ने आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा को अपनाने की बात कही। पारसी सामाजिक सुधार आंदोलनों में 'रहनुमाए मज्दायासन सभा' महत्वपूर्ण थी। इसकी स्थापना 1851 ई. में नौरोजी फरदोनजी, दादा भाई नौरोजी, एस.एस. बंगाली आदि के प्रयासों से हुई। इन्होंने पारसी समाज में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध किया।

इस सभी सामाजिक आंदोलनों के प्रयासों से कई कानून बने। सतीप्रथा, शिशुहत्या आदि पर प्रतिबंध लगाया गया। 1829 ई. में सती प्रथा विरोधी कानून एवं 1856 ई. में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून बना। विधवा पुनर्विवाह अधिनियम बनने में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की भूमिका प्रमुख रही। इन्होंने वैदिक साहित्य एवं अन्य संस्कृत ग्रंथों के माध्यम से प्रमाणित किया कि वेद विधवा–विवाह की अनुमति देता है। इन्होंने हजारों लोगों से हस्ताक्षर करवाकर प्रार्थना–पत्र ब्रिटिश सरकार के पास भेजा, जिसमें विधवा विवाह को मान्यता प्रदान किए जाने के लिए लिखा था। डी.के. कर्वे ने 1899 ई. पूना में एक विधवा आश्रम खोला। कर्वे ने 1906 ई. में बम्बई में भारतीय महिला विश्वविद्यालय खोला।

केशवचन्द्र सेन के प्रयासों से 1872 ई. में सिविल मैरिज एक्ट बना, जिसके अन्तर्गत 14 वर्ष से कम आयु की बालिकाओं एवं 18 वर्ष से कम आयु के बालकों का विवाह प्रतिबंधित किया। पारसी धर्म सुधारक बी.एम. मालाबारी के प्रयासों से बाल विवाह को रोकने के लिए 1891 ई. में सम्मति आयु अधिनियम पारित हुआ। हरविलास शारदा के प्रयासों से 1930 ई. में शारदा एक्ट बना, जिससे बाल विवाह रोकने का प्रयास किया गया।

इस प्रकार विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र–सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, कला आदि को प्रभावित किया और नवीन चेतना उत्पन्न की। इन आंदोलनों ने भारत की पश्चिमी सभ्यता के आक्रमण से रक्षा की। भारतीयों में आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव की भावना का विकास किया। भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को सामने लाया गया। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप भारतीयों के मन में भारतीय धर्म, दर्शन एवं ज्ञान को लेकर गौरव की अनुभूति हुई। प्राचीन वेदों एवं उपनिषदों के सत्य को उजागर कर जनता तक पहुँचाया गया। इन्होंने भारतीय समाज की जड़ता को समाप्त कर बहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त किया। सुधार के माध्यम से समाज में स्वतंत्रता, समानता एवं मानवतावादी मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया गया। सामाजिक असमानता दूर कर एकता की भावना उत्पन्न करने का प्रयास हुआ। शिक्षा का प्रसार हुआ। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कार्य किए गए। इन आंदोलनों ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन

जनजातीय प्रतिरोध

1857 ई. की क्रांति के पूर्व एवं 1857 ई. की क्रांति के बाद अंग्रेजी शासन के विरूद्ध कई विद्रोह हुए। जनजातीय प्रतिरोध का नेतृत्व स्थानीय जनजातीय समुदाय के लोगों ने किया। कोल, संथाल, भील, मुंडा आदि जनजातीय समुदाय के नेताओं ने अपने–अपने क्षेत्र में इसका नेतृत्व किया।

अंग्रेजी शासनकाल में विभिन्न स्थानों पर ब्रिटिश शासकों को जनजातीय प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश राज की स्थापना के बाद भू–राजस्व प्रणाली, प्रशासनिक एवं न्यायिक प्रणाली के परिवर्तन से जनजातीय समाज प्रभावित हुआ। अंग्रेज शासन प्रणाली के अंतर्गत पुलिस एवं प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा जनजातीय क्षेत्र में प्रवेश कर जनजातीय समुदाय का शोषण किया गया। उन पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगाकर अत्याचार किए जाते थे। ब्रिटिश अधिकारियों के साथ ही इस नयी व्यवस्था के अंतर्गत ठेकेदार, व्यापारी, साहूकार आदि अंग्रेजों के बिचौलिए के रूप में कार्य करने लगे। वनों पर अधिकार कर वन संपत्ति की सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के नियम बनाकर प्रतिबंध लगाए गए। जनजातीय क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं पर अनेक प्रकार के कर लगाए गए। उनसे बेगार ली जाने लगी। ईसाई मिशनरियों की घुसपैठ जनजातीय क्षेत्रों में बढ़ने लगी। आक्रोशित जनजातीय लोगों ने अंग्रेजी सरकार से संघर्ष किया। जब औपनिवेशिक शासन जनजातीय लोगों के प्रतिरोध का दमन बड़ी क्रूरता से करने लगा तब इनका प्रतिरोध सशस्त्र विद्रोह के रूप में बदल गया।

जनजातीय लोगों ने कभी एक–दूसरे पर हमला नहीं किया। इन्होंने उन पर हमला नहीं किया, जिनकी जनजातीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका थी और जिनसे इनके सामाजिक संबंध थे। इन्होंने लुहार, बढ़ई, कुम्हार, जुलाहे, नाई आदि एवं बाहरी लोगों के यहाँ काम करने वाले नौकरों पर हमला नहीं किया।

पूर्वी भारत में चुआर, खासी, सिंगो, नागा, कूकी, खोंड, संथाल, कोल, मुंडा, भूमिज आदि ने विद्रोह किया। पश्चिमी भारत में भील, रामोसी आदि ने विद्रोह किया। दक्षिण में कोरा माल्या एवं कोंडा डोरा जनजातीय विद्रोह हुआ।

खासी विद्रोह– पूर्वी भारत में औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध कई विद्रोह हुए। असम की सीमाओं के निकट पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाली खासी जनजाति ने 1829 ई. में विद्रोह किया। अंग्रेजों ने इनके क्षेत्र से निकलने वाली सड़क बनाने का कार्य प्रारंभ किया। इस कार्य हेतु जब खासी जनजाति के लोगों को बलपूर्वक मजदूरों के रूप में भर्ती किया गया तब इनमें आक्रोश बढ़ गया। तीरत सिंह के नेतृत्व में खासियों ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को बड़ी क्रूरता से दबाया।

कोल विद्रोह– अंग्रेजों की प्रशासनिक व्यवस्था, उनकी शोषण की नीति, कठोर भूमि कर व्यवस्था तथा स्थानीय अधिकारियों–कर्मचारियों के व्यवहार से कोल लोग असंतुष्ट हो गए। 1831 ई. में छोटा नागपुर से प्रारंभ हुआ यह विद्रोह रांची, हजारीबाग, पलामू, मानभूमि आदि में फैल गया।

भूमिज विद्रोह– भूमिज जनजाति ने 1832 ई. में वीरभूमि एवं जंगल महाल में गंगानारायण के नेतृत्व में विद्रोह किया।

खोंड विद्रोह– उड़ीसा की सीमा के निकट रहने वाली खोंड जनजाति ने 1846 ई. में चन्द बिसायी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह किया।

संथाल विद्रोह– अंग्रेजी शासन के विरूद्ध 1850 ई. के बाद होने वाले विद्रोहों में संथाल जनजाति का विद्रोह सबसे तीव्र एवं महत्वपूर्ण था। भागलपुर से राजमहल तक का क्षेत्र संथाल बाहुल्य क्षेत्र था। संथालों का विद्रोह मुख्य रूप से वीरभूम, बांकुरा, सिंहभूम, हजारीबाग, भागलपुर एवं मुंगेर तक फैला। इस विद्रोह का मुख्य कारण अंग्रेजी उपनिवेशवादी शोषण की नीति थी। भूमि कर अधिक वसूला जाना, अंग्रेजी अदालतों से उचित न्याय न मिलना, पुलिस के अत्याचार एवं भ्रष्टाचार, महाजनों द्वारा शोषण किया जाना, उधार की समस्या आदि कारणों से संथालों में विद्रोह की भावना आई।

30 जून 1855 को भगनीडीह में हजारों संथाल जनजातीय लोग एकत्र हुए। इन्होंने विदेशियों का राज्य समाप्त कर न्याय एवं धर्म पर आधारित राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। संथालों के प्रमुख नेता सिधू और कान्हू थे। इन्होंने अंग्रेज कंपनी के शासन का अंत करने की घोषणा करते हुए स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। इन्होंने कहा कि स्वयं ईश्वर ने इन्हें इस कार्य के लिए चुना है और स्वर्ग से इन्हें संदेश प्राप्त हुआ है। प्रत्येक गाँव में सिधू एवं कान्हू की ओर से एक पत्तल, धूप में सुखाए गए चावल, तेल एवं हल्दी भेजी गयी। यह कहा गया कि इनका प्रयोग करने से संथालों की आत्मशक्ति बढ़ेगी और उन्हें संघर्ष की प्रेरणा मिलेगी। इन्होंने उपनिवेशवादी सत्ता के प्रतीक पुलिस स्टेशन एवं अन्य भवनों पर हमले किए। धनी व्यक्तियों को लूटा। इस विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजी प्रशासन की सहायता के लिए सेना बुलाई गयी। 1855 ई. में सिधू पकड़ा गया और उसे मार दिया गया। फरवरी 1856 में कान्हू पकड़ा गया। इस प्रकार 1856 ई. में संथालों का विद्रोह समाप्त हुआ।

मुंडा विद्रोह– मुंडा जनजाति ने प्रमुख विद्रोह 1899–1900 ई. के बीच बिरसा मुंडा के नेतृत्व में विद्रोह किया। यह विद्रोह राँची के दक्षिण के भू क्षेत्र में हुआ। मुंडा जनजाति बिरसा मुंडा को भगवान मानने लगी। बिरसा मुंडा ने ब्रिटिश अधिकारियों, ईसाई पादरियों, ठेकेदारों एवं जागीरदारों के विरूद्ध मुंडाओं को सशस्त्र विद्रोह के लिए उकसाया। इन्हें मार डालने के लिए कहा। मुंडाओं ने गिरिजाघर एवं पुलिस वालों पर हमले किए। जून 1900 में जेल में बिरसा मुंडा की मृत्यु हो गयी।

सिधू कान्हू बिरसा मुंडा

रामोसी विद्रोह– पश्चिम के जनजातीय विद्रोहों में 1822 ई. में सतारा के आस पास के क्षेत्र में रामोसी विद्रोह चितरसिंह के नेतृत्व में हुआ। रामोसी अंग्रेजी शासन प्रणाली से आक्रोशित थे।

भील विद्रोह– 1825 ई. में सेवरम के नेतृत्व में भील विद्रोह हुआ। कृषि संबंधी परिवर्तन के कारण ये अंग्रेजों से असंतुष्ट थे। अंग्रेजों ने भील विद्रोह को दबाने के लिए सेना की टुकड़ी भेजी।

कोरा माल्या विद्रोह– दक्षिण के जनजातीय विद्रोह में 1900 ई. में हुआ कोरा माल्या का विद्रोह प्रमुख था। यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन था। कोरा माल्या ने अपने को पाँच पांडवों में से एक पांडव बताया और कहा कि उसमें बांस को बंदूकों में और पुलिस की बंदूकों को पानी में बदल देने की शक्ति है। इसने लगभग 5,000 लोगों को एकत्र किया और पुलिस स्टेशन पर आक्रमण किया। इसने यह भी घोषणा की कि उसने अंग्रेजों को देश से भगा दिया है।

गोदावरी एजेंसी में वन अधिनियमों एवं उत्पाद शुल्क के विरोध में आंदोलन हुआ। विद्रोहियों ने अपने आपको राम की सेना बताया। इनके एक नेता राजन अनंतय्या ने अपने आपको राम का अवतार कहा।

कोंडा डोरा विद्रोह– ब्रिटिश सरकार के अत्याचार, मुठ्ठादारों (प्रधान) के शोषण, बेगार आदि से पीड़ित कोंडा डोरा जनजाति ने विद्रोह कर दिया। यह जनजाति विशाखापट्टनम जिले के कृष्णदेवपेटा की पहाड़ियों में रहती थी। इसने 1922 ई. में तपस्वी रामराजा के नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह कर दिया। इसके प्रमुख नेता गौतम डोरा, मल्लू डोरा, अंगिराज, इयेंग डोरा आदि थे। इन्होंने ब्रिटिश सेनापति स्काट एवं हेइटारसन की हत्या कर दी। रामराजा ने कोकनद कांग्रेस अधिवेशन (1923 ई.) में अध्यक्ष को पत्र लिखा कि यदि कई हजार बंदूकें उन्हें मिल जाए तो वे और उनके साथी सारे हिन्दुस्तान से ब्रिटिश हूकूमत समाप्त कर सकते हैं और स्वराज्य स्थापित कर सकते हैं। इस जनजाति ने विद्रोह कर उड़ीसा एवं आन्ध्र में ब्रिटिश सरकार के समानांतर सरकार बनाने की योजना बनाई। 1924 ई. में ब्रिटिश सरकार ने इस विद्रोह को बड़ी क्रूरता से दबाया। गौतम डोरा मारा गया। अंग्रेजों के बढ़ते अत्याचार को देखते हुए रामराजा ने आत्मसमर्पण कर दिया किन्तु ब्रिटिश अधिकारियों ने उसे कैद कर गोली मार दी।

जहाँ ब्रिटिश अधिकारी आधुनिक हथियारों एवं कई स्थानों पर सेना की सहायता से जनजातीय विद्रोह को दबा रहे थे, वहीं दूसरी ओर जनजातीय लोग तीर–धनुष, भाले, कुल्हाड़ी आदि से लड़ रहे थे। इस सशस्त्र संघर्ष में अपने आत्मविश्वास के बल पर विभिन्न जनजातियों ने अंग्रेजी औपनिवेशिक साम्राज्य के विरूद्ध अदम्य वीरता दिखाई। अंग्रेजों के बिचौलिए के रूप में कार्य कर रहे व्यापारियों एवं साहूकारों पर भी हमले हुए। अधिकांश विद्रोहों को दबा दिया गया किन्तु इन जनजातीय प्रतिरोध ने यह प्रमाणित कर दिया कि वे शोषण को स्वीकार नहीं करेंगे। ये विद्रोह भले ही सीमित क्षेत्र में हुए हो किंतु इन्होंने अंग्रेजी सत्ता को इनकी समस्याओं की ओर ध्यान देने पर मजबूर कर दिया। सशस्त्र प्रतिरोध के परिणाम स्वरूप कई भूमि संबंधी सुधार किए गए। 1908 ई. में छोटा नागपुर टेनेन्सी एक्ट बना।

क्रांतिकारी दल एवं गतिविधियाँ

भारत एवं विदेशों में अनेक क्रांतिकारी घटनाएँ हुई। इनमें अभिनव भारत, अनुशीलन समिति, गदर दल, हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक पार्टी, आजाद हिन्द फौज आदि क्रांतिकारी संगठनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में महाराष्ट्र, बंगाल एवं पंजाब क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र थे। विदेशों में क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र इंग्लैंड में लंदन, फ्रांस में पेरिस, अमेरिका में सेनफ्रांसिस्को एवं पोर्टलैंड, जर्मनी में बर्लिन एवं जापान में टोक्यो थे। क्रांतिकारी आंदोलनों में अंग्रेजी राज के विरूद्ध हुई सशस्त्र गातिविधियों में क्रांतिकारी ने भारतीय सेना को भी साथ लेने का प्रयास किया। क्रांतिकारी आंदोलनों में अंग्रेजी विरोधी विदेशी ताकतों से भी सहायता ली गयी। इसका उदाहरण गदर आंदोलन एवं आजाद हिन्द फौज है। गदर दल ने जर्मनी की सहायता से एवं आजाद हिन्द फौज ने जापान की सहायता से अंग्रेजी राज्य को भारत से समाप्त करने का प्रयास किया।

लंदन में 1905 ई. में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की। यह लंदन में रहने वाले भारतीयों के लिये आन्दोलन का एक केन्द्र बन गया। इन्होंने 'इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक अखबार निकाला। वीर सावरकर (अभिनव भारत के नेता), लाला हरदयाल (गदर दल के नेता) एवं मदनलाल ढींगरा जैसे कई क्रांतिकारी इसके सदस्य बने। श्यामजी कृष्ण वर्मा को 'क्रांतिकारियों का पिता' कहा गया। पेरिस में एस.आर. राणा, श्रीमती भीखाजी रूस्तम कामा आदि सक्रिय थे।

अभिनव भारत

नासिक में गणपति उत्सव मनाने के संबंध में 1899 ई. में 'मित्र मेला' संगठन की स्थापना की गयी। 1904 ई. में इसी मित्र मेला से वीर सावरकर के नेतृत्व में 'अभिनव भारत' नामक गुप्त क्रांतिकारी संस्था का जन्म हुआ। इसका उद्देश्य भारत को विदेशी सत्ता से स्वतंत्र कराना था।

इस संस्था ने तिलक द्वारा प्रारंभ किए गए गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव के माध्यम से क्रांतिकारी विचारों को लोगों तक पहुँचाया। इसने सभाओं एवं पुस्तिकाओं के माध्यम से अपने विचारों का प्रसार किया। यह संस्था नवयुवकों को लाठी चलाने, तलवार चलाने, पहाड़ पर चढ़ने, घुड़सवारी करने, दौडने आदि की शिक्षा देकर अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने के लिए तैयार करने लगी। महाराष्ट्र के पूना एवं बंबई के कई कॉलेज एवं स्कूलों में इसकी शाखाएँ स्थापित की गयी। इसकी शाखाएँ महाराष्ट्र के अतिरिक्त मध्यप्रदेश एवं कर्नाटक तक विस्तारित की गयी। अभिनव भारत ने विदेशों से पिस्तौल आदि शस्त्र एकत्र किए। लंदन से विनायक दामोदर सावरकर (वीर सावरकर) ने शस्त्र भारत भिजवाए। अभिनव भारत की ओर से पांडुरंग महादेव बापट को बम बनाने की कला सीखने के लिए विदेश भेजा गया। बापट ने रूसी पुस्तक 'बम मैनुअल' की प्रति प्राप्त कर इसका अंग्रेजी में

अनुवाद किया। अभिनव भारत ने बंगाल एवं भारत की अनेक गुप्त क्रांतिकारी संस्थाओं से संबंध स्थापित किया।

कर्जन वाइली हत्याकांड– 1909 ई. में कर्जन वायली की हत्या मदन लाल धींगरा ने कर दी। मदन लाल ढ़ींगरा अमृतसर से लंदन इन्जीनियरिंग की पढ़ाई करने आए थे। ये कर्जन वायली द्वारा भारतीयों पर किये गए अत्याचार से दुखी थे। कर्जन वायली सेक्रेट्री ऑफ स्टेट का ए.डी.सी. था। वीर सावरकर ने वाइली की शोकसभा में वाइली की हत्या करने वाले मदनलाल ढ़ींगरा के निंदा प्रस्ताव का विरोध किया।

वीर सावरकर– भारत के स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी नेताओं में अभिनव भारत के विनायक दामोदर सावरकर का नाम अग्रणी है। इनकी देशभक्ति, त्याग एवं बलिदान के कारण ही ये वीर सावरकर कहलाने लगे। इन्होंने युवाओं को अंग्रेजी शासन के विरूद्ध क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। वीर सावरकर का जन्म 28 मई 1883 में भागुर (महाराष्ट्र) में हुआ। इन्होंने उच्च शिक्षा के लिए पूना के फर्ग्युसन कॉलेज में प्रवेश लिया। इन्हीं दिनों ये महाराष्ट्र के राष्ट्रवादी नेता बाल गंगाधर तिलक के संपर्क में आए। 1901 ई. में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर आयोजित शोक सभा का इन्होंने विरोध किया। एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक उत्सव को इन्होंने 'गुलामी का उत्सव' एवं 'देश व जाति के प्रति विद्रोह' कहा और इसका विरोध किया।

1906 ई. में वीर सावरकर लंदन चले गए। लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित 'इण्डिया हाउस' में इन्होंने महापुरूषों की जयंतियाँ एवं विचार गोष्ठियाँ आयोजित कर भारतीय युवाओं में देश भक्ति की भावना जागृत की। सावरकर ने 1857 ई. की क्रांति को 'प्रथम स्वतंत्रता युद्ध' कहा। इन्होंने 'भारत का स्वतंत्रता संग्राम' (The indian war of Independence) नामक पुस्तक लिखी। इस पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया। यह पुस्तक गुप्त रूप से विभिन्न शीर्षकों 'पीक वीक पेपर्स', 'स्काट्स पेपर्स' आदि नाम से भारत पहुँची।

नासिक षडयंत्र केस– जिला मजिस्ट्रेट जैक्सन की हत्या नासिक में 21 दिसम्बर 1909 को अनंत लक्ष्मण ने कर दी थी। यह 'नासिक षड़यंत्र केस' कहलाया। नासिक षड़यंत्र केस में अनंत लक्ष्मण कन्हारे, कृष्णजी गोपाल कर्वे और विनायक नारायण देशपांडे को 19 अप्रैल 1911 को फांसी दी गयी।

जैक्सन की हत्या के लिए लंदन गुट द्वारा भेजी गई ब्राउनिंग पिस्तौल का प्रयोग किया गया था। वीर सावरकर को लंदन से बंदी बनाकर भारत लाया गया। जब इन्हें भारत लाया जा रहा था तब ये समुद्र में कूद पड़े किंतु पकड़े गए। वीर सावरकर पर नासिक षड़यंत्र केस चलाकर दिसम्बर 1910 को अण्डमान द्वीप की सेलूलर जेल भेज दिया गया। इन्हें आजीवन निर्वासन का दंड दिया गया। वीर सावरकर को सेलूलर जेल में घोर यातनाएँ दी गयीं। स्वास्थ्य खराब होने पर 1924 ई. में इन्हें रत्नागिरी में नजरबंद किया गया। इन्हें 1937 ई. में जेल से मुक्ति मिली।

भारत में बंगाल, महाराष्ट्र, दिल्ली, पंजाब आदि में क्रांतिकारी गतिविधियाँ चलती रहीं। दिल्ली षड़यन्त्र केस के बाद लाला हरदयाल एवं रासबिहारी बोस जैसे क्रांतिकारी देश के बाहर सक्रिय हो गए।

दिल्ली षड़यन्त्र केस(1912)– 23 दिसम्बर 1912 में दिल्ली के चाँदनी चौक में वायसराय हार्डिंग पर बम फेंका गया। हार्डिंग बच गया। इस बम काण्ड के प्रमुख नेता रासबिहारी बोस भागने में सफल हो गये। दिल्ली षड़यन्त्र केस चलाकर हार्डिंग बम काण्ड में अमीरचन्द्र, अवधबिहारी, बालमुकुन्द और बसन्त कुमार को फाँसी की सजा दी गई। लाला हरदयाल लंदन चले गए।

वीर सावरकर

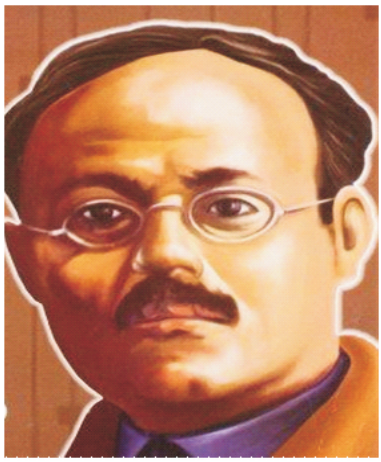

लाला हरदयाल

गदर दल

विदेशों में क्रांतिकारी गतिविधियों का एक प्रमुख केन्द्र अमेरिका था। अमेरिका एवं कनाडा में रह रहे भारतीयों ने अनुभव किया कि भारत के ब्रिटिश उपनिवेश होने के कारण भारतीयों के साथ भेदभाव किया जा रहा है। 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में कई भारतीय विशेषकर पंजाब से लोग कनाडा एवं अमेरिका पहुँचे। कठिन परिश्रम करने के बाद भी वे अनुभव करने लगे कि उनका सम्मान नहीं हो रहा है।

अमेरिका में भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र पोर्टलैंड था। सोहन सिंह भखना के नेतृत्व में अमेरिका के पोर्टलैंड में 'हिन्दुस्तान एसोसिएशन ऑफ द पैसिफिक कोस्ट' नामक संस्था की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य भारत के लोगों के अधिकारों की रक्षा करना और भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना था। यह संस्था आगे चलकर 'गदर दल' के रूप में सामने आई। गदर आंदोलन चलाने के लिए 1 नवम्बर 1913 को अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को में लाला हरदयाल ने 'गदर दल' का गठन किया। इसके अध्यक्ष सोहन सिंह भखना एवं मंत्री लाला हरदयाल थे। गदर पार्टी के प्रमुख सदस्यों में काशीराम, भाई परमानंद, करतार सिंह सरावा, रामचंद्र आदि थे। गदर दल के दो विभाग थे–प्रथम प्रचार विभाग एवं द्वितीय मिलिटरी विभाग। प्रचार विभाग के सचिव हरदयाल और मिलिटरी विभाग के सचिव पांडुरंग खानखोजे थे। लाला हरदयाल एवं उनके साथियों ने 'गदर' नामक पत्र सेनफ्रांसिस्को से निकाला। पहले यह गुरूमुखी

एवं उर्दू में निकलता था, बाद में गुजराती एवं हिंदी में निकलने लगा। इसने अमेरिका में भारतीय स्वतंत्रता के लिए सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। लोगों को भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने में योगदान देने के लिए प्रेरित किया। इसने पहली बार गुरिल्ला युद्ध प्रणाली द्वारा भारत को स्वतंत्र कराने की योजना बनाई। अमेरिका में रह रहे पंजाबी अप्रवासी युवकों को प्रथम विश्व युद्ध के समय इस दल में सम्मिलित किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के समय इस दल ने सक्रियता दिखाते हुए भारत की स्वतंत्रता के लिए योजना बनाई। प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटिश भारतीय सेना की टुकड़ियाँ यूरोप एवं एशिया में ब्रिटेन की ओर से लड़ रहीं थी। ऐसे समय गदर दल के नेताओं ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए भारत में विद्रोह की योजना बनाई। इसके सदस्यों ने सेना के सिपाहियों को गुप्त रूप से राजनीतिक शिक्षा दी और विदेशी राज्य के विरूद्ध विद्रोह के लिए प्रोत्साहित किया। इन्होंने किसानों के साथ संपर्क स्थापित कर कार्य किया। किसानों एवं युवकों के बीच विद्रोह की घोषणा की प्रतियाँ बाँटी। इन्होंने शस्त्र प्राप्त किए और सरकारी खजाने को लूटा। विभिन्न वर्ग के लोगों में गदर दल का साहित्य बाँटकर क्रांति की भावना का प्रचार किया। भारत वापस जाने वाले साथियों को सम्बोधित करते हुए गदर दल के नेता रामचंद्र ने कहा ''भारत जाओ और देश के कोने–कोने में विद्रोह भड़का दो। भारत पहुँचने पर तुम्हें हथियार दे दिए जायेंगे। हथियार न मिल पाएँ तो राइफल प्राप्त करने के लिए पुलिस चौकियों को लूटो। अपने नेताओं की आज्ञा का बिना किसी झिझक के पालन करो।''

अगस्त 1914 में प्रथम महायुद्ध के प्रारंभ होते ही क्रांतिकारियों ने भारत को स्वंतत्र कराने के लिए जर्मनी के शासकों से संपर्क स्थापित किया। अमेरिका से लाला हरदयाल, जितेन्द्रनाथ लाहिडी, भूपेन्द्रनाथ दत्त, तारकनाथ आदि को बर्लिन भेजा गया। लाला हरदयाल ने बर्लिन में 'भारतीय स्वतंत्रता लीग' की स्थापना की। दक्षिण–पूर्व एशिया में क्रांतिकारी गतिविधियों को संगठित करने एवं संचालित करने का कार्य गदर पार्टी के भगवान सिंह को सौंपा गया था।

कामागाटामारू प्रकरण (1914)– कामागाटामारू एक जहाज था, जिसे हांगकांग से गुरूदत्त ने किराए पर लिया था। इसमें 376 पंजाबी भारतीय यात्री थे। यह हांगकांग, शंघाई और याकोहामा होता हुआ कनाड़ा के बैंकुवर पहुँचा। कनाड़ा सरकार ने इसे बैंकुवर में उतरने नहीं दिया। 23 जुलाई 1914 को यह बैंकुवर से रवाना होकर 29 सितम्बर 1914 को कलकत्ता के बजबज बंदरगाह पर उतरा। सरकार इसके यात्रियो को पंजाब भेजना चाहती थी। यात्रियों की पुलिस से मुठभेड़ हुई, जिसमें लगभग 20 यात्री मारे गए।

इस जहाज में गदर पार्टी के मुख्य पत्र 'गदर' की प्रतियाँ आई थी। अंग्रेज सरकार की रिपोर्ट के अनुसार जब जहाज बैंकुवर में था तब हथियार खरीदकर जहाज पर लाने का प्रयास किया गया था। कामागाटामारू घटना का गदर दल के सदस्यों ने विरोध किया और इस घटना को लेकर भारतीयों में ब्रिटिश विरोधी भावना जागृत की।

सिंगापुर विद्रोह (फरवरी 1915)– यह विद्रोह गदर पार्टी ने किया था। इस कार्य के लिए मूलचंद्र को सिंगापुर भेजा गया था। यह तय हुआ था कि भारतीय सैनिक विद्रोह कर जर्मन कैदियों को मुक्त करायेंगे। बाद में भारतीय सैनिक एवं जर्मन सैनिक मिलकर मलाया पर अधिकार कर पूर्व एशिया से अंग्रेजों को निकाल देंगे। इसके बाद जर्मन सैनिक भारत की क्रांति में सहयोग करेंगे। योजनानुसार भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर जर्मनी के कैदियों को मुक्त करवाया किन्तु जर्मन सैनिकों ने भारतीय सैनिकों का साथ नहीं दिया। दक्षिण–पूर्व एशिया में जर्मनी की सहायता से अंग्रेजों पर आक्रमण करने की गदर दल की योजना असफल रही।

पश्चिम में अगासे एवं पांडुरंग खानखोजे को गदर दल ने ईरान भेजा। ये दोनों वेश बदलकर बलूचिस्तान जाते और भारत में हथियार भेजते थे। प्रमथनाथ दत्त, अगासे आदि को कैद कर लिया गया । इसके बाद खानखोजे ने ईरानी सेना में भर्ती होकर अंग्रेजों से युद्ध किया।

लाहौर सशस्त्र विद्रोह (21 फरवरी 1915)– रासबिहारी बोस ने 21 फरवरी 1915 को सेना में विद्रोह की तिथि निश्चित की। इसका केन्द्र लाहौर था। ब्रिटिश शासकों का मानना था कि गदर पार्टी के प्रचार से भारत में क्रांति को सफल बनाने के लिए कम से कम 8000 भारतीय अन्य देशों से सिर्फ पंजाब आए थे। गदर दल के प्रमुख नेता करतार सिंह सरावा सहित कई नेता गिरफ्तार किए गए। रासबिहारी बोस बचकर भाग निकले।

भारत सरकार ने भारत सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत विशेष मुकदमा दायर किया। यह 'प्रथम लाहौर षडयंत्र केस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें करतार सिंह, विष्णु पिंगले आदि को मृत्यु दंड मिला। अमेरिकी सरकार ने गदर दल के क्रांतिकारियों पर मुकदमा चलाया। यह मुकदमा 'सेनफ्रांसिस्को का प्रथम मुकदमा' (20 नवम्बर 1917) कहलाया। इन पर आरोप लगाया गया कि इन्होंने बर्लिन में कमेटी बनाई और जर्मन धन से हथियार खरीदे। लोगों को भर्ती कर भारत भेजा और भारत में क्रांति करने का सुनियोजित प्रयास किया।

गदर दल ने भारत की सेना एवं जनता में विद्रोह की भावना फैलाकर सशस्त्र संग्राम के माध्यम से भारत को आजाद कराने का प्रयत्न किया। इस दल ने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली अपनाते हुए सेना को भी अपने साथ लेने का प्रयास किया तथा विदेशियों से भी सहायता प्राप्त की।

काबुल में अस्थाई सरकार की स्थापना– जर्मनी की सहायता से राजा महेन्द्र प्रताप ने भारत को स्वतंत्र कराने का प्रयास किया। काबुल में दिसम्बर 1915 में भारत की अस्थाई सरकार की स्थापना हुई। इसके राष्ट्रपति महेन्द्र प्रताप एवं प्रधानमंत्री मुहम्मद बरकतउल्ला बनाए गए। इसने अफगान सरकार से सीधा संबंध स्थापित किया।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन

भारत में उन्नीसवीं सदी के अंत में प्रारंभ हुई क्रांतिकारी गतिविधियाँ प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होते ही शिथिल हो गयी। क्रांतिकारी रासबिहारी बोस जापान चले गए। शचीन्द्र नाथ सान्याल को 1915 ई. के 'बनारस षड़यंत्र केस' में आजीवन कारावास मिला। कई क्रांतिकारी नवयुवकों ने महात्मा गाँधी द्वारा

प्रारंभ किए गए असहयोग आंदोलन में भाग लिया। महात्मा गाँधी द्वारा असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने से कई नवयुवकों ने क्रांतिकारी गतिविधियों में सम्मिलित होना प्रारंभ कर दिया। शचीन्द्र सान्याल ने जेल से छूटने पर नवयुवकों को एकजुट करना प्रारंभ किया। अक्टूबर 1924 में कानपुर में क्रांतिकारी युवकों का सम्मेलन हुआ। शचीन्द्र सान्याल के प्रयासों से 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' का गठन किया गया। मन्मथनाथ गुप्त, रामप्रसाद बिस्मिल, योगेश चटर्जी, चन्द्रशेखर आजाद आदि इसके प्रमुख नेता थे। इस संस्था का उद्देश्य सशस्त्र क्रांति के माध्यम से अंग्रेजी साम्राज्य को समाप्त करना था। इसने नवयुवकों को इस दल में सम्मिलित किया। हथियार एकत्र कर उन्हें प्रशिक्षित करना प्रारंभ किया। इसका सैनिक संगठन रिपब्लिकन आर्मी था। 1924 ई. में इस दल ने अपना पर्चा 'रिवोल्यूशनरी' (Revolutionary) निकाला। बाद में इस दल का नाम 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया।

काकोरी कांड– क्रांतिकारियों को अपने कार्यों के लिए धन की आवश्यकता थी। इस कारण सरकारी खजाना लूटने के लिए एक योजना बनाई गयी। 9 अगस्त 1925 को लखनऊ के पास काकोरी गांव के निकट ट्रेन को रोककर सरकारी खजाना क्रांतिकारियों द्वारा लूट लिया गया। काकोरी कांड के संबंध में बहुत बड़ी संख्या में नवयुवकों को गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया गया। रामप्रसाद बिस्मिल,अशफाकउल्ला खाँ, रोशनसिंह एवं राजेन्द्र लाहिडी को फाँसी दी गयी। शचीन्द्र सान्याल को आजीवन कारावास मिला। चन्द्रशेखर आजाद को ब्रिटिश सरकार गिरफ्तार नहीं कर पाई और आजाद ने गुप्त रूप से क्रांतिकारी गतिविधियाँ जारी रखी। इस समय पंजाब, संयुक्त प्रांत, आगरा व अवध, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, राजपूताना आदि में गुप्त क्रांतिकारी संगठन थे किंतु इस संगठनों में एकता एवं समन्वय का अभाव था।

रामप्रसाद बिस्मिल

अशफाकउल्ला खाँ

8–9 सितम्बर 1928 को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में उत्तर भारत में सक्रिय क्रांतिकारियों की बैठक हुई, जिसमें एक केन्द्रीय समिति का गठन हुआ। इस नई केन्द्रीय समिति में चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, विजयकुमार सिन्हा, शिव वर्मा, फणीन्द्र नाथ घोष, कुन्दन लाल आदि को सम्मिलित किय गया। क्रांतिकारी संगठन हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन क नाम भगत सिंह के सुझाव पर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (HSRA) कर दिया गया। इस संगठन के निर्माण में चन्द्रशेखर आजाद की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसका लक्ष्य स्वाधीनता प्राप्त करना एवं समाजवादी राज्य की स्थापना करन था। क्रांतिकारी अब संगठित क्रांतिकारी कार्यवाही में विश्वास करने लगे। बम बनाने में सहायता देने के लिए इस एसोसिएशन ने यतीन्द्र नाथ दास को कलकत्ता से पंजाब भेजा।

सांडर्स की हत्या– 30 अक्टूबर 1928 को लाहौर में साइमन कमीशन का विरोध करने वाले पंजाब के प्रमुख नेता लाल लाजपतराय अंग्रेज स्कॉट द्वारा लाठी चार्ज में घायल हो गए एक माह बाद उनकी मृत्यु हो गयी। इसका बदला लेने के उद्देश्य से 17 दिसम्बर 1928 को भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और राजगुरू ने लाहौर में स्कॉट को मारने का निश्चय किया किंतु धोखे में उसके सहायक सांडर्स की हत्या हो गई।

सांडर्स की हत्या के बाद हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन ने पोस्टर लगाए, जिन पर लिखा था ''लाखों लोगों के चहेते नेता की एक सिपाही द्वारा हत्या पूरे देश का अपमान था। इसका बदला लेना भारतीय युवकों का कर्त्तव्य था। सांडर्स की हत्या का हमें दुःख है पर वह उस अमानवीय और अन्यायी व्यवस्था का एक अंग था, जिसे नष्ट करने के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं।'' सांडर्स हत्याकांड के लिए ब्रिटिश सरकार ने 'लाहौर षड़यंत्र केस' चलाकर 23 मार्च 1931 को भगत सिंह राजगुरू एवं सुखदेव को फाँसी दे दी।

केन्द्रीय विधानसभा बम कांड– केन्द्रीय विधानसभा में 8 अप्रैल 1929 को पब्लिक सेफ्टी बिल और ट्रेड यूनियन बिल पास हो रह था। इसी समय भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली में केन्द्रीय विधानसभा के केन्द्रीय हॉल में खाली बेंचों पर बम फेंककर इन बिलों के विरूद्ध अपना विरोध जताया।

चन्द्रशेखर आजाद– इनका जन्म 23 जुलाई 1906 को मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के भाबरा गाँव में हुआ। इनके पित सीताराम तिवारी एवं माता जगरानी देवी थी। वे अपने घर को छोड़कर काशी आ गये और संस्कृत विद्यालय में पढ़ने लगे इन्होंने बनारस में रहते हुए असहयोग आंदोलन में भाग लिया पकड़े जाने पर जब मजिस्ट्रेट ने इनसे जानकारी माँगी तब इन्होंने अपना नाम 'आजाद', पिता का नाम 'स्वतंत्रता' एवं निवास स्थान 'कारागार' बताया। मजिस्ट्रेट ने इस बालक को 14 बेत की सजा सुनाई। बेंत पड़ते समय इन्होंने 'वन्देमातरम्' के नारे लगाए। वीरता के लिए बनारस में इनका अभिनन्दन किया गया काकोरी ट्रेन लूट एवं सांडर्स हत्याकांड में आजाद ने भूमिक निभाई। इनके नेतृत्व में दिसम्बर 1930 में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी ने दिल्ली के निकट वायसराय लार्ड इर्विन की रेलगाड़ी को बम से उड़ाने का प्रयास किया किंतु वायसराय इसमे बच गया।

27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क मे सुखदेव राज से बातचीत के समय इन्हें एक भेदिए ने पहचान

लिया और पुलिस को सूचित कर दिया। पुलिस अधीक्षक नाटबावर ने इन्हें घेर लिया। इन्होंने बड़ी वीरता से पुलिस का सामना किया। इन्होंने अपने पास आखरी गोली बची देख अपनी कनपटी पर गोली चलाकर मृत्यु को वरण किया। अंग्रेज सरकार आजाद को जीवित रहते हुए नहीं पकड़ सकी।

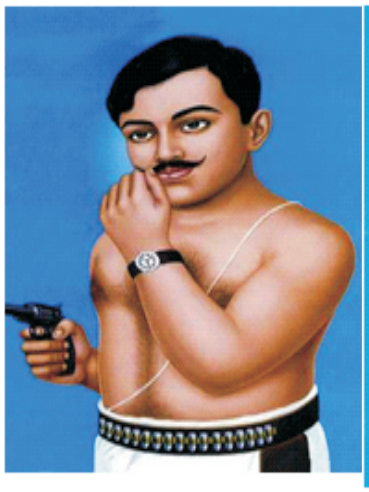

चन्द्रशेखर आजाद

भगत सिंह

भगत सिंह– भगत सिंह का जन्म 23 सितम्बर 1907 को पंजाब के लायलपुर जिले के बंगा नामक स्थान पर हुआ। इनके पिता का नाम किशन सिंह एवं माता का नाम विद्यावती देवी था।राष्ट्रभक्ति की भावना इन्हें विरासत में मिली थी। इनके चाचा अजीत सिंह एवं स्वर्णसिंह क्रांतिकारी थे और देश के लिए जेल जा चुके थे। अजीतसिंह लाला लाजपतराय के साथ मांडले जेल में रहे। जिस दिन अजीतसिंह जेल से छूटकर आए उसी दिन भगतसिंह का जन्म हुआ, इसलिए इनका नाम भाग्यवाला–भगतसिंह रखा गया। इन्होंने लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में अध्ययन किया।

लाहौर में शचीन्द्र सान्याल से मिलने के बाद ये क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय हो गये। शचीन्द्र सान्याल ने इन्हें क्रांतिकारी गतिविधियों के प्रशिक्षण के लिए कानपुर भेजा। कानपुर में भगतसिंह ने गणेशशंकर विद्यार्थी के समाचारपत्र 'प्रताप' में 'बलवन्त' के नाम से क्रांतिकारी लेख लिखे। 1926 ई. में 'नौजवान सभा' का गठन कर क्रांतिकारियों से सम्पर्क किया।

भगतसिंह ने 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा दिया। सांडर्स हत्याकांड एवं केन्द्रीय विधानसभा बमकांड में इनकी प्रमुख भूमिका थी। लाहौर षडयंत्र केस में भगतसिंह को राजगुरू एवं सुखदेव के साथ 23 मार्च 1931 को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

महाराष्ट्र के राजगुरू जब वीर सावरकर का भाषण सुनने के लिए काशी विश्वविद्यालय में गए थे तब इनकी भेंट भगतसिंह से हुई। इन्होंने शारीरिक शिक्षक के रूप में कार्य किया। सांडर्स हत्याकांड में भगतसिंह के साथ थे। सांडर्स को पहली गोली राजगुरू ने ही मारी थी। सुखदेव भगतसिंह के बचपन के साथी थे। भगतसिंह को क्रांतिकारी मार्ग पर लाने का श्रेय सुखदेव को जाता है। भगतसिंह अपने दल के नेता थे और सुखदेव उस दल के संगठनकर्ता।

भारत के विभिन्न भागों में क्रांतिकारी घटनाएँ होती रहीं। बंगाल के सूर्यसेन के नेतृत्व में पूर्वी बंगाल के चटगाँव के शस्त्रागार पर अप्रैल 1930 में क्रांतिकारियों ने हमला किया। इन्होंने शस्त्रागार को लूट लिया। सूर्यसेन पकड़े गये और इन्हे फाँसी की सजा दी गई।

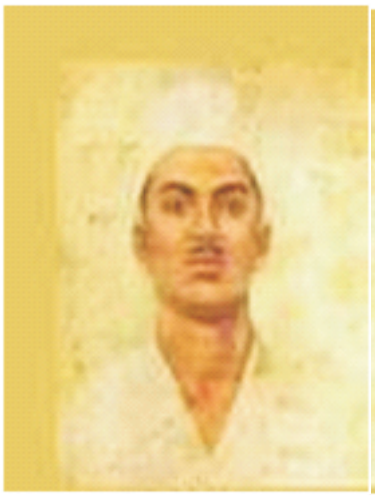

राजगुरू

सुखदेव

आजाद हिन्द फौज

द्वितीय विश्वयुद्ध में दिसम्बर 1941 में जापानियों ने उत्तर मलाया में ब्रिटिश सेना को पराजित कर दिया। इसके बाद मलाया में केप्टन मोहन सिंह के मन में आजाद हिन्द फौज के गठन का विचार आया। ब्रिटिश भारतीय सेना के केप्टन मोहनसिंह ने भारतीय सैनिकों के साथ जापानी फौज के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। फरवरी 1942 को सिंगापुर के पतन के बाद 40,000 भारतीय युद्ध बंदियों को जापानी मेजर फूजीहारा ने केप्टन मोहनसिंह को सौंप दिया।

23 जून 1942 को बैंकाक में रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में 'भारतीय स्वतंत्रता लीग' की स्थापना की गयी। बैंकाक सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि भारतीय सैनिकों एवं पूर्व एशिया के भारतीय नागरिकों को लेकर भारतीय राष्ट्रीय सेना बनाई जाए। 1 सितम्बर 1942 को भारतीय युद्ध बंदियों को लेकर 'आजाद हिंद फौज' की स्थापना की गयी। इसकी पहली डिवीजन के गठन के साथ की नियमतः इसकी स्थापना 1 सितम्बर 1942 को हो गयी। रासबिहारी बोस द्वारा निमंत्रण मिलने पर सुभाषचंद्र बोस जर्मनी पनडुब्बी द्वारा जापान गए। जून 1943 में सुभाषचंद्र बोस जापान के टोक्यो पहुँचे। सुभाषचंद्र बोस ने टोक्यो रेडियो पर ब्रिटिश शासन के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति की घोषणा की। सुभाषचंद्र बोस सिंगापुर पहुँचे, जहाँ 4 जुलाई 1943 को रासबिहारी बोस ने पूर्व एशिया में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व सुभाषचंद्र बोस को सौंप दिया। सुभाषचंद्र बोस 'भारतीय स्वतंत्रता लीग' के अध्यक्ष बने। सुभाषचंद्र बोस ने 21 अक्टूबर 1943 को सिंगापुर के कैथहाल में अस्थायी भारतीय सरकार की स्थापना की घोषणा की। जापान, जर्मनी, इटली, बर्मा, चीन, थाइलैंड, फिलीपींस, मंचूरिया आदि की सरकारों ने आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार को मान्यता प्रदान कर दी। सुभाषचंद्र बोस ने जापान के सेनाध्यक्ष को इस बात के लिए

सहमत कर लिया कि भारत–बर्मा सीमा पर आजाद हिन्द फौज भी जापानी सेना के साथ अंग्रेजी सेना के विरूद्ध युद्ध करेगी।

सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के समक्ष 'दिल्ली चलो' का नारा दिया। उन्होंने अपने भाषण में कहा ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।'' सुभाषचंद्र बोस ने महात्मा गांधी के लिए राष्ट्रपिता शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने रेडियो पर गांधी जी को सम्बोधित करते हुए कहा ''भारत की स्वाधीनता का आखिरी युद्ध प्रारंभ हो चुका है। राष्ट्रपिता भारत की मुक्ति के इस पवित्र युद्ध में हम आपका आशीर्वाद और शुभकामनाएँ चाहते हैं।'' आजाद हिन्द फौज का मुख्यालय रंगून एवं सिंगापुर में बनाया गया। गांधी, सुभाष एवं नेहरू ब्रिगेड बनायी गयी। झांसी रानी रेजीमेंट के रूप में महिलाओं का दल बनाया गया।

अंडमान एवं निकोबार टापुओं को अधिकार में लेकर आजाद हिन्द की अस्थाई सरकार ने अंडमान का नाम शहीद द्वीप एवं निकोबार का नाम स्वराज द्वीप रखा। इन द्वीपों पर भारत का झण्डा फहराया गया। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों ने जापानी फौज के साथ कोहिमा पर कब्जा कर भारत का तिरंगा झंडा फहराया। आजाद हिन्द फौज इम्फाल तक पहुँच गयी। जून 1944 के बाद जापान आगे नहीं बढ़ सका और आजाद हिन्द फौज को रसद सामग्री, गोला बारूद एवं दवाइयों की कमी के कारण बहुत परेशानी उठानी पडी। अगस्त 1945 में जापान ने अपनी पराजय के बाद आत्मसमर्पण कर दिया। सुभाषचंद्र बोस 18 अगस्त 1945 को फारमोसा के ताईहोकू हवाई अड्डे से विमान से जैसे ही रवाना हुए विमान में आग लग गयी। जापानी सूत्रों के अनुसार सुभाष चंद्र बोस को घायल अवस्था में अस्पताल पहुँचाया गया।

जापान के युद्ध में पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों एवं सैनिकों को गिरफ्तार कर युद्ध बंदी के रूप में भारत लाया गया। शहनवाज खां, गुरूदयाल सिंह ढिल्लो एवं कर्नल सहगल पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाया गया। आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों एवं सैनिकों की रिहाई के लिए देश में आंदोलन हुआ। भूलाभाई देसाई, तेज बहादुर सप्रू, कैलाशनाथ काटजू, आसफ अली, जवाहर लाल नेहरू आदि ने बचाव पक्ष के वकील के रूप में न्यायालय में इन अधिकारियों के मुकदमें की पैरवी की । सैनिक न्यायालय ने इन अधिकारियों को मृत्युदंड की सजा दी। पूरे देश में इस निर्णय के विरूद्ध जनआंदोलन हो गया। भारतीय जनता की तीखी प्रतिक्रिया को देखते हुए तत्कालीन वायसराय लार्ड वेवल ने अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए इनकी सजा माफ कर दी।

आजाद हिन्द फौज के त्याग एवं बलिदान ने भारतीयों के मन में स्वतंत्रता की भावना को और तीव्र कर दिया। अब लोग शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के बचाव के लिए चलाए जा रहे आंदोलन में विभिन्न वर्ग के लोग सम्मिलित हुए। राजनीतिक दलों के साथ व्यवसायी, भारतीय ब्रिटिश सैनिक, युवा आदि बहुत बड़ी संख्या में इनके बचाव के पक्ष में आ गए। छात्र कक्षा का बहिष्कार करने लगे। व्यवसायियों ने अपनी दुकानें बंद की। इसका प्रभाव ब्रिटिश नौ सेना एवं थल सेना पर भी पड़ा। फरवरी 1946 में बंबई की नौ सेना के विद्रोहियों ने आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को छोड़ने की माँग की। गुप्तचर ब्यूरो के निदेशक ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को रिहा करने के लिए चलाए जा रहे आंदोलन के बारे में कहा ''शायद ही कोई और मुद्दा हो जिसमें भारतीय जनता ने इतनी दिलचस्पी दिखाई हो और यह कहना गलत नहीं होगा कि जिसे इतनी व्यापक सहानुभूति मिली हो।''

सुभाषचन्द्र बोस– सुभाषचन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी 1897 को उड़ीसा के कटक में हुआ। इनके पिता जानकीदास एवं माता प्रभावती थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कटक में हुई। इन्होंने उच्च शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राप्त की। 1920 ई. में इन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आई.सी.एस. जैसी नौकरी छोड़कर इन्होंने देश सेवा का संकल्प लिया। इनके राजनीतिक गुरू देशबंधु चितरंजन दास थे, जिनके मार्गदर्शन में इन्होंने कार्य किया।

सुभाषचन्द्र बोस ने असहयोग आंदोलन में बड़ी सक्रियता से भाग लिया। दिसम्बर 1921 में इन्हें गिरफ्तार कर 6 माह की कैद की सजा सुनाई गयी। गांधी के असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने पर इन्होंने दुःख व्यक्त किया। जब चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू ने 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना की तब इन्होंने स्वराज्य दल के विचारों का प्रचार किया। 1924 ई. में चितरंजनदास के कलकत्ता के महापौर बनने पर इन्हें कलकत्ता निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाया गया। क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण अंग्रेज सरकार ने इन्हें गिरफ्तार कर

सुभाषचन्द्र बोस

लिया। इन्हें तीन वर्ष के लिए बर्मा के मांडले जेल में निर्वासित कर दिया। इन्होंने 1928ई. में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट की औपनिवेशक स्वराज्य की माँग का विरोध किया और पूर्ण स्वाधीनता दिए जाने बात कही। सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (1938ई.) में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। अगले वर्ष कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन (1939ई.) मे भी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में इन्होंने महात्मा गांधी के

प्रत्याशी पट्टाभिसीतारम्मैया को पराजित किया था। कांग्रेस कार्यकारिणी में गांधी के समर्थकों का बहुमत था। महात्मा गांधी से सुभाषचन्द्र बोस के वैचारिक मतभेद थे। कांग्रेस की कार्यकारिणी से मतभेद होने पर सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। सुभाषचन्द्र बोस के इस्तीफा देने के बाद राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के अध्यक्ष बनाए गए। मई 1939 में सुभाषचन्द्र बोस ने नए दल 'फारवर्ड ब्लॉक' की स्थापना की। सुभाषचन्द्र बोस को आगामी तीन वर्षों के लिए कांग्रेस के किसी भी निर्वाचित पद के लिए प्रतिबंधित कर दिया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध में इन्होंने भारतीयों से अंग्रेजों को सहायता न देने की अपील की। वे भारत की स्वतंत्रता के लिए ब्रिटेन के विरोधी देशों से सैनिक सहायता प्राप्त करने के पक्षधर थे। 2 जुलाई 1940 को भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में इन्होंने आमरण अनशन शुरू कर दिया। इस पर इन्हें जेल से रिहा कर कलकत्ता के एलिगन रोड पर स्थित इनके घर पर कड़े पहरे के साथ नजरबंद कर दिया गया। 16 जनवरी 1941 को ये अंग्रेजों को चकमा देकर घर से निकल गए। ये पठान के वेश में छुपते हुए काबुल पहुँचे। वहाँ से रूस होते हुए जर्मनी के बर्लिन पहुँचे। जर्मनी में सुभाषचन्द्र बोस ने हिटलर से मुलाकात की। जर्मनी में इन्हें 'नेताजी' कहकर पुकारा गया। रासबिहारी बोस के निमंत्रण पर सुभाषचन्द्र बोस जापान पहुँचे और आजाद हिन्द फौज की कमान सम्भाली। जापानी सूत्रों के अनुसार वायुयान दुर्घटना में 18 अगस्त 1945 को इनकी मृत्यु हो गयी किन्तु इनकी मृत्यु को लेकर संशय की स्थिति बनी रही।

राजनैतिक आंदोलन
(1885–1907)

राष्ट्रवाद का उदय एवं विकास

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय भावना के विकास के परिणामस्वरूप राजनीतिक आंदोलन का सूत्रपात हुआ। भारतीयों ने राजनीतिक आंदोलन के माध्यम से अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए एक लंबा संघर्ष किया। अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना के उदय के निम्न कारण थे–

शोषणकारी आर्थिक नीति– आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का उदय विदेशी प्रभुत्व को चुनौती देने के रूप में हुआ। अंग्रेजी शोषणकारी आर्थिक नीतियों से भारतीय कृषि, परंपरागत उद्योग एवं हस्तशिल्प नष्ट होने लगे। भारतीय समाज के आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन आने लगा। सर्वप्रथम यह परिवर्तन भूमि एवं कृषि व्यवस्था में आया। गाँवों की आत्मनिर्भरता को समाप्त किया गया। भूमि कर या लगान की राशि अधिक थी। कृषि का वाणिज्यीकरण किया गया। अब किसानों पर विशेष प्रकार की फसलें रुई, जूट आदि उत्पादित करने के लिए दबाव डाला जाने लगा। जंगल कानून अधिकार पारित कर चारागाहों एवं जंगल की भूमि के उपयोग करने के अधिकार छीन लिए गए। ब्रिटेन के व्यापारियों के हित में भारतीय उद्योग धंधों को नष्ट किया जाने लगा। ब्रिटिश नीति के परिणामस्वरूप सबसे पहले भारत का वस्त्र उद्योग नष्ट हुआ। ब्रिटेन ने अपने उद्योगों के लिए भारत को कच्चे माल उत्पादक देश के रूप में परिवर्तित किया। अंग्रेजों ने ब्रिटेन के कारखानों में बनी वस्तुओं की खपत के लिए भारत का एक मंडी के रूप में उपयोग किया। भारतीय हस्तकार एवं शिल्पी बर्बाद होने लगे। ब्रिटेन के पूंजीपतियों ने चाय बागान, कोयला खानों, रेलवे, बैकों आदि में अपनी पूँजी लगाई। स्वदेशी उद्योगों के पतन से भारत की गरीबी में वृद्धि हुई।

अंग्रेजी शासन में भारतीय समाज में नए वर्ग का उदय हुआ। अंग्रेजों की शोषण नीति से इस वर्ग के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक हितों का एकीकरण हुआ। मजदूर, पूँजीपति, व्यापारी, बुद्धिजीवी मध्यम वर्ग आदि में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई।

प्रशासनिक एकीकरण– अंग्रेजी सरकार ने अपने हितों के लिए एक समान कानून एवं एक प्रकार की न्याय व्यवस्था स्थापित की। एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था से भारतीय लोगों में पारस्परिक संपर्क बढ़ा। इसके परिणामस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ।

यातायात एवं संचार के साधनों का विकास– रेलवे, मोटर और आवागमन के अन्य आधुनिक साधनों ने सामाजिक स्तर पर भारतीयों को एक सूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आवागमन के साधन अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा के माध्यम थे किन्तु इसने भारतीयों को राजनीतिक आंदोलन के लिए संगठित करने का कार्य किया। तार, डाक आदि संचार के साधनों ने विचार के आदान–प्रदान एवं राजनीतिक आंदोलनों के कार्यक्रम निश्चित करने में सहायता प्रदान की।

प्रेस एवं साहित्य की भूमिका– प्रेस ने राष्ट्रीय चेतना के उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने लोगों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान दी। आर्थिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रचार किया। ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों एवं कार्यवाहियों की आलोचना की। अंग्रेजों के दुर्व्यवहार, भारतीयों के साथ जातीय भेदभाव आदि के समाचार मुख्य रूप से समाचार पत्रों में छपने लगे। समाचार पत्रों के माध्यम से जनता के मध्य जनतंत्र, प्रतिनिधि सरकार, स्वाधीनता आदि विचारों का प्रचार हुआ। संवाद कौमुदी, सोमप्रकाश, हिन्दू पेट्रियट, अमृत बाजार पत्रिका, बंगाली, हिंदू आदि राष्ट्रवादी विचारों का प्रसार करने वाले समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ।

देशभक्तिपूर्ण साहित्य ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में प्रमुख भूमिका निभाई। आधुनिक हिंदी के पिता भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1876 में 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक में अंग्रेजी शासन में भारत की दुर्दशा का दर्शाया। उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली, बंगला में बंकिमचंद्र चटर्जी, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलुणकर आदि ऐसे राष्ट्रवादी साहित्यकार हुए जिनकी रचनाओं ने राष्ट्रवादी भावना को जागृत किया।

सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलन– राजा राममोहन राय के

ब्रह्म समाज, दयानंद सरस्वती के आर्य समाज एवं स्वामी विवेकानंद के रामकृष्ण मिशन ने भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों को समाप्त कर सामाजिक रूप से भारतीयों को एक करने का प्रयास किया। भारतीय संस्कृति के गौरव को उजागर कर आत्मसम्मान की भावना का विकास किया। इन सुधार आंदोलनों ने भारतीयों में राष्ट्रवादी भावना उत्पन्न की।

जातीय भेदभाव– ब्रिटिश सरकार एवं अंग्रेजों की जातीय भेद की नीति के कारण भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना भर गयी। यह अधिकांश देखने में आता था कि रेल के एक ही डिब्बे में अंग्रेज भारतीयों को अपने साथ यात्रा करने की अनुमति नहीं देते थे। भारतीय यूरोपीय लोगों के क्लब में नहीं जा सकते थे।

आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा– पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने यूरोपीय राष्ट्रों के समसामयिक राष्ट्रवादी आंदोलनों का अध्ययन किया। वे मैजिनी, गैरीबाल्डी जैसे नेताओं के कार्यों से प्रभावित हुए। बर्क, मिल आदि के विचारों से परिचित हुए और एक मजबूत एवं एकताबद्ध भारत को बनाने का प्रयास करने लगे।

लार्ड लिटन की नीति– गवर्नर जनरल लार्ड लिटन के कार्यों ने भारतीयों में असंतोष की भावना भर दी। इसने 1877 ई. में भयंकर अकाल के समय भव्य 'दिल्ली दरबार' का आयोजन किया, जिसमें ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया गया। 1878 ई. के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट द्वारा भारतीय समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाया गया। 1878 ई. में शस्त्र एक्ट द्वारा भारतीयों के शस्त्र रखने पर प्रतिबंध लगाया गया।

इल्बर्ट बिल विवाद– लार्ड रिपन के समय 1883 ई. में उसकी परिषद के विधि सदस्य पी.सी. इल्बर्ट ने एक विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे इल्बर्ट बिल कहा गया। इस प्रस्ताव में भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियनों के मुकदमों का निर्णय का अधिकार दिए जाने का प्रावधान था किंतु यूरोपियनों के विरोध के कारण यह बिल पारित नहीं हो पाया।

विभिन्न संस्थाओं की स्थापना– ईस्ट इंडिया एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, इंडियन एसोसिएशन, मद्रास महाजन सभा, बंबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन, इंडियन नेशनल कांग्रेस आदि ऐसी संस्थाओं की स्थापना हुई, जिसने राजनीतिक चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1885 के पूर्व की स्थिति एवं विभिन्न संगठन

19 वीं सदी में सामाजिक–धार्मिक सुधारवादी संगठनों के साथ ही कई राजनीतिक संगठनों का गठन हुआ। ये संगठन वर्गीय हितों के आधार पर गठित हुए। जमींदारों, व्यापारियों एवं शिक्षित मध्यम वर्ग ने अपने वर्ग के हितों के लिए विभिन्न संगठनों की स्थापना की। इन संगठनों ने राजनीतिक चेतना के उदय एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

लैंड होल्डर्स सोसायटी– लैंड होल्डर्स सोसायटी की सीापना 1838 ई. में कलकत्ता में हुई। यह मूलतः जमींदार वर्ग का संगठन था। यह यूरोप के बुर्जुआ वर्ग के संगठनों की भाँति भारत का पहला राजनीतिक संगठन था। इसके प्रमुख सदस्यों में प्रसन्न कुमार ठाकुर, राधाकांत देव, द्वारकानाथ ठाकुर आदि थे। जब लंदन में 1839 ई.में ब्रिटिश इंडिया सोसायटी की स्थापना हुई तब लैंड होल्डर्स सोसायटी ने उससे संबंध स्थापित कर लिया। इन्होंने ब्रिटिश संसद में अपनी बात को रख कर ब्रिटिश जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया।

बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी– बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी की स्थापना 20 अप्रैल 1943 को कलकत्ता में हुई। इसके अध्यक्ष जार्ज थांपसन एवं सचिव प्यारीचंद्र मित्र थे। यह भी लैंड होल्डर्स सोसायटी के समान ही भारतीयों एवं गैरसरकारी अंग्रेजों का संगठन था। इसमें उच्च मध्यम वर्गीय लोग थे। बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी के मंच से ही भारतीयों ने राजनीतिक शिक्षा का पहला पाठ पढ़ा।

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन– इसकी स्थापना 1851 ई. में हुई। इसके अध्यक्ष राधाकांत देव एवं सचिव देवेन्दनाथ ठाकुर थे। यह नव भारतीय जमींदारों का संगठन था। इसे व्यापक रूप देने के लिए इसमें व्यापारी एवं नवीन बुद्धिजीवियों को स्थान दिया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के चार्टर का नवीनीकरण 1853 ई. में होना था। इसने अखिल भारतीय स्तर पर चार्टर आंदोलन चलाने का प्रयास किया। तीनों प्रेसीडेंसियों में संगठन बनाकर स्मृति पत्र दिए गए। इस संस्था ने भारत के प्रशासन में भारतीयों को सम्मिलित करने की माँग की। इसने ब्रिटिश संसद से माँग की कि ऐसी संस्थाओं की स्थापना की जाए जो विधानसभाओं का कार्य करे और इनमें भारतीयों के प्रतिनिधि हो। इस एसोसिएशन के प्रमुख प्रसिद्ध सदस्यों में व्योमेश चंद्र बनर्जी (जो बाद में कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष बने), रमेशचंद्र दत्त (बाद में कांग्रेस अध्यक्ष बने), मनमोहन घोष (कलकत्ता हाई कोर्ट के प्रथम भारतीय बैरिस्टर) आदि थे।

ईस्ट इंडिया एसोसिएशन– इसकी स्थापना लंदन में 1 दिसम्बर 1866 को दादाभाई नौरोजी द्वारा की गयी। इसका उद्देश्य उचित उपायों द्वारा भारत की भलाई करना था। यह ब्रिटिश जनता और संसद को भारतीय विषयों की जानकारी देती थी। 1873 ई. में जब दादाभाई नौरोजी बड़ौदा के दीवान बनकर भारत आ गए तब अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारियों ने इस संस्था पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। दादाभाई नौरोजी भारत के पहले आर्थिक विचारक थे। उन्होंने अपने लेखन द्वारा सिद्ध किया कि भारत की गरीबी का कारण अंग्रेजों द्वारा भारत का शोषण एवं यहाँ का धन ब्रिटेन भेजना था। दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'पावर्टी एंड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया' में बताया कि भारत के धन का निष्कासन किस प्रकार इग्लैंड में हुआ। इन्हें 'भारत का पितामह' (ग्रैंड ओल्ड मेन ऑफ इंडिया) कहा जाता है। ये कांग्रेस के तीन बार अध्यक्ष रहे।

पूना सार्वजनिक सभा– इसकी स्थापना 2 अप्रैल 1870 को हुई। इसके संस्थापक गणेश वासुदेव जोशी थे, जो इसके सचिव थे। इसके सक्रिय सदस्यों में एस. एच. साठे, एस.एच.चिपलूणकर एवं महादेव गोविंद रानाडे थे। इसका उद्देश्य सरकार एवं जनता के बीच मध्यस्थ का कार्य करना था। इसे पश्चिम भारत के प्रगतिशील लोगों का प्रमुख संगठन माना जाता था। पूना सार्वजनिक सभा ने बंबई प्रेसीडेंसी में राजनीतिक चेतना का

विकास कर जनता को संगठित किया। इस संस्था के सदस्य अपनी सभाओं में देश की दयनीय दशा का चित्र लोगों के सामने रखकर उससे उबरने के उपाय बताते थे। इनकी सभाओं में कीर्तन करने वाला दल देश प्रेम के गाने गाता था।

इंडियन लीग– इंडियन लीग की स्थापना 25 सितम्बर 1875 को कलकत्ता में शिशिर कुमार घोष ने की। शिशिर कुमार घोष 'अमृत बाजार पत्रिका' के संपादक एवं मालिक थे। इसके अस्थायी अध्यक्ष शंभूचंद्र मुखर्जी थे। इस संस्था का उद्देश्य लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जगाना और राजनीतिक शिक्षा देना था।

इंडियन एसोसिएशन– इसकी स्थापना कलकत्ता में 26 जुलाई 1976 को सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं आनंद मोहन बोस ने की। यह संस्था संपूर्ण भारत को संगठित कर एक मोर्चा बनाना चाहती थी। एक अखिल भारतीय संगठन बनाने के उद्देश्य से ही इसका नाम इंडियन एसोसिएशन रखा गया।इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न थे– देश में एक सशक्त राष्ट्रीय जनमत के निर्माण के लिए प्रयत्न करना, सभी भारतीयों को सामूहिक राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक हितों के आधार पर एक करने का प्रयत्न करना, हिन्दू और मुस्लिमों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न करना, राजनीतिक आंदोलनों में जनसाधारण को सम्मिलित करना ।

इस संगठन ने वायसराय लिटन द्वारा सिविल सेवा की आयु को 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष किए जाने, वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (1878 ई.) एवं शस्त्र कानून (1878 ई.) बनाये जाने के विरूद्ध आंदोलन किया। लार्ड रिपन के समय के इलबर्ट बिल के संबंध में चले आंदोलन में इस संगठन की प्रमुख भूमिका थी। जज की आलोचना के बाद सरकार ने मई 1883 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी को गिरफ्तार कर लिया था। उन्हें दो महीने बाद 4 जुलाई 1883 में रिहा किया गया।

मद्रास महाजन सभा– 16 मई 1884 को मद्रास महाजन सभा की स्थापना हुई। पी. रंगिया नायडू इसके अध्यक्ष और वी. राघवाचारी तथा आनंद चार्लू सचिव थे। यह मद्रास प्रेसीडेंसी की केन्द्रीय राजनीतिक संस्था बन गयी। मद्रास महाजन सभा ने विधानपरिषदों में सुधार, कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण, सरकारी ढाँचे में परिवर्तन, किसानों की समस्याओं आदि पर अपने सम्मेलन में विचार–विमर्श किया।

बंबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन– 31 जनवरी 1885 को बंबई प्रेसीडेंसी की स्थापना हुई। बंबई के नागरिकों की एक सभा सर जमरोद जीजा बाई की अध्यक्षता में बुलाई गयी,जिसमें इस संस्था के गठन की घोषणा की गयी। काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग, बदरूद्दीन तैयबजी एवं फिरोजशाह ने इसके निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई। इसने बंबई प्रेसीडेंसी में जनजागृति का कार्य किया।

इंडियन नेशनल कांफ्रेस– इंडियन एसोसिएशन ने देश के विभिन्न एसोसिएशन एवं व्यक्तियों को लेकर 29–30 दिसम्बर 1883 को रामतनु लाहिडी की अध्यक्षता में कलकत्ता के अल्बर्ट हॉल में राष्ट्रीय सम्मेलन किया। इसमें बंगाल के अतिरिक्त अहमदाबाद, मद्रास और उत्तर भारत के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इस प्रकार एक संयुक्त अखिल भारतीय राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की दिशा में यह प्रथम प्रयास था। इस सम्मेलन में सिविल सर्विस की परीक्षा भारत में लिए जाने एवं इसमें बैठने की आयु सीमा बढ़ाने, भारत में प्रतिनिधि विधानसभाओं की स्थापना करने आदि के संबंध में चर्चा हुई। द्वितीय इंडियन नेशनल कांफ्रेस कलकत्ता में 25–27 दिसम्बर को हुई। इसी समय ह्यूम ने इंडियन नेशनल कांग्रेस का सम्मेलन बंबई में रखा था। इस कारण सुरेन्द्रनाथ बनर्जी बंबई के 28–30 दिसम्बर के कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सम्मिलित न हो सके।

कांग्रेस की स्थापना एवं उद्देश्य

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व स्थापित विभिन्न राजनीतिक संगठनों ने भारत में राजनीतिक चेतना एवं राष्ट्रीयता की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। देश के विभिन्न भागों में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे आंदोलनों को एकसूत्र में बाँधकर राष्ट्रीय आंदोलन को संगठित करने की भावना प्रबल होती जा रही थी। एक देशव्यापी संगठन की आवश्यता से कांग्रेस का जन्म हुआ।

ह्यूम ने 1 मार्च 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक पत्र लिखकर भारतीय जनता का एक राजनीतिक संगठन बनाने की अपील की। मई 1885 में ह्यूम वायसराय डफरिन से शिमला में मिले। उन्होंने डफरिन से कांग्रेस की स्थापना के पहले सलाह लेकर समर्थन प्राप्त किया। जुलाई 1885 में ह्यूम इंडियन नेशनल यूनियन के प्रतिनिधि के रूप में ब्रिटेन गए एवं राजनेताओं से बातचीत की। कांग्रेस की स्थापना के पूर्व इसका नाम 'इंडियन नेशनल यूनियन' रखना तय हुआ था। अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारी एलेन अक्टावियन ह्यूम द्वारा उदारवादी बुद्धिजीवियों के सहयोग से दिसम्बर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गयी।

कांग्रेस का प्रथम सम्मेलन पूना में होना था। पूना में हैजा फैल जाने के कारण यह सम्मेलन बंबई में हुआ। कांग्रेस का प्रथम सम्मेलन 28 दिसम्बर 1885 को बंबई के ग्वालिया टैंक स्थित गोकुलदास तेजपाल संस्कृत स्कूल में उमेशचंद्र बेनर्जी की अध्यक्षता में हुआ। इसमें 72 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इनमें बंबई, मद्रास, बंगाल प्रेसीडेंसी, पंजाब, उत्तर पश्चिमी प्रदेश और अवध आदि के प्रतिनिधि थे। इंडियन नेशनल यूनियन के स्थान पर इसका नाम 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' रखा गया। 'कांग्रेस' शब्द अमेरिका के इतिहास से लिया गया है जिसका अर्थ होता है 'लोगों का समूह'। कांग्रेस के प्रथम सम्मेलन में सम्मिलिन होने वाले प्रमुख नेता दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, काशीनाथ तैलंग, दिनेश वाचा आदि थे। प्रारंभ में कांग्रेस ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए अपने सीमित लक्ष्य रखे। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन्होंने वैधानिक आंदोलन का मार्ग अपनाया। इसने देश के विभिन्न भागों में राजनीतिक चेतना जागृत कर लोगों को राजनीतिक रूप से शिक्षित एवं संगठित करने का कार्य किया।

कांग्रेस के उद्देश्य– कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष डब्लू. सी.बनर्जी ने कांग्रेस के चार उद्देश्य बताए–

1. देशहित के लिए कार्य करने वाले विभिन्न भागों के भारतीयों के बीच व्यक्तिगत संपर्क एवं मित्रता स्थापित करना।
2. देशप्रेमियों के बीच जाति, धर्म या प्रांतीय विद्वेष को मिटाना

और राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित एवं दृढ़ करना।

3. महत्वपूर्ण राजनीतिक एवं सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित वर्ग के मत को व्यक्त करना।

4. उन नीतियों एवं उपायों को निर्धारित करना जो आगे के वर्ष में सार्वजनिक हित के लिए राजनीतिज्ञों के लिए आवश्यक हो।

कॉंग्रेस की प्रमुख माँगों में रॉयल कमीशन की नियुक्ति, विधायिका सभा या कौंसिलों में अधिक संख्या में चुने हुए प्रतिनिधि लिए जाएँ, उत्तर पश्चिम प्रदेश एवं पंजाब में ऐसी कौंसिलें बनाई जाएँ, इन कौंसिलों को बजट पर बहस करने का अधिकार दिया जाएँ, सिविल सर्विस की परीक्षा ब्रिटेन के साथ भारत में भी आयोजित की जाएँ, सेना के खर्च में कमी की जाएँ आदि थीं। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों का समर्थन करने का अनुरोध देश के विभिन्न राजनीतिक संगठनों से किया गया। कॉंग्रेस का दूसरा अधिवेश 28 दिसम्बर 1886 को कलकत्ता में करने का निश्चय किया गया। ए.ओ. ह्यूम कांग्रेस के महासचिव चुने गए। कॉंग्रेस के प्रथम अधिवेशन का समापन करते हुए ए. ओ. ह्यूम ने ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया की प्रशंसा की। यदि ह्यूम ने शिक्षित भारतीयों के बढ़ते असंतोष को रोकने के लिए कांग्रेस का 'सुरक्षा वाल्व' (safty valve) के रूप में उपयोग कहना चाहा तो उदारवादी बुद्धिजीवी कांग्रेसी नेताओं ने अंग्रेजी प्रहार से बचने के लिए इसे तड़ित चालक (lightning conductor) के रूप में उपयोग करने का प्रयास किया।

कॉंग्रेस के प्रथम अधिवेशन में भारत के विभिन्न वर्ग के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कांग्रेस प्रतिवर्ष दिसम्बर में देश के विभिन्न स्थानों पर अपने अधिवेशन करने लगी। कलकत्ता में हुए कॉंग्रेस के दूसरे अधिवेशन की अध्यक्षता दादाभाई नौरोजी ने की। मद्रास में 1887 ई. में हुए कॉंग्रेस के तीसरे अधिवेशन की अध्यक्षता बदरूद्दीन तैयबजी ने की। ये कॉंग्रेस के प्रथम मुस्लिम अध्यक्ष थे। 1888 ई. में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष जार्ज यूल थे। ये कॉंग्रेस के पहले यूरोपीय अध्यक्ष थे। 1889 ई. में कॉंग्रेस के बंबई अधिवेशन में अध्यक्ष विलियम वेडनबर्न बने।

1885 ई. से 1907 ई. तक की कार्यप्रणाली

उदारवादी युग (1885ई. से 1905ई.)– कॉंग्रेस के 1885 से 1905 तक के युग को उदारवादी युग कहा गया। इस काल में उदारवादी भारतीय नेताओं का दृष्टिकोण सुधारवादी था। इन्होंने संवैधानिक तरीके से अपनी माँगों को ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखा। अपनी माँगों को इन्होंने प्रार्थनाओं, स्मृतिपत्रों आदि के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के सामने प्रस्तुत किया। उनका उद्देश्य बड़ी संख्या में भारतीय जनता को राष्ट्रवादी राजनीति की धारा में लाना था। वे भारतीयों को राजनीतिक रूप से शिक्षित कर जनजागृति लाना चाहते थे। उनका मानना था कि भारत एवं ब्रिटेन दोनों स्थानों पर भारतीय जनता की माँगें न्यायसंगत बताकर ब्रिटिश शासकों की सहानुभूति प्राप्त कर सके है और उन्हें न्याय प्राप्त हो सकता है। इस संबंध में कॉंग्रेस ने अपने विभिन्न प्रतिनिधिमंडल ब्रिटेन भेजे। इन प्रतिनिधिमंडलों ने ब्रिटिश संसद एवं ब्रिटिश जनता को भारतीयों की मांगों के औचित्य के बारे में बताया।

इस काल में कॉंग्रेस ने सरकार से विरोध करने की नीति नहीं अपनाई। इस समय के उदारवादी नेताओं का मानना था कि अंग्रेजी सरकार से सीधा संघर्ष करना अभी व्यावहारिक नहीं है। कॉंग्रेस के प्रमुख उदारवादी नेताओं में दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, दिनेश वाचा आदि थे। उदारवादियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू की कड़ी आलोचना की और भारतीय जनता में आर्थिक चेतना जागृत की। कृषि, व्यापार एवं उद्योग आदि के क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण को उजागर किया। भारत के आर्थिक पिछड़ेपन एवं गरीबी का कारण अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण करना बताया। उदारवादियों ने माँग की कि राष्ट्रीय आर्थिक नीति इंग्लैंड के हितों के आधार पर नहीं बनानी चाहिए बल्कि भारत के हितों के आधार पर बननी चाहिए। इन्होंने औपनिवेशिक साम्राज्यवादी आर्थिक नीति के विरूद्ध एक आंदोलन खड़ा किया गया। भारत का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण, भारतीय उद्योगों का संरक्षण,भू राजस्व को कम

दादाभाई नौरोजी

फिरोजशाह मेहता

करना, सिंचाई सुविधाओं का प्रसार करने आदि की माँग की। औद्योगिक प्रदर्शनियाँ लगाना कॉंग्रेस के कार्यक्रम का एक भाग बन गया।

उदारवादियों ने प्रशासनिक सुधार से संबंधित कई मांगें रखी। इन मांगों में लोक सेवाओं में भारतीयों की नियुक्ति, लोक सेवाओं का भारतीयकरण करना, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के कार्यों का पृथक्करण, शस्त्र कानून को हटाना, सेना संबंधी खर्चों में कमी करना आदि प्रमुख थीं। इस काल में उदारवादी संवैधानिक तरीके से विधायी परिषदों में सुधार की मांग उठाते रहे। ब्रिटिश सरकार द्वारा 1892 ई. का अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा केन्द्र एवं प्रांतीय विधायी परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी। एक प्रकार से अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली की व्यवस्था की गयी। सदस्यों को प्रश्न पूछने एवं बजट पर बहस करने का अधिकार दिया गया। भारतीय 1892 के अधिनियम से संतुष्ट नहीं थे और उन्होंने अधिक अधिकार दिए जाने की माँग उठाई।

उदारवादी भाषण की स्वतंत्रता, विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन बनाने की स्वतंत्रता आदि नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहे। इस काल में कॉंग्रेस को अधिक सफलता नहीं मिल पाई। फिर भी उन्होंने भारतीयों को

सामान्य राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक हितों के प्रति जागरूक किया। जनता को राजनीतिक कार्य के लिए प्रशिक्षित किया। जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रवादी विचारों को जनता तक पहुँचाया।

ब्रिटिश सरकार की काँग्रेस के प्रति नीति– 1886 ई. में वायसराय डफरिन ने काँग्रेस के प्रतिनिधियों के लिए कलकत्ता में स्वागत समारोह किया। 1888 ई. में काँग्रेस के स्वरूप के बदलने से ब्रिटिश सरकार कांग्रेस के प्रति शंकालु हो गयी। डफरिन ने 1888 ई. में काँग्रेस को भारतीय जनता के बहुत सूक्ष्म भाग का प्रतिनिधि बताया। वायसराय कर्जन काँग्रेस को समाप्त करना चाहता था। 1900 ई. में लार्ड कर्जन ने भारत सचिव को लिखा ''काँग्रेस धीरे–धीरे लड़खड़ाकर गिर रही है और भारत में रहते हुए मेरी बहुत बड़ी आकांक्षा है कि मैं इसकी शांतिपूर्ण मृत्यु में सहायक बनूं।''

राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास एवं भारतीयों में बढ़ती एकता की भावना से ब्रिटिश सरकार चिंतित होने लगी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो एवं राज करो' की नीति का अनुसरण किया। सर सैयद अहमद खाँ एवं अन्य ब्रिटिश समर्थकों को काँग्रेस विरोधी आंदोलन प्रारंभ करने के लिए प्रोत्साहित किया। हिंदुओं एवं मुस्लिमों के बीच फूट डालने का प्रयास किया। सर सैयद अहमद खां ने 'यूनाइटेड पैट्रियाटिक एसोसिएशन' नामक संगठन के माध्यम से काँग्रेस विरोधी लोगों को एक मंच पर लाकर ब्रिटिश सरकार के पक्ष में खड़ा किया।

बंगाल विभाजन

वायसराय लार्ड कर्जन ने राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए 1905 ई. में बंगाल को विभाजित कर दिया। उस समय बंगाल में वर्तमान के पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा एवं वर्तमान बांग्लादेश के क्षेत्र सम्मिलित थे। इनका क्षेत्रफल लगभग 1,89,000 वर्ग मील एवं जनसंख्या लगभग 8 करोड़ थी।

लार्ड कर्जन ने बंगाल को बड़ा प्रांत बताते हुए प्रशासनिक सुविधा के लिए इसके दो भाग किए जाने की आवश्यकता बताई। उस समय बंगाल राष्ट्रीय आंदोलन का केन्द्र बन गया था। अंग्रेज बंगाल में राष्ट्रवाद के प्रसार को रोकना चाहते थे। बंगाल संपूर्ण देश के राजनीतिक आंदोलन का केन्द्र बनता जा रहा था। साम्राज्यवादी लार्ड कर्जन ने अंग्रेजों की अपनी 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाते हुए हिन्दू एवं मुस्लिमों के बीच वैमनस्य पैदा करने का प्रयास किया। उसने मुस्लिम बहुल पूर्व बंगाल को हिन्दू बहुल शेष बंगाल से पृथक् कर दिया। भारत सरकार के गृह सचिव रिसले ने लिखा था ''एकजुट बंगाल अपने–आप में एक शक्ति है बंगाल अगर विभाजित हो तो सभी भागों की दिशाएँ अलग–अलग होगी।''

सरकार ने अपनी बंगभंग योजना 19 जुलाई 1905 को आमजन के समक्ष प्रस्तुत की। 16 अक्टूबर 1905 को यह योजना लागू कर दी गयी। मुस्लिम बहुल ढाका, चटगांव और राजशाही डिवीजनों को बंगाल से पृथक किया गया और इन्हें असम के साथ मिलाकर नया प्रांत पूर्व बंगाल बनाया गया। इस प्रकार मुस्लिम बहुल पूर्व बंगाल का गठन किया गया। इसकी राजधानी ढाका रखी गयी। शेष हिन्दू बहुल हिस्सा बंगाल बना रहा एवं इसकी राजधानी कलकत्ता ही रही।

बंग भंग विरोधी आंदोलन– बंगाल विभाजन विरोधी आंदोलन 7 अगस्त 1905 को आंरभ हुआ। इस दिन कलकत्ता के टाउन हाल में विभाजन के विरूद्ध एक विशाल जनसभा हुई। इस सभा में बंग भंग के विरूद्ध प्रस्ताव पारित किए गए। बंग भंग के विरूद्ध तब तक आंदोलन चलाने का निर्णय लिया गया जब तक बंग भंग की योजना रद्द नहीं की जाती।

28 सितम्बर 1905 को कलकत्ता के प्रसिद्ध कालीघाट मंदिर पर 50,000 से भी अधिक लोग एकत्र हुए। विराट पूजा के बाद मंदिर के पुरोहितों ने आह्वान किया कि ''सब देवताओं से पहले मातृभूमि की पूजा करो। संकीर्णता, सारे धार्मिक मतभेदों, कटुता और स्वार्थपरता को छोड़ दो, सब लोग मातृभूमि की सेवा करने की सौगंध लो और उसके कष्टों को दूर करने में अपना जीवन लगा दो।'' मंदिर में एकत्र लोगों ने जहाँ तक हो सके विदेशी वस्तुओं के प्रयोग नहीं करने की प्रतिज्ञा ली।

विभाजन 16 अक्टूबर 1905 को लागू किया गया। इस दिन पूरे बंगाल में 'शोक दिवस' मनाया गया। लोगों ने उपवास रखे। कलकत्ता में इस दिन हड़ताल रखी गयी। रविन्द्रनाथ टैगोर ने 16 अक्टूबर को 'राखी दिवस' के रूप में मनाने का आह्वान किया। लोगों ने सड़कों पर वंदेमातरम् गीत गाते हुए प्रभात फेरियाँ निकालीं। लोग नंगे पैर गंगा में स्नान करने पहुँचे। बंगाल की एकता के प्रतीक के रूप में हिन्दू–मुसलमानों ने एक–दूसरे की कलाइयों पर राखी बाँधी। दोपहर में आनंद मोहन बोस ने 50,000 लोगों की सभा की अध्यक्षता करते हुए लोगों को सम्बोधित किया। जुलूस में रवीन्द्रनाथ टैगोर का गीत ''आमार सोनार बांग्ला'' बड़े जोश से गाया जाता था। यह गीत बाद में बांग्लादेश का राष्ट्रीय गीत बना।

आंदोलनकारियों ने बंगाल के गाँवों एवं शहरों में सभाएँ आयोजित कर बंग भंग योजना का विरोध किया एवं बहिष्कार आंदोलन का समर्थन किया। मोचियों एवं धोबियों ने विदेशी माल के बहिष्कार का मार्ग अपनाया। मैमनसिंह एवं फरीदपुर के मोचियों ने अंग्रेजों के जूतों की मरम्मत न करने का फैसला लिया। धोबियों ने विदेशी कपड़ों को धोने से इंकार कर दिया। वारीसाल में उड़िया रसोइयों ने सभा कर घोषणा की कि वे विदेशी माल का उपयोग करने वाले मालिकों के पास काम नहीं करेंगे। कई विद्यार्थियों ने परीक्षा देने से इसलिए मना कर दिया क्योंकि उत्तरपुस्तिकाओं के लिए प्रयुक्त कागज विदेशी था। विद्यार्थियों ने विदेशी माल बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया। विद्यार्थियों के समूह बाजार में घूम–घूमकर लोगों से विदेशी माल न खरीदने का अनुरोध करने लगे। अन्ततः सरकार ने 1911 ई. में बंगाल विभाजन रद्द कर दिया।

गरमपंथी राष्ट्रवादी आंदोलन का प्रारंभ

काँग्रेस के नरमपंथियों एवं गरमपंथियों में 1905 ई. से 1907 ई. के बीच मतभेद होने लगा। गरमपंथी स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन को बंगाल तक सीमित न रखकर इसे देश के अन्य भागों में भी पहुँचाना चाहते थे जबकि नरमपंथी इस आंदोलन को केवल बंगाल तक सीमित रखना चाहते थे।

1906 ई. के काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में अध्यक्ष

पद को लेकर विवाद हुआ। गरमपंथी बाल गंगाधर तिलक को अध्यक्ष बनाना चाहते थे। दादाभाई नौरोजी के अध्यक्ष चुन लिए जाने से यह विवाद उस समय समाप्त हो गया। गरमपंथियों के प्रयास से कांग्रेस के 1906 ई. के कलकत्ता अधिवेशन में स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा एवं स्वशासन से संबंधित चार प्रस्ताव पारित हुए।

स्वदेशी आंदोलन– बंगभंग को लेकर हुए आंदोलन के परिणामस्वरूप बहिष्कार एवं स्वदेशी भारतीयों के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध शक्तिशाली हथियार बन गए। बंबई, मद्रास एवं उत्तर भारत में स्वदेशी अपनाने, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा लिए आंदोलन हुआ। स्वदेशी आंदोलन को शक्तिशाली बनाने के लिए अनेक स्वयंसेवी संगठनों एवं जनसमितियों का गठन किया गया। विदेशी कपड़े, चीनी, नमक आदि का बहिष्कार किया गया। विदेशी माल की दुकानों पर धरना दिया गया। विदेशी माल की दुकानों के मालिकों का बहिष्कार किया गया। विदेशी कपड़ों की होली जलाई गयी। विदेशी वस्तुओं को खरीदने वालों का सामाजिक बहिष्कार करते हुए कहा गया कि उनके साथ कोई भी खानपान न रखे, नाई उनका कोई काम न करें। लोगों को सरकारी अवैतनिक पदों से इस्तीफा देने एवं कौंसिलों से इस्तीफा देने को कहा गया। जनसभाओं में लोगों को स्वदेशी अर्थात भारतीय वस्तुओं के उपयोग करने की शपथ दिलाई गयी।

1906 ई. तक स्वदेशी आंदोलन शीघ्र ही देश के विभिन्न भागों में फैल गया। बंबई प्रेसीडेंसी में इसका नेतृत्व मुख्य रूप से बाल गंगाधर तिलक एवं एस. एम. परांजपे ने किया। पंजाब में जयपाल, गंगाराम, आर्य समाज के चंद्रिका दत्त एवं मुंशीराम (जो बाद में स्वामी श्रद्धानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए) आदि ने नेतृत्व किया। मद्रास प्रेसीडेंसी में इसका नेतृत्व सुब्रह्मण्यम अय्यर, पी. आनंद चार्लू एवं टी. एम. नायर जैसे प्रमुख नेताओं ने किया।

स्वदेशी आंदोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता आत्मनिर्भरता थी। इससे आर्थिक क्षेत्र में देशी उद्योगों को बढ़ावा मिला। अनेक कपड़ा मिलें, हैंडलूम उद्योग, राष्ट्रीय बैंक एव बीमा कंपनियों की स्थापना हुई। पी.सी. रॉय ने बंगाल केमिकल स्वदेशी स्टोर की स्थापना की। प्रथम भारतीय औद्योगिक सम्मेलन रमेशचंद्र दत्त की अध्यक्षता में दिसम्बर 1905 में बनारस में हुआ। इसी वर्ष यहाँ कॉंग्रेस का वार्षिक अधिवेशन गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में हुआ। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश माल की खपत में बहुत कमी आयी।

राष्ट्रवादी साहित्य और पत्रकारिता का विकास हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर, रजनीकांत सेन, डी.एल. राय आदि ने देशभक्ति के गीत लिखकर राष्ट्रीय भावना का विकास किया। इस आंदोलन में राष्ट्रीय शिक्षा का नारा दिया गया। बंगाल के विभिन्न जिलों में राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किए गए। कलकत्ता में एक नेशनल कॉलेज खोला गया, जिसके प्राचार्य अरविंद घोष बने। राष्ट्रीय, साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा देने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना का निर्णय लिया गया। युवाओं एवं महिलाओं ने इस आंदोलन में अपना योगदान दिया। महिलाएँ सक्रियता के साथ जुलूसों एवं धरनों में सम्मिलित हुईं। वाजिद हुसैन, अब्दूल गफूर, लियाकत हुसैन आदि कई मुस्लिम नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया। स्वदेशी आंदोलन के समय सामाजिक उत्थान के कार्य किए गए। अश्विनी कुमार दत्त ने अपनी संस्था स्वदेशी बांधव समिति द्वारा बारीसाल में गाँवों के उत्थान का कार्यक्रम चलाया। छुआछूत, बाल विवाह आदि कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिए जनता को जागृत किया गया।

राष्ट्रीय आंदोलन के बढ़ते प्रभाव से अंग्रेज सरकार चिंतित हो रही थी। अंग्रेज सरकार राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए हिन्दुओं के विरूद्ध मुस्लिमों को खड़ा करने का प्रयास करने लगी। अलीगढ़ कॉलेज के प्राचार्य आर्चबोल्ड एवं तत्कालीन वायसराय लार्ड मिंटो के निजी सचिव डनलप स्मिथ के प्रयास से आगा खाँ के नेतृत्व में 36 मुसलमानों का प्रतिनिधिमंडल 1 अक्टूबर 1906 को वायसराय लार्ड मिंटो से मिला। इन्होंने माँग की कि प्रतिनिधि संस्थाओं में मुस्लिमों के राजनीतिक महत्व और साम्राज्य की रक्षा में उनकी देन के अनुरूप उनका स्थान होना चाहिए, न कि उनके समाज की जनसंख्या के आधार। विधान परिषदों के लिए मुस्लिम निर्वाचन मंडल स्थापित किए जाए। लार्ड मिंटो ने मुसलमानों के प्रतिनिधि मंडल के आवेदन की सराहना करते हुए उनकी माँगों को उचित बताया और इन्हें यथासंभव स्वीकार करने का आश्वासन दिया। इस आश्वासन के बाद सलीमुल्ला खाँ ने मुस्लिमों के एक संगठन के निर्माण की पहल की।

मुस्लिम लीग की स्थापना– 30 दिसम्बर 1906 को सलीमुल्ला खाँ ने ढाका में मुस्लिमों की एक सभा में मुस्लिम लीग का गठन किया। इस सभा में मुस्लिम लीग का गठन नवाब वकार उल मुल्क की अध्यक्षता में हुआ। इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार का समर्थन करना एवं मुसलमानों के लिए सुविधाएँ प्राप्त करना था। यह कॉंग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना चाहती थी। मुस्लिम लीग ने 1905 ई. के बंगाल विभाजन का समर्थन किया। बंगभंग विरोधी एवं बहिष्कार आंदोलन का विरोध किया।

राजनैतिक आंदोलन (1907 ई.–1919 ई.)

कॉंग्रेस का सूरत अधिवेशन एवं कांग्रेस में फूट (1907 ई.)

कॉंग्रेस का अधिवेशन 1907 में नागपुर में प्रस्तावित था जो गरमपंथियों का गढ़ माना जाता था। बाद में इसका स्थान परिवर्तित करके सूरत कर दिया गया। दिसम्बर 1907 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन ताप्ती नदी के तट पर सूरत में हुआ। इस अधिवेशन में भी अध्यक्ष के पद को लेकर गरमपंथियों एवं नरमपंथियों में मतभेद उत्पन्न हो गया। गरमपंथी लाला लाजपत राय को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहते थे किंतु लाला लाजपत राय के स्थान पर नरमपंथियों ने रासबिहारी घोष को अध्यक्ष बनवा दिया। गरमपंथी 1906 ई. के कलकत्ता अधिवेशन में पारित स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा एवं स्वशासन के प्रस्ताव को स्वीकार करने की गारन्टी चाहते थे। विवाद इतना बढ़ा कि

अधिवेशन में कुर्सियाँ फेंकी जाने लगी। अधिवेशन में किसी अज्ञात व्यक्ति ने मंच पर एक जूता फेंका जो फिरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ को लगा। पांडाल में हंगामा हो गया। गरमपंथियों को कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। इस प्रकार कांग्रेस दो दलों नरमदल एवं गरम दल में बँट गयी। इस फूट को रोकने की कोशिश तिलक ने की किंतु फिरोजशाह मेहता एवं उनके समर्थकों के अडियल रुख के कारण यह संभव नहीं हो पाया। ब्रिटिश सरकार ने अपनी 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अनुसरण करते हुए गरमपंथियों का दमन किया और नरमपंथियों को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया। गवर्नर जनरल मिंटो ने भारत सचिव मार्ले को लिखा कि सूरत में कांग्रेस का पतन हमारी बहुत बड़ी जीत है। सूरत की फूट को एनीबेसेंट ने कांग्रेस के इतिहास की सबसे दुःखद घटना बताया।

गरमदल के प्रमुख नेता लाला लाजपत राय, विपिन चंद्र पाल, बाल गंगाधर तिलक एवं अरविंद घोष थे। ये लाल,बाल एवं

लाला लाजपत राय बाल गंगाधर तिलक विपिन चंद्र पाल

पाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। गरमपंथियों के मुख्य नेता बाल गंगाधर तिलक पर 'केसरी' समाचार पत्र में सरकार के विरूद्ध लिखे गए लेख को आधार बनाकर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। 1908 ई. में उन्हें 6 वर्ष के लिए मांडले जेल भेज दिया गया। लाला लाजपत राय अमेरिका चले गए। विपिन चंद्र पाल ने अस्थायी रूप से राजनीति से संन्यास ले लिया। अरविंद घोष ने 'वन्दे मातरम्' समाचार पत्र के माध्यम से राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किया। अरविंद घोष 1910 ई. में पांडेचेरी चले गए और राजनीति को त्याग धर्म का मार्ग चुन लिया।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक– तिलक ऐसे राष्ट्रवादी नेता थे, जिन्होंने जनता से निकट संबंध बनाकर उन्हें संगठित एवं सक्रिय करने का प्रयास किया। स्वराज्य प्राप्त करने के लिए उन्होंने संघर्ष का मार्ग अपनाया। लोग उन्हें 'लोकमान्य' कहते थे। तिलक का जन्म 23 जुलाई 1856 को महाराष्ट्र के रत्नागिरी में एक बाह्मण परिवार में हुआ था। तिलक के पूर्वज पेशवा की सेवा में थे। तिलक ने कानून की शिक्षा प्राप्त की थी।

इन्होंने अपने मित्रों के सहयोग से 1880 ई. में पूना में न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना की। ये दक्कन एजुकेशन सोसायटी एवं फर्ग्युसन कॉलेज की स्थापना से संबंधित रहे। इन्होंने जनमत को जागृत करने के उद्देश्य से दो समाचार पत्र 'मराठा' (अंग्रेजी साप्ताहिक) एवं 'केसरी' (मराठी दैनिक) का प्रकाशन प्रारंभ किया। इन्होंने धार्मिक उत्सवों के माध्यम से जनता में राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया एवं राजनीतिक शिक्षा प्रदान की। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने 1893 ई. में 'गणेश उत्सव' एवं 1896 ई. में 'शिवाजी उत्सव' प्रारंभ कर लोगों को संगठित करने का कार्य किया। इन्होंने युवाओं के नैतिक एवं शारीरिक विकास के लिए अखाड़े, लाठी क्लब एवं गौहत्या विरोधी समितियाँ स्थापित की।

1897 ई. में इन्होंने प्लेग के समय अंग्रेज अधिकारियों के भारतीयों के घर में जबरन घुसने एवं उनके दुर्व्यवहार का समाचार अपने अखबार में छापा। 27 जून 1897 को दो प्लेग अधिकारी कमिश्नर रैंड एवं लेफ्टिनेंट एयर्स्ट की हत्या दामोदर एवं बालकृष्ण चापेकर भाइयों ने कर दी। नवयुवकों को भड़काने का आरोप लगाकर तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार विरोधी गतिविधियों का आरोप लगाते हुए राजद्रोह के अपराध के लिए उन्हें 18 माह के कारावास की सजा दी गयी।

तिलक कांग्रेस के गरम दल के नेता थे। वे स्वराज्य प्राप्ति के लिए याचना के मार्ग के स्थान पर संघर्ष का मार्ग अपनाने के पक्षधर थे। उन्होंने कहा ''स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।'' तिलक ने स्वराज्य, स्वदेशी, बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा की बात कही। 1907 ई. में सूरत के अधिवेशन में कांग्रेस में फूट पड़ गयी और तिलक को कांग्रेस से पृथक् होना पड़ा। तिलक कांग्रेस के अध्यक्ष कभी नहीं रहे। उन्हें लोग भारत का 'बेताज बादशाह' कहते थे। अंग्रेजों ने कांग्रेस की फूट का लाभ उठाते हुए तिलक जैसे गरमपंथियों के प्रभाव को कम करने का प्रयास किया। 1908 ई. में उन्हें जब 6 वर्ष की कारावास की सजा देकर बर्मा के मांडले जेल भेज दिया गया तब जनता ने इसके विरोध में जुलूस निकाला। तिलक ने कहा ''शायद ईश्वर को यही मंजूर था कि मेरे स्वतंत्र रहने की बजाय कष्टों के द्वारा ही मेरे जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हो।''

माण्डले जेल में इन्होंने 'गीता रहस्य' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने 'आर्कटिक होम ऑफ द आर्यन्स' (Arctic home of the Aryans) नामक पुस्तक लिखी। तिलक 1914 ई. में माण्डले जेल से छूटे। उन्होंने कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग में हुए 1916 ई. के लखनऊ समझौते में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने एनी बेसेंट के साथ मिलकर स्वशासन प्राप्त करने के लिए होमरूल आंदोलन चलाया। इंडिया अनरेस्ट (India Unrest) के लेखक वैलेंटाइन चिरोल द्वारा तिलक को 'भारतीय अशांति का जनक' बताने पर तिलक ने चिरोल के विरूद्ध मानहानि का मुकदमा दायर किया। इस उद्देश्य से वे लंदन भी गये। 1920 ई. में इनके निधन से पूरे भारत में शोक व्याप्त हो गया। इनकी अंतिम यात्रा में लगभग 5 लाख व्यक्ति सम्मिलित हुए।

बंगाल में बंगाल विभाजन के विरूद्ध हुए आन्दोलन के साथ कई क्रांतिकारी घटनाएँ हुईं। बंगाल में क्रांतिकारी संगठन 'अनुशीलन समिति' की स्थापना 1907 ई. में वारिन्द्र कुमार घोष एवं भपेन्द्र दत्त के नेतत्व में हुई। बंगाल में साधना समाज, शक्ति

समिति एवं युगान्तर समिति जैसी कई गुप्त समितियाँ स्थापित हो गई। युगान्तर एवं संध्या जैसी पत्रिकाओं ने सशस्त्र विद्रोह का प्रचार किया। 6 दिसम्बर 1907 को मिदनापुर के पास लेफ्टिनेंट गवर्नर की गाड़ी को बम से उड़ाने की कोशिश की गई। ढाका के पहले मजिस्ट्रेट एलन को भी मारने की कोशिश की गई।

मुजफ्फरपुर बम कांड (1908)– क्रांतिकारियों ने 30 अप्रैल 1908 को बिहार के मुजफ्फरपुर में जज किंग्सफोर्ड की हत्या का प्रयास किया किन्तु यह प्रयास असफल रहा। किंग्सफोर्ड ने देशभक्तों को कड़ी सजाएँ सुनाई थी। इसमें अंग्रेज महिला श्रीमति केनेडी एवं उसकी पुत्री मारी गयी। इस संबंध में प्रफुल्ल चाकी एवं खुदीराम बोस पकड़े गए। प्रफुल्ल चाकी ने स्वयं को गोली मार ली। 15 वर्षीय खुदीराम बोस को फाँसी की सजा दी गयी।

अलीपुर षडयंत्र केस (1908)– मुजफ्फरनगर कांड के बाद मानिकतला में क्रांतिकारियों के निवास स्थान मुरारीपुकुर में पुलिस ने छापा मारा। यहाँ से बम, बारूद आदि प्राप्त हुए। अरविंद घोष, उनके भाई वारीन्द्र घोष सहित 34 लोग कैद किए गये। इसका मुकदमा 'अलीगढ़ षड़यन्त्र केस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वारीन्द्र घोष को आजीवन कारावास की सजा मिली।

इन क्रांतिकारी घटनाओं से ब्रिटिश सरकार चिंतित हुई और प्रतिक्रियास्वरूप क्रांतिकारी गतिविधियों को दबाने के लिए कई अधिनियम पारित किए। ब्रिटिश सरकार ने विस्फोटक पदार्थ अधिनियम (1908ई.), समाचार पत्र (अपराध प्रेरक) अधिनियम (1908ई.), राजद्रोहात्मक सभा निवारण अधिनियम (1911ई.) आदि पारित किये।

1909 का अधिनियम

1909 के अधिनियम को 'मार्ले–मिन्टो सुधार' के नाम से भी जाना जाता है। इस अधिनियम के बनने में दो व्यक्तियों तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो एवं भारत सचिव जॉन मार्ले का योगदान था। 1892 के अधिनियम से भारतीय संतुष्ट नहीं थे। कांग्रेस कौंसिलों के विस्तार करने और इनके सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि करने की माँग कर रही थी। 1905 ई. में बंगाल के विभाजन के विरोध में हुए आंदोलन ने क्रांतिकारी गतिविधियों को बढ़ावा दिया। कांग्रेस के गरम दल के प्रभाव को कम करने के लिए ब्रिटिश सरकार कुछ सुधार कर उदारवादियों (नरम दल) को संतुष्ट करना चाहती थी। सरकार कुछ समुदायों को अधिक सुविधा प्रदान कर भारतीयों में फूट डालना चाहती थी। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्न थीं–

1. केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा एवं प्रांतों की व्यवस्थापिका सभा का विस्तार किया गया। इनके सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी। प्रांतों में पहली बार गैर सरकारी लोगों का वर्चस्व बना।
2. विभिन्न परिषदों के अधिकारों में वृद्धि की गयी। सदस्यों को बजट पर बहस करने के साथ प्रमुख मुद्दों पर मत देने का अधिकार दिया गया। वे बजट एवं अन्य मुद्दों पर प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे। उन्हें पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया।
3. साम्प्रदायिक आधार पर पृथक् निर्वाचन प्रणाली को प्रारंभ किया गया। मुस्लिमों, जमींदारों, व्यापारियों आदि के लिए पृथक् निर्वाचक मंडल की स्थापना की गयी।
4. गवर्नर जनरल को अपनी कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को लेने का अधिकार प्राप्त हुआ (गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में लिए गए प्रथम भारतीय एस.पी.सिन्हा थे)।
5. चुनावों में इच्छुक उम्मीदवारों एवं मतदाताओं की योग्यता निश्चित की गयी।

इस अधिनियम की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसने अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली को अपनाया। इसमें मतदाताओं की संख्या अत्यंत सीमित रखी गयी। मतदाताओं की योग्यता भी बहुत ऊँची रखी गयी। साम्प्रदायिक आधार पर मुस्लिमों के लिए पृथक निर्वाचन की प्रणाली भारत के लिए हानिकारक थी। इससे साम्प्रदायिक राजनीति का आरंभ हुआ। मुसलमानों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया। उन्हें अपने पृथक् चुनाव मंडलों में तो मत देने का अधिकार था, साथ ही उन्हें सामान्य मतदाताओं के भी अधिकार दिए गए। प्रांतीय परिषदों में गैर सरकारी सदस्यों का प्रतिनिधित्व अधिक था किंतु गवर्नर जनरल की परिषद में अब भी सरकारी सदस्यों का बहुमत था। संसदीय संस्थाएँ तो स्थापित की गयी किन्तु संसदीय शासन व्यवस्था का लक्ष्य नहीं रखा गया।

प्रथम विश्वयुद्ध एवं भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

होमरूल आंदोलन (1916)– होमरूल आंदोलन एक बौद्धिक प्रचार आंदोलन था। इसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत संवैधानिक तरीके से स्वशासन प्राप्त करना था। स्वशासन की प्राप्ति के लिए आंदोलन बाल गंगाधर तिलक एवं एनीबेसेंट ने चलाया। 1914 ई. में बाल गंगाधर तिलक जेल से छूटकर आ गए थे। तिलक कांग्रेस में पुनः प्रवेश कर स्वराज्य के लिए आंदोलन चलाना चाहते थे किंतु कांग्रेस नेतृत्व इस समय किसी आंदोलन को चलाने के पक्ष में नहीं था।

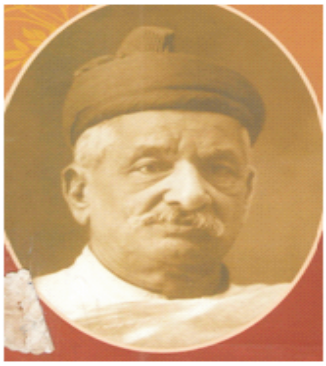

एन. सी. केलकर

एनीबेसेंट

28 अप्रैल 1916 को तिलक ने पूना में 'इंडियन होमरूल लीग' की स्थापना की। इसके अध्यक्ष जोसेफ बैपतिस्ता थे। इसके सचिव एन. सी. केलकर बनाए गए। इसके अन्य सदस्य जी. एस. खापर्डे, बी. एस. मुंजे, आर. पी. करंदीकर

आदि थे। तिलक द्वारा स्थापित लीग महाराष्ट्र (बंबई को छोड़कर), कर्नाटक, मध्य प्रांत एवं बरार में सक्रिय थी।

एनीबेसेंट ने 3 सितम्बर 1916 को अडयार (मद्रास) में होमरूल लीग की स्थापना की। इसकी अध्यक्ष एनीबेसेंट थी। इसके संगठन मंत्री जार्ज अरूंडेल एवं महासचिव रामास्वामी अय्यर एवं कोषाध्यक्ष वी. पी. वाडिया थे। तिलक के कार्य क्षेत्र को छोड़कर देश के शेष भाग में एनीबेसेंट के होमरूल लीग ने कार्य किया। यह मद्रास, बंबई, बिहार, संयुक्त प्रांत एवं बंगाल में सक्रिय थी। एनीबेसेंट के होमरूल लीग में मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, तेज बहादूर सप्रू, मुहम्मद अली जिन्ना, सी. वाई चिंतामणी, हसन इमाम, मजरूल हक आदि प्रमुख नेता सम्मिलित हुए। एनीबेसेंट के होमरूल लीग का स्वरूप अखिल भारतीय था।

इनके कार्यक्रम निम्न थे– राजनीतिक विषयों एवं जन जागृति संबंधी पुस्तकों का प्रकाशन एवं विक्रय करना, राजनीतिक विषयों पर वाद–विवाद एवं भाषण आयोजित करना, जनसभा करना, समाज सेवा के कार्य करना आदि।

तिलक ने मराठा एवं केसरी तथा एनीबेसेंट ने कामनवील एवं न्यू इंडिया नामक समाचार पत्र के माध्यम से

महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी का नाम मोहनदास करमचंद गाँधी था। महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 में गुजरात के पोरबंदर में हुआ था। इनके पिता करमचंद गाँधी राजकोट रियासत के दीवान थे। इनकी माता का नाम पुतली बाई था। महात्मा गाँधी की प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट में हुई। इनका विवाह कस्तूरबा से हुआ था। 1887 ई. में महात्मा गाँधी उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड गये। इंग्लैण्ड से कानून की शिक्षा प्राप्त कर 1891 ई. में भारत वापस आए। इन्होंने बम्बई में वकालात की। 1893 ई. में एक पारसी फर्म 'दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी' के एक मुकदमे के संबंध में दक्षिण अफ्रीका गए। दक्षिण अफ्रीका में सरकार की रंगभेद नीति के विरूद्व संघर्ष किया। इन्होंने दक्षिण अफ्रीका में नटाल इण्डियन कांग्रेस, टॉलस्टॉय फार्म तथा फीनिक्स फार्म की स्थापना की। दक्षिण अफ्रीका में 'इंण्डियन ओपिनियन' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन किया।

महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम सविनय अवज्ञा का मार्ग दक्षिण अफ्रीका में अपनाया। महात्मा गाँधी के संघर्ष के परिणामस्वरूप सरकार ने कई भेदभावपूर्ण कानूनों को रद्द कर दिया और भारतीयों को सुविधाएँ प्राप्त हुई।

1915 ई. में महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। एक वर्ष तक इन्होंने देश का भ्रमण कर भारतीय जनता की स्थिति को समझा। 1916 ई. में अहमदाबाद के पास साबरमती आश्रम की स्थापना की।

चंपारण सत्याग्रह– भारत में महात्मा गाँधी ने पहला सफल सत्याग्रह बिहार के चंपारण जिले में 1917 ई. में किया। यहाँ यूरोपीय नील बागान मालिक किसानों पर बहुत अत्याचार करते थे। किसानों को अपनी जमीन पर नील की खेती करने पर मजबूर करते थे। किसानों को नील बागान मालिकों द्वारा तय कीमत पर नील बेचना पड़ता था। गाँधी किसान राजकुमार शुक्ल के निमंत्रण पर राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक, जे.बी. कृपलानी, नरहरि पारिख और महादेव देसाई के साथ 1917 ई. में चंपारण पहुँचे। गाँधी के प्रयासों से किसानों की समस्या में कमी आई।

अहमदाबाद मिल मालिक–मजदूर सघर्ष– 1918 ई. में महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद के मिल मालिकों एवं मजदूरों के विवाद में हस्तक्षेप कर मजदूरों को राहत दिलवाई। मिल मालिकों ने 35 प्रतिशत महंगाई भत्ता देना स्वीकार किया।

खेड़ा किसान आंदोलन– 1918 ई. में गाँधी ने गुजरात के खेड़ा में किसानों के लिये संघर्ष किया। यहाँ किसानों की फसल नष्ट होने पर भी उनसे सरकार लगान वसूल कर रही थी। यहाँ गाँधी ने लगान न देने के लिये किसानों से कहा। इस आन्दोलन में गाँधी का साथ वल्लभभाई पटेल ने दिया। अंग्रेज सरकार ने मजबूर होकर आदेश दिया कि उन किसानों से कर न वसूला जाये जिनकी फसल लगभग नष्ट हो गई है।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय अंग्रेज सरकार ने महात्मा गाँधी को 'केसर–ए–हिन्द' की उपाधि प्रदान की। 13 अप्रैल 1919 के जलियांवाला बाग हत्याकांड के विरोध में महात्मा गाँधी ने 'केसर–ए–हिन्द' की उपाधि त्याग दी। 1920 ई. में उन्होंने असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन का नेतृत्व किया। 1924 ई. में कांग्रेस के बेलगाँव अधिवेशन में गाँधी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। गाँधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन, व्यक्तिगत सत्याग्रह आदि कई आंदोलनों का नेतृत्व किया।

महात्मा गाँधी राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ जनता की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति चाहते थे। गाँधी ग्राम सुधार, नशाबन्दी, अछूतोद्धार, हिन्दू–मुस्लिम एकता, स्त्री शिक्षा आदि के लिये कार्य करते रहे। इन्होंने ग्रामोद्योग संघ, तालीमी संघ एवं गौ–रक्षा संघ की स्थापना की। इन्होंने अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया। इन्होंने 'हरिजन सेवा संघ' (1932ई.) की स्थापना की। गाँधी ने अपने समाचार पत्र यंग इण्डिया, नव जीवन एवं हरिजन के माध्यम से राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का मार्गदर्शन करते रहे।

रॉलेट एक्ट– प्रथम विश्व युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार ने भारत रक्षा कानून के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियों को बड़ी क्रूरता से दबाया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद मुख्य रूप से क्रांतिकारी गतिविधियों पर रोक लगाने के उद्देश्य से 10 सितम्बर

1917 को ब्रिटिश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर सिडनी रॉलेट की अध्यक्षता में एक राजद्रोह (सेडीशन) कमेटी गठित की गयी। इसने अप्रैल 1918 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति की सिफारिश के आधार पर बिल केन्द्रीय विधानसभा में प्रस्तुत किया गया। भारतीयों के विरोध के बाद भी 18 मार्च 1919 को यह कानून पास हो गया। यह कानून रॉलेट एक्ट कहलाया।

इस कानून द्वारा राजद्रोहात्मक कार्यों के संदेह मात्र पर ही किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाए जेल में भेजा जा सकता था या किसी भी अन्य स्थान पर नजरबंद किया जा सकता था। प्रतिबंधित पुस्तकों या दस्तावेज रखने मात्र के आधार पर ही किसी को गिरफ्तार किया जा सकता था। इसे 'काला कानून' कहा गया। इस कानून के माध्यम से संदेह मात्र पर ही किसी की तलाशी लेने, गिरफ्तार करने, जमानत माँगने आदि के अधिकार युद्ध के बाद भी ब्रिटिश सरकार ने अपने पास रख लिये।

इस कानून के विरूद्ध पूरे देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। रॉलेट एक्ट के विरोध में आंदोलन चलाने के लिए महात्मा गाँधी के नेतृत्व में फरवरी 1919 को 'सत्याग्रह सभा' की स्थापना हुई। इस कानून के विरोध में 6 अप्रैल 1919 को पूरे देश में हड़ताल करने का निश्चय किया गया। पंजाब, दिल्ली, गुजरात, बंबई

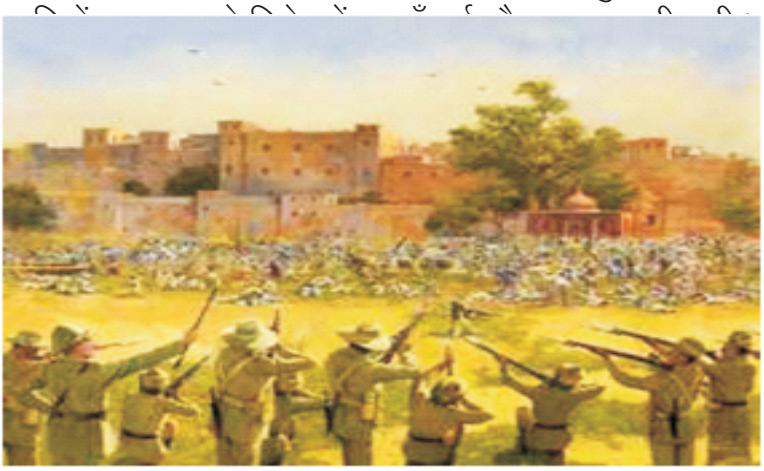

जलियांवाला बाग हत्याकांड (13 अप्रैल1919)

रॉलेट एक्ट के विरोध में 6 अप्रैल 1919 को पंजाब में विभिन्न स्थानों पर हुई जनसभाओं, जुलूसों एवं हड़तालों की सफलता से पंजाब का लेफ्टिनेंट गवर्नर ओ डायर को बड़ा आश्चर्य हुआ। अमृतसर में 9 अप्रैल 1919 को पंजाब के नेता डॉ. सत्यपाल एवं डॉ. सैफूद्दीन किचलू के नेतृत्व में एक जुलूस निकला। आंदोलन का नेतृत्व कर रहे डॉ. सत्यपाल एवं डॉ. किचलू को 10 अप्रैल 1919 को गिरफ्तार कर अमृतसर से निर्वासित कर दिया गया। पंजाब की स्थिति को देखते हुए श्रद्धानंद व डॉ. सत्यपाल के अनुरोध पर जब महात्मा गाँधी पंजाब के लिए रवाना हुए तब उन्हें दिल्ली के पास पलवल (हरियाणा) में रोककर वापस बंबई भेज दिया गया। सरकार ने दमन चक्र चलाया। रॉलेट एक्ट के विरोध, सरकार के दमन चक्र एवं डॉ. सत्यपाल व डॉ. सैफूद्दीन किचलू की गिरफ्तारी के विरोध में अमृतसर के जलियांवाला बाग में 13 अप्रैल 1919 को एक सभा बुलाई गयी। इस सभा की जानकारी प्राप्त होते ही संपूर्ण अमृतसर को जनरल डायर के हाथों में सौंप दिया गया।

13 अप्रैल को वैशाखी का दिन था। जलियांवाला बाग में ऐसे लोग भी थे जो गाँवों से वैशाखी के मेले में भाग लेने आए थे। जलियांवाला बाग में लगभग 20,000 लोग एकत्र हुए थे, जिसमें स्त्री, बच्चे एवं बुजुर्ग भी थे। जलियांवाला बाग तीन ओर से मकानों से घिरा था एवं इसमें से निकलने का केवल एक मार्ग था। जब 13 अप्रैल 1919 को साँय लगभग पाँच बजे यहाँ सभा चल रही थी तब जनरल डायर ने 100 सिपाहियों के साथ इस बाग को घेर लिया। जनरल डायर ने भीड़ पर बिना चेतावनी दिए ही राइफलों एवं मशीनगनों से गोली चलाने के आदेश दिए। निहत्थी भीड़ पर तब तक गोलियाँ चलाई गयी जब तक गोलियाँ खत्म न हो गई। आंकड़ों के अनुसार 379 व्यक्ति मारे गए एवं बहुत से लोग घायल हुए। वास्तव में मरने वालों की संख्या इससे अधिक थी। जनरल डायर मृतकों एवं घायलों को उसी स्थिति में छोड़कर वहाँ से चला गया। यह हत्याकांड 'जलियांवाला बाग हत्याकांड' के नाम से जाना जाता है। इस कांड से देश स्तब्ध रह गया। इस हत्याकांड के बाद पूरे पंजाब में मॉर्शल लॉ लागू कर दिया गया। सरकार ने क्रूरतापूर्ण दमन चक्र चालू रखा। अमृतसर की जनता पर तरह–तरह के अत्याचार किए गए। चौराहों पर सरे आम लोगों को कोड़ों से पिटवाना, कूदते हुए चलना, गलियों से पेट के बल सरक कर जाना, भारतीयों द्वारा अंग्रेजों को खड़े होकर सलाम करना एवं ऐसा न करने पर बेंत से मारना जैसे दंड देने के तरीके अपनाए गए। फौजी अदालतें लोगों को मनमानी सजाएँ देने लगी।

अमृतसर के जलियांवाला बाग हत्याकांड के विरोध में पंजाब के कई शहरों में प्रदर्शन हुए। लोगों ने रेलवे, पुल एवं थानों को नुकसान पहुँचाया। पूरे देश में इस हत्याकांड के विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई। मानवतावादी कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने अंग्रेजों द्वारा प्रदान की गयी 'नाइट' की उपाधि लौटा दी। शंकरन नायर ने वायसराय की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया।

देश में इस कांड के विरूद्ध बढ़ते जनआक्रोश को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने इसकी जाँच के लिए 19 अक्टूबर 1919 को हंटर की अध्यक्षता में एक जाँच समिति गठित की। इसने मार्च 1920 में अपनी रिपोर्ट दी। जनरल डायर को सिर्फ सेवामुक्त किया गया। ब्रिटेन में जनरल डायर की प्रशंसा कर उसका स्वागत किया गया। उसे 20,000 पौंड की थैली भेंट की गयी। ब्रिटिश संसद 'हाउस ऑफ लार्डस' में जनरल डायर के कारनामों को उचित बताया गया। कांग्रेस ने जलियांवाला बाग हत्याकांड की जाँच के लिए एक कमेटी नियुक्ति की। इसमें मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू एवं महात्मा गाँधी सम्मिलित थे। जलियांवाला बाग हत्याकांड से ब्रिटिश सम्राज्यवाद का घिनौना रूप सामने आया। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासकों के विरूद्ध देशव्यापी जनआंदोलन हुआ।

1919 का अधिनियम

प्रथम विश्वयुद्ध के समय भारतीयों को यह आशा जगी कि अंग्रेज सरकार उन्हें कुछ सुविधाएँ प्रदान करते हुए युद्ध के

बाद स्वशासन प्रदान कर सकती है। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग में 1916 ई.में लखनऊ समझौता हो गया था। इनके साथ कार्य करने की संभावना बनी। बालगंगाधर तिलक एवं एनीबेसेंट ने होमरूल आंदोलन चलाकर भारत में स्वशासन की माँग की। कांग्रेस में पुनः गरम दल वालों का वर्चस्व बढ़ने लगा। भारत सचिव मांटेग्यू ने 20 अगस्त 1917 को घोषणा की कि भारत में क्रमशः उत्तरदायी सरकार की स्थापना के उद्देश्य से स्वशासन की संस्था का विकास किया जाएगा। इन सभी कारणों से मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार 1919 की भूमिका बनी। मांटेग्यू भारत सचिव एवं चेम्सफोर्ड भारत का गवर्नर जनरल था। इन दोनों की रिपोर्ट के आधार पर बने 1919 के अधिनियम को मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार कहा गया। इसकी निम्न विशेषताएँ थी–

1. प्रांतों में द्वैध शासन (Dyarchy) की स्थापना की गयी। प्रान्तीय विषयों को दो भागों सुरक्षित विषय (Reserved Subject) एवं हस्तान्तरित विषय (Transferred Subject) में बाँटा गया। सुरक्षित विषयों का शासन प्रांतीय गवर्नर अपनी कार्यकारिणी (Executive Council) के परामर्श से करता था। सुरक्षित विषयों में पुलिस, जेल, शांति–व्यवस्था स्थापित करना, न्याय आदि प्रमुख थे। हस्तांतरित विषयों का शासन प्रांतीय गवर्नर भारतीय मंत्रियों की सहायता से चलाता था। हस्तांतरित विषयों में स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, चिकित्सा, सार्वजनिक निर्माण आदि थे।
   1. गवर्नर की कार्यकारिणी (Executive Council) विधान सभा के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होती थी, जबकि मंत्री विधानसभा के प्रति उत्तरदायी थे। मंत्रियों की नियुक्ति एवं उन्हें पद से हटाने का अधिकार गवर्नर को था। गवर्नर विधानसभा को भंग करके प्रांतीय विधानसभा द्वारा पारित विधेयक को निषेध कर सकता था।
   2. केंद्र एवं प्रांतों के बीच शक्ति का विभाजन किया गया। केंद्र के पास रक्षा, विदेश नीति, रेलवे, संचार, जनगणना, सार्वजनिक ऋण, लोक सेवा आयोग, मुद्रा, भारतीय रियासतों से संबंध आदि विषय थे। प्रांतों के पास स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण, जंगलात, आबकारी, सिंचाई, कृषि, जेल, पुलिस आदि विषय रखे गए।
   3. 1919 के अधिनियम द्वारा पहली बार केन्द्र में द्विसदनी विधायिका की व्यवस्था की गयी। केन्द्रीय व्यवस्थापिका (Central Legislature) का पहला उच्च सदन राज्य परिषद् (Council of State), दूसरा निम्न सदन विधानसभा (Legislative Assembly) कहलाया।
   4. प्रांतीय विधानसभाओं में साम्प्रदायिक आधार पर पृथक् निर्वाचन प्रणाली का विस्तार किया गया। मुस्लिमों के अतिरिक्त सिखों, यूरोपियनों, ऐंग्लो इंडियन, भारतीय ईसाइयों को पृथक् चुनाव मंडलों में अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया।
   5. इंडिया कौंसिल के कुछ कार्यों जैसे व्यापार, ब्रिटेन में भारतीयों की शिक्षा आदि के लिए भारतीय उच्चायुक्त (Indian High Commissioner) का प्रावधान किया गया। भारतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति भारत सरकार के परामर्श से सम्राट करता था।

इसकी आलोचना प्रांतों में द्वैध शासन व्यवस्था के लिए मुख्य रूप से की जाती है। प्रांतों में द्वैध शासन के अंतर्गत सुरक्षित एवं हस्तांतरित विषयों का विभाजन अव्यावहारिक था। शिक्षा हस्तांतरित विषय था। औद्योगिक विकास हस्तांतरित विषय था परंतु श्रम विभाग सुरक्षित था। सारे प्रशासन की धूरी वित्त विभाग था जो सुरक्षित विषय था। जबकि धन की आवश्यकता वाले शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण आदि भारतीय मंत्रियों के पास थे। सुरक्षित विषय गवर्नर की कौंसिल के सदस्यों के पास थे जो गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे। हस्तांतरित विषय भारतीय मंत्रियों के हाथ में थे जो प्रांत की विधान सभा के प्रति उत्तरदायी थे। मंत्रियों में संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव था। इसी कारण द्वैध शासन सैद्धांतिक आधार पर विफल रहा।

गवर्नर जनरल और उसकी परिषद अभी भी भारत सचिव के प्रति और ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थी। गवर्नर जनरल व्यवस्थापिका सभा की सलाह को ठुकरा सकता था। साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन–प्रणाली का विस्तार भारत को राष्ट्रीय आधार पर संगठित होने से रोकने का प्रयास था।

राजनैतिक आंदोलन (1920ई.–1947ई.)

असहयोग आंदोलन (1920ई.–1922ई.)

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् उत्पन्न हुआ आर्थिक संकट, रालेट एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकांड, मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार से असंतोष आदि असहयोग आंदोलन के प्रमुख कारण थे। गाँधी ने काँग्रेस एवं खिलाफत समिति की माँगों को मिला दिया। उन्होंने सरकार से माँग की कि सरकार जलियांवाला बाग हत्याकांड पर खेद प्रकट करे, टर्की के प्रति अपने व्यवहार को नम्र करे और भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए कोई नवीन योजना प्रस्तुत करे। सरकार को चेतावनी दी कि यदि सरकार इन माँगों को स्वीकार नहीं करेगी तब वे असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर देंगे। सरकार ने इनकी माँगों पर ध्यान नहीं दिया। गाँधी ने 1 अगस्त 1920 से असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर दिया।

लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में सितम्बर 1920 में कलकत्ता में काँग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। कलकत्ता के इस विशेष अधिवेशन में असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम स्वीकार किया गया। इस अधिवेशन में मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार 1919 के अनुसार नवम्बर 1920 में होने वाले चुनावों का बहिष्कार करने का भी निर्णय लिया गया। विजय राघवाचार्य की अध्यक्षता में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर 1920 में नागपुर में हुआ। इस अधिवेशन में असहयोग के प्रस्ताव को दोहराया गया।

असहयोग आंदोलन के निम्न कार्यक्रम रखे गए–

असहयोगात्मक कार्यों में सरकारी उपाधियों एवं

अवैतनिक पदों का त्याग, सरकारी और अर्द्ध सरकारी उत्सवों का बहिष्कार, सरकारी स्कूल, कॉलेज एवं अदालतों का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि थे। इसके अतिरिक्त इसमें सरकारी नौकरी से त्याग पत्र देने एवं करों की अदायगी से इन्कार करना भी शामिल था।

रचनात्मक कार्यों में राष्ट्रीय स्कूलों एवं कॉलेजों की स्थापना, झगड़ों को निपटाने के लिए पंचायतों की स्थापना करना, चरखों द्वारा निर्मित स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार, हाथ से कताई एवं बुनाई को प्रोत्साहन देना, शराबबंदी, हिन्दू–मुस्लिम एकता को प्रोत्साहित करना, अस्पृश्यता का उन्मूलन आदि थे।

गाँधी ने यह विश्वास दिलाया कि यदि इन सभी कार्यक्रमों को पूरी तरह से लागू किया गया तब एक वर्ष में स्वराज प्राप्त हो जाएगा। महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार से प्राप्त 'केसर ए हिन्द' की उपाधि त्याग दी। जमनालाल बजाज ने 'राय बहादुर' की उपाधि त्याग दी। गाँधी से प्रोत्साहित होकर कई लोगों ने पदवियाँ एवं उपाधियाँ त्याग दीं। मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, राजेन्द्र प्रसाद आदि कई नेताओं ने वकालत छोड़ दी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हुआ। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गयी। बहुत से राष्ट्रीय स्कूल एवं कॉलेज खोले गए। काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, जामिया मिलिया विश्वविद्यालय आदि की स्थापना हुई।

17 नवम्बर 1921 को ब्रिटिश युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स बंबई पहुँचा। प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत के लिए तैयारियाँ की गयी थी किंतु बंबई की जनता ने इसके विरोध में जुलूस निकाला। मजदूरों ने कारखानें बंद कर हड़ताल घोषित कर दी। जगह–जगह प्रदर्शन हुए । प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने गोली चलाई जिसमें कई लोग मारे गए। 1921 ई. में 396 हड़तालें हुईं, जिसमें 6 लाख श्रमिक सम्मिलित हुए।

मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, लाला लाजपत राय, डॉ. किचलू, मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली आदि कई प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए। गाँधी अब तक गिरफ्तार नहीं हुए थे। अंग्रेजी सरकार ने मदनमोहन मालवीय एवं मुहम्मद अली जिन्ना के माध्यम से बातचीत करने का प्रयास किया। दिसम्बर 1921 में मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल वायसराय रीडिंग से मिला, किंतु समझौता नहीं हो पाया।

इसी बीच अहमदाबाद में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिसंबर 1921 में हुआ। इसमें अध्यक्ष देशबंधु चितरंजन दास चुने गए किंतु उनके जेल में होने के कारण हकीम अजमल खाँ ने पद ग्रहण किया। सरोजिनी नायडू ने चितरंजन दास का भाषण पढ़ा। इस सम्मेलन में असहयोग आंदोलन को प्रभावी तरीके से चलाने का निर्णय लिया गया। 30,000 से भी अधिक लोग गिरफ्तार हो चुके थे। 1 फरवरी 1922 को गाँधी ने वायसराय लार्ड रीडिंग को चेतावनी दी कि यदि सरकार ने एक सप्ताह के भीतर दमनचक्र बंद करते हुए बंदी बनाए गए आंदोलनकारियों को रिहा नहीं किया तब वे बारडोली से सामूहिक सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ कर देंगे।

चौरी चौरा कांड (5 फरवरी1922)– इसी बीच 5 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के चौरी चौरा नामक स्थान पर एक घटना घट गयी। चौरी चौरा में शांतिपूर्ण जुलूस को पुलिस ने दबाना चाहा, जिस कारण उत्तेजित भीड़ ने पुलिस चौकी को घेर लिया और उसमें आग लगा दी। इसमें 1 थानेदार एवं 21 सिपाही मारे गए। गाँधी ने इस घटना के कारण असहयोग आंदोलन को बंद करने का निर्णय लिया। 12 फरवरी 1922 को बारडोली में कांग्रेस कमेटी की बैठक में गाँधी ने असहयोग आंदोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी।

जेल में बंद लाला लाजपतराय, चितरंजनदास एवं मोतीलाल नेहरू ने गाँधी के इस निर्णय का विरोध करते हुए पत्र लिखा। सुभाष चंद्र बोस एवं जवाहर लाल नेहरू भी गाँधी के इस निर्णय से दुःखी हुए। आंदोलन के समाप्त होने पर भी अंग्रेजों का दमनचक्र कम नहीं हुआ। 10 मार्च 1922 को महात्मा गाँधी को राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधी को 6 वर्ष की जेल की सजा सुनाई गई किंतु गाँधी को फरवरी 1924 में जेल से रिहा कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने अपना पूरा ध्यान खादी को बढ़ावा देने, छूआछूत को समाप्त करने आदि में लगाना प्रारंभ कर दिया।

इस आंदोलन की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि यह आंदोलन स्वराज–प्राप्ति में सफल नहीं हो सका। गाँधी द्वारा एक वर्ष के भीतर स्वराज प्राप्त करने का वादा पूरा नहीं किया जा सका। खिलाफत के प्रश्न का भी अंत हो गया। हिंदू–मुस्लिम एकता स्थापित करने में भी यह आंदोलन सफल नहीं हुआ। इसके विपरीत साम्प्रदायिक भावना को बढ़ावा मिला। पंजाब में किए गए अत्याचारों का निवारण भी नहीं हुआ।

इस आंदोलन के रचनात्मक कार्यों को सफलता अवश्य मिली। राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, चरखा चलाना एवं खादी तैयार करना, स्वदेशी वस्तु अपनाना आदि महत्वपूर्ण कार्य हुए। इस आंदोलन ने कॉंग्रेस को नई दिशा प्रदान की। इसने कॉंग्रेस के आंदोलन को जन आंदोलन का रूप प्रदान किया। इसने भारतीयों में स्वराज की प्राप्ति की प्रबल इच्छा जागृत की। इस आंदोलन ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती देने के लिए जनता को संगठित किया।

खिलाफत आंदोलन

खिलाफत आंदोलन का मुख्य उद्देश्य तुर्की के साम्राज्य के बँटवारे का विरोध करना एवं खलीफा के पद को बनाए रखना था। यह आंदोलन मुख्य रूप से प्रतिक्रियावादी था। तुर्की के सुल्तान को मुस्लिम खलीफा अर्थात् मजहबी मामलों में प्रमुख (मजहबी गुरू) मानते थे। प्रधानमंत्री जार्ज लॉयड ने भारतीय मुसलमानों को यह विश्वास दिलाया था कि तुर्की की अखण्डता को बनाए रखा जायेगा किंतु प्रथम विश्वयुद्ध में विजयी होने के साथ ही ब्रिटेन का तुर्की के प्रति व्यवहार बदलने लगा। अपने धार्मिक स्थलों की रक्षा को लेकर मुस्लिम चिंतित थे। तुर्की की हार के बाद ब्रिटेन ने विजयी शक्तियों के साथ मिलकर तुर्की साम्राज्य का बँटवारा कर दिया। तुर्की एवं खलीफा के साथ किए गए व्यवहार से भारतीय मुसलमानों में असंतोष की भावना फैली। भारतीय मुस्लिमों ने इसका विरोध करते हुए आंदोलन चलाया।

इस प्रकार भारत में खलीफा के पक्ष में जनमत तैयार करने के लिए चलाया गया यह आंदोलन 'खिलाफत आंदोलन' कहलाया। मौलाना अबुल कलाम आजाद, डॉ.एम.ए.अंसारी, हकीम अजमल खां, मौलाना शौकत अली, मौलाना मुहम्मद अली, हसरत मोहनी आदि इस आंदोलन के प्रमुख नेता थे। स्थान–स्थान पर खिलाफत कमेटी की स्थापना की गयी।

दिल्ली में 22–23 नवम्बर 1919 में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि यदि उनकी माँगें न मानी गयी तब वे ब्रिटिश सरकार का सहयोग करना बंद कर देंगे। खिलाफत सम्मेलन में गाँधी को विशेष अतिथि के रूप में बुलाया गया। गाँधी ने खिलाफत कमेटी से सरकार के खिलाफ अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम को स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा। जून 1920 को इलाहाबाद के अखिल भारतीय खिलाफत समिति के अधिवेशन में गाँधी के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार करते हुए इस आंदोलन की अगुवाई का अधिकार गाँधी को सौंपा गया।

खिलाफत के प्रश्न को लेकर अगस्त 1920 को असहयोग आंदोलन आरंभ किया गया। सरकारी नौकरी एवं सरकारी उपाधियों का त्याग, कर नहीं देने आदि कार्यक्रम मुख्य रूप से चलाए गए। असहयोग आंदोलन एवं खिलाफत आंदोलन एक साथ चले। गाँधी ने खिलाफत आंदोलन को हिंदू एवं मुसलमानों में एकता स्थापित करने का ऐसा अवसर माना जो आगे सौ वर्षों तक नहीं मिलेगा। गाँधी ने खिलाफत के प्रश्न को संवैधानिक सुधारों एवं पंजाब की घटनाओं से भी महत्वपूर्ण बताया। 1920 ई. में लगभग 18,000 मुसलमान अंग्रेजों के अधीन रहना कुफ्र समझकर हिंदुस्तान छोड़कर चले गए।

अली बंधुओं (मुहम्मद अली एवं शौकत अली) को गिरफ्तार कर लिया गया। शीघ्र ही खिलाफत का प्रश्न अप्रासंगिक हो गया। तुर्की की जनता ने कमाल पाशा के नेतृत्व में क्रांति कर नवम्बर 1922 में तुर्की के सुल्तान को सत्ता से वंचित कर दिया। कमाल पाशा ने तुर्की को सेकुलर राज्य बनाने के लिए प्रयास किए। 1924 ई. में कमाल पाशा ने खिलाफत अर्थात् खलीफा के पद को समाप्त कर दिया तब भारत में कोई प्रतिरोध नहीं हुआ।

काँग्रेस ने राष्ट्रीय आंदोलन में मुस्लिमों का साथ प्राप्त करने की रणनीति के तहत खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया। तात्कालिक रूप से कई मुस्लिम राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित हुए। मजहबी चेतना का राजनीति में समावेश होने से साम्प्रदायिक शक्तियाँ मजबूत ही हुई। लोगों ने गाँधी द्वारा खिलाफत आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के प्रयासों की राजनीतिक भूल मानते हुए आलोचना की। खिलाफत आंदोलन स्थगित होते ही अधिकांश मजहबी मुस्लिम नेतृत्व काँग्रेस से अलग हो गया। केरल के मालाबार में मोपला मुस्लिम विद्रोह हुआ जिससे स्थानीय हिन्दुओं को जन–धन हानि उठानी पड़ी।

1922 ई. से 1930 ई. तक के घटनाचक्र

स्वराज दल– असहयोग आंदोलन के स्थगित होने के बाद भावी कार्यक्रम को लेकर कांग्रेस में मत भिन्नता थी। 1919 के मांटेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम के अंतर्गत होने वाले विधानमंडलों के चुनाव में भाग लेने के प्रश्न को लेकर मतभेद था। सी.आर.दास, मोतीलाल नेहरू, बिठ्ठल भाई पटेल एवं हकीम अजमल खां जैसे नेताओं का मानना था कि बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति में कांग्रेस को कौंसिल के चुनाव में भाग लेना चाहिए। कौंसिल में प्रवेश कर सरकार का विरोध करने की नीति अपनानी चाहिए। ये लोग परिवर्तनवादी (Radical) कहलाए। दूसरी ओर अपरिवर्तनवादी (Non Radical) कहलाने वाले सरदार वल्लभभाई पटेल, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डॉ अंसारी एवं राजगोपालाचारी जैसे नेता थे जिन्होंने विधानमंडलों के चुनाव में भाग लेने का विरोध किया। ये लोग सूत कातने, शराबबंदी, छुआछूत समाप्त करने, हिंदू–मुस्लिम एकता स्थापित करने आदि गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रमों को चलाने के पक्षधर थे। कांग्रेस के दिसंबर 1922 के गया अधिवेशन में कौंसिल में प्रवेश को लेकर कांग्रेस के नेताओं के बीच तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया। अध्यक्ष चितरंजनदास के प्रयासों के बावजूद भी कौंसिल में प्रवेश का प्रस्ताव अस्वीकार हो गया।

परिवर्तनवादियों ने मार्च 1923 में इलाहाबाद में अपने समर्थकों का अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाकर 'स्वराज दल' की स्थापना की। इसके अध्यक्ष चितरंजन दास एवं सचिव मोतीलाल नेहरू थे। यह निर्णय लिया गया कि केन्द्रीय विधानसभा एवं प्रांतीय विधान परिषदों में प्रवेश कर एक निश्चित समय में राष्ट्रीय माँगों को पूरा करने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालेंगे। इन्होंने कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों को समर्थन देने का भी निर्णय लिया।

नवम्बर 1923 के विधानमंडलों के चुनाव में स्वराज दल को सफलता मिली। स्वराज दल के प्रयासों से 1925 ई. में बिट्ठलभाई पटेल को केन्द्रीय विधानसभा का अध्यक्ष चुना गया। स्वराज दल के सदस्यों ने 1919 के अधिनियम के खोखलेपन को उजागर किया। उन्होंने प्रांतों में द्वैध शासन की असफलता को उजागर कर इस संबंध में मुंडीमैन समिति की नियुक्ति करवाई। इन्होंने गोलमेज परिषद बुलाने की माँग की, जिससे उत्तरदायी शासन की स्थापना की जा सके। जून 1925 में चितरंजनदास की मृत्यु से स्वराज दल को बड़ा आघात पहुँचा। 1926 ई. के चुनावों में स्वराज दल को विशेष सफलता नहीं मिली। स्वराज दल का प्रभाव समाप्त हो गया।

साइमन कमीशन– नवम्बर 1927 में ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन (इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन) की नियुक्ति की। साइमन की अध्यक्षता में गठित इस आयोग में एक भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था। इस आयोग का उद्देश्य सांविधानिक सुधार पर सुझाव देना था। भारतीय शासन व्यवस्था के संबंध में जाँच करते हुए इस कमीशन को यह रिपोर्ट देनी थी कि उत्तरदायी शासन लागू करना उचित है या नहीं। प्रांतों में द्वैत शासन लागू रहना चाहिये या नहीं। एक भी भारतीय सदस्य के इस कमीशन में न होने को भारतीयों ने आत्मनिर्णय के सिद्धांत का उल्लंघन मानते हुए अपना अपमान समझा।

कांग्रेस ने दिसम्बर 1927 के मद्रास अधिवेशन में डॉ. अंसारी की अध्यक्षता में साइमन कमीशन के बहिष्कार का निर्णय

लिया। हिंदू महासभा, लिबरल फेडरेशन एवं मुस्लिम लीग ने साइमन कमीशन के प्रति विरोध का मार्ग अपनाया। हालांकि मुस्लिम लीग में साइमन कमीशन के विरोध के प्रश्न पर मुहम्मद शफी के नेतृत्व में एक गुट लीग से अलग हो गया।

साइमन कमीशन 3 फरवरी 1928 को बंबई पहुँचा। साइमन कमीशन के भारत पहुँचते ही इसके विरूद्ध एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन हुआ। बंबई, मद्रास, दिल्ली, कलकत्ता आदि स्थानों पर इसके विरूद्ध एक अखिल भारतीय हड़ताल की गयी। यह कमीशन जहाँ–जहाँ गया, वहाँ–वहाँ इसे काले झंड़े दिखाकर 'साइमन वापस जाओ' के नारे के साथ विरोध किया गया। केन्द्रीय विधान सभा ने भी साइमन का स्वागत करने से इंकार कर दिया।

जब साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तब वहाँ पंजाब के प्रमुख नेता लाला लाजपत राय के नेतृत्व में बहुत बड़ी संख्या में जनसमूह ने इसका विरोध करते हुए प्रदर्शन किया। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठियाँ बरसाईं। इस लाठीचार्ज में लाला लाजपत राय घायल हुए और कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गयी। लखनऊ में साइमन कमीशन का विरोध करते हुए प्रदर्शनकारियों के साथ पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवं जवाहर लाल नेहरू को भी चोट आई। पटना में साइमन कमीशन के स्वागत के लिए ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा गाँवों से गाड़ियों में लोगों को बैठाकर पटना लाया गया किंतु ये गाँव वाले पटना में आकर गाड़ियों से उतरकर साइमन कमीशन का विरोध कर रहे प्रदर्शनकारियों के साथ मिल गए।

मजदूरों–किसानों एवं नवयुवकों ने साइमन कमीशन के विरोध में हुए आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। साइमन कमीशन विरोधी इस आंदोलन ने अंग्रेजों के विरूद्ध राष्ट्रव्यापी जनआंदोलन को और तीव्र कर दिया। विभिन्न दलों एवं नेताओं ने एकजुट होकर सांविधानिक सुधार की एक वैकल्पिक योजना बनाकर साइमन कमीशन को जवाब देने पर सहमति जताई।

नेहरू रिपोर्ट (1928)– भारत सचिव लार्ड बर्कनहेड ने भारतीय नेताओं को एक ऐसा संविधान बनाने की चुनौती दी जो देश के सभी समुदायों एवं वर्गों को मान्य हो। साइमन कमीशन का भारत में जगह–जगह पर विरोध हो रहा था। मई 1928 में सर्वदल सम्मेलन बंबई में हुआ, जिसमें मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गयी। इस समिति का कार्य भारत के भावी संविधान की रूपरेखा तैयार करना था। इस समिति ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की वह 'नेहरू रिपोर्ट' कहलायी। इस समिति के सदस्य तेज बहादूर सप्रू, सर अली इमाम, सरदार मंगल सिंह, एन. एस. अणे, जी. आर. प्रधान एवं शोयेब कुरैशी थे। नेहरू निपोर्ट में निम्नांकित बातें थीं–

1. भारत को अधिराज्य अर्थात् औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion states) का दर्जा दिया जाए। (ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अधीन स्वतंत्रता)
2. अधिकारों की एक ऐसी घोषणा की जाए जिसमें भारत के सभी नागरिकों को धार्मिक और राजनीतिक स्वतंत्रता हो।
3. साम्प्रदायिक आधार पर अलग चनाव क्षेत्रों की व्यवस्था को समाप्त किया जाए। यद्यपि केन्द्रीय एवं प्रांतीय दोनों ही विधायिका में मुसलमानों के लिए सीटें आरक्षित रखी जाए।
4. केन्द्र में द्विसदनी विधायिका की व्यवस्था रहे।
5. प्रांतों को स्वायत्तता दी जाएँ।
6. सारी शक्ति केन्द्रीय विधान सभा के प्रति उत्तरदायी भारत सरकार के हाथ में हो । केवल विदेशी मामलों एवं सुरक्षा ब्रिटिश नियंत्रण में रखे जाएँ।

नेहरू रिपोर्ट जुलाई 1928 में प्रकाशित की गयी। मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार को अल्टीमेटम दिया गया कि नेहरू रिपोर्ट को 31 दिसम्बर 1929 तक स्वीकार नहीं किया गया तो कांग्रेस जनआंदोलन शुरू कर देगी। मुस्लिम लीग ने नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया और जिन्ना ने अपनी चौदह सूत्री माँग रखी।

पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव (दिसम्बर 1929)– नेहरू रिपोर्ट को लागू करने की अवधि 31 दिसम्बर 1929 समाप्त हो गयी थी। इस कारण कांग्रेस ने अब पूर्ण स्वाधीनता की माँग बुलंद की। दिसम्बर 1929 में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इस अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव था। स्वराज्य का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता को बताया गया। इसमें कहा गया कि कांग्रेस अब से पूरा ध्यान भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति पर देगी। इस प्रस्ताव को पारित कर लाहौर में रावी नदी के तट पर 31 दिसम्बर 1929 को आधी रात को भारत की स्वतंत्रता का झंडा फहराया गया। कांग्रेस ने 26 जनवरी 1930 को 'पूर्ण स्वाधीनता दिवस' मनाया और इसके बाद यह दिवस कांग्रेस द्वारा भारत की स्वतंत्रता–प्राप्ति तक प्रति वर्ष मनाया जाने लगा।

सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930)

1930 ई. में प्रारंभ हुआ सविनय अवज्ञा आंदोलन भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण आंदोलन था। 1928 की नेहरू रिपोर्ट के अस्वीकृत होने और ब्रिटिश सरकार द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान नहीं किये जाने से भारतीय नेताओं में असंतोष व्याप्त था। कांग्रेस के दिसम्बर 1929 के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' के लक्ष्य को घोषित करने के बाद भारतीयों में आशा एवं उल्लास की भावना भर गयी। महात्मा गाँधी ने अपने पत्र 'यंग इंडिया' के माध्यम से वायसराय लार्ड इर्विन के समक्ष 11 सूत्रीय माँग रखी। इन मांगों को ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार न किए जाने पर सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ करने का निश्चय किया गया। इन माँगों में लगान में कमी करना, सैन्य व्यय में कमी करना, नमक कर समाप्त करना, रुपये की विनिमय दर घटाना, विदेशी कपड़ों के आयात को नियंत्रित करना, नशीली वस्तुओं का विक्रय बंद करना, राजनीतिक कैदियों को छोड़ देना आदि थी। वायसराय इर्विन द्वारा इन माँगों को अनदेखा किए जाने पर सविनय अवज्ञा का मार्ग अपनाया गया।कांग्रेस–कार्यकारिणी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ

करने का कार्य गाँधी को सौंप दिया।

12 मार्च 1930 को गाँधी ने अपने चुने हुए 78 समर्थकों के साथ साबरमती आश्रम से दांडी के लिए पदयात्रा आरंभ कर दी। 240 मील की पदयात्रा 24 दिन में कर गाँधी अपने सहयोगियों के साथ दांडी पहुँचे। 6 अप्रैल 1930 को समुद्र तट से मुट्ठी भर नमक हाथ में लेकर नमक कानून तोड़ा। नमक कानून तोड़ना इस बात का प्रतीक था कि भारतीय अब ब्रिटिश कानूनों को मानने को तैयार नहीं हैं। देश के कई भागों में नमक कानून तोड़ा गया। सुभाषचंद्र बोस ने गाँधी की इस पद यात्रा की तुलना नेपोलियन की एलबा से पेरिस मार्च से की।

नमक सत्याग्रह

इस आंदोलन के कार्यक्रमों में निम्न प्रमुख थे– नमक कानून का उल्लंघन करना एवं स्वयं नमक बनाना, महिलाओं द्वारा शराब, अफीम एवं विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देना, सूत कातना, विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, छात्रों द्वारा सरकारी स्कूल–कॉलेज छोड़ना, सरकारी सेवाओं से इस्तीफा देना, छुआछूत त्यागना आदि।

इस जनआंदोलन में प्रदर्शन, हड़ताल, बहिष्कार, धरने आदि में बहुत बड़ी संख्या में युवाओं, महिलाओं, किसानों एवं मजदूरों ने सक्रिय भागीदारी निभाई। प्रमुख नेता महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू सहित हजारों सत्याग्रही बंदी बनाए गए। महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं मध्यभारत में वन नियमों का उल्लंघन किया गया। समुद्र तट से दूर बिहार में लोगों ने चौकीदारी कर देने से मना कर दिया गया। चौकीदार गाँव के रक्षक होते थे। ये सरकार की ओर से गुप्तचरी भी किया करते थे। उत्तर प्रदेश में लगान न देने का आंदोलन चलाया गया। चन्द्रसिंह गढ़वाली की अपील पर गढ़वाली सैनिकों ने पेशावर के आंदोलनकारियों पर गोली चलाने से मना कर देश प्रेम प्रदर्शित किया।

शोलापुर में आंदोलनकारियों ने कई अंग्रेजी संस्थानों को जलाकर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। यहाँ आंदोलनकारियों ने ब्रिटिश राज समाप्त कर प्रशासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर एक प्रकार से समानांतर सरकार स्थापित कर ली। शोलापुर शहर लगभग एक सप्ताह तक आंदोलनकारियों के हाथ में रहा। पूवोत्तर सीमांत क्षेत्र में नागाओं ने यदुनांग के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध आंदोलन किया। यदुनांग को फाँसी की सजा दी गयी। यदुनांग के बाद नागा रानी गैडिनल्यु (गिडालू) के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। छोटी सी उम्र की रानी को अंग्रेजों द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गयी। देश की इस वीरांगना को भारत की स्वतंत्रता के बाद ही मुक्ति मिली। मुस्लिमों की भागीदारी इस आंदोलन में 1920 के असहयोग आंदोलन की तुलना में कम थी फिर भी पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के अब्दुल गफ्फार खान के संगठन 'खुदाई खिदमतगार 'ने इस आंदोलन में प्रमुख भागीदारी निभाई।

ब्रिटिश सरकार के घोर दमन के बाद भी यह जन आंदोलन व्यापक होता चला गया। इसी बीच भारती संवैधानिक सुधारों के संबंध में विचार करने के लिए लंदन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन नवम्बर 1930 को आरंभ हुआ। कांग्रेस ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस से बात करने के उद्देश्य से गाँधी सहित कांग्रेस के नेताओं को 26 जनवरी 1931 को रिहा कर दिया।

गाँधी–इर्विन समझौता (मार्च1931)– लंबी बातचीत के बाद 5 मार्च 1931 को गाँधी–इर्विन समझौता हुआ। पहली बार कांग्रेस एवं सरकार को समानता के स्तर पर रखा गया। गाँधी–इर्विन समझौते को 'दिल्ली पैक्ट' भी कहा जाता हैं। गाँधी–इर्विन समझौते के अन्तर्गत ब्रिटिश सरकार ने हिंसात्मक कार्यों में लिप्त बंदियों के अतिरिक्त सभी राजनीतिक बंदियों को रिहा करने एवं उनकी जब्त की गई सम्पति को वापस करने की बात मान ली। सरकार ने समुद्रतटीय इलाकों में रहने वाले ग्रामीणों को घरेलू उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार दिया। जिन सरकारी कर्मचारियों ने त्यागपत्र दिया था, उनके साथ नरमी बरतने की बात सरकार ने मानी। भारतीयों को शांतिपूर्ण धरना दिए जाने का अधिकार दिया गया। इन आश्वासनों के बदले कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को समाप्त करने की शर्त मान ली। कांग्रेस लंदन में होने वाले दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने पर सहमत हो गई।

गाँधी दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन गये। इस सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार का कोई भी प्रस्ताव स्वीकार करने योग्य नहीं था। इस कारण गाँधी दिसम्बर 1931 में भारत वापस आ गये। लंदन के द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के समय सरकार ने गाँधी–इर्विन समझौते के विपरीत भारत में दमन–चक्र जारी रखा।

महात्मा गाँधी ने भारत आकर इर्विन के स्थान पर नियुक्त नये वायसराय विलिंगटन से मिलकर बातचीत करने का प्रयास किया किन्तु उनका प्रयास असफल रहा। ऐसी परिस्थिति में 3 जनवरी 1932 को गाँधी ने पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। कांग्रेस ने लंदन में 1932 ई. में हुए तीसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग नहीं लिया। आंदोलन पुनः प्रारम्भ करने पर ब्रिटिश सरकार ने गाँधी को जेल में बन्द कर दिया। गाँधी ने जेल में अनशन शुरू कर दिया। गाँधी की बिगड़ती हालत को

देखते हुए सरकार ने 23 अगस्त 1933 को उन्हें जेल से रिहा कर दिया। जेल से रिहा होने के बाद गाँधी राजनीति से अलग हो गए और अछूतोद्धार के कार्यक्रम में लग गये। 18 मई 1934 को पटना में कांग्रेस की बैठक में बिना शर्त सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त कर दिया गया।

इस आन्दोलन ने बहुत बड़े सामाजिक वर्ग में राजनीतिक चेतना जागृत की। महिलाओं, युवाओं, मजदूरों, किसानों एवं कम पढ़े–लिखे ग्रामीण लोगों ने भी इस आन्दोलन में भागीदारी निभाई। इसे देखकर अंग्रेज भी आश्चर्य करने लगे। बंगाल के पुलिस विभाग के आई.जी. ने कहा ''मुझे इस बात का कतई अंदाजा नहीं था कि कांग्रेस को इस प्रकार से अज्ञानी और गंवार लोगों का भी सहयोग प्राप्त होगा।'' अवध के किसानों, महाराष्ट्र, मध्य भारत एवं कर्नाटक के जनजातीय समुदाय एवं महाराष्ट्र के मजदूरों ने जिस प्रकार से इस आन्दोलन में सक्रियता दिखाई वह अद्भूत थी। इस आंदोलन का आर्थिक प्रभाव महत्वपूर्ण था। आन्दोलन के दौरान ब्रिटेन से आयातित कपड़े की मात्रा घट कर एक तिहाई हो गई।

गोलमेज सम्मेलन (1930ई.–32ई.)

साइमन कमीशन की रिपोर्ट एवं भारत की संवैधानिक समस्याओं पर विचार–विमर्श करने के लिए लंदन में भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुलाया गया। ये सम्मेलन गोलमेज सम्मेलन कहलाए। लंदन में तीन गोलमेज सम्मेलन हुए।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन– प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर 1930 को लंदन में प्रारंभ हुआ। इसमें भारत के राजनीतिक दलों, देशी रियासतों के प्रतिनिधि एवं ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों में प्रधानमंत्री रैम्जे मेक्डोनाल्ड प्रमुख था। भारत के प्रतिनिधियों में तेज बहादुर सप्रू, एम. आर. जयकर, सी.वाई.चिंतामणि, आगा खां, मुहम्मद अली जिन्ना आदि थे। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों मे बीकानेर, बड़ौदा, कश्मीर, भोपाल, हैदराबाद एवं मैसूर के प्रतिनिधि थे। कांग्रेस ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग नहीं लिया। कांग्रेस इस समय भारत में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन चला रही थी। इस कारण ब्रिटिश सरकार ने उसे अवैध घोषित कर दिया था। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में केन्द्र में भारतीय संघ, कुछ सीमाओं के अंतर्गत केंद्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना, प्रांतों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करना आदि विषयों पर विचार–विमर्श हुआ। भारत के सबसे बड़े दल कांग्रेस ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया था। इस कारण ब्रिटिश सरकार इस सम्मेलन को पूर्ण नहीं मानती थी। यह सम्मेलन 19 जनवरी 1931 को समाप्त हुआ।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन– द्वितीय गोलमेज सम्मेलन 7 सितम्बर 1931 को प्रारंभ हुआ। इस सम्मेलन में महात्मा गाँधी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। इस सम्मेलन में डॉ. भीमराव अम्बेडकर, पं. मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं ने भी भाग लिया। इस सम्मेलन में साम्प्रदायिक समस्या पर निर्णय करना एक कठिन कार्य था। मुस्लिमों की भाँति डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचन प्रणाली की माँग की। केन्द्र व प्राँतों के बीच अधिकारों का वितरण एवं केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना पर प्रतिनिधियों में मतभेद था। दिसम्बर 1931 में गाँधी सम्मेलन से निराश होकर भारत लौटे।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री मेक्डोनाल्ड ने 16 अगस्त 1932 को साम्प्रदायिक निर्णय या साम्प्रदायिक पंचाट (Communal Award) की घोषणा की। इसके अनुसार दलित वर्ग को हिन्दुओं से अलग मानते हुए उन्हे पृथक् चुनाव प्रणाली की सुविधा देते हुये प्रतिनिधित्व दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाते हुए दलितों को अन्य हिन्दुओं से पृथक् करने का प्रयास किया।

महात्मा गाँधी ने मेक्डोनाल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में यरवदा जेल में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। मदन मोहन मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद, सी. राजगोपालाचारी आदि नेता

भीमराव अम्बेडकर

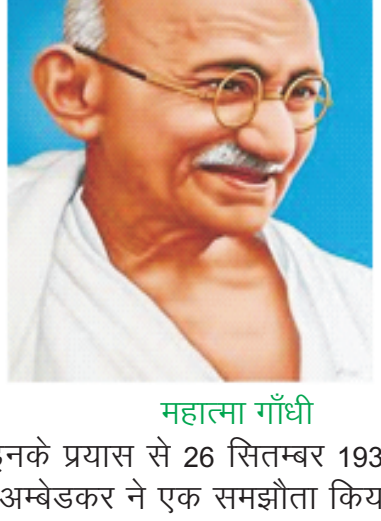

महात्मा गाँधी

अम्बेडकर से पूना में मिले। इनके प्रयास से 26 सितम्बर 1932 को महात्मा गाँधी एवं भीमराव अम्बेडकर ने एक समझौता किया जो 'पूना समझौता' कहलाया। ब्रिटिश सरकार द्वारा इसे सहमति प्रदान किए जाने पर गाँधी ने अनशन तोड़ दिया। इस समझौते के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं में दलित वर्ग के प्रतिनिधियों का स्थान सामान्य हिन्दुओं के स्थान में ही सुरक्षित रखा गया। पूना समझौते में दलित वर्ग को ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित स्थान से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन– यह 17 नवम्बर 1932 को प्रारंभ हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। मुहम्मद अली जिन्ना को सम्मेलन की सदस्यता से वंचित कर दिया गया। इस सम्मेलन में दूसरे गोलमेज सम्मेलन की उपसमितियों की सिफारिश के आधार पर कुछ निर्णय लिए गये। यह सम्मेलन 24 दिसम्बर 1932 को समाप्त हुआ। इन निर्णयों को भारत सरकार ने 1935 के अधिनियम में सम्मिलित किया।

1935 का अधिनियम

1935 का अधिनियम एक विस्तृत अधिनियम था। यह अंग्रेजों द्वारा भारत में लागू की गयी अंतिम महत्वपूर्ण संवैधानिक व्यवस्था थी। इसे लागू करने के कई कारण थे। 1919 का मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार भारतीयों को संतुष्ट नहीं कर पाया था। भारत को

संवैधानिक सुधार के संबंध में सुझाव देने के लिए नियुक्त साइमन कमीशन का भारतीयों ने विरोध किया था। सविनय अवज्ञा आंदोलन ने अंग्रेजी साम्राज्य विरोधी भावना को तीव्र कर दिया। गाँधी–इर्विन समझौता कोई समाधान न निकाल सका। लंदन में हुए तीनों गोलमेज सम्मेलन के बाद ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र जारी किया, जिसमें नए सुधारों का उल्लेख था। इसमें कुछ संशोधनों के बाद ब्रिटिश संसद ने भारत शासन अधिनियम 1935 पारित किया।1935 के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं –

1. 1919 के अधिनियम द्वारा स्थापित प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त किया गया। प्रांतों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की गयी।
2. प्रांतों में दो सदन वाली विधायिका की व्यवस्था की गयी। 6 प्रांतों बंगाल, मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रांत, आसाम एवं बिहार में द्विसदनी विधायिका की व्यवस्था की गयी। उच्च सदन विधानपरिषद् एवं निम्न सदन विधान सभा था।
3. एक 'अखिल भारतीय संघ' की स्थापना का प्रावधान किया गया। गवर्नरों द्वारा शासित प्रांतों एवं देशी रियासतों को मिलाकर इस अखिल भारतीय संघ (Federal) की स्थापना का प्रावधान किया गया। इस सम्बध में तब तक कोई घोषणा नहीं की जा सकती थी जब तक निर्धारित संख्या में देशी रियासतें संघ की स्थापना में इच्छुक न हों।
4. केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था की गयी।
5. इस अधिनियम द्वारा समस्त विषयों को तीन सूचियों में बाँटा गया। संघ सूची, प्रांत सूची एवं समवर्ती सूची। संघीय सूची के विषय केन्द्र के अधीन थे, प्रांतीय सूची के विषय प्रांतों के अधीन थे। समवर्ती सूची के विषय केन्द्र एवं प्रांत दोनों के अधीन थे।
6. एक 'संघीय न्यायालय' (Federal Court) की स्थापना की गयी। इसके निर्णयों के विरूद्ध कुछ मामलों में इंग्लैंड में स्थित प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी।
7. इस अधिनियम द्वारा 1858 के अधिनियम द्वारा स्थापित इंडिया कौंसिल को समाप्त कर दिया गया। इसके स्थान पर भारत सचिव के लिए सलाहकारों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया।
8. साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का विस्तार किया गया। दलितों के लिए भी साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन प्रणाली का प्रावधान किया गया।
9. एक केन्द्रीय बैंक का प्रावधान किया गया, जो भारतीय रिजर्व बैंक कहलाया।
10. रेलवे के नियंत्रण, निर्माण, रखरखाव एवं संचालन के लिए एक संघीय रेलवे प्राधिकरण का प्रावधान किया गया।
11. बर्मा को भारत से पृथक् कर दिया गया। सिंध एवं उडीसा दो नए प्रांत बनाए गए (ब्रिटिश भारत में इसके बाद 11 प्रांत हो गए)।

प्रांतों में उत्तरदायी शासन स्थापित किया गया किंतु प्रांतीय गवर्नर को विवेकीय अधिकार देकर इसे सीमित करने का प्रयास किया गया। देशी रियासतों के संघ में सम्मिलित होने की पर्याप्त संख्या के प्रावधान के कारण भारतीय संघ की स्थापना नहीं हो पायी। इस विषय पर जब देशी रियासतों से बातचीत प्रारंभ की गयी तब उन्होंने ऐसे विषयों पर चर्चा शुरू कर दी जिनका तत्काल समाधान संभव नहीं था। संघीय न्यायालय भी अंतिम न्यायालय नहीं था। इसके विरूद्ध इग्लैंड की प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी।

इस अधिनियम का बहुत बड़ा भाग भारत के संविधान का अंग बना। भारतीय संघ से संबंधित व्यवस्था को छोड़कर अन्य सभी प्रावधान 1 अप्रैल 1937 से लागू हो गए। इसकी आलोचना कांग्रेस ने की किंतु कांग्रेस ने 1937 ई. के प्रांतीय चुनावों में भाग लिया और प्रांतों में अपनी सरकार बनाई।

प्रांतीय सरकारों का निर्माण

1935 के अधिनियम को प्रांतीय क्षेत्रों में 1 अप्रैल 1937 से लागू किया गया। इसके अनुसार प्रांतों में चुनाव हुए। 6 विधानसभाओं मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। जुलाई 1937 में ब्रिटिश भारत के कुल ग्यारह प्रांतों में से इन 6 प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी। पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेश एवं आसाम में कांग्रेस की संयुक्त सरकार बनी। बंगाल में फजल उल हक के नेतृत्व में प्रजा कृषक पार्टी एवं मुस्लिम लीग की संयुक्त सरकार बनी। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी के नेता हयात खां के नेतृत्व में सरकार बनी। कुल 11 में से 8 प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी। केवल तीन प्रांतों बंगाल, पंजाब एवं सिन्ध में गैर कांग्रेसी मंत्रिमंडल बनाए गए। मुस्लिम लीग का मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों में भी प्रदर्शन निराशाजनक रहा।

इन सरकारों ने नागरिक स्वतंत्रता और समान अधिकार के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किए। चौरी चौरा कांड एवं मोपला विद्रोह में सजा काट रहे लोगों एवं गढवाली सैनिकों को रिहा कर दिया गया। राजनीतिक संस्थाओं पर लगी रोक को हटा दिया गया। राजनीतिक कार्यकर्ताओं की गतिविधियों पर लगी रोक हटा ली गयी। समाचार पत्रों से ली गयी जमानतें वापस कर दी गयी। उन्हें सरकारी विज्ञापन दिए जाने लगे। सामाजिक एवं आर्थिक सुधार के कार्यक्रम लागू किए गए। मद्रास में काश्तकार कर्ज राहत कानून पारित कर कर्जों का एक भाग रद्द कर दिया गया। कई और प्रांतों में कर्ज का भुगतान स्थगित किया गया। प्रांतीय सरकारों ने शराबबंदी, हरिजन उत्थान, ग्रामीण विकास, शिक्षा आदि से संबंधित महत्वपूर्ण कार्य किए।

द्वितीय विश्व युद्ध एवं भारत

सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ होने पर प्रांतीय सरकारों से बिना विचार–विमर्श किए वायसराय लिनलिथगो ने यह घोषणा कर दी कि युद्ध में भारत ब्रिटेन के साथ है। इस कारण ब्रिटिश सरकार के प्रांतीय सरकारों से मतभेद हो गए और अक्टूबर 1939 में कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों ने इस्तीफा दे दिया।

मुस्लिम लीग ने अपनी पीरपुर रिपोर्ट में कांग्रेस शासित प्रांतों में मुस्लिमों पर अन्याय किए जाने की मनगढ़ंत कहानियाँ गढ़ीं। इससे साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ावा मिला। कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा प्रांतों से त्यागपत्र दिये जाने पर 22 दिसंबर 1939 को मुस्लिम लीग ने 'मुक्ति दिवस' बनाया।

अगस्त प्रस्ताव (8 अगस्त 1940)– कांग्रेस ने जुलाई 1940 में ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्ताव रखा कि यदि भारतीय स्वतंत्रता की बात मान ली जाए और केंद्र में एक अस्थाई राष्ट्रीय सरकार स्थापित की जाए तब कांग्रेस युद्ध में सरकार को सहयोग कर

सकती है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने कहा था ''मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विघटन करने के लिए ब्रिटेन का प्रधानमंत्री नहीं बना हूँ।'' वायसराय लिनलिथगो ने 8 अगस्त 1940 को अगस्त प्रस्ताव रखा, जिसमें निम्न बातें थीं–

1. युद्ध के बाद संविधान का ढ़ाँचा तैयार करने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों का एक निकाय बनाया जाएगा।
2. वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् का विस्तार किया जाएगा, इसमें भारतीयों को अधिक संख्या में सम्मिलित किया जाएगा।
3. युद्ध सलाहकार परिषद् की नियुक्ति की जाएगी, जिसमें भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि और अन्य भारतीय होंगे।
4. ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।
5. अल्पसंख्यकों की स्वीकृति के बिना सरकार किसी भी संवैधानिक परिवर्तन को लागू नहीं करेगी।

कांग्रेस ने अगस्त प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इसमें अल्पसंख्यकों को अधिक महत्व दिया गया था। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें यह बात मान ली गयी थी कि भारत का संविधान बनाने का अधिकार भारतीयों को है।

व्यक्तिगत सत्याग्रह (अक्टूबर 1940)– कांग्रेस ने लिनलिथगो के अगस्त प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद गाँधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया। इसका लक्ष्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को स्थापित करना था। यह सांकेतिक आंदोलन था जो अत्यंत सीमित रहने वाला था। इसमें सदस्यों को विभिन्न चरणों में गिरफ्तारी देनी थी। सत्याग्रहियों को स्थानीय पुलिस को दो दिन पूर्व सत्याग्रह की सूचना देनी होती थी। सत्याग्रह के दिन सत्याग्रही को गाँधी द्वारा तैयार भाषण देना होता था।

17 अक्टूबर 1940 में महाराष्ट्र के पनवार से व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। विनोबा भावे पहले सत्याग्रही बने। इन्होंने युद्ध विरोधी भाषण देकर गिरफ्तारी दी। दूसरे सत्याग्रही जवाहर लाल नेहरू थे। जब सत्याग्रही सांकेतिक भाषण देते थे तब उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता था किंतु बाद में सरकार ने निर्देश जारी किया कि सत्याग्रही को नोटिस मिलते ही गिरफ्तार कर लिया जाए। 1941 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध में अपनी खराब स्थिति को देखते हुए ब्रिटेन ने युद्ध में भारत का समर्थन प्राप्त करने के लिए सभी सत्याग्रहियों को रिहा कर देने की घोषणा की।

क्रिप्स मिशन (1942 ई.)– भारतीयों में स्वतंत्रता प्राप्त करने की आकांक्षा तीव्र होती जा रही थी। द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की स्थिति कमजोर हो रही थी। ऐसी परिस्थिति में अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट, चीनी राष्ट्रपति च्यांगकाई शेक एवं आस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री जैसे मित्र राष्ट्र के नेताओं ने ब्रिटेन पर दबाव डालना शुरू कर दिया कि वह भारतीयों को सत्ता सौंपने की दिशा में कार्य करे, जिससे युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त हो सके। जापान भारत की सीमाओं तक आ पहुँचा। ब्रिटिश सरकार जापान के आक्रमण से भयभीत हो गयी। ऐसे में भारतीयों से सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने 23 मार्च 1942 में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक मिशन भारत भेजा। विभिन्न भारतीय नेताओं से बातचीत करके क्रिप्स ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसमें निम्न बातें थीं–

1. युद्ध के बाद भारत संघ को 'औपनिवेशिक स्वराज्य' दिया जाए। भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से पृथक् होने का अधिकार दिया जाए।
2. भारत का नया संविधान बनाने के लिए युद्ध के तुरंत बाद एक 'संविधान सभा' बनायी जाए।
3. ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रांत या देशी रियासत को यदि नवीन संविधान पसंद नहीं होगा तब वे अपनी स्थिति यथावत् रख सकेंगे तथा भारतीय संघ से अलग हो सकेंगे।
4. युद्ध की स्थिति एवं नए संविधान के निर्माण तक भारत की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार का होगा।

वास्तविक शक्ति तत्काल भारतीयों को नहीं सौंपी गई। महात्मा गाँधी ने इसे 'आगे की तारीख का चेक' (Post dated cheque) कहा। प्रांतों एवं देशी रियासतों को भारतीय संघ से पृथक् होने के अधिकार के कारण कांग्रेस ने इस योजना का विरोध किया। प्रांतों एवं देशी रियासतों के भारतीय संघ से पृथक होने एवं अपना पृथक् संविधान बनाने के अधिकार देने से अप्रत्यक्ष रूप से पाकिस्तान की माँग को एक प्रकार से स्वीकार कर लिया गया था लेकिन मुस्लिम लीग का मानना था कि इसमें पाकिस्तान की माँग को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया गया था। कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, सिख, दलित प्रतिनिधियों, उदारवादियों आदि ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन

भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक ऐसा जन आंदोलन था जिसने ब्रिटिश सरकार की जड़ें हिलाकर रख दीं। इस आंदोलन ने भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में एक नई दिशा प्रदान की। मार्च 1942 के क्रिप्स मिशन की असफलता ने भारतीय जनता को निराश किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कीमतों में वृद्धि एवं आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण भारतीय जनता में असंतोष की भावना बढ़ गयी थी। ब्रिटेन द्वितीय विश्वयुद्ध में मलाया, सिंगापुर और बर्मा में पीछे हट रहा था। जापान ने इन पर अधिकार कर लिया था। ऐसे समय में महात्मा गाँधी ने अपने पत्र 'हरिजन' में अंग्रेजों से भारत छोड़ने की बात करते हुए लिखा कि भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण है। गाँधी ने अंग्रेजों से भारत को ईश्वर के हाथों में अथवा अराजकता में छोड़ने की बात कही। गाँधी ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध अहिंसक आंदोलन आरंभ करने का निश्चय किया। अबुल कलाम आजाद एवं जवाहर लाल नेहरू इसके पक्ष में नहीं थे। उन्हें महात्मा गाँधी की यह योजना अव्यावहारिक लग रही थी। गाँधी ने कहा ''भारत की बालू से एक ऐसा आंदोलन पैदा करेंगे जो खुद कांग्रेस से भी बड़ा होगा।''

कांग्रेस कार्य समिति ने वर्धा में हुई 14 जुलाई 1942 को अपनी बैठक में महात्मा गाँधी के अहिंसक संघर्ष के कार्यक्रम को स्वीकृति प्रदान कर दी। अगस्त में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में इस प्रस्ताव का अनुमोदन होना था। 7

अगस्त 1942 को बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। 8 अगस्त 1942 को भारत छोडो का यह प्रस्ताव पास किया गया। 8 अगस्त 1942 को बंबई के ग्वालिया टैंक में एक ऐतिहासिक सभा में महात्मा गाँधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया। उन्होंने कहा ''मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ आप इसे अपने दिलों में सँजोकर रख लें और हर एक सांस में इसका जाप करें वह मंत्र है 'करो या मरो', हम या तो भारत को स्वतंत्र कराएँगे या इस प्रयास में मारे जाएँगे, मगर हम अपनी पराधीनता का स्थायित्व देखने के लिए जिंदा नहीं रहेंगे।'' गाँधी वायसराय से मिलकर कांग्रेस के प्रस्ताव को स्वीकार करवाना चाहते थे। उनका यह मानना था कि इसमें दो तीन सप्ताह लग जाएँगे।

इसके पहले कि कांग्रेस आंदोलन चलाती 9 अगस्त 1942 को प्रातः ही गाँधी एवं दूसरे कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस को एक बार पुनः गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। महात्मा गांधी और सरोजिनी नायडू को पूना के आगा खाँ पैलेस में एवं कांग्रेस के अन्य नेताओं को अहमदनगर दुर्ग में नजरबंद कर दिया गया। राजेन्द्र प्रसाद बंबई नहीं आए थे, इसलिए इन्हें पटना में गिरफ्तार कर नजरबंद कर दिया गया। इस आंदोलन की कोई निश्चय योजना तैयार नहीं की गयी थी। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी से जनता नेतृत्व विहीन हो गयी।

राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से जनआक्रोश फैल गया। देश में बंबई, अहमदाबाद, पूना, दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, पटना आदि प्रमुख शहरों में बड़े–बड़े जुलूस निकाले गए। स्कूल, कॉलेज एवं कारखानों में हड़तालें की गयी। स्थान–स्थान पर स्वतःस्फूर्त आंदोलन होने लगे। ब्रिटिश दमन चक्र से आक्रोशित जनता हिंसात्मक कार्यवाहियों में लिप्त हो गयी। भीड़ ने ब्रिटिश सत्ता के प्रतीकों पुलिस थाने, डाकघर, न्यायालय, रेलवे स्टेशन आदि स्थानों पर आक्रमण किया। सार्वजनिक भवनों पर तिरंगा फहराया जाने लगा। रेल की पटरियाँ उखाड़ने, पुल उड़ा देने एवं टेलिफोन व तार की लाईने काट देने का सिलसिला चलता रहा। सरकारी अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों एवं मुखबिरों पर हमले हुए।

समाजवादी अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, श्रीमति अरूणा आसफ अली ने भूमिगत होकर इस आंदोलन में योगदान दिया। जयप्रकाश नारायण को हजारीबाग जेल में रखा गया था। जय प्रकाश नारायण 9 नवम्बर 1942 को पाँच लोगों के साथ हजारीबाग सेंट्रल जेल से भाग निकले। उन्होंने 'आजाद दस्ता' बनाकर अपना जनक्रांति का कार्यक्रम सम्पन्न करने का प्रयास किया। लोगों ने भूमिगत नेताओं को छुपने की जगह दी। सुमति मोरारजी ने अच्युत पटवर्धन के लिए प्रतिदिन एक नई कार की व्यवस्था की और गिरफ्तार होने से बचाया। राम मनोहर लोहिया कांग्रेस रेडियो पर बोलते रहे। अरूणा आसफ अली बंबई में सक्रिय रही। उन्होंने ग्वालिया टैंक मैदान में तिरंगा फहराया।

आंदोलनकारियों ने कई स्थानों पर समानांतर सरकार स्थापित कर ली। बलिया में पहली ऐसी सरकार चित्तू पांडे के नेतृत्व में बनी। उनकी सरकार ने कलक्टर के सारे अधिकार छीनते हुए सभी गिरफ्तार नेताओं को रिहा कर दिया। बंगाल के मिदनापुर में 17 दिसम्बर 1942 से सितम्बर 1944 तक जातीय सरकार के रूप में राष्ट्रीय सरकार रही। जातीय सरकार ने आपसी समझौता करने के लिए अदालतें बनाई, स्कूलों को अनुदान दिए और कई राहत के कार्य चलाए। महाराष्ट्र के सतारा की समानांतर सरकार सबसे अधिक दीर्घजीवी रही। नाना पाटिल इसके प्रमुख नेता थे। यहाँ की सरकार 1945ई. तक चलती रही।

10 फरवरी 1943 में गाँधी ने जेल में उपवास आरंभ कर दिया। अंग्रेज सरकार गाँधी पर दबाव डाल रही थी कि वे भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हुई हिंसात्मक गतिविधियों की भर्त्सना करें। गाँधी का मानना था कि आंदोलन के हिंसक रूप के लिए ब्रिटिश सरकार उत्तरदायी थी। गाँधी की रिहाई की माँग उठने लगी। वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् के तीन सदस्य एम. एस.एनी, एन.आर.सरकार एवं एच.पी.मोदी ने इस्तीफा दे दिया। एक तरफ भारतीय जनता के विभिन्न वर्ग गाँधी की रिहाई की माँग कर रहे थे तो दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार गाँधी के अंतिम संस्कार की तैयारियाँ कर रही थी। गाँधी को बीमारी के आधार पर 6 मई 1944 को रिहा कर दिया गया।

कांग्रेस के नेताओं ने आंदोलन के समय हुई हिंसात्मक गतिविधियों का उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं किया। इस आंदोलन को कुचलने के लिए सरकार ने बड़ी क्रूरता दिखाई। प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलाई गयी। उन पर बम बरसाये गए। बंदी बनाए गए आंदोलनकारियों को बहुत यातनाएँ दी गयी। विद्रोही गाँवों से भारी जुर्माना वसूला गया। 1942 ई. के अंत तक 60 हजार से अधिक लोगों को गिरफ्तार किया जा चुका था। पुलिस एवं सेना की गोलीबारी में 10,000 से भी अधिक लोग मारे गए।

मुस्लिम लीग ने इस आंदोलन में निरपेक्षता की नीति अपनाई। मुस्लिम लीग के मुहम्मद अली जिन्ना ने मुसलमानों से अपील की कि वे इस आंदोलन से बिल्कुल अलग रहें। जब कांग्रेस के प्रमुख नेता जेल में थे तब जिन्ना ने मुस्लिम लीग को 23 मार्च 1943 को 'पाकिस्तान दिवस' मनाने को कहा। साम्यवादियों ने कांग्रेस से भारत छोड़ो आंदोलन वापस लेने को कहा। कम्युनिस्ट पार्टी ने अंग्रेज सरकार का सहयोग किया।

नेतृत्व विहीन यह आंदोलन भारतीय जनता के संघर्ष एवं बलिदान का अनूठा उदाहरण है। इसकी व्यापकता को देखते हुए अंग्रेज यह समझने लगे कि भारत में अंग्रेज अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सकते। युवाओं, महिलाओं, किसानों आदि विभिन्न वर्गों ने बड़ी वीरता से इस आंदोलन में भाग लिया और यातनाएँ सहन की। पूर्वी उ.प्र., बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, केरल आदि के किसान सक्रिय रहे। बड़े जमींदारों में दरभंगा के राजा ने सरकार को सहायता नहीं दी और गिरफ्तार लोगों की मदद की। अरूणा आसफ अली एवं सुचेता कृपलानी जैसी महिलाओं ने भूमिगत होकर कार्य किया। उषा मेहता कांग्रेस

रेडियो चलाने वाले समूह की सदस्य थी। मजदूर वर्ग की भूमिका इस आंदोलन में सक्रिय थी। अहमदाबाद, बंबई, जमशेदपुर आदि में कारखानें कई दिनों तक बंद रहे। अहमदाबाद में लगभग साढ़े तीन महीने कारखानें बंद रहे। विद्यार्थियों ने इस आंदोलन का संदेश गाँवों में घूम–घूम कर फैलाया। इस आंदोलन की सबसे बड़ी सफलता यही थी कि इसके परिणामस्वरूप भारत की स्वतंत्रता की माँग राष्ट्रीय आंदोलन की प्रथम माँग बन गयी। ब्रिटिश सरकार से अब सत्ता हस्तांतरण पर ही बात की जानी थी। स्वतंत्रता के लिए जनता बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार हो गयी।

वेवेल योजना एवं शिमला सम्मेलन (1945 ई.)

द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेजों की स्थिति दुर्बल हो रही थी। आजाद हिन्द फौज जापान के साथ भारत की सीमा तक पहुँच गई थी। इंग्लैण्ड में लेबर दल का प्रभाव बढ़ रहा था। आगामी चुनाव को देखते हुए ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने भारत के संवैधानिक गतिरोध को समाप्त करना चाहा। वायसराय वेवल ने जून 1945 में संवैधानिक सुधार की रूपरेखा प्रस्तुत की, जो 'वेवेल योजना' कहलाई। इसके अनुसार–

1. गवर्नर जनरल की नई कार्यकारिणी परिषद् का गठन होगा। इसमें मुसलमानों एवं सामान्य हिन्दुओं की संख्या बराबर होगी। गवर्नर जनरल एवं सेनाध्यक्ष को छोड़कर शेष सभी सदस्य भारतीय होंगे।
2. प्रान्तों में मिली–जुली उत्तरदायी सरकारों की स्थापना होगी।
3. इन प्रस्तावों का भारत के भावी संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। भारत का संविधान बाद में स्वयं भारतीय बनाएँगे।

वेवेल योजना पर विचार– विमर्श करने के लिये वायसराय वेवेल ने भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन 25 जून 1945 को शिमला में बुलाया। वेवेल ने 14 सदस्यों की कार्यकारिणी परिषद् का प्रस्ताव रखा। इसमें कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग को 5–5 सदस्यों के नाम देने थे। कांग्रेस ने मौलाना अबुल कलाम आजाद का नाम देना चाहा किन्तु जिन्ना समस्त मुस्लिमों के नाम मुस्लिम लीग द्वारा ही मनोनीत करने पर अड़ गए। शिमला सम्मेलन के निर्णय को मुस्लिम लीग द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर वेवेल ने शिमला सम्मेलन को समाप्त घोषित कर दिया। जिन्ना को अंग्रेजों द्वारा एक प्रकार से वीटो का अधिकार दे दिया गया।

1945 ई. में इंग्लैंड में श्रमिक दल की सरकार बनी। शिमला सम्मेलन की असफलता के बाद भारत में चुनाव हुए। कांग्रेस ने गैर मुस्लिम सीटों पर अधिकार किया। उत्तरपश्चिमी सीमा प्रांत में मुस्लिम सीट कांग्रेस को प्राप्त हुई।

नौसेना विद्रोह (फरवरी 1946)

18 फरवरी 1946 को 'तलवार' नामक जहाज के भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। इन्होंने अंग्रेजों के जातीय व्यवहार एवं खराब भोजन दिये जाने के विरोध में भूख हड़ताल कर दी। कई जहाजों पर 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' लिखा हुआ था। अगले ही दिन बम्बई के 22 जहाजों में यह हड़ताल फैल गई। हड़तालियों ने एम.एस. खान के नेतृत्व में एक 'हड़ताल समिति' का गठन किया। इनकी प्रमुख माँगें भारतीय नौसैनिकों को अच्छा भोजन दिया जाय, उनका वेतन अंग्रेजों के समान हो, आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को छोड़ दिया जाय, इण्डोनेशिया से भारतीय सैनिकों को वापस बुलाया जाय आदि थीं।

यह विद्रोह अन्य बन्दरगाहों एवं जहाजों पर फैल गया। इसमें लगभग 20 हजार नौसेना के लोग सम्मिलित हो गए। बम्बई के नागरिकों ने भारतीय नौसैनिकों का समर्थन करते हुए इनके भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था की। 22 फरवरी 1946 को बम्बई की मिलें बन्द कर दी गईं। मजदूर एवं नागरिक इनके समर्थन में सड़कों पर उतर आये। वल्लभ भाई पटेल जैसे प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं के आह्वान पर यह विद्रोह समाप्त हुआ।

केबिनेट मिशन (1946)

अंग्रेज अब भारत में सेना पर विश्वास नहीं कर सकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन की स्थिति ठीक नहीं थी और वह अब विश्व की तीसरी शक्ति बन चुका था। ऐसे समय में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली की सरकार ने भारत की समस्या का हल करने के लिए एक मंत्रिमंडल शिष्टमंडल (Cabinet mission) भारत भेजा।

मंत्रिमंडल शिष्टमंडल 24 मार्च 1946 को दिल्ली पहुँचा। इसके तीन सदस्य पेथिक लारेंस (भारत सचिव), सर स्टैफर्ट क्रिप्स (बोर्ड ऑफ ट्रेड का अध्यक्ष) और ए.वी.एलेक्जेण्डर (नौसेना मंत्री) थे। इस मिशन ने पहले तीन सप्ताह गवर्नरों, राजाओं, नवाबों, कांग्रेस, मुस्लिम लीग एवं अन्य राजनीतिक पक्षों से विचार–विमर्श किया। 16 मई 1946 को केबिनेट मिशन ने वायसराय और ब्रिटिश मंत्रिमंडल से सलाह कर निम्न सुझाव के साथ अपना प्रस्ताव प्रकाशित किया–

1. एक भारतीय संघ की स्थापना हो, जिसमें ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासतें सम्मिलित हो। इस संघ के पास प्रतिरक्षा, विदेशी संबंध तथा संचार व्यवस्था का उत्तरदायित्व रहे।
2. प्रांतो को पृथक समूह बनाने का अधिकार हो।
3. संविधान निर्माण के लिए एक संविधान–सभा का गठन किया जाए। इसके सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा किया जाए। प्रत्येक दस लाख जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुना जाए।
4. केंद्र में एक अंतरिम सरकार (Interim government) की स्थापना की जाए और उसमें प्रमुख भारतीय दलों के सदस्य हों।

भारत विभाजन की ओर एवं स्वतंत्रता

केबिनेट मिशन द्वारा कमजोर संघ रखकर मुस्लिम लीग एवं भारतीय नरेशों को संतुष्ट करने का प्रयास किया गया। प्रांतों का समूहीकरण स्पष्ट नहीं था। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग ने केबिनेट मिशन की दीर्घकालीन योजना को स्वीकार कर लिया किंतु अंतरिम सरकार के गठन पर दोनों में मतभेद हुआ।

केबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के लिए चुनाव हुए। अंतरिम सरकार के लिए कांग्रेस ने माँग की थी कि उसे अपने प्रतिनिधियों में एक राष्ट्रवादी मुसलमान को सम्मिलित करने का अधिकार मिलना चाहिए। लीग ने कांग्रेस

की इस माँग का विरोध किया। 29 जुलाई 1946 को मुस्लिम लीग ने केबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर अपनी स्वीकृति वापस ले ली। वायसराय वेवेल ने कांग्रेस को केंद्र में अंतरिम सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। जवाहर लाल नेहरू ने जिन्ना से मिलकर मुस्लिम लीग को अंतरिम सरकार में सम्मिलित करने का प्रयास किया किंतु वे असफल हुए।

सीधी कार्यवाही दिवस (अगस्त 1946)– मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' करने का निश्चय किया। मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस (Direct action day) मनाने की घोषणा की। प्रत्यक्ष कार्यवाही पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं के विरूद्ध की गयी। मुस्लिम लीग ने हिंसा की नीति अपनाई। 'लेकर रहेंगे पाकिस्तान' एवं 'लडके लेंगे पाकिस्तान' के नारों के साथ मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए कार्यवाही की। सर्वप्रथम कलकत्ता में प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाया गया, जहाँ मुस्लिम लीग के सुहरावर्दी की सरकार थी। बंगाल के नोआखाली एवं टिप्पड़ाह में दंगा हुआ, जिसे रोकने के लिए बंगाल की सरकार ने प्रयत्न नहीं किया। कलकत्ता में हजारों की संख्या में हिन्दू लूटे एवं मारे गए। यहाँ बड़ी संख्या में बिहारी हिन्दू मजदूर मारे गए। ये साम्प्रदायिक दंगें बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रांत, बम्बई, पंजाब आदि में फैल गए।

अंतरिम सरकार (सितम्बर 1946)– 2 सितम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार का गठन हुआ। इस सरकार में सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी, जगजीवन राम, आसफ अली, शरद चंद बोस, सरदार बलदेव सिंह, डॉ. जॉन मथाई, सर शफात अहमद खाँ, सैयद अली जहीर एवं सी.एच. भामा सम्मिलित किए गए। मुस्लिम लीग ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने की घोषणा की। अक्टूबर 1946 में मुस्लिम लीग के पाँच सदस्य अंतरिम सरकार में सम्मिलित हो गए।

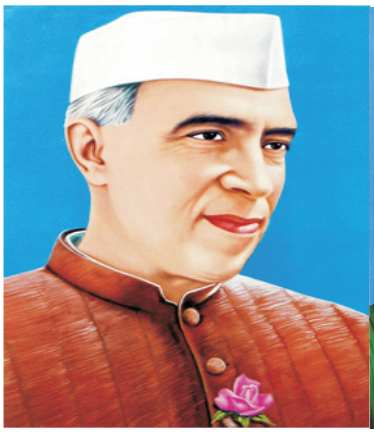

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

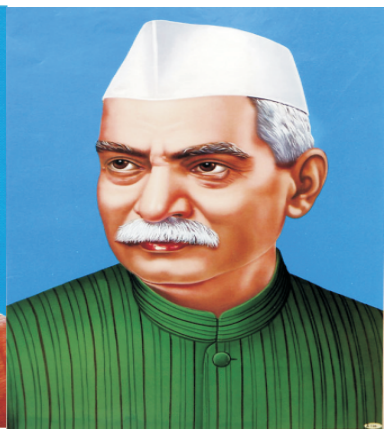

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

मुस्लिम लीग का अंतरिम सरकार में सम्मिलित होने का उद्देश्य सरकार को असफल बनाना था। वह सरकार के कार्यों में बाधा पहुँचाकर अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहती थी। मुस्लिम लीग के लियाकत अली वित्त मंत्री थे। लियाकत अली ने बजट प्रस्तुत करते समय उद्योगपतियों एवं व्यापारियों पर अत्यधिक कर लगाए। लीग के सदस्यों ने सरकार का सहयोग नहीं किया। अब यह स्पष्ट हो गया कि काँग्रेस एवं मुस्लिम लीग का मिलकर सरकार चलाना कठिन हैं।

9 दिसम्बर 1946 में संविधान सभा की पहली बैठक हुई, जिसमे वरिष्ठता के आधार पर सच्चिदानंद सिन्हा संविधान सभा के अस्थाई अध्यक्ष मनोनीत किये गए। 11 दिसम्बर 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का अध्यक्ष चुना गया।

एटली की घोषणा (फरवरी 1947)– ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने भारत की बिगड़ती हुई दशा को देखते हुए यह अनुभव किया कि ब्रिटेन को भारत से अपना अधिकार समाप्त कर लेना चाहिए और इसकी एक निश्चित तिथि तय करनी चाहिए।

20 फरवरी 1947 को एटली ने हाउस आफ कामंस में घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार जून 1948 तक भारत की सत्ता जिम्मेदार भारतीयों के हाथ में सौंप देना चाहती है। इस कार्य के लिए नए वायसराय माउंटबेटन की नियुक्ति की घोषणा की गयी। एटली ने कहा था कि सरकार विचार करेगी कि सत्ता एक केन्द्रीय सरकार या कुछ अंचलों में प्रांतीय सरकारों के हाथ में सौंपी जाए। काँग्रेस एवं मुस्लिम लीग ने एटली की घोषणा का स्वागत किया।

माउन्टबेटन योजना (3 जून 1947)– 24 मार्च 1947 को माउंटबेटन वायसराय बनकर भारत आए। माउंटबेटन ने विभिन्न राजनीतिक दलों एवं नेताओं से बातचीत की। माउंटबेटन इस निर्णय पर पहुँचा कि भारत की समस्या का एकमात्र समाधान देश का विभाजन एवं पाकिस्तान का निर्माण है। सरदार पटेल एवं जवाहर लाल नेहरू को माउंटबेटन ने बँटवारे के पक्ष में कर लिया। अबुल कलाम आजाद एवं महात्मा गांधी बँटवारे के पक्ष में नहीं थे। महात्मा गाँधी ने कहा "अगर कांग्रेस बँटवारा स्वीकार करेगी तो उसे मेरी लाश के ऊपर करना पड़ेगा। जब तक मैं जिंदा हूँ भारत के बँटवारे के लिए कभी राजी न होऊँगा और मेरा वश चला तो कांग्रेस को भी इसे स्वीकार करने की इजाजत न दूँगा।" महात्मा गाँधी ने लार्ड माउन्टबेटन से मिलकर उसे सुझाव दिया कि जिन्ना को सरकार बनाने एवं अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों को चुनने दिया जाए। इस सुझाव का पटेल एवं नेहरू द्वारा विरोध किए जाने पर गाँधी पीछे हट गए।

देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए महात्मा गाँधी ने कुछ दिनों बाद यह मान लिया कि बँटवारा अवश्यंभावी है। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के नेताओं से बातचीत करने के बाद माउंटबेटन ने लंदन जाकर ब्रिटिश सरकार को देश के बँटवारे की योजना बताई। उसने वापस भारत आकर इस विषय में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग से बातचीत करके उनकी स्वीकृति प्राप्त की। ब्रिटिश सरकार ने भारत के बँटवारे की मांउटबेटन योजना को 3 जून 1947 को प्रकाशित किया। माउंटबेटन योजना में प्रमुख बातें निम्न थीं–

1. भारत को दो भागों भारतीय संघ एवं पाकिस्तान में बाँट दिया जाएगा।
2. संविधान सभा द्वारा पारित संविधान भारत के उन भागों में लागू नहीं किया जाएगा, जो इसे मानने को तैयार न हों।

3. भारत के विभाजन के पहले पंजाब एवं बंगाल के सीमांकन के प्रश्न के फैसला होगा। बंगाल एव पंजाब के हिंदू बहुसंख्यक जिलों एवं मुस्लिम बहुसंख्यक जिलों के प्रांतीय विधानसभा के सदस्यों की अलग–अलग बैठक बुलाई जाए और इसमें से यदि कोई भी पक्ष प्रांत का विभाजन चाहेगा तब विभाजन कर दिया जाएगा।
4. उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत और असम के सिलहट जिले में जनमत संग्रह द्वारा यह निर्णय लिया जाएगा कि वे किसके साथ रहना चाहते हैं। सिंध विधानसभा में वोट के माध्यम से यह निर्णय लिया जायेगा कि वह किसके साथ सम्मिलित होगा।
5. देशी रियासतों को यह तय करने का अधिकार होगा कि वह किसके साथ सम्मिलित हों। यदि रियासत किसी के साथ भी सम्मिलित नहीं होना चाहे तब उसके ब्रिटेन के साथ पहले जैसे ही संबंध बने रहेंगे।

इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए आजाद ने कहा ''कॉंग्रेस कार्यसमिति का निर्णय सही निर्णय नहीं है लेकिन कॉंग्रेस के सामने कोई और विकल्प नहीं है।'' इस प्रस्ताव का विरोध सिंध के नेता चौथराम मिडवानी, पंजाब कॉंग्रेस के अध्यक्ष डॉ. किचलू, पुरूषोत्तम दास टंडन एवं मौलाना हफीजुर्रहमान आदि ने किया। हिंदू महासभा ने इस योजना की आलोचना की। बंटवारा स्वीकार करने से पूर्व पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के नेताओं से नहीं पूछा गया। अब्दुल गफ्फार खान ने बंटवारे का विरोध करते हुए कहा ''अगर कॉंग्रेस अब खुदाई खिदमतगारों को भेडियों के सामने फेंक देती है तो सीमांत प्रांत इसे दगाबाजी का काम समझेगा।''

अब्दुल गफ्फार खान ने जनमत संग्रह में भाग नहीं लिया और उसका बहिष्कार किया। इस कारण मुस्लिम लीग ने साम्प्रदायिकता का प्रचार कर पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत को पाकिस्तान में सम्मिलित करवा लिया। पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान और असम के सिलहट जिले को पाकिस्तान में सम्मिलित किया गया। पंजाब तथा बंगाल के गैर मुस्लिम क्षेत्र की जनता ने भारत में सम्मिलित होने का निर्णय लिया। सिलहट को छोड़कर संपूर्ण असम भारत में रहा।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (4 जुलाई 1947)– 4 जुलाई 1947 को भारतीय स्वाधीनता विधेयक ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत किया गया। 18 जुलाई 1947 को यह विधेयक ब्रिटिश सम्राट के हस्ताक्षर होते ही पारित हो गया और भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 कहलाया। दो नए राष्ट्र भारत एवं पाकिस्तान बने। मुहम्मद अली जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल एवं लियाकत अली पाकिस्तान के प्रधानमंत्री बने। स्वतंत्र भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउंटबेटन एवं प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू बने।

भारतीय संघ की संविधान सभा की बैठक 14 अगस्त 1947 को आधी रात में हुई। 14 अगस्त की रात के बारह बजे एवं 15 अगस्त के आरंभ होते ही जवाहर लाल नेहरू ने संबोधित करते हुए कहा ''वर्षों पूर्व हमने किस्मत के साथ बाजी लगाई थी अब समय आ गया है कि हम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी तरह न सही लेकिन काफी हद तक पूरा करें। आधी रात की इस घड़ी में जब दुनिया सो रही है, भारत जागकर जीवन एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर रहा है। एक क्षण ऐसा आता है जो इतिहास में बहुत कम आता है जब हम पुराने युग से नए युग में कदम रखते हैं।''

भारत के विभाजन के कारण

भारतीयों के वर्षों के संघर्ष के परिणामस्वरूप भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई किंतु भारत की स्वतंत्रता के समय भारत का विभाजन भारत के इतिहास की एक दुःखद घटना है। भारत की जनता की इच्छा के विरूद्ध भारत का विभाजन हुआ। भारत के विभाजन के लिए उत्तरदायी कारण निम्न हैं–

मुस्लिम लीग एवं जिन्ना की भूमिका– भारत के विभाजन में मुस्लिम लीग एवं उसके नेता मुहम्मद अली जिन्ना की प्रमुख भूमिका थी। मुस्लिम लीग ने दो राष्ट्र के सिद्धांत पर आधारित मुस्लिमों के लिए पृथक् राष्ट्र की माँग की। मुहम्मद इकबाल ने 1930 में मुस्लिम लीग के अपने अध्यक्षीय भाषण में मुस्लिमों के लिए एक पृथक् राज्य की स्थापना की बात कही। उन्होंने उत्तर पश्चिमी भारत के मुस्लिम बहुमत वाले प्रांतों को एक राज्य बना दिए जाने की बात कही। 'पाकिस्तान' शब्द का सबसे पहले प्रयोग लंदन में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विद्यार्थी चौधरी रहमत अली एवं उसके साथियों ने किया। जनवरी 1933 में 'अब या फिर कभी नही' (Now or Never) पत्रक में 'पाकिस्तान' शब्द का प्रयोग किया गया। इसमें भारत में तीन मुस्लिम राज्यों की स्थापना की बात की गयी। पाकिस्तान, उस्मानिस्तान और बंग ए इस्लाम। पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत, कश्मीर, सिंध और बलूचिस्तान को जोड़कर 'पाकिस्तान' बनाने की बात कही गयी। संपूर्ण बंगाल और आसाम को मिलाकर 'बंग ए इस्लाम' एवं हैदराबाद रियासत को 'उस्मानिस्तान' नाम दिया गया।

1937 के प्रांतीय चुनावों में मुस्लिम लीग को सफलता नहीं मिली। 1937 में कॉंग्रेस ने मुस्लिम लीग के संयुक्त सरकार बनाने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। 1937 के चुनावों की सफलता के बाद जवाहर लाल नेहरू ने मुस्लिमों को कॉंग्रेस की ओर आकर्षित करने के लिए मुस्लिम जनसंपर्क अभियान किया। इसका विरोध मुस्लिम लीग ने किया। मुस्लिम लीग स्वयं को मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि समझती थी। मुस्लिम लीग एवं जिन्ना ने पृथक्तावादी नीति अपनाई। मुस्लिम लीग ने कॉंग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा मुस्लिमों पर अत्याचार करने के मनगढ़ंत आरोप लगाकर साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ावा दिया गया। कॉंग्रेस मंत्रिमंडलों के त्यागपत्र देने पर 22 दिसम्बर 1939 को मुस्लिम लीग ने 'मुक्ति दिवस' मनाया। 23 मार्च 1940 को मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में 'पाकिस्तान' का प्रस्ताव पारित किया।

अंग्रेजों की फूट डालो एवं राज करो की नीति– अंग्रेजों ने 'फूट डालो एवं राज करो' की नीति का अनुसरण करते हुए पृथकतावाद को बढ़ावा दिया। ब्रिटिश सरकार ने अन्य सम्प्रदायों की उपेक्षा कर मुस्लिमों का पक्ष लिया। 1909 के मार्ले मिन्टो अधिनियम के द्वारा साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया। इसके अनुसार मुस्लिमों को पृथक् प्रतिनिधित्व एवं विधानमंडलों में उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया। अंग्रेजों ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उपयोग भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के विरूद्ध एक हथियार के रूप में किया।

1945 ई. में वेवेल ने कार्यकारिणी परिषद् के प्रस्ताव में 5–5 सदस्यों के नाम मुस्लिम लीग एवं काँग्रेस से देने के लिए कहा था, जबकि काँग्रेस मुस्लिम लीग की तुलना में अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व करती थी। इस प्रकार उसने दोनों को बराबरी का दर्जा देकर मुस्लिम लीग को बढ़ावा दिया। जिन्ना ने समस्त मुस्लिम सदस्यों के नाम मुस्लिम लीग द्वारा दिए जाने की माँग की। शिमला सम्मेलन में जिन्ना को एक प्रकार से वीटो का अधिकार दे दिया गया। वेवेल ने शिमला सम्मेलन के निर्णयों को मुस्लिम लीग द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर शिमला सम्मेलन समाप्त घोषित कर दिया था।

तुष्टिकरण की नीति– भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता को आवश्यक मानते हुए मुस्लिमों का सहयोग प्राप्त करने के लिए तुष्टिकरण की नीति अपनाई गयी। 1916 के लखनऊ समझौते में कांग्रेस ने मुस्लिमों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व एवं विधानमंडलों में उन्हें जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व दिए जाने के अधिकार को स्वीकार कर लिया। यह बहुत बड़ी भूल थी। 1923 ई. से 1933 ई. तक 'हिन्दू महासभा' ने लखनऊ समझौते को संशोधित करवाने के प्रयास किए। देश की साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिए गाँधी ने सी. आर. फार्मूले (1944 ई.) पर जिन्ना से बात की। इस फार्मूले के अनुसार मुस्लिम लीग को भारतीय स्वतंत्रता की माँग का समर्थन करना था एवं युद्ध–समाप्ति के बाद उत्तरपश्चिमी एवं उत्तरपूर्वी भारत के उन क्षेत्रों में जहाँ मुस्लिम बहुमत में है, जनमत द्वारा निर्णय लिया जाना था कि वे भारत से अलग होना चाहते हैं अथवा नहीं। महात्मा गाँधी ने जिन्ना को बार–बार मनाने का प्रयास किया। गाँधी के साथ वार्ता के बाद जिन्ना का महत्व अधिक बढ़ गया। मुस्लिम लीग को संविधान सभा में भाग लेने के लिए सहमत किए बिना ही 1946 ई. की अंतरिम सरकार में सम्मिलित कर लिया गया। मुहम्मद अली जिन्ना राजनैतिक परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए शक्तिशाली बनता गया और 'कायदे आजम' (महान संगठनकर्ता) कहलाने लगा। तुष्टिकरण की नीति के परिणामस्वरूप मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला।

अंतरिम सरकार की असफलता– अंतरिम सरकार में मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग को मजबूत करने एवं कांग्रेस को दुर्बल करने के लिए सम्मिलित हुई थी। इसमें मुस्लिम लीग ने अपने द्वितीय श्रेणी के नेताओं को प्रतिनिधित्व के लिए भेजा था। इन्होंने कांग्रेस के मंत्रियों के कार्यों में बाधा डाली। अंतरिम सरकार से यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग का एक साथ मिलकर सरकार चलाना असंभव है।

साम्प्रदायिक दंगे– मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए 16 अगस्त 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' शुरू की। इसके परिणामस्वरूप देश के कई स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए। बंगाल की मुस्लिम लीग की सरकार ने इसे रोकने के स्थान पर उपद्रवियों की सहायता की। साम्प्रदायिक दंगों की भीषणता एवं इसके विस्तार को देखते हुए गाँधी, नेहरू एवं पटेल ने भारत के विभाजन को स्वीकार कर लिया।

सरकार वल्लभभाई पटेल ने कहा ''यदि हम भारत का विभाजन स्वीकार नहीं करते तो भारत छोटे–छोटे टुकड़ों में बँट जाएगा और पूर्णतया नष्ट हो जाएगा।'' गोविंदवल्लभ पंत ने कहा ''काँग्रेस को या तो विभाजन को स्वीकार करना है अथवा आत्महत्या करनी है।'' माउन्ट बेटन ने नेहरू एवं पटेल को भारत के विभाजन के लिए तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा ''निश्चित ही यह हमारा दोष है और हमें अपनी कमजोरियों का दण्ड भुगतना पड़ा। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों ने भारत में तोड–फोड़ पैदा करने के लिए सोच–समझकर जो कुछ किया उसके लिए मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता। दूसरे सभी घाव भर जाऐंगे, किन्तु यह घाव कहीं लंबे समय तक रिसता रहेगा।''

अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ने के कारण एवं भारत की स्वतंत्रता में सहायक तत्व–

भारत की स्वतंत्रता भारतीयों के वर्षों के संघर्ष, त्याग एवं बलिदान का परिणाम थी। इसमें देश के विभिन्न वर्ग के लोगों एवं विभिन्न राजनैतिक दलों ने योगदान दिया। भारत की आजादी के संघर्ष में बुद्धिजीवी, किसान, मजदूर, पूँजीपति, व्यापारी, जमींदार, युवाओं, छात्रों, शिक्षकों आदि ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ने एवं भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में प्रेरक तत्व निम्न थे–

द्वितीय महायुद्ध के बाद इग्लैंड की स्थिति दुर्बल होना– द्वितीय विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों के साथ इंग्लैंड विजयी हुआ किंतु युद्ध के बाद वह द्वितीय श्रेणी की शक्ति बनकर रह गया। युद्ध के बाद अमेरिका एवं सोवियत संघ (रूस) बड़ी शक्तियों के रूप में विश्व के समक्ष आए। इंग्लैड की आर्थिक एवं सैनिक शक्ति कमजोर हो गयी थी। अमेरिका एवं चीन इंग्लैंड पर भारतीयों को सत्ता सौंपने के लिए दबाव डाल रहे थे। इंग्लैंड के लिए विश्व जनमत की अवहेलना करना कठिन होता जा रहा था। साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव से भी इंग्लैड चिंतित था। रूस की सहानुभूति स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले देशों के प्रति थी।

इंग्लैंड में लेबर दल की सरकार बनना– मई 1945 के चुनाव में इंग्लैंड़ में श्रमिक दल की सरकार बनी। श्रमिक दल ने अपने घोषणा पत्र में भारतीय समस्या का हल करने का वचन दिया था। ब्रिटेन यह जानता था कि भारत पर अधिक दिनों तक शासन नहीं किया जा सकता, अन्ततः ब्रिटेन को भारत छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने संसद में यह घोषणा की कि उनकी सरकार अधिकाधिक जून 1948 तक शक्ति का हस्तांतरण भारतीयों के हाथों में दे देगी।

भारतीय सेना में विद्रोह की भावना– भारतीय सेना में राष्ट्रीयता की भावना तीव्र हो गयी थी। आजाद हिंद फौज के सैनिकों ने जापानियों के साथ मिलकर ब्रिटेन के विरूद्ध भारतीय स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया। आजाद हिंद फौज के सैनिकों की रिहाई के लिए भारत में चल रहे आंदोलन से अंग्रेज अधिक चिंतित हो गये। 18 फरवरी 1946 को बंबई में नौ सेना ने विद्रोह किया। नौ सेना, थल सेना एवं वायुसेना में अंग्रेजों के विरूद्ध बढ़ती भावना से अंग्रेजों को यह विश्वास हो गया कि वे अब भारतीय सेना पर निर्भर होकर भारत पर शासन नहीं कर सकते। ब्रिटिश नौकरशाही का मनोबल गिर रहा था। भारतीय अधिकारियों की वफादारी अंग्रेजों के प्रति बदलती गयी।

साम्प्रदायिक दंगे– जिस मुस्लिम लीग को संरक्षण देकर अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ाया, वही मुस्लिम लीग अब उनके नियंत्रण में नहीं रही। साम्प्रदायिक दंगों के अन्य स्थानों पर फैलने से अंग्रेजों के लिए कानून एवं व्यवस्था बनाए रखना कठिन होते जा रहा था। प्रशासनिक, पुलिस एवं सैनिक अधिकारी भी साम्प्रदायिकता के प्रभाव में आने लगे थे। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार ने भारत को छोड़ने की तिथि आगे लाकर 15 अगस्त 1947 कर दी।

1945–46 ई. में ब्रिटिश राज्य विरोधी लहर का विस्तार होता जा रहा था।अंततः अंग्रेजों को बेइज्जत होकर भारत से जाना पड़ता। भारत की बिगड़ती हुई स्थिति, भारतीय सैनिकों में राष्ट्रवाद की भावना एवं जनआंदोलन को रोक पाने में अपनी असमर्थता को देखते हुए अंग्रेजों ने शीघ्र ही भारतीयों को सत्ता हस्तांतरित कर दी।

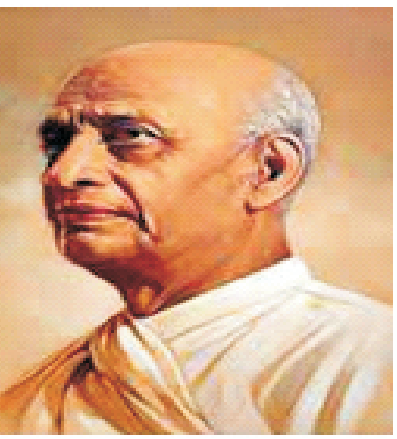

सरदार वल्लभभाई पटेल

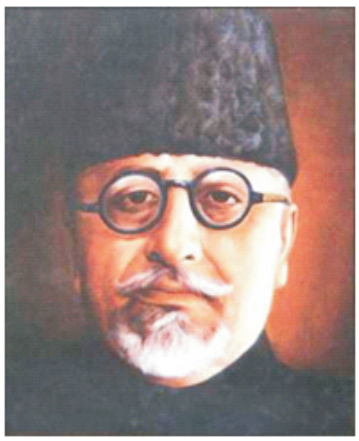

मौलाना अब्दुल कलाम आजाद

देशी रियासतों का भारत में विलय (जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर के विशेष संदर्भ में)– ब्रिटिश संसद द्वारा पारित भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक 1947 ई. में यह प्रावधान था कि जो संधि–समझौते आदि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय रियासतों से किये हैं, वे सब समाप्त हो जायेंगे। इस प्रकार ब्रिटिश सर्वोच्चता देशी रियासतों पर से हटा ली गई थी। इसमें यह प्रावधान था कि भारतीय रियासतों को यह अनुमति होगी कि वे भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी एक में सम्मिलित हो या स्वतन्त्र रहे।

देशी रियासतों के भारतीय संघ में विलय हेतु दो समझौता दस्तावेज तैयार किए गए। एक इस्ट्रूमेन्ट ऑफ एक्सेशन था जिसके अंतर्गत कोई भी रियासत भारतीय संघ में इस शर्त पर सम्मिलित हो सकती थी कि वे विदेशी मामले, प्रतिरक्षा और यातायात व संचार के दायित्व भारतीय संघ को सौप देगी। दूसरा दस्तावेज स्टेंडस्टिल एग्रीमेन्ट था जिसके अनुसार भारत की स्वतंत्रता से पूर्व जो स्थिति अंग्रेज सरकार की थी उसके स्थान पर आजादी के बाद वही स्थिति भारत की संघीय व्यवस्था में केन्द्र सरकार की होगी। भारत की स्वतंत्रता के समय लगभग 562 देशी रियासतें थीं। गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के विशेष प्रयासों एवं कूटनीति से अधिकांश रियासतें भारत मे मिलीं।खैरपुर, बहावलपुर आदि रियासतें पाकिस्तान मे सम्मिलित हुईं। 15 अगस्त 1947 तक केवल जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर ऐसी रियासत थी जिन्होंने अपने संबंध मे निर्णय नहीं लिया था।

जूनागढ़ में नवाब मुस्लिम था परन्तु यहाँ की बहुसंख्यक जनता हिन्दू थी। यह रियासत भौगोलिक दृष्टि से भारत से घिरी हुई थी। जूनागढ़ की जनता ने भारत में सम्मिलित होने की घोषणा की। नवाब ने जूनागढ़ को पाकिस्तान में सम्मिलित करने का फैसला लिया। जनता ने नवाब का विरोध कर स्वतन्त्र अस्थाई सरकार की स्थापना कर ली। जूनागढ़ का नवाब पाकिस्तान भाग गया। जूनागढ़ में फरवरी 1948 में जनमत संग्रह करवाया गया जो भारत के पक्ष में हुआ और जूनागढ़ को भारत में सम्मिलित कर लिया गया।

जूनागढ़ की तरह हैदराबाद का शासक भी मुस्लिम था और बहुसंख्यक जनता हिन्दू थी। हैदराबाद रियासत भी चारों ओर से भारत से घिरी हुई थी। हैदराबाद के निजाम ने भारतीय संघ में सम्मिलित होने या न होने के संबंध में भारत को भ्रम में रखा। नवम्बर 1947 को उसने भारत के साथ स्टेंडस्टील एग्रीमेन्ट पर हस्ताक्षर किये किन्तु भारत में सम्मिलित होने की बात को टालता रहा। निजाम के मुस्लिम रजाकारों ने जनता पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। रजाकारों ने लूटपाट, आगजनी एवं हत्या की घटनाओं को अंजाम दिया। कई हिंदू अत्याचारों से पीड़ित होकर हैदराबाद छोड़कर राज्य से बाहर शरण लेने पर मजबूर हुए। रजाकारों के नेता कासिम रिजवी ने धमकी तक दे डाली कि वे सम्पूर्ण भारत को जीतकर लाल किले पर अपना झण्डा फहरायेंगे। हैदराबाद की स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती चली गई। सरदार पटेल एवं मेनन ने निजाम को समझाया किन्तु स्थिति नहीं सुधरी। भारत सरकार ने पुलिस कार्यवाही कर 18

सितम्बर 1948 को हैदराबाद को भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया।

जम्मू–कश्मीर में हिन्दू शासक हरिसिंह था। बहुसंख्यक जनता मुस्लिम थी। इसकी सीमा भारत एवं पाकिस्तान दोनों से मिलती थी। पाकिस्तान ने कश्मीर की आर्थिक नाकेबंदी कर दी। उसने अनाज, नमक, पेट्रोल आदि आवश्यक सामग्री पर प्रतिबंध लगा दिया। कबाईलियों के रूप में पाकिस्तानी सैनिकों ने 22 अक्टूबर 1947 को कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। 24 अक्टूबर 1947 को राजा हरिसिंह ने भारत सरकार से सैनिक सहायता माँगी। कश्मीर को भारत में सम्मिलित करने पर सहमति हो गई। 26 अक्टूबर 1947 को कश्मीर के राजा हरिसिंह ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर किये और कश्मीर भारत का अंग बना। 27 अक्टूबर 1947 को भारतीय सेना ने पाकिस्तान के आक्रमणकारियों के विरूद्व सैनिक कार्यवाही शुरू कर दी।

भारतीय सेना आक्रमणकारियों को खदेड़ने लगी। इसी बीच भारत सरकार इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में ले गई। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा कश्मीर मुद्दे पर गठित आयोग की सिफारिश पर युद्ध विराम हुआ। कश्मीर का एक हिस्सा पाकिस्तान के अधिकार में रह गया। इस प्रकार कश्मीर रियासत का भारत में विलय तो हो गया किन्तु कश्मीर का एक हिस्सा पाकिस्तान के अधिकार में रह गया, जो अभी पाक अधिकृत कश्मीर (POK) कहलाता है।

कश्मीर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 में परिभाषित भारत के राज्य क्षेत्र का भाग है। यह पहली अनुसूची में सम्मिलित भारत का 15 वां राज्य है। इस राज्य का राज्य क्षेत्र उन सभी क्षेत्रों से मिलकर बना है जो 15 अगस्त 1947को उस राज्य के शासक की प्रभुता के अधीन था। संविधान में जम्मू कश्मीर को अनुच्छेद 370 के अंतर्गत विशेष राज्य का दर्जा दिया गया। यह व्यवस्था अस्थायी रूप से दी गयी थी। अनुच्छेद 370 को संविधान के भाग 21 में 'अस्थायी, संक्रमणकालीन एवं विशेष उपबन्ध' शीर्षक के अंतर्गत सम्मिलित किया गया था।

भारत के एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल का महत्वपूर्ण योगदान था। 2014 ई. से सरदार पटेल का जन्म दिन राष्ट्रीय एकता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

अध्ययन बिन्दु

- राजा राममोहन राय को 'भारतीय पुनर्जागरण का जनक' कहा जाता है। इन्होंने 'आत्मीय सभा' एवं 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की।
- आर्य समाज की स्थापना बंबई में 1875 ई. में दयानंद सरस्वती ने की थी।
- 'वेदों की ओर लौट चलो' का नारा दयानंद सरस्वती ने दिया।
- 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक के लेखक दयानंद सरस्वती थे।
- विवेकानंद ने अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस के नाम पर 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना 1897 ई. में की थी।
- विवेकानंद विश्व धर्म संसद में भाग लेने 1893 ई. में अमेरिका के शिकागो में गए थे।
- संथाल विद्रोह 1855–56 ई. में हुआ। इसके नेता सिंधू एवं कान्हू थे।
- अभिनव भारत की स्थापना वीर सावरकर ने की थी।
- गदर दल की स्थापना 1913 ई. में अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को में लाला हरदयाल ने की थी।
- 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा भगतसिंह ने दिया था।
- सुभाष चंद्र बोस ने ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा'' का नारा दिया।
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 ई. में ए. ओ. ह्यूम ने की थी।
- कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष एनीबेसेंट थी।
- राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने 1905 ई. में बंगाल का विभाजन किया।
- कांग्रेस के सूरत अधिवेशन (1907 ई.) में कांग्रेस दो भागों में बँट गई– नरम दल एवं गरम दल।
- 1909 के अधिनियम द्वारा पहली बार साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन की प्रणाली को अपनाया गया।
- असहयोग आंदोलन अगस्त 1920 ई. महात्मा गाँधी के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ।
- 'चौरी चौरा कांड' के कारण गाँधी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया।
- स्वराज्य पार्टी की स्थापना जनवरी 1923 में इलाहाबाद में चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू ने की।
- साइमन कमीशन जनवरी 1928 में भारत आया। इसके 7 सदस्यों में कोई भी भारतीय नहीं था। साइमन कमीशन का कार्य भारत के संवैधानिक सुधारों के संबंध में सुझाव देना था।
- कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन में 1929 ई. में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'पूर्ण स्वराज्य' का लक्ष्य निर्धारित किया।
- महात्मा गाँधी ने अपने 78 अनुयायियों के साथ 12 मार्च 1930 को साबरमती आश्रम से प्रसिद्ध दांडी मार्च प्रारंभ किया।
- खान अब्दुल गफ्फार खान को 'सीमांत गांधी' कहा जाता है।
- महात्मा गांधी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में लंदन के द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया।
- 'अखिल भारतीय संघ' की व्यवस्था का प्रावधान 1935 के अधिनियम में था।
- कांग्रेस सरकार द्वारा प्रांतों से इस्तीफा देने पर मुस्लिम लीग ने 22 दिसम्बर 1939 को 'मुक्ति दिवस' मनाया।
- भारत छोडो आंदोलन 9 अगस्त 1942 को प्रारंभ हुआ। सतारा, बलिया एवं मिदनापुर में भारत छोड़ो आंदोलन के

समय समानांतर सरकार स्थापित की गयी थी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. ब्रह्म समाज की स्थापना किसने की ?
   (क) स्वामी दयानंद सरस्वती
   (ख) स्वामी विवेकानंद
   (ग) राजा राममोहन राय
   (घ) आत्मारंग पांडुरंग

2. रामकृष्ण मिशन की स्थापना किसने की ?
   (क) रामकृष्ण परमहंस
   (ख) महादेव गोविन्द रानाडे
   (ग) स्वामी विवेकानंद
   (घ) इसमें से कोई नहीं

3. 1893 ई. में विश्व धर्म सम्मेलन में विवेकानंद ने कहाँ भाग लिया था ?
   (क) सेन फ्रांसिस्को
   (ख) न्यूयार्क
   (ग) शिकागो
   (घ) ब्रिस्टल

4. राजा राम मोहन राय की मृत्यु कहाँ हुई थी ?
   (क) लंदन
   (ख) ब्रिस्टल
   (ग) शिकागो
   (घ) कलकत्ता

5. राजा राम मोहन राय के प्रयासों से किस गवर्नर जनरल के समय सती–प्रथा को रोकने के लिए कानून बना ?
   (क) वारेन हेस्टिंग्स
   (ख) लार्ड विलियम बैंटिक
   (ग) लार्ड डलहौजी
   (घ) लार्ड रिपन

6. 'वेदों की ओर लौट चलो' का नारा किसने दिया ?
   (क) राजा राममोहन राय
   (ख) स्वामी विवेकानंद
   (ग) स्वामी दयानंद सरस्वती
   (घ) केशवचंद्र सेन

7. 'जयहिन्द' का नारा किसने दिया ?
   (क) भगत सिंह (ख) वीर सावरकर
   (ग) सुभाष चंद्र बोस (घ) चन्द्रशेखर आजाद

8. भगत सिंह, राजगुरू एवं सुखदेव को फाँसी कब दी गयी ?
   (क) 31 दिसम्बर 1929
   (ख) 26 जनवरी 1930
   (ग) 23 मार्च 1931
   (घ) इसमें से कोई नहीं

9. कांग्रेस का प्रथम अध्यक्ष कौन था ?
   (क) ए. ओ. ह्यूम
   (ख) व्योमेश चंद्र बनर्जी
   (ग) सुरेन्द्र नाथ बनर्जी
   (घ) दादा भाई नौरोजी

10. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सूरत अधिवेशन (1907) क अध्यक्ष कौन था ?
    (क) दादा भाई नौरोजी
    (ख) रास बिहारी घोष
    (ग) सुरेन्द्र नाथ बनजी
    (घ) गोपाल कृष्ण गोखले

11. महात्मा गांधी ने किस आंदोलन के समय एक वर्ष के भीतर स्वराज्य दिलाने की बात कही थी ?
    (क) चंपारण सत्याग्रह
    (ख) असहयोग आंदोलन
    (ग) सविनय अवज्ञा आंदोलन
    (घ) भारत छोड़ो आंदोलन

12. प्रांतों में द्वैध शासन किस अधिनियम द्वारा लागू किया गया ?
    (क) 1909 के अधिनियम द्वारा
    (ख) 1919 के अधिनियम द्वारा
    (ग) 1935 के अधिनियम द्वारा
    (घ) इसमें से कोई नहीं

13. साम्प्रदायिक आधार पर पृथक् निर्वाचन प्रणाली को अपनाते हुए किस अधिनियम के द्वारा मुस्लिमों के लिए पृथक् निर्वाचक मण्डल की स्थापना की गयी ?
    (क) 1909 के अधिनियम द्वारा
    (ख) 1919 के अधिनियम द्वारा
    (ग) 1935 के अधिनियम द्वारा
    (घ) इसमें से कोई नहीं

14. कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गाँधी ने किस गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया था ?
    (क) प्रथम गोलमेज सम्मेलन में
    (ख) द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में

(ग) तृतीय गोलमेज सम्मेलन में
(घ) तीनों गोलमेज सम्मेलन मे

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (दो पंक्तियों तक में उत्तर दीजिए)

1. 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग पहली बार किसने किया ?
2. स्वामी दयानंद सरस्वती की मृत्यु कहाँ हुई ?
3. 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक पुस्तक किसने लिखी ?
4. भारतीय राष्ट्रवाद एवं भारतीय पुनर्जागरण का जनक किसे माना जाता है ?
5. शुद्धि आंदोलन किसने चलाया ?
6. ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आजादी दूँगा'' यह प्रसिद्ध नारा किसने दिया ?
7. भारतीय स्वतंत्रता लीग की स्थापना किसने एवं कब की ?
8. बिरसा मुंडा कौन था ?
9. इंडियन एसोसिएशन की स्थापना कब एवं किसने की ?
10. कांग्रेस की स्थापना कब एवं किसने की ?
11. बंगाल का विभाजन कब एवं किस गवर्नर जनरल के समय हुआ ?
12. कांग्रेस के किस अधिवेशन में कांग्रेस दो भागों में विभाजित हो गयी ?
13. जलियांवाला बाग हत्याकांड कब हुआ ?
14. महात्मा गाँधी ने किस घटना के कारण असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया ?
15. महात्मा गाँधी ने दांडी मार्च कब एवं कितने सदस्यों के साथ प्रारंभ किया ?
16. किस अधिनियम द्वारा प्रांतों को स्वायत्तता प्रदान की गयी ?
17. गाँधी ने 'करो या मरो' का नारा कब एवं कहाँ दिया ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

1. राष्ट्रवाद के उदय के कारण बताइए ?
2. आर्य समाज की शिक्षाओं को समझाइए ?
3. चन्द्रशेखर आजाद के संबंध में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
4. संथाल विद्रोह क्या था। समझाइए ?
5. गदर दल के बारे में आप क्या जानते है ?
6. अभिनव भारत के बारे में बताइए ?
7. कांग्रेस के उद्देश्य एवं कार्यक्रम बताइए ?
8. बंगाल–विभाजन पर संक्षिप्त टिप्पणी दीजिए। बंगाल विभाजन क्यों किया गया ?
9. खिलाफत आंदोलन क्या था ?
10. 1919 के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ बताइए ?
11. स्वराज्य पार्टी के बारे में आप क्या जानते हैं ?
12. गाँधी इर्विन समझौते का उल्लेख कीजिए ?
13. माउन्टबेटन योजना की विशेषताएँ बताइए ?
14. 1935 के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ बताइए ?

निबंधात्मक प्रश्न(तीन पृष्ठों में उत्तर दीजिए)

1. स्वामी विवेकानंद के विचारों का वर्णन कीजिए। राष्ट्रीय जागृति में उनके योगदान को बताइए ?
2. राजा राम मोहन राय के सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए ?
3. आजाद हिन्द फौज का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में योगदान बताइए ?
4. असहयोग आंदोलन के उदय के कारण, इसके प्रमुख कार्यक्रम एवं महत्व को समझाइए ?
5. सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम एवं महत्व को बताइए?
6. भारत छोड़ो आंदोलन किन परिस्थितियों में प्रारंभ हुआ? इसके महत्व को बताइए ?

उत्तरमाला (बहुचयनात्मक प्रश्न)

(1)ग (2)ग (3)ग (4)ख (5)ख (6)ग (7)ग (8)ग (9)ख (10)ख (11)ख (12)ख (13)क (14)ख

.....

अध्याय–7

राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम एवं एकीकरण

स्वाधीनता संग्राम– 1857 से 1947 तक

व्यापार के बहाने ईस्ट इण्डिया कंपनी भारत आई, उसके साथ अन्य यूरोपीय जातियाँ भी आई किन्तु अंग्रेजों को अधिक सफलता मिली। अंग्रेजों को एक लाभ यह मिला कि मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत छोटे–छोटे राज्यों एवं रियासतों में बंट गया। यह छोटे–छोटे राज्य आपस में लड़ते रहते थे। राजाओं की आपसी फूट का लाभ उठाकर इस्ट इण्डिया कंपनी ने भारत पर अपना शासन स्थापित कर लिया। लार्ड डलहौजी के शासनकाल में देशी रियासतों में अंग्रेज रेजीडेन्ट का प्रभाव बढ़ गया और रेजीडेन्ट सुरक्षा, कर्ज तथा दत्तक पुत्र का बहाना बनाकर देशी रियासतों को हड़पने लगे।इससे नाराज होकर कई राजा एवं जागीरदार भी अंग्रेजी शासन को समाप्त करने के लिए तत्पर हो उठे।

अखिल भारतीय स्तर पर जहॉ 1857 में क्रान्ति का बिगुल बज उठा तो उसमें मंगल पाण्डे, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई व तॉत्या टोपे जैसे क्रान्तिकारियों ने हुंकार भरी– उसी ज्वाला की एक चिनगारी राजस्थान में भी भड़क उठी तथा राज्य की जनता ने उत्साह के साथ क्रान्तिकारियों को क्रान्ति में सहयोग किया।

किसी भी देश में राजनैतिक चेतना आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं होती। इसके लिए दीर्घ काल तक साधना और प्रयत्न करने पड़ते हैं।

राजस्थान में जनजागृति के कारण– इस नव राजनीतिक चेतना के कुछ प्रेरक तत्व इस प्रकार हैं–

1. स्वामी दयानंद सरस्वती व उनका प्रभाव– आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द स्वदेशी व स्वराज्य का शंख फूँकने वाले पहले समाज सुधारक थे। 1865 ई. में वे करौली, जयपुर व अजमेर आये। उन्होंने स्वधर्म, स्वदेशी, स्वभाषा व स्वराज्य का सूत्र दिया, जिसे शासक व जनता ने सहर्ष अनुमोदित किया। 1888–1890 ई. के बीच आर्य समाज की शाखाएँ राजस्थान में स्थापित की गई एवं ''वैदिक यंत्रालय'' नामक छापाखाना अजमेर में स्थापित किया गया। 1883 ई. में स्वामी जी ने उदयपुर में ''परोपकारिणी सभा'' की स्थापना की, जो बाद में अजमेर स्थानान्तरित हो गई। इस प्रकार स्वराज्य के लिये प्रेरणा देने का प्रारम्भिक कार्य आर्य समाज ने किया।

2. समाचार पत्रों व साहित्य का योगदान– राजनीतिक चेतना के प्रसार में समाचार पत्रों का योगदान उल्लेखनीय है। 1885 ई. में राजपूताना गजट, 1889 ई. में राजस्थान समाचार, प्रारम्भिक समाचार पत्र थे। 1920 ई. में पथिक ने ''राजस्थान केसरी'' का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसने अंग्रेजी नीतियों के खिलाफ अपना स्वर ऊँचा किया। 1922 ई. में राजस्थान सेवा संघ ने ''नवीन राजस्थान'' नामक अखबार निकाला, जिसने कृषक आन्दोलनों के पक्ष में आवाज उठाई। 1943 ई. में नवज्योति, 1939 ई. में नवजीवन, 1935 ई. में जयपुर समाचार, 1943 ई. में लोकवाणी इत्यादि समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान की समस्याओं व आन्दोलनों का खुलासा किया व इनके लिए राष्ट्रीय सहमति बनाई।

इसी प्रकार ठाकुर केसरी सिंह बारहठ, जयनारायण व्यास, पं. हीरालाल शास्त्री की कविताओं में देश प्रेम अपनी चरम सीमा पर परिलक्षित होता है। अर्जुनलाल सेठी की कृतियों ने वैचारिक क्रांति उत्पन्न की। इस संदर्भ में महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा रचित ''वीर सतसई'' का उद्धरण विस्मृत नहीं किया जा सकता है जिसमें वीर रस व स्वदेश प्रेम का अनूठा सम्मिश्रण है।

3. मध्य वर्ग की भूमिका– यद्यपि राजस्थान का साधारण मनुष्य भी विद्रोह की सामर्थ्य रखता था, फिर भी एक योग्य नेतृत्व उसे मध्यम वर्ग से ही मिला, जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त था। यह नेतृत्व शिक्षक, वकील व पत्रकार वर्ग से आया। जयनारायण व्यास, मास्टर भोलानाथ, मघाराम वैद्य, अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक आदि इसी मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि थे।

4. प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव– राजस्थान के लगभग सभी

राज्यों की सेनाओं ने प्रथम विश्व युद्ध में भाग लिया। जो सैनिक लौटकर आये उन्होंने अपने अनुभव बांटे–नई वैचारिक क्रांति से राजस्थान के लोगों को परिचित कराया। दूसरी ओर युद्ध का समस्त भार भारतीय जनता द्वारा अंग्रेज सत्ता को कर चुका कर उठाना पड़ा और परिणामस्वरूप असंतोष का भाव अधिक पनपने लगा।

5. बाह्य वातावरण का प्रभाव– राजस्थान शेष भारत में चल रही राजनीतिक गतिविधियों से अनभिज्ञ नहीं था। राष्ट्रीय स्तर के नेताओं व उनके कार्यक्रमों का प्रभाव यहां भी पड़ा। जहां एक ओर हरिभाऊ उपाध्याय व जमनालाल बजाज जैसे लोग गांधीवादी नीतियों का अनुसरण कर रहे थे, वहीं रास बिहारी बोस के विचारों से प्रेरित अर्जुनलाल सेठी, गोपालसिंह खरवा व बारहठ परिवार भी स्वतंत्रता की अलख जगा रहे थे।

स्वतन्त्रता संग्राम का राजस्थान में वातावरण

राजस्थान के स्वाधीनता आन्दोलन में राजस्थान के साहित्यकारों, समाचारपत्रों, देशभक्तों, किसानों, जनता और क्रांतिकारियों का सामूहिक प्रयास रहा। सूर्यमल्ल मिश्रण ने वीर रस प्रधान ग्रंथ ''वीर सतसई'' लिखकर राष्ट्रप्रेम जगाया। राजपूताना गजट, राजस्थान समाचार, तरूण राजस्थान, राजस्थान केसरी आदि समाचार पत्रों ने अंग्रेज अधिकारियों, जागीरदारों के अन्याय, आर्थिक शोषण, दमन नीति का खुलासा किया, जिससे देश भर में असंतोष उपजा। सागरमल गोपा, केसरी सिंह बारहठ, प्रतापसिंह बारहठ, जोरावरसिंह बारहठ, खरवा राव गोपाल सिंह, अर्जुन लाल सेठी, साधु सीताराम, मोतीलाल तेजावत, गोविन्द गुरू, जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा, राम नारायण चौधरी आदि ने क्रांति की अलख जगाई तथा जन आंदोलन को मार्गदर्शन दिया।

1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम में, राजस्थान की जनता ने राष्ट्रभक्ति और अंग्रेज विरोधी भावना का प्रदर्शन किया तथा क्रांतिकारियों की सहायता की। स्वामी दयानंद सरस्वती की स्वधर्म, स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा संबंधी शिक्षाओं से भी राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पं. जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने भी राजस्थान के सत्याग्रही किसानों के आत्मबल, क्रांतिकारियों के बलिदान, देश प्रेम और जनता के योगदान की सराहना की, राजतन्त्र और सामन्ती प्रथा के विरूद्ध किसान आंदोलनों का भी उल्लेखनीय योगदान रहा, जिनसे राजस्थान में राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला।

1857 से 1947 के काल खण्ड वाले राजस्थान के गौरवपूर्ण स्वाधीनता संग्राम को हम अध्ययन की दृष्टि से प्रमुखतया चार चरणों से समझ सकते हैं।

विभिन्न चरण

1 1857 की क्रान्ति और राजस्थान
2. राजस्थान में किसान आन्दोलन
3. राजस्थान में जनजाति आन्दोलन व समाज सुधार
4. प्रजामण्डल के नेतृत्व में सम्पूर्ण आजादी

1857 की क्रांति और राजस्थान

जब भारत में 1857 का स्वतंत्रता संग्राम फैला उस समय राजस्थान में एजेन्ट टू गवर्नर जनरल पेट्रिक लारेंस थे। साथ ही साथ विभिन्न राज्यों में ब्रिटेन के रेजीडेन्ट भी नियुक्त किए जा चुके थे; उदाहरणतः उदयपुर में कैप्टन सी. एल. शावर्स, जयपुर में कैप्टन विलियम ईडन, जोधपुर में कैप्टन मांक मेसन, कोटा में मेजर बर्टन और भरतपुर में मेजर निक्सन थे। राजस्थान में मुख्यतः छः सैनिक छावनियाँ थीं। जो नसीराबाद, नीमच, देवली,कोटा,एरनपुरा और खेरवाड़ा आदि स्थानों पर में स्थित थीं। नसीराबाद में नैटिव होर्स फील्ड बैटरी नंबर 6, पन्द्रहवीं और तीसवीं बंगाल नेटिव इन्फेन्टरी और फर्स्ट बोम्बे केवेलरी नियुक्त थीं। नीमच में बंगाल नेटिव होर्स आर्टेलरी, फर्स्ट बंगाल केवेलरी, बहत्तरवीं बंगाल इन्फेन्टरी और सातवीं इन्फेन्टरी ग्वालियर नियुक्त थी। देवली और कोटा में भी इसी प्रकार कुछ ब्रिटिश टुकड़ियाँ तैनात थीं। इनके अतिरिक्त एरनपुरा, ब्यावर और खेरवाड़ा में भील टुकड़ियों के साथ–साथ फर्स्ट बंगाल केवेलरी भी नियुक्त थी। अजमेर में पन्द्रहवीं बंगाल नेटिव इन्फेन्टरी और मेरवाड़ा बटालियन तैनात थी। इसी प्रकार जयपुर, हाड़ौती, जोधपुर और नीमच में भी कुछ टुकड़ियाँ तैनात थीं, लेकिन इतना स्पष्ट है कि स्वतंत्रता सग्राम के समय समूचे राजस्थान में एक भी यूरोपीय सिपाही तैनात नहीं था। यही कारण है कि जब राजस्थान में भी 1857 के स्वतंत्रता सग्राम की आग फैली तो ब्रिटिश सरकार चिंतित हो उठी।

नसीराबाद छावनी का संघर्ष

राजस्थान में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का संकेत नसीराबाद से आरम्भ हुआ। 28 मई, 1857 को शाम के 4 बजे नसीराबाद में सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। ब्रिटेन की ओर से नसीराबाद स्थित सेनाओं को निःशस्त्र करने के प्रयास ने आग में घी का काम किया। ऐसी अफवाहें भी फैल रही थीं कि सैनिकों को जो आटा दिया जाता है और जो कारतूस काम में लेने के लिए दिए जाते हैं उसमें गऊ का माँस मिलाया जाता है। 27 मई को यह भी समाचार फैला कि दीसा से यूरोपीय सैनिकों की एक टुकड़ी नसीराबाद आ रही है जो वहां स्थित सैनिकों का स्थान लेगी। इस समाचार ने ब्रिटिश विरोधी भावना को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। नसीराबाद की स्थिति बिगड़ने लगी। सैनिकों ने विद्रोह कर दिया परन्तु फर्स्ट रेजीमेन्ट बोम्बे लान्सर ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया और ब्रिटिश आदेश का पालन करते हुए उन पर गोली चलाई परन्तु लाइट एवं ग्रनेडियर कम्पनी ने गोली चलाने से इनकार कर दिया। ब्रिगेडियर मेकल अपने यूरोपियन साथियों के साथ पीछे हटने को बाध्य हुआ; साथ ही कर्नल पैनी जो कि कोर कमान्डर थे–घटनास्थल पर ही मर गए। सम्भवतः इसका कारण उनका नरवस हो जाना था। दो अन्य ब्रिटिश अधिकारियों की भी मृत्यु हो गई, दो घायल हो गए और इसके साथ ही नसीराबाद क्रान्तिकारियों के हाथों में चला गया। दूसरे दिन क्रान्तिकारियों ने नसीराबाद छावनी को नष्ट कर दिया और दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

लेफ्टीनेंट माल्टर तथा लेफ्टीनेंट हेथकोट के नेतृत्व में

लगभग एक हजार मेवाड़ के सैनिकों ने क्रान्तिकारियों का पीछा किया परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। संभवतः इसका कारण यह था कि मेवाड़ और मारवाड़ के जागीरदारों ने नसीराबाद के विप्लवकारियों को अपने प्रदेश में से आसानी से गुजर जाने दिया। यह तथ्य इस बात का संकेत था कि मेवाड़ और मारवाड़ की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी।

12 जून, 1857 को डीसा से यूरोपीय सेनाओं की प्रथम टुकड़ी नसीराबाद पहुंची और 10 जुलाई, 1857 को एजेन्ट गवर्नर जनरल के द्वारा इस टुकड़ी को नीमच भेज दिया गया। इस घटना ने नसीराबाद स्थित सैनिकों में पुनः असंतोष को जन्म दिया। 12वीं बम्बई नेटिव इन्फेन्टरी के सैनिक अत्यधिक उत्तेजित हो उठे, परन्तु उन्हें शीघ्र ही निःशस्त्र कर दिया गया। 10 अगस्त, 1857 को बम्बई केवेलरी के सैनिकों ने अपने कमांडर के आदेश को मानने से इनकार कर दिया और अपने अन्य साथियों को भी अपना अनुसरण करने को कहा परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कठोर कदम उठाए। एक सैनिक को तत्काल गोली मार दी गई। पांच और सैनिकों को फांसी पर लटका दिया गया तथा शेष सभी भारतीय सैनिकों को निःशस्त्र कर दिया गया। इस प्रकार नसीराबाद में पुनः सुलगती हुई क्रान्ति की आग को तत्काल दबा दिया गया।

नीमच में क्रान्ति

क्रान्ति का दूसरा केन्द्र नीमच बना, जहां 3 जून, 1857 को क्रान्ति फूट पड़ी। 2 जून को कर्नल अबोट ने हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को गंगा और कुरान की शपथ दिलाई थी वे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहेंगे, कर्नल अबोट ने स्वयं ने भी बाइबिल को हाथ में लेकर शपथ ली थी, जिससे कि वह अपने अधीन सिपाहियों का पूर्ण क्रान्ति प्राप्त कर सके परन्तु जब 3 जून, 1857 को नसीराबाद के क्रान्ति का समाचार नीमच पहुँचा तो उसी दिन रात्रि के 11 बजे वहाँ भी विप्लव हो गया। स्थल सेना ने समूची छावनी को घेर लिया और उसको आग लगा दी। यहां तक कि ब्रिगेडियर मेजर के बंगले तक को आग लगा दी गई। बंगलों पर तैनात सैनिकों ने क्रान्तिकारियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया और कुछ समय बाद वे भी उनके साथ मिल गए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि 2 स्त्रियाँ तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुई और अनेक बच्चों को अग्नि की ज्वाला के भेंट कर दिया गया। ब्रिटिश स्त्री पुरुष और बच्चे जो लगभग संख्या में 40 थे, क्रान्तिकारियों के द्वारा घेर लिए गए। यदि उदयपुर (मेवाड़) के सैनिक उचित समय पर सहायता के लिए न पहुँचे होते तो संभवतः उनका जीवन भी समाप्त हो जाता। 5 जून को क्रान्तिकारियों ने आगरा होते हुए दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने आगरा जेल में बन्द सभी कैदियों को मुक्त कर दिया और सरकारी खजाने में से एक लाख छब्बीस हजार नौ सौ रूपए लूटकर साथ ले चले, परन्तु आगरा का बाजार सुरक्षित रहा।

नीमच के क्रान्तिकारी देवली भी पहुंचे और उन्होंने छावनी को आग लगा दी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि देवली छावनी में कोई भी ब्रिटिश सैनिक हताहत नहीं हुआ, क्योंकि छावनी को पहले ही खाली किया जा चुका था और वहां से ब्रिटिश अधिकारियों को मेवाड़ स्थित जहाजपुर कस्बे में बसा दिया गया था। क्रान्तिकारियों ने कोटा रेजीमेन्ट के 60 व्यक्तियों को देवली छावनी से अपने साथ चलने के लिए बाध्य किया परन्तु रास्ते में ये सैनिक भाग निकलने में सफल हो गए और कुछ दिनों पश्चात् वापस देवली पहुँच गए।

आस–पास के अन्य स्थानों की स्थिति भी विस्फोटक होती जा रही थी। मालवा, महू, सलूम्बर इत्यादि स्थानों पर भी क्रान्तिकारियों के आक्रमण बढ़ते जा रहे थे। उदयपुर स्थित खेरवाड़ा और सलूम्बर की स्थिति अधिक नाजुक बन चुकी थी कि कैप्टन शावर्स के विचार में इन क्षेत्रों की रक्षा करना बहुत मुश्किल हो गया था।

12 अगस्त, 1857 को नीमच में द्वितीय केवेलरी के कमांडर कर्नल जेक्सन ने इस सूचना के आधार पर कि भारतीय सेना में विद्रोह होने वाला है और उनकी योजना समस्त यूरोपीय अधिकारियों की हत्या कर देने की है, यूरोपीय सैनिकों को बुला भेजा। इस घटना ने नीमच स्थित भारतीय सैनिकों को उत्तेजित कर दिया और परिणामतः वहां पुनः क्रान्ति की ज्वालाएं धधकने लगीं। उत्तेजना में एक यूरोपीय सिपाही की हत्या कर दी गई। दो अन्य सिपाही घायल हुए और लेफ्टीनेन्ट व्लियेयर किसी यूरोपीय की बन्दूक से ही घायल हो गए। सैनिकों ने कर्नल जेक्सन के आदेश का पालन करने से इनकार कर दिया। यहां तक कि यूरोपीय अधिकारियों के मध्य भी आदेश दिए जाने सम्बन्धी वाद–विवाद उठ खड़े हुए, अतः यह निश्चय किया गया कि नीमच के क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए और अधिक सैनिक बुलाए जाए। परन्तु इसी बीच उदयपुर की सहायता से क्रान्ति को दबा दिया गया।

आऊवा (मारवाड) ठिकाना व ठाकुर खुशाल सिंह का नेतृत्व

अगस्त, 1857 में क्रान्ति की ज्वालाए समस्त राज्य में फैलने लगीं। 21 अगस्त को एरनपुरा स्थित जोधपुर सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और उन्होंने अपने अधिकारियों के आदेश का पालन करने से इनकार कर दिया। परिणामतः लैफ्टीनेंट कारमोली को क्रान्तिकारियों के साथ चलने के लिए बाध्य होना पड़ा, यद्यपि तीन दिन पश्चात् क्रान्तिकारियों ने उन्हें रिहा कर दिया। भील सैनिकों ने भी क्रान्तिकारियों का साथ दिया और ब्रिटिश शासन के साथ सहयोग करने से इनकार कर दिया। क्रान्तिकारियों ने अनेक ब्रिटिश नागरिक एवं परिवारों को अपनी हिरासत में ले लिया, यद्यपि कुछ समय पश्चात् उन्हें भी रिहा कर दिया। तत्पश्चात् आऊवा के ठाकुर खुशाल सिंह ने भी क्रान्तिकारियों को सहयोग देना प्रारम्भ किया, इसका मुख्य कारण यह था कि पिछले कुछ वर्षों से ठाकुर खुशालसिंह और जोधपुर महाराजा के आपसी संबंध तनावपूर्ण थे और वर्तमान परिस्थितियों में ठाकुर खुशालसिंह ने अवसर से लाभ उठाना चाहा।

8 सितम्बर, 1857 को महाराजा जोधपुर की सेनाओं और क्रान्तिकारियों एवं आऊवा के ठाकुर की सशस्त्र सेनाओं के मध्य पाली के समीप बिठोड़ा व चेलावास में संघर्ष हुआ, महाराजा जोधपुर की सेनाओं को न केवल पराजय का ही मुँह देखना पड़ा अपितु उनके अधिकांश अस्त्र–शस्त्र क्रान्तिकारियों के हाथ लगे। जोधपुर किले के किलेदार अनारसिंह और महाराजा के अनेक

विश्वासपात्र सहयोगी इस युद्ध में काम आए, यहां तक कि लैफ्टीनेंट हैटकोच जिसे कि राजस्थान में ब्रिटिश एजेन्ट गर्वनर जनरल लारेन्स ने भेजा था, बड़ी मुश्किल से अपना बचाव कर सका। उसकी समस्त सम्पत्ति क्रान्तिकारियों द्वारा लूट ली गई। इन गंभीर परिस्थितियों को देखते हुए स्वयं जनरल लारेन्स ने आऊवा की ओर कूच करने का निश्चय किया। उसने ब्यावर के समीप सशस्त्र बटालियन तैयार की और आऊवा की ओर चल पड़ा। 18 सितम्बर को जनरल लारेन्स के नेतृत्व में ब्रिटिश सशस्त्र सेनाओं ने आऊवा पर असफल आक्रमण किया, विप्लवकारी सैनिकों ने न केवल आक्रमण को ही विफल किया अपितु अनेक ब्रिटिश अधिकारियों का, जिनमें जोधपुर स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट मौक मेसन एवं एक यूरोपीय अधिकारी भी शामिल था, मार डाला, साथ ही साथ जोधपुर सेना के अनेक सैनिक भी क्रान्तिकारियों के हाथों मारे गए और बंदी बना लिए गए। क्रान्तिकारियों ने मौकमेसन का सर धड़ से अलग करके आऊवा के किले पर लटका दिया जो एक प्रकार से उनकी विजय का प्रतीक था। जनरल लारेन्स को पीछे हटना पड़ा और आऊवा से लगभग तीन मील दूर एक गांव में शरण लेनी पड़ी, तदुपरांत वह अजमेर वापस आया।

जनरल लारेन्स की पराजय को ब्रिटिश सरकार ने बड़ी गंभीरता से लिया, इसका कारण यह था कि इस घटना का समूचे राजस्थान पर व्यापक प्रभाव पड़ सकता था। अतः ब्रिटिश सरकार ने आदेश दिया कि हर कीमत पर आऊवा ठाकुर को कुचल दिया जाना चाहिए। उधर दूसरी ओर, क्रान्तिकारियों ने रिसालदार, अब्दुल अली, अब्बास अली खॉ, शेख मोहम्मद बख्श और हिन्दू और मुसलमान सिपाहों के नाम पर मारवाड़ और मेवाड़ की जनता से अपील की कि वह उनकी हर संभव सहायता करे। ठाकुर खुशालसिंह ने भी मेवाड़ के प्रमुख जागीरदार ठाकुर समंदसिंह से ब्रिटेन के विरूद्ध सहायता देने का प्रस्ताव किया, ठाकुर समंदसिंह ने और मारवाड़ के अनेक प्रमुख जागीरदारों ने चार हजार सैनिकों की सहायता का आश्वासन दिया। 9 अक्टूबर, 1857 को आसोप के ठाकुर श्योनाथसिंह, पुलनियावास के ठाकुर अजीतसिंह, बोगावा के ठाकुर जोधसिंह, बांता के ठाकुर पेमसिंह, बसवाना के ठाकुर चांदसिंह, तुलगिरी के ठाकुर जगतसिंह ने दिल्ली सम्राट से सहायता लेने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। ठाकुर समंदसिंह ने भी उपर्युक्त जागीरदारों का साथ दिया।

जनवरी, 1858 को ब्रिटिश सैनिकों की सहायता करने के लिए बंबई की सैनिक टुकड़ी नसीराबाद पहुंची। मार्ग में सिरोही के ठाकुर के अधीन सेवा के किले को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया गया और 19 जनवरी, 1858 को यह टुकड़ी आऊवा पहुंची। इस सेना की सहायता करने के लिए जोधपुर के कार्यकारी ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट मेजर मोरीसन भी आऊवा पहुंचे। उधर दूसरी ओर, कर्नल हाल्मस के नेतृत्व में बम्बई नेविट इन्फेन्ट्री भी आऊवा पहुंची। तत्पश्चात् 19 जनवरी को ही कर्नल होल्मस के नेतृत्व में आऊवा किले पर घेरा डाल दिया गया परन्तु 23 जनवरी, 1858 को अंधकार और वर्षा व तूफान का फायदा उठाते हुए आऊवा क्रान्तिकारी बच निकले। ब्रिटिश सेनाओं के द्वारा क्रान्तिकारियों का पीछा किया गया जिन्होंने 18 क्रान्तिकारियों को मौत के घाट उतार दिया और 7 को हिरासत में ले लिया, दूसरी ओर, आऊवा गाँव में 124 व्यक्तियों को बंदी बनाया गया, जिन्हें तत्काल गोलियों का निशाना बना दिया गया। साथ ही साथ आऊवा ठाकुर के निवास स्थान को भी मिट्टी में मिला दिया गया और इस प्रकार 24 जनवरी, 1858 को आऊवा पर ब्रिटिश सैनिकों का कब्जा हो गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सैनिक कार्यवाही के दौरान अनेक निहत्थे नागरिकों की भी हत्या की गई जिनके शव गलियों में पड़े दिखाई देते थे। ब्रिटिश सेना को भी काफी क्षति पहुँची और उनके कम से कम दस सैनिक घायल हुए। ब्रिटिश सैनिकों ने आऊवा में भयंकर अत्याचार किए। भौरता, भीमालिया और लम्बीया गांवों को तहस–नहस कर डाला गया और इस प्रकार जनता में आतंक फैलाकर ब्रिटिश सैनिक नसीराबाद की ओर बढ़े।

कोटा में क्रान्ति

15 सितम्बर, 1857 को मेजर बर्टन को ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट के रूप में कोटा जाने का आदेश मिला। तदनुसार कोटा महाराव के वकील मेजर बर्टन को लेने के लिए नीमच पहुंचे। 5 अक्टूबर को मेजर बर्टन अपने दो पुत्रों के साथ कोटा के लिए रवाना हुए। मेजर बर्टन की पत्नी, उनकी पुत्री और उनके तीन पुत्र नीमच में ही रुक गए थे। 12 अक्टूबर को मेजर बर्टन अपने दोनों पुत्रों के साथ कोटा पहुंचे। उसी दिन दिल्ली का पतन हुआ और ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस अवसर पर महाराव कोटा को तोपों की सलामी दी गई। दूसरे दिन कोटा महाराव ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट से मिलने उनके निवास स्थान पर गए और उसी दिन शाम को पोलिटिकल एजेन्ट अपने दोनों पुत्रों के साथ महाराव से मिलने आए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपनी बातचीत के दौरान पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराव से अनुरोध किया कि वह अपने कुछ प्रमुख सहयोगियों को पदमुक्त कर दें। परन्तु 15 अक्टूबर को कोटा महाराव की दो पलटनों ने ब्रिटेन के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और मेजर बर्टन, उनके दोनों पुत्र, एक असिस्टेन्ट सर्जन और एक स्थानीय क्रिश्चियन डाक्टर की हत्या कर दी। यही नहीं, मेजर बर्टन का सिर काट लिया गया और क्रान्तिकारी उसे अपने साथ लेते गए। कान्तिकारियों का जनता ने भी सहयोग किया और इसे जन आन्दोलन का रूप दे दिया।कोटा की क्रान्ति में जयदयाल माथुर व मेहराब खॉ की मुख्य भूमिका रही। ब्रिटिश सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। पाँच महीने तक लगातार कोटा पर क्रान्तिकारियों का आधिपत्य रहा।

ऐसा माना किया जाता है कि मेजर बर्टन की हत्या में कोटा महाराव का भी हाथ था और संभवतः इसीलिए मेजर बर्टन को नीमच से वापिस बुलवाया गया था। परन्तु इसके विपरीत ब्रिटिश एजेन्ट मेजर बर्टन की हत्या की जांच पड़ताल करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति भी की गई थी, जिसने अपनी रिपोर्ट में कोटा महाराव को मेजर बर्टन की हत्या के लिए जिम्मेदार ठहराया था। संभवतः यही कारण है कि एजेन्ट गवर्नर जनरल ने महाराव पर 15 लाख रूपये के जुर्माना करने की सिफारिश की थी, परन्तु इन सबके बावजूद महाराव को ब्रिटिश

सरकार ने दोषमुक्त ठहराया। उधर महाराव कोटा ने अपने आपको इस घटना से बिल्कुल अलग बताया, उन्होंने मेजर बर्टन की नृशंस हत्या पर दुःख प्रकट करते हुए ब्रिटेन से क्षमा–याचना की। साथ ही साथ उन्हें ब्रिटेन से यह भी अनुरोध किया कि कोटा से क्रान्तिकारियों को हटाने में ब्रिटिश सैनिक सहायता तुरंत भेजी जाय। वास्तविकता यह थी कि कोटा पर पूर्णतः क्रान्तिकारियों का नियंत्रण था और कोटा महाराव एक प्रकार से अपने ही किले में बंदी थी। अंततः मार्च, 1858 में मेजर जनरल रोबर्ट्स के नेतृत्व में 5500 सैनिकों की एक टुकड़ी क्रान्तिकारियों का सफाया करने के लिए भेजी गई। 29 मार्च को नगर पर आक्रमण आरम्भ हुआ परन्तु क्रान्तिकारी बच निकले और उनका केवल एक सैनिक हरदयाल मारा गया। ब्रिटिश सैनिकों ने गोलाबारी की सहायता से नगर में प्रवेश किया,पर अत्याचार किए और समूचे नगर को धूल–धूसरित कर दिया।

मेवाड़ ठिकाने का अप्रत्यक्ष सहयोग – अंग्रेजी सरकार ने मेवाड़ के सामन्तों के प्रभाव और परम्परागत अधिकारों को कम कर दिया था। नसीराबाद के सैन्य विद्रोह की सूचना उदयपुर पहुँची तो वहां भी जनता ने अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध भावना प्रदर्शित की। अंग्रेज कप्तान शार्वस को कठोर शब्द कहे। सलूम्बर ठाकुर कुशालसिंह और कोठारिया के रावत जोधसिंह ने मारवाड़ के अंग्रेज विरोधी आऊवा ठाकुर और सैनिकों की भी सहायता की। ताँत्या टोपे की भी रसद देकर सहायता की। परन्तु मेवाड़ के सामन्त अंग्रेजी सेना के बढ़ते दबाव, धमकियों और कठोर दमन नीति के कारण प्रत्यक्ष विद्रोह नहीं कर पाए।

अन्य राज्यों का योगदान– जयपुर, टोंक, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, डूंगरपुर आदि राज्यों में भी अंग्रेज विरोधी भावना विद्यमान रही। भरतपुर की सेना, गुर्जर तथा मेव जनता ने भी खुल कर विद्रोह में भाग लिया। जयपुर की जनता ने रास्ते से गुजरती अंग्रेजी सेना को अपमानित कर अंग्रेज विरोधी भावना व्यक्त की। टोंक के नवाब की सेना ने भी विद्रोह किया। बकाया वेतन वसूला तथा दिल्ली गए।

तांत्या टोपे का राजस्थान ठहराव– 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में तांत्या टोपे का राजस्थान आगमन महत्वपूर्ण घटना है। तांत्या टोपे की इस यात्रा ने जागीरदारों सैनिकों तथा जन–साधारण में उत्तेजना का संचार किया। ग्वालियर में असफल होने पर तांत्या टोपे सहायता की आशा में हाड़ौती होते हुए जयपुर की ओर बढ़ा। सहायता न मिलने पर वह लालसोट होते हुए टोंक आ गया। ब्रिगेडियर होम्स उसका पीछा कर रहा था। टोंक में सेना ने उसका समर्थन किया। यहां से वह सलूंबर चला गया। सलूंबर के रावत ने उसकी सहायता की। अंग्रेजों को तांत्या टोपे ने 9 अगस्त 1858 को हराया पाँच दिन बाद बनास नदी के तट पर पुनः तांत्या टोपे की पराजय हुई। इसके बाद तांत्या हाड़ौती में आ गया तथा सने झालरापाटन पर अधिकार कर लिया। स्थानीय जनता ने उसे पूर्ण सहयोग दिया। लेकिन इसके बाद सितंबर माह में ही अंग्रेजों ने उसे दो बार हराया। विवश तांत्या टोपे राजस्थान से चला गया।

दिसम्बर 1858 ई. में तांत्या टोपे पुनः राजस्थान आया तथा बांसवाड़ा पर अधिकार कर लिया। यहां से वह सलूंबर आया। यहां उसे पूरी सहायता दी गई। तांत्या टोपे दौसा तथा सीकर भी गया। यहां अंग्रेजी सेनाओं ने उसे पराजित कर खदेड़ दिया। नरवर के जागीरदार मानसिंह ने विश्वासघात करके तांत्यां टोपे को अंग्रेजों के हाथों पकड़वा दिया। अप्रैल 1859 ई. में तांत्या टोपे को फाँसी दे दी गई।

क्रान्तिकारियों का अविस्मरणीय योगदान

सन् 1905 के बाद बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों को अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने स्वीकार न करते हुए दमन चक्र तेज कर दिया। देशी राज्यों ने भी अंग्रेजी रूख को देखते हुए अपनी रियासतों में सभी राष्ट्रवादी गतिविधियों पर अपना शिकंजा कस दिया। राजस्थान क्षेत्र में जहां राजनीतिक व्यवस्था उत्तरदायित्वहीन नौकरशाही पर आधारित थी, वहीं दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था सामंतवाद पर टिकी थी। ऐसी परिस्थितियों में आर्य समाज जैसी सामाजिक संस्थाओं ने राजनीतिक चेतना जागृत करने का बीड़ा उठाया। बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियाँ जोर पकड़ने लगी। बंगाल में सक्रिय इन क्रान्तिकारियों ने राजपूताना में भी सम्पर्क स्थापित करके अपने कार्य क्षेत्र को विस्तार दिया। इन क्रान्तिकारियों में विजय सिंह 'पथिक', पं. अर्जुनलाल सेठी, केसरी सिंह बारहठ, राव गोपाल सिंह खरवा आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

विजय सिंह पथिक– बिजौलिया आंदोलन का नेतृत्वकर्ता विजय सिंह 'पथिक' का मूल नाम भूपसिंह था। बिजौलिया आने से पूर्व वे एक क्रांतिकारी थे, वे रास बिहारी बोस के अनुयायी थे। रास बिहारी बोस ने देश व्यापी क्रान्ति के लिये उन्हें राजस्थान भेजा। किन्तु क्रान्ति असफल होने के कारण वे पकड़े गये और टाटगढ़ की जेल में बंद कर दिये गये। छूटने के बाद वे चित्तौड़ के ओछड़ी गाँव में बस गए। उन्होंने ही बिजौलिया आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार किया। कृषकों की समस्याओं का उन्होंने 'प्रताप' समाचार पत्र के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर प्रचारित किया। 1919 में वर्धा में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की और 1920 में उसे अजमेर स्थानान्तरित कर दिया। ''नवीन राजस्थान'' समाचार पत्र का प्रकाशन भी अजमेर से शुरू हुआ। 1922 में पथिक जी के प्रयासों से कृषकों व प्रशासन के बीच समझौता हुआ। बिजौलिया का आंदोलन जब बेगूं में फैला तो पथिक जी ने वहां के आन्दोलन की भी बागडोर संभाली और उन्हें तीन साल के लिये कारावास की सजा दे दी गई। कारावास से छूटने के बाद वे निर्वासित कर दिए गए। 1927 में जब बिजौलिया में माल भूमि छोड़ने का प्रश्न उठा तो पथिक जी ने कृषकों को भूमि छोड़ने की सलाह दी। वे सम्भवतः बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियों को भांप नहीं पाये। भूमि जब्त होने पर किसानों का मनोबल टूटा। पथिक जी के हाथों से नेतृत्व निकल कर अखिल भारतीय स्तर पर स्थानान्तरित हो गया।

पं. अर्जुन लाल सेठी– 1880 ई. में जयपुर में जन्मे अर्जुनलाल सेठी प्रारंभिक काल में चौमू ठिकाने के कामदार नियुक्त हुए। किन्तु देशभक्ति की भावना के कारण अपने पद से त्याग पत्र देकर उन्होंने 1906 ई. में जैन शिक्षा प्रचारक समिति की स्थापना की, जिसके तत्वाधान में जैन वर्धमान पाठशाला स्थापित की गई। 1907 ई. में अजमेर में जैन शिक्षा सोसायटी की स्थापना की, जो

1908 ई. में जयपुर स्थानान्तरित कर दी गई। अर्जुनलाल सेठी ने बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया व 1907 ई. की सूरत कांग्रेस में भी भाग लिया। धीरे–धीरे वर्धमान विद्यालय क्रान्तिकारियों का प्रशिक्षण केन्द्र बन गया। 12 दिसम्बर 1912 ई. को भारत के गर्वनर जनरल लार्ड हॉर्डिंग्स के जुलूस पर बम फैंके जाने की घटना के पीछे रूपरेखा सेठी जी की ही थी। इस घटना के मुख्य आरोपी जोरावर सिंह बारहठ सेठी के ही शिष्य थे। 20 मार्च 1913 ई. के आरा हत्याकांड में भी सभी आरोपी सेठी जी के घनिष्ठ थे। इस प्रकार राजपूताना की क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालक सेठी जी थे। तत्कालीन ए.जी.जी. सी. आर्मस्ट्रांग ने 1914 ई. में जयपुर सरकार को सेठी जी की गतिविधियों के बारे में सावधान किया। उनके जयपुर राज्य में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। काकोरी कांड के मुख्य आरोपी अशफाकउल्ला खां को सेठी जी ने ही राजस्थान में छुपाया।

लम्बे समय तक आरा हत्याकांड व दिल्ली षड़यंत्र के आरोप में वे नजरबंद रहे। बंदी बनाकर उन्हें वैलूर (मद्रास प्रेसीडेंसी) भेजा गया, जहॉ दुर्व्यवहार के कारण वे 70 दिन अनशन पर रहे। जब 1919 ई. में वे रिहा हुए तो 1920 ई. की नागपुर कांग्रेस को सफल बनाने में जुट गये। इस प्रकार क्रान्तिकारी गतिविधियेां के बाद उन्होंने कांग्रेस की नीतियों को समर्थन देना आरम्भ किया। असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण 1921 ई. में वे पुनः बंदी बनाये गये। 1930 ई. के सत्याग्रह आंदोलन में वे राजपूताना के प्रान्तीय डिक्टेटर नियुक्त किये गये व 1934 ई. में वे राजपूताना व मध्य भारतीय प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रांतपति चुने गये। नीति सम्बंधी मतभेदों के चलते उन्होंने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया।

सेठी जी अत्यन्त स्वाभिमानी व्यक्ति कुशल संचालक व ओजस्वी वक्ता थे। जब उन्हें जयपुर के प्रधानमंत्री का पद प्रस्तावित किया गया तो उन्होंने कहा ''श्रीमान् अर्जुनलाल नौकरी करेगा तो अंग्रेजों को कौन निकालेगा?'' अर्जुनलाल सेठी के राजनीतिक कद का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब गांधीजी अजमेर आये तो स्वयं सेठी जी से मिलने उनके निवास स्थान पहुंचे। कुशल वक्ता होने के अतिरिक्त उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं, जैसे शूद्र मुक्ति व स्त्री मुक्ति। एक नाटक 'महेन्द्र कुमार' भी लिखा व मंचित करवाया। वे आजीवन सांप्रदायिक सद्भाव के लिये प्रयासरत रहे। 22 सितम्बर 1941 ई. को अजमेर में उनका देहान्त हो गया।

सागरमल गोपा– जैसलमेर में जन–जागृति का श्रेय सर्वप्रथम सागरमल गोपा को जाता है। 1940 ई. में उन्होंने जैसलमेर का गुण्डाराज नामक पुस्तक छपवाकर वितरित की। इस पर दरबार (महारावल) द्वारा निवासित होकर वे नागपुर चले गऐ। 1941 ई में पिता की मृत्यु पर जब गोपा जी जैसलमेर आये तो उन्हें 1942 ई. में छः वर्ष कठोर कारावास की सजा दी गई।

जेल में उन्होंने अमानवीय व्यवहार के बारे में जय नारायण व्यास को पत्र भेजे। 3 अप्रैल 1942 ई. को गोपा जी के जेल में ही तेल डालकर जला कर मार डाला गया। इस एक घटना ने जैसलमेर के जन–मानस को झकझोर डाला और निरकुंश शासन का विरोध तीव्र हो गया और अन्ततोगत्वा प्रजा मण्डल के नेतृत्व में आजादी का सूरज उदय हुआ।

दामोदर दास राठी (1882–1918)– राजस्थान के अग्रणी स्वतंत्रता प्रेमियों में दामोदर दास राठी का नाम लिया जाता हे। ये उद्योगपति थे और राव गोपाल सिंह व अरविन्द घोष के सम्पर्क में रहे। इन्होंने ब्यावर में आर्य समाज व होम रूल आंदोलन की शाखा खोली। तिलक की उग्र नीति के ये प्रबल समर्थ थे।

स्वामी गोपाल दास (1882–1939)– इन्होंने बीकानेर क्षेत्र के चुरू क्षेत्र में स्वतंत्रता की अलख जगाकर हितकारिणी सभा की स्थापना के साथ–साथ इन्होंने शिक्षा की प्रगति के लिए भी कार्य किये। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में जब बीकानेर के महाराजा के विरूद्ध अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओं

ने पर्चे बाटे तो स्वदेश लौटकर महाराजा ने सभी सावर्जनिक नेताओं को बिना मुकदमें चलाए बंदी बना दिए जिसमें स्वामी गोपाल दास भी सम्मिलित थे।

केसरी सिंह बारहठ– केसरी सिंह बारहठ का जन्म 21 नवम्बर 1872 ई. को मेवाड़ राज्य की शाहपुरा रियासत के ठिकाना देवपुराखेड़ा में हुआ। अपने पिता से उन्होंने विदेशी दासता के प्रति विरोध सीखा। मेवाड़ के महाराणा के विश्वस्त बन कर उन्होंने श्यामकृष्ण वर्मा को 1893 ई. में मेवाड़ आमंत्रित किया। यह कदम अंग्रेजों को सहन नहीं हुआ और मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट के कहने पर उन्हें नौकरी से निकाल दिया गया। 1900 ई. में कोटा के महाराव के आग्रह पर वे कोटा आ गये और 1902 ई. से 1907 ई. तक कोटा राज्य में 'सुपर इन्टेंडेंट ऐथिनोग्राफी' पद पर कार्य करते रहे। उनका संपर्क निरन्तर अर्जुनलाल सेठी व गोपाल सिंह खरवा से बना रहा और शीघ्र ही वे रासबिहारी बोस के विश्वासपात्र बन गये। राजस्थान में सशस्त्र क्रांतिकारी दल के संगठन का पूर्ण दायित्व केसरी सिंह पर आ गया। उन्होने सशस्त्र क्रांति के लिये साधन जुटाने व लड़ाकू सैनिक जातियों को संगठित करने का कार्य आरंभ किया। शीघ्र ही उनकी प्रतिष्ठा कवि, लेखक व राष्ट्र सेवक के रूप में फैल गई।

1903 ई. में जब महाराणा फतेहसिंह ने दिल्ली दरबार में जाने की स्वीकृति दी तो केसरी सिंह ने इस कृत्य की निंदा स्वरूप महाराणा को 13 सोरठ 'चेतावनी री चूंगट्या' भेजे जो उन्हें रेलमार्ग से जाते समय मिले। इन्हें पढ़ कर महाराणा का मंतव्य बदल गया और दिल्ली पहुंचकर भी वे दरबार में सम्मिलित नहीं हुए। इस घटना के बाद केसरी सिंह अंग्रेजों की आंख की किरकिरी बन गये। सरकारी गोपनीय रिपोर्ट के अनुसार उनके सम्बंध रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी जैसे क्रान्तिकारियों के साथ बताए गए। उन पर राजद्रोह, ब्रिटिश फौज के भारतीय सैनिकों को शासन के विरूद्ध भड़काने व षड़यंत्र में सम्मिलित होने के साथ–साथ प्यारेराम नामक साधु की हत्या का आरोप भी लगाया गया। उन्हें बीस वर्ष की सजा सुनाई गई और बिहार प्रान्त के हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में रखा गया। 1920 ई. में बारहठ जी ने जेल छूटने के बाद उन्होंने राजपूताना के ए.जी.जी. को पत्र लिखकर राजपूताना व भारत की रियासतों में उत्तरदायी शासन पद्धति कायम करने

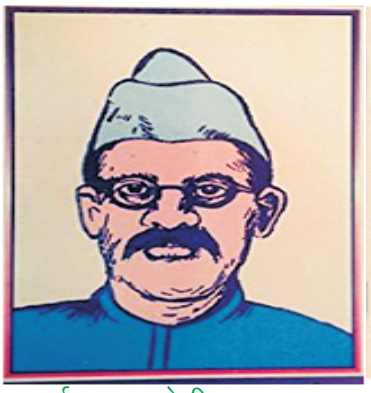

अर्जुनलाल सेठी

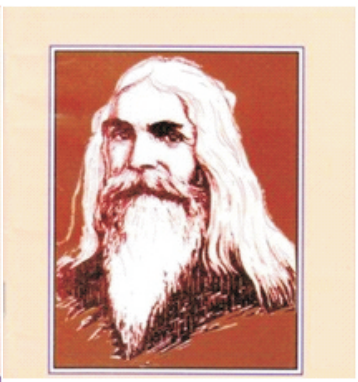

केसरी सिंह बारहठ

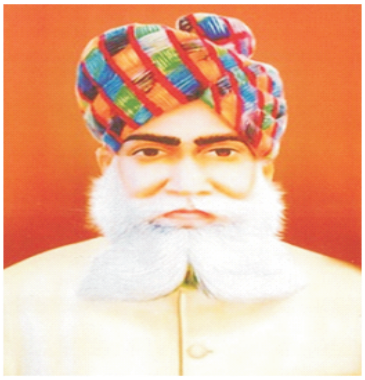

जोरावरसिंह बारहठ

प्रतापसिंह बारहठ

की योजना प्रेषित की। 1929 ई. के बाद बारहठजी के विचार अहिंसात्मक हो गए। कांग्रेस के वर्धा अधिवेशन में वे आमंत्रित किये गये। 1941 ई. में उनका स्वर्गवास हो गया।

केसरी सिंह बारहठ हिन्दी भाषा के पक्षधर थे। उन्होंने क्षत्रिय जागीरदारों व उमरावों को परामर्श दिया कि वे मेयो कालेज के स्थान पर स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं में अपने बच्चों को शिक्षा दिलायें। 1904 ई. में उन्होंने क्षत्रिय कालेज की भी रूपरेखा बनाई किन्तु उसे समर्थन नहीं मिला। 1908 ई. में उन्होंने एक योजना द्वारा उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन करने के लिए इंग्लैंड के स्थान पर छात्रों को जापान भेजना प्रस्तावित किया। इस प्रकार स्वतंत्र प्रेम के साथ–साथ बारहठ जी ने मातृ भाषा व स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं के प्रोत्साहन में भी कोई कसर नहीं रखी।

प्रतापसिंह बारहठ– प्रतापसिंह अपने पिता केसरीसिंह बारहठ के पद्चिह्नों पर चलते हुए देश के लिए शहीद हो गए। प्रारम्भिक शिक्षा अर्जुनलाल सेठी से ग्रहण करने के बाद व्यावहारिक शिक्षा के लिये मास्टर अमीरचंद के पास रहे। राजपूताने की सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिको को भविष्य में सशस्त्र क्रान्ति हेतु तैयार करना आरंभ किया। 1912 ई. के दिल्ली कांड लार्ड हार्डिंग्स पर बम फैंके जाने के समय ये अपने चाचा जोरावर सिंह बारहठ के साथ मौजूद थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल, पिंगले व करतार सिंह सराबा जैसे प्रमुख क्रान्तिकारियों से इनका संपर्क हुआ। उन्होंने भारत सरकार के गृह सदस्य रेगीनाल्ड क्रैडोफ की हत्या की योजना बनाई पर विफल रहे। 1914–15 ई. में बनारस षड़यंत्र का आरोप तय किये जाने पर बरेली जेल में डाल दिए गए। कई प्रलोभनों के बावजूद इन्होंने पुलिस के सामने कोई भेद नहीं खोला। अमानुषिक अत्याचारों व दारूण यातनाओं के फलस्वरूप इनकी 24 मई 1918 ई. में जेल में ही मृत्यु हो गई। इनकी मृत्यु की सूचना कई वर्षों बाद उनके परिवारवालों को मिली।

जोरावर सिंह बारहठ– बारहठ परिवार के त्याग व बलिदान की कथा अतुलनीय है। केसरी सिंह के छोटे भाई जोरावरसिंह बारहठ का परिचय दिये बिना राजस्थान के क्रांतिकारियों का विवरण पूरा नहीं हो सकता। 1912 ई. में दिल्ली में वाइसराय हार्डिंग्स् के जुलूस पर बम फैंकने का दुःसाहसिक कार्य जोरावर सिंह बारहठ का ही था। दिल्ली से भागने पश्चात् वे अहमदाबाद, बांसवाड़ा, डूंगरपुर होते हुए मालवा के पहाड़ों व जंगलों में भटकते रहे। आरा हत्याकांड में उनकी गिरफ्तारी के वारंट जारी हुए। 1939 ई. में वारंट रद्द हुए थे। उनका निधन 17 अक्टूबर 1939 ई. में कोटा में हुआ। पं. ज्वाला प्रसाद, बाबा नृसिंहदास, स्वामी कुमारानंद जैसे क्रांतिकारियों का योगदान भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

राव गोपाल सिंह खरवा– खरवा ठिकाने के ठाकुर राव गोपाल सिंह का जन्म 1872 ई. में हुआ। ये आरंभ से ही आर्य समाज से प्रभावित थे। धर्म महामण्डल के शिष्टमण्डल के सदस्य के रूप में जब ये बंगाल गये तो उनका सम्पर्क क्रान्तिकारियों से हुआ। 1907 में उन्होंने अजमेर में राजपूत छात्रावास खोला। राव गोपाल सिंह का नाम दिल्ली षड़यंत्र केस में सामने आया। उन पर यह भी आरोप लगाया कि वे जोधपुर व नसीराबाद के निचले स्तर के राजपूत सैनिकों के बीच ब्रिटिश विरोधी भावनायें फैला रहे हैं। दोनों ही कार्यवाहियों में उन पर कोई आरोप सिद्ध नहीं हो सका। डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट की धारा 3 के अन्तर्गत उन पर मुकदमा चलाया गया। कोटा के साधु हत्याकांड में भी वे संदेह के घेरे में थे। केसरी सिंह बारहठ के साथ मिलकर उन्होंने 'वीर भारत सभा' की स्थापना की। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रास बिहारी बोस ने सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई, जिसमें खरवा को राजस्थान में क्रान्ति का कार्य सौंपा गया। किन्तु योजना विफल हो गई। 24 जून 1915 ई. को इन्हें आदेशानुसार टाडगढ़ में जाकर रहना पड़ा। 10 जुलाई 1915 ई. को वे भाग निकले। गिरफ्तार होने के पश्चात् उनकी जागीर खरवा छीन ली गई। 1920 ई. में रिहा होने के बाद वे रचनात्मक कार्यों में संलग्न हो गये और 1956 ई. में इनका देहावसान हुआ।

इन प्रमुख क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने सशस्त्र क्रान्ति का प्रयास कर विदेशी सत्ता को उखाड़ फैंकने का प्रयत्न किया। श्याम जी कृष्ण वर्मा (1857–1930) 1887 ई. से 1897 ई. के मध्य रतलाम, उदयपुर व जूनागढ़ राज्यों में दीवान पद पर रहे। वे स्वदेशी के प्रबल समर्थक थे। 1897 ई. में महाराष्ट्र में रैण्ड (प्लेग कमिश्नर, पूना) की हत्या में ये संदेह के घेरे में आए। यहां से बच कर इंग्लैण्ड पहुँचने पर इन्होने 'इंडिया हाऊस' व 'होम रूल सोसाइटी' की स्थापना की। परदेश में रहते हुए इन्होंने भारत की आजादी के लिये महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राजस्थान के अग्रणी स्वतंत्रता प्रेमियों में दामोदर दास राठी (1882–1918) का नाम लिया जाता है। ये उद्योगपति थे और राव गोपाल सिंह व अरविन्द घोष के सम्पर्क में रहे। उन्होंने ब्यावर में आर्य समाज व होम रूल आंदोलन की शाखा खोली व

एक सनातन धर्म शिक्षा संस्था की स्थापना की। तिलक की उग्र नीति के ये प्रबल समर्थक थे।

इन सभी क्रान्तिकारी गतिविधियों की विशेष बात यह थी कि ये सामाजिक सुधार व शिक्षा के प्रचार के साथ समानान्तर रूप में चल रही थीं। राजनीतिक हत्याएँ, धन सामग्री जुटाने व प्रभाव बढ़ाने का माध्यम थी। यद्यपि क्रान्तिकारियों का आन्दोलन जन साधारण में विशेष नहीं फैल पाया और गाँधीवादी साधन अधिक लोकप्रिय थे, फिर भी सामंती समाज की बदहाली, शासकों की उदासीनता व अंग्रेजों के दमन को उजागर करने में क्रांतिकारी सफल रहे।

स्वतंत्रता संग्राम की असफलता के कारणः– 21 सितम्बर 1857 ई. को मुगल बादशाह बहादुर शाह उनकी बेगम जीनत महल तथा उनके पुत्रों को बंदी बनाकर रंगून भेज दिया गया। 1858 ई. के मध्य में क्रांति की गति काफी धीमी हो चुकी थी। तांत्या टोपे की गिरफ्तारी के साथ ही भारतीयों का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम राजस्थान में समाप्त हो गया।

राजस्थान में इस समय तीव्र ब्रिटिश विरोधी भावना दिखाई दी। जनता ने अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा का खुला प्रदर्शन किया। महाराणा से मिलने जाते समय उदयपुर की जनता ने कप्तान शावर्स को खुलेआम गालियॉ दी। जोधपुर की सेना ने कप्तान सदर लैण्ड के स्मारक पर पत्थर बरसाए। कोटा, भरतपुर, अलवर तथा टोंक की जनता ने शासकों की नीति के विरूद्ध क्रांतिकारियों का साथ दिया। फिर भी राजस्थान में क्रांति असफल हुई। इसके अधोलिखित कारण थे।

नेतृत्व का अभाव– राजस्थान 19 रियासतों में विभाजित था। अनेक स्थानों पर क्रांति होने पर भी विद्रोहियों का कोई सर्वमान्य नेतृत्व नहीं था। राजपूत शासकों ने मेवाड़ के महाराणा से संपर्क किया, किन्तु महाराणा ने इस संबंध में समस्त पत्र व्यवहार अंग्रेजों को सौंप दिया। मारवाड़ के सामंतों तथा सैनिकों ने मुगल बादशाह के नेतृत्व में संघर्ष का प्रयास किया। किन्तु मुगल बादशाह दिल्ली से बाहर राजस्थान में नेतृत्व प्रदान नहीं कर सका। फलतः क्रांतिकारी एकजुट होकर संघर्ष नहीं कर सके तथा उन्हें असफल होना पड़ा।

समन्वय का अभाव– राजस्थान में क्रांति का प्रस्फुटन अनेक स्थानों पर हुआ। लेकिन क्रांतिकारियों के बीच समन्वय का अभाव था। नसीराबाद, नीमच, आऊवा तथा कोटा के क्रांतिकारियों में सम्पर्क तथा तालमेल नहीं था। यही कारण है कि भारतीयों को सफलता प्राप्त नहीं हुई।

रणनीति का अभाव– क्रांतिकारियों के प्रयास योजनाबद्ध नहीं थे। विद्रोह के पश्चात् उनमें बिखराव आता चला गया। दूसरी ओर अंग्रेजों ने योजनाबद्ध ढंग से क्रांतिकारियों की शक्ति को नष्ट किया। अंग्रेजी सेनाओं का नेतृत्व कुशल सैन्य अधिकारी कर रहे थे। उनकी रसद तथा हथियारों की आपूर्ति संपूर्ण भारत से हो रही थी। जबकि क्रांतिकारी सैनिकों के पास साधनों का अभाव था। उदाहरणार्थ कोटा तथा धौलपुर के शासकों की क्रांति को दबाने के लिये अंग्रेजों के अतिरिक्त करौली तथा पटियाला से सहायता दी गई थी।

शासकों का असहयोग– राजस्थान के शासकों का सहयोग नहीं मिलना भी असफलता का प्रमुख कारण था। यही नहीं, राजस्थान के अधिकांश शासकों ने न केवल राजस्थान बल्कि राजस्थान के बाहर भी अंग्रेजों को पूर्ण सहायता प्रदान की। शासकों की इस अदूरदर्शी नीति ने उखड़ी हुई ब्रिटिश सत्ता की पुर्नस्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वतंत्रता संग्राम के परिणाम

1857 ई. की क्रांति के परिणाम दूरगामी थे। इस क्रांति ने अंग्रेजों की इस धारणा को निराधार सिद्ध कर दिया कि मुगलों एवं मराठों की लूट से त्रस्त राजस्थान की जनता ब्रिटिश शासन की समर्थक है।

देशी राज्यों के प्रति नीति परिवर्तन– राजस्थान के शासकों ने क्रान्ति के प्रवाह को रोकने हेतु बाँध का कार्य किया था। अंग्रेज शासकों ने यह समझ लिया कि भारत पर शासन की दृष्टि से देशी राजा उनके लिये उपयोगी है। अतः अब ब्रिटिश नीति में परिवर्तन किया गया। शासकों को संतुष्ट करने हेतु ''गोध निषेध'' का सिद्धान्त समाप्त कर दिया गया। राजाओं की अंग्रेजी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध किया जाने लगा। उनकी सेवाओं के लिए उन्हें पुरस्कार तथा उपाधियाँ दी गईं, ताकि उनमें ब्रिटिश ताज तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रति आस्था में वृद्धि हो सके।

सामंतों की शक्ति नष्ट करना– विद्रोह काल में सामंत वर्ग ने अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष किया। फलतः विद्रोह समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने सामंत वर्ग की शक्ति समाप्त करने की नीति अपनाई। सामंतों द्वारा दी जाने वाली सैनिक सेवा के बदले नगद राशि ली जाने लगी। फलतः सामंतों को अपनी सेनाएँ भंग करनी पड़ी। सामंतों से न्यायालय शुल्क लिया जाने लगा। उनके न्यायिक अधिकार छीन लिये गये, उनका राहदारी शुल्क वसूली का अधिकार भी समाप्त कर दिया गया। ऐसे कानून बनाए गये जिनसे व्यापारी वर्ग अपना ऋण न्यायालय द्वारा वसूल कर सके। इस नीति के फलस्वरूप व्यापारी वर्ग तथा जनता पर सामंतों का प्रभाव समाप्त होने लगा।

नौकरशाही में परिवर्तन– सभी राज्यों के प्रशासन में महत्वपूर्ण पदों पर सामंतों का अधिकार था। क्रांति के बाद सभी शासकों ने सामंतों को शक्तिहीन करने तथा प्रशासन पर अपना नियंत्रण बढ़ाने के लिए नौकरशाही में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त, अनुभवी एवं स्वामी भक्त व्यक्तियों को नियुक्ति प्रदान की। इसके फलस्वरूप राजभक्त, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्ग का विकास हुआ।

यातायात के साधन– संघर्ष के समय में अंग्रेजों की सेनाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में कठिनाई का सामना करना पड़ा। विद्रोह के पश्चात् सैनिक तथा व्यापारिक हितों को ध्यान में रखते हुए यातायात के साधनों का विकास किया गया। नसीराबाद, नीमच, तथा देवली को अजमेर तथा आगरा से सड़कों द्वारा जोड़ दिया गया। रेल कम्पनियों को रेल मार्ग निर्माण हेतु प्रोत्साहित किय गया। अंग्रेज सरकार ने देशी राज्यों पर भी सड़कों तथा रेलों के निर्माण हेतु दबाव डाला, इसके फलस्वरूप यातायात के साधनों का त्वरित विकास हुआ।

सामाजिक परिवर्तन– अंग्रेजी सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विस्तार किया। दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा का महत्व बढ़ जाने के फलस्वरूप मध्यम वर्ग का विकास हुआ। इस वर्ग ने अंग्रेजी

शिक्षा लेकर प्रशासन तथा अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक स्वार्थों के कारण वैश्य वर्ग को संरक्षण प्रदान किया। कालान्तर में ब्राह्मण तथा राजपूत वर्ग का प्रभाव कम होता चला गया।

मेयो कॉलेज के माध्यम से राज परिवारों को पाश्चात्य विचारों व विलासिता में ढाला गया। अग्रेंज प्रत्येक ठिकानेदार से निश्चित कर व सैन्य खर्च लेते थे,पूर्व में अकाल आदि की स्थिति में अब कर माफ करना सम्भव नहीं था, अतः जनता से कर वसूली का दबाव बनाया।

राजस्थान में किसान आन्दोलन

अंग्रेजी शासन से पूर्व, राजस्थान के राज्यों में शासक, सामन्त और किसानों के परस्पर सम्बन्ध सहयोग, सद्भाव पर निर्भर थे। कालान्तर में अग्रेंजों ने मेयो कॉलेज के माध्यम से राज परिवारों को पाश्चात्य विचारों व विलासिता पूर्ण जीवन में ढाला । भूमि का स्वामित्व प्रमुखतः दो प्रकार का था। एक वह भूमि जो शासक के सीधे नियंत्रण में होती थी, उसे 'खालसा' भूमि कहा जाता था। दूसरी वह भूमि, जो सामन्तों (जागीरदारों, ठिकानेदारों) के नियन्त्रण में थी, वह जागीर भूमि, कही जाती थी। सामन्तों का अपनी जागीर की प्रजा पर पूरा अधिकार था। किसानों से भूमि–कर के अतिरिक्त भी कर लिए जाते थे, जिन्हें लागतें (लाग–बाग) कहा जाता था। बेगार भी करनी होती थी (कार्य के बदले अनाज मिलता था)। परन्तु अंग्रेजी नियंत्रण से पूर्व सामन्तों का सहयोगी व उदार दृष्टिकोण रहा। अकाल के समय यह देशी शासक लगान माफ कर दिया करते थे किन्तु अग्रेंजी शासन के निश्चित कर व सैन्य सेवा की वजह से इन्हें दबाव पूर्वक किसानो से कर वसूलना पडता था ।

20 वीं सदी के पूर्वाद्ध तक राज्यों में अंग्रेजों का हस्तक्षेप और नियंत्रण बढ़ता गया। अंग्रेजी सरकार को नियमित खिराज़ (कर) देने और बढ़ते खर्चों तथा आर्थिक शोषण की नीति से किसानों से परम्परागत सम्बन्ध में बदलाव आ गया। किसानों पर नयी लागतें थोप दी तथा जबरदस्ती बेगार ली जाने लगी। शासकों और सामन्तों को बाहरी आक्रमणों का खतरा नहीं रहा। अंग्रेजी नियंत्रण से पश्चिमी प्रभाव पड़ा। फलतः शासकों और सामन्तों की जीवन शैली में परिवर्तन आने लगा। उनके खर्चे बढ़ गए। अपनी विलासिता और सुख–सुविधाओं के लिए किसानों का आर्थिक शोषण बढ़ गया। किसानों में बढ़ते असंतोष के परिणामस्वरूप संगठित किसान आन्दोलन हुए।

राजस्थान के किसान आन्दोलनों का राष्ट्रीय चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान रहा। किसान अत्याचारों और अमानवीय यातनाओं से नहीं डरे। स्त्रियों ने भी भाग लिया। लाग–बाग एवं बेगार प्रथा का विरोध किया। बिजौलिया, बेगूं, मारवाड़, शेखावाटी आदि स्थानों पर प्रमुख किसान आन्दोलन हुए।

बिजौलियां किसान आन्दोलन एवं विजयसिंह पथिक (1913–22)

भूमिका 1913 में पहले साधु सीताराम दास और बाद में विजयसिंह 'पथिक' के नेतृत्व में बिजौलिया–आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य जागीरदारों द्वारा बिजौलिया की जनता पर लगाए गए करों और विभिन्न 'लागबाग' के विरूद्ध आवाज उठाना था। विभिन्न त्यौहार एवं अवसरों पर जैसे फसल की कटाई, विवाह, जन्मदिन समारोह और जागीरदार के विभिन्न सामाजिक उत्सवों पर प्रत्येक किसान को एक निश्चित मात्रा में कर देना पड़ता था और मना करने की अवस्था में उसे भारी शारीरिक यातनाएं सहनी पड़ती थीं। इसी प्रकार बेगार प्रथा प्रचलित थी। परिणाम यह हुआ कि सुबह से शाम तक परिश्रम करने के बावजूद किसान के लिए भरपेट भोजन कर सकना असंभव हो गया था। अतः बिजौलियां के किसानों ने अपना विरोध प्रकट करने के लिए एक वर्ष तक के लिए खेती करना स्थगित कर लिया और साथ ही साथ भू–राजस्व देने से मना कर दिया।इस समय आन्दोलन का नेतृत्व साधु सीताराम दास कर रहे थे परन्तु इसी बीच 1915 में वे चित्तौड़ में विजयसिंह 'पथिक' से मिले और उनसे आन्दोलन का नेतृत्व संभालने का अनुरोध किया। साधु सीताराम दास ने जागीरदारों द्वारा असहाय जनता पर किए जाने वाले अत्याचारों की कहानी सुनाई। पथिक ने नेतृत्व संभालना स्वीकार किया और इस प्रकार बिजौलिया आन्दोलन को एक नया उत्साही और साहसी नेता मिला।

1916 में बिजौलिया के किसानों ने मन्नालाल की अध्यक्षता में एक किसान–पंच–बोर्ड की स्थापना की। विजयसिंह 'पथिक' से प्रेरणा पाकर बिजौलियां के किसानों ने युद्ध ऋण देने से इनकार कर दिया। उन्होंने जागीरदारों को किसी भी प्रकार का सहयोग देने से इनकार कर दिया और स्थिति यहां तक बिगड़ गई कि किसान पंचायत ने निर्णय ले लिया कि वे प्रत्यक्ष रूप से जागीरदारों से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे और पंचायत के माध्यम से ही सब कार्य होंगे। स्थिति इतनी अधिक बिगड़ी कि ब्रिटिश सरकार तक सतर्क हो गई और उसने यह घोषणा कर दी थी कि मेवाड़ और उसके आस–पास के पहाड़ी इलाकों में 'बोल्शविक' घुस आये हैं और वे रूसी क्रान्ति के आधार पर सशस्त्र क्रांति करना चाहते हैं। अतः ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़ के महाराणा और अन्य जागीरदारों पर इस बात के लिए भारी दबाव डाला कि बिजौलिया–आन्दोलन को शीघ्रातिशीघ्र कुचल दिया जाय। गिरफ्तारी से बचने के लिए विजयसिंह 'पथिक' कोटा राज्य की सीमा में चले गए और वहीं से आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे।

जब जागीरदारों ने किसानों की समस्या को हल करने का कोई कदम नहीं उठाया तो सत्याग्रह आरम्भ किया गया। प्रत्युत्तर में जागीरदारों ने दमनकारी साधनों का सहारा लिया। हजारों किसान गिरफ्तार कर लिए गए जिनमें साधु सीतारामदास, रामनारायण चौधरी, प्रेमचन्द्र भील और माणिक्यलाल वर्मा भी शामिल थे, जागीरदारों ने समस्त जमीन को जब्ती घोषित कर दिया परन्तु किसानों ने समर्पण करने से इन्कार कर दिया। रामनारायण चौधरी जो स्थिति का अध्ययन करने बिजौलिया आ गए थे, के अनुसार बिजौलिया का प्रत्येक स्त्री, पुरूष और युवक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था और प्रत्येक स्थान पर 'वन्देमातरम्' की आवाज सुनाई देती थी। बिजौलिया सत्याग्रह का समाचार समूचे भारत में फैला। यही कारण है कि महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक और

गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ। जब स्थिति पर काबू नहीं किया जा सका तो राजस्थान में एजेन्ट टू गवर्नर जनरल सर रॉबर्ट हॉलेंड और मेवाड़ के ब्रिटिश रेजीडेन्ट विलकिसन समस्या का समाधान निकालने के लिए बिजौलियां पहुंचे। मेवाड़ राज्य का प्रतिनिधित्व राज्य के दीवान प्रकाशचन्द चटर्जी और बिहारीलाल कौशिक तथा ठिकाने का प्रतिनिधित्व कामदार हीरालाल, फौजदार तेजसिंह और मास्टर जालिमसिंह के द्वारा किया गया।

विजयसिंह 'पथिक'

माणिक्यलाल वर्मा

बिजौलिया के किसानों ने इस बात पर बल दिया कि बातचीत में राजस्थान सेवा संघ के प्रतिनिधि भी शामिल किए जाएं, अतः बिजौलियां पंचायत और सेवा संघ की ओर से रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा और पंचायत सरपंच मोतीचंद ने भाग लिया। ए. जी. जी. के हस्तक्षेप के परिणाम –स्वरूप ठिकाने के जागीरदारों और बिजौलिया किसानों के मध्य समझौता सम्पन्न हुआ। समझौते के अनुसार किसानों की अनेक मांगे स्वीकार कर ली गई जिनमें बेगार–प्रथा की समाप्ति और अधिकांश 'लागबाग' का उन्मूलन सम्मिलित था तथा यह भी तय हुआ कि किसानों के विरूद्ध चलने वाले मुकदमे वापिस ले लिए जाएंगे और जिस वर्ष खेती नहीं की गई है उसका भू–राजस्व नहीं लिया जायेगा। इस प्रकार बिजौलिया–आन्दोलन समाप्त हुआ।

बेगूं आन्दोलन– बिजौलिया किसान आन्दोलन से प्रभावित होकर, बेगूं के किसानों ने भी लाग–बाग के विरूद्ध आन्दोलन किया। विजयसिंह पथिक, माणिक्य लाल वर्मा और राम नारायण चौधरी ने इस आन्दोलन का मार्गदर्शन किया। 1921 ई. में किसानों का कठोरता से दमन किया गया । उनके खेतों में खड़ी फसल नष्ट कर दी गयी। जंगल से घास और लकड़ी काटने, मवेशियों को चरागाहों में चरने की मनाही कर दी। दो वर्ष तक किसान साहसपूर्वक आन्दोलन करते रहे। बेगू सामन्त ठाकुर अनूपसिंह रावत ने किसानों से समझौता किया परन्तु अंग्रेजों ने इसे नहीं माना। रायला और गोविन्दपुरा गांव से आन्दोलन जारी रहा। दो किसान रूपा और किरपा शहीद हो गये। 500 से ज्यादा किसानों को बन्दी बना लिया। राजस्थान 'केसरी', 'प्रताप' और 'नवीन राजस्थान' समाचार पत्रों में पुलिस की अमानवीय कार्यवाही की निंदा की गई तो अंग्रेजों ने इन समाचार पत्रों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। महाराणा फतहसिंह को उदयपुर की गद्दी से हटाने का भी प्रयास हुआ। मेवाड़ राज्य प्रशासन पर अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट का नियन्त्रण रहा। अंग्रेज अधिकारी ट्रेंच ने किसानों पर गोलियाँ चलवा दी परन्तु किसानों ने दृढ़तापूर्वक आन्दोलन जारी रखा। अन्ततः 53 में से 34 लागतें समाप्त करने, बेगार पर रोक लगाने की घोषणा कर, किसानों से समझौता करना पड़ा। राष्ट्रीय स्तर पर और विभिन्न समाचार पत्रों में इस दमन नीति की आलोचना हुई। मेवाड़ के इन दोनों किसान आन्दोलनों–बिजौलियां और बेगूं का अन्य राज्यों पर प्रभाव पड़ा तथा किसान पंचायतों का भी महत्व बढ़ा।

मारवाड़ में कृषक आंदोलन– मरूभूमि होने के कारण यहां के भूमि बंदोबस्त पर कृषकों व प्रशासकों का अधिक ध्यान नहीं था। किन्तु कृषकों की समस्याओं के प्रति अन्य राज्यों की अपेक्षा यहां राजनीतिक चेतना अधिक जागृत थी। मारवाड़ हितकारिणी सभा के माध्यम से कृषकों की समस्याओं के प्रति सक्रिय जनमत तैयार हुआ। 1936 ई. में जब राज्य सरकार ने 119 लागों की समाप्ति की घोषणा की तो कृषकों ने इन्हें जागीरी क्षेत्रों से भी खत्म करवाने का प्रयास किया। 1939 ई. में मारवाड़ लोक परिषद ने किसानों की मांगों का समर्थन किया और किसानों को जागीरदार के विरूद्ध आंदोलन करने के लिये प्रोत्साहित किया। 1941 ई. में परिषद् ने एक समिति नियुक्त कर के लाग व बेगारों पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। किसानों का आंदोलन कमजोर करने के लिये 'मारवाड़ किसान सभा' नामक एक समानान्तर सभा जून 1941 ई. में गठित की गई। किन्तु इस प्रकार का उद्देश्य सफल नहीं हो पाया। 1941–42 ई. में जाट कृषक सुधारक सभा द्वारा राज्य सरकार से लागू करवाने व लगान कम करवाने के लिये सभायें की। रामदेवरा व नागौर मेलों जैसे सामाजिक धार्मिक उत्सवों का लाभ उठाते हुए संघर्ष करने के लिये किसानों को प्रेरित किया गया। इस आंदोलन की चर्चा संपूर्ण भारत में होने लगी। 'हरिजन' समाचार पत्र में राज्य की आलोचना छपने के बाद दिसम्बर 1943 ई. में दरबार ने जागीरों में भूमि बन्दोबस्त के आदेश दिये। इसका विरोध जागीरदारों ने किया व किसानों पर अत्याचार बढ़ा दिये। फलस्वरूप अब आन्दोलन ने जागीरदारी के ही उन्मूलन पर ध्यान केन्द्रित कर लिया। जागीरदारों ने किसान सभाओं व लोक परिषद् के कार्यकर्ताओं पर क्रूर व पाश्विक अत्याचार आरम्भ किये और इसकी पराकाष्ठा डाबरा कांड के रूप में हुई, जहां 13 मार्च 1947 को पुलिस ने परिषद् कार्यकर्ताओं व किसानों के शांतिपूर्ण जुलूस पर हमला कर दिया। इस कांड की चारों ओर भर्त्सना की गई, पर राज्य सरकार ने दोषियों को दंडित करने के स्थान पर कृषकों व लोक परिषद् के कार्यकर्ताओं को ही दोषी ठहराया। इस गम्भीर समस्या का समाधान भी स्वतंत्रता पश्चात् ही हो पाया। मारवाड़ में किसानों का नेतृत्व सर्व श्री जयनारायण व्यास, राधाकृष्ण तात आदि जैसे जुझारू नेताओं ने किया।

सीकर व शेखावाटी में कृषक आंदोलन– 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजस्थान के अन्य इलाकों के समान सीकर ठिकाने के किसान भी जुल्मों से त्रस्त थे। किसानों की भूमि का कोई लेखा–जोखा नहीं रखा जाता था, लगान निर्धारण का कोई उचित पैमाना नहीं था, लगान की दरें काफी ज्यादा थी। अकाल की स्थिति व फसलों के खराब होने पर भी लगान वसूली में किसान की स्थिति का ख्याल नहीं रखा जाता था। लगान के अतिरिक्त किसानों से अनेक प्रकार की लाग–बाग और बेगार भी

ली जाती थी। किसान आन्दोलन का प्रारम्भ सीकर ठिकाने के रावराजा कल्याणसिंह द्वारा 25 से 50 प्रतिशत तक भू–राजस्व वृद्धि करने से हुआ व 1923 ई. में वर्षा कम होने पर भी नयी दर से लगान वसूली की। राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में किसानों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई।

1931 ई. में 'राजस्थान जाट क्षेत्रीय सभा' की स्थापना के बाद किसान आन्दोलन को नई ऊर्जा मिली। किसानों को धार्मिक आधार पर संगठित करने के लिए ठाकुर देशराज ने पलथाना में एक सभा कर ''जाट प्रजापति महायज्ञ'' करने का निश्चय किया। बसंत पंचमी 20 जनवरी 1934 को सीकर में यज्ञाचार्य पं. खेमराज शर्मा की देखरेख में यह यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद किसान यज्ञपति कुं. हुक्मसिंह को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकालना चाहते थे किन्तु रावराजा कल्याणसिंह और ठिकाने के जागीरदार इसके विरुद्ध थे। इससे लोगों में जागीरदारों के प्रति रोष उत्पन्न हुआ और माहौल तनावपूर्ण हो गया।

प्रसिद्ध किसान नेता छोटूराम ने जयपुर महाराजा को तार द्वारा सूचित किया कि एक भी किसान को कुछ हो गया तो अन्य स्थानों पर भारी नुकसान होगा और जयपुर राज्य को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। अंततः किसानों की जिद के आगे सीकर ठिकाने को झुकना पड़ा और स्वयं ठिकाने ने जुलूस के लिए सजा–सजाया हाथी प्रदान किया। सात दिन तक चलने वाले इस यज्ञ कार्यक्रम में स्थानीय लोगों सहित उत्तरप्रदेश, पंजाब, लुहारू, पटियाला और हिसार जैसे स्थानों से लगभग तीन लाख लोग उपस्थित हुए।

सीकर किसान आन्दोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सिहोट के ठाकुर मानसिंह द्वारा सोतिया का बास नामक गाँव में किसान महिलाओं के साथ किए गये दुर्व्यवहार के विरोध में 25 अप्रेल, 1934 ई. को कटराथल नामक स्थान पर श्रीमती किशोरी देवी की अध्यक्षता में एक विशाल महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। सीकर ठिकाने ने उक्त सम्मेलन को रोकने के लिए धारा–144 लगा दी। इसके बावजूद कानून तोड़कर महिलाओं का यह सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में लगभग 10,000 महिलाओं ने भाग लिया जिनमें श्रीमती दुर्गादेवी शर्मा, श्रीमती फूलांदेवी, श्रीमती रमादेवी जोशी, श्रीमती उत्तमादेवी आदि प्रमुख थी। 25 अप्रैल 1935 को जब राजस्व अधिकारियों का दल लगान वसूल करने के लिए कूदन गांव पहुँचा तो एक वृद्ध महिला धापी दादी द्वारा उत्साहित किए जाने पर किसानों ने संगठित होकर लगान देने से इंकार कर दिया। पुलिस द्वारा किसानों के विरोध का दमन करने के लिए गोलियाँ चलाई गई जिसमें चार किसान – चेतराम, टीकूराम, तुलछाराम तथा आशाराम शहीद हुए और 175 को गिरफ्तार किया गया। इस विभत्स हत्याकाण्ड के बाद सीकर किसान आन्दोलन की गूंज ब्रिटिश संसद मे भी सुनाई दी। जून 1935 में जब इस पर हाऊस ऑफ कामन्स में प्रश्न पूछा गया तो जयपुर के महाराजा पर मध्यस्थता के लिये दबाव पड़ा और जागीरदार को समझौते के लिए विवश होना पड़ा, 1935 ई. के अंत तक किसानों की अधिकांश मांगे स्वीकार कर ली गई। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले प्रमुख नेताओं में सरदार हरलालसिंह, नेतरामसिंह गौरीर, पृथ्वीसिंह गोठड़ा, पन्नेसिंह बाटड़ानाउ, हरूसिंह पलथाना, गोरूसिंह कटराथल, ईश्वरसिंह भैंरूपुरा, लेखराम कसवाली आदि शामिल थे।

शेखावाटी आंदोलन सीकर कृषक आंदोलन का ही विस्तार था। यहां के पांच ग्राम समूह (पंचपाने) बिसाऊ, डुंडलोद, मलसीसर, मंडावा व नवलगढ़ ठिकाने राज्य प्रशासन की अकर्मण्यता, व 1929–30 ई. की विश्व व्यापी आर्थिक मंदी के कारण त्रस्त थे। इनकी समस्याओं का समर्थन अखिल भारतीय जाट महासभा ने झुन्झुनूं के अपने वार्षिक सम्मेलन में किया, जिससे किसानों को नैतिक बल मिला। उचित सुनवाई न होने के कारण किसानों ने लगान न देने का फैसला किया। 1934 ई. व 1936 ई. में कुछ समझौतों की रूपरेखा तो बनी पर जागीरदारों के विरोध के कारण क्रियान्विति नहीं हो सकी। 1938 ई. में जयपुर प्रजामण्डल ने भी इस आंदोलन को नैतिक समर्थन दिया। 1942–46 ई. के मध्य जयपुर राज्य दोनों पक्षों की संतुष्टि के लिए विभिन्न समझौते लागू करने का प्रयत्न करती रही, पर इसका स्थायी समाधान 1947 के बाद निकल गया।

बून्दी किसान आन्दोलन – पं. नयनूराम, राम नारायण चौधरी और हरिभाई किंकर के नेतृत्व में बून्दी के किसानों ने भी अन्याय व लाग–बाग के विरूद्ध आन्दोलन किया। किसान परिवारों की स्त्रियों ने भी भाग लिया। बरड़गांव में किसानों की सभा पर पुलिस ने गोलियां चलायी। बरड़ के किसान भी राज्य में फैली अव्यवस्था व भ्रष्टाचार, बेगार, लागतों, युद्ध ऋण की वसूली जैसे मुद्दों पर असंतुष्ट थे। बिजौलिया किसान आंदोलन की सफलता व राजस्थान सेवा संघ से प्रोत्साहित होकर उन्होंने भी आंदोलन करने की ठानी। 1922 ई. में बून्दी के किसानों की कई बैठक हुई, जिसमें भूराजस्व के अतिरिक्त किसी अन्य कर की अदायगी न करने का फैसला किया गया। बून्दी प्रशासन की चेतावनी के बावजूद ये बैठकें चलती रहीं। 4 जून 1922 ई. में डाबी में पंचायत करने पर आंदोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

अलवर का किसान आन्दोलन (नीमूचणा काण्ड)– अलवर राज्य में भी जन जागृति का प्रारंभ किसान आन्दोलन से हुआ। जंगली सूअरों के उत्पात से दुखी होकर राज्य के किसानों ने आन्दोलन चलाया। महाराजा ने समझौता करके सूअरों को मारने का आदेश दिया। बाद में राज्य के किसानों ने लगान वृद्धि के विरोध में नीमूचणा गांव में सभा का आयोजन किया। सैनिकों ने गांव छोड़कर जाने वाले लोगों पर गोलियां चलाई जिसमें सैंकड़ों स्त्री–पुरूष, बच्चे शहीद हो गए। महात्मा गाँधी ने नीमूचणा कांड का विरोध किया। अंग्रेजी शासन पर इस कांड का दबाव पड़ा और उन्होंने अलवर के महाराजा के साथ मिलकर किसानों से समझौता किया। इसके अलावा मारवाड़, शेखावाटी, जयपुर एवं हाड़ौती के किसानों ने भी राज्य में होने वाले अत्याचारों का विरोध किया।

किसान आन्दोलन का महत्व– राजस्थान और राष्ट्रीय स्तर पर इन आन्दोलनों का महत्व रहा। किसान आन्दोलनों ने शासकों और अंग्रेजीसरकार की दमन कारी नीति को देश के सामने रखा।

राजनैतिक जन चेतना के विकास में योगदान दिया। सामन्ती व्यवस्था को समाप्त करने व प्रजातांत्रिक शासन की भावना को बल मिला। किसानों व जनता के पक्ष में राष्ट्रीय नेताओं और कांग्रेस ने भी समर्थन दिया।

जनजाति आन्दोलन व समाज सुधार

राजस्थान में दक्षिणी क्षेत्र में भील निवास करते हैं, जो मुख्यतः डूंगरपुर, मेवाड़, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ व कुशलगढ़ के इलाके हैं। भील अत्यन्त परम्परावादी जाति है जो अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर को लेकर सजग रहती है। जब इनके परंपरागत अधिकारों का हनन हुआ, तो इन्होंने अपना विरोध प्रकट किया, चाहे वह फिर अंग्रेजों के विरूद्ध हो या फिर शासक के विरूद्ध हो।

भील, उनकी प्रकृति और चरित्र

भील भारत की प्राचीनतम जातियों में से एक मानी जाती है। भीलों की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित है। बाणभट्ट कृत कादम्बरी के अनुसार 'भील' शब्द का उपयोग प्राचीन संस्कृत और अपभ्रंश–साहित्य में भी मिलता है। कथासरित्सागर में 'भील' शब्द का उपयोग संभवतः सर्वप्रथम माना जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'भील' शब्द की उत्पत्ति 'भिल्ला'' शब्द से हुई है। कर्नल टाड इन्हें वन पुत्र अथवा 'जंगली शिशु' के नाम से पुकारता है। एक अन्य किवदंति के अनुसार भील महादेव से उत्पन्न हुए हैं। कुछ भी हो, राजस्थान में भीलों का विशेष योगदान रहा है। महाराणा प्रताप की सेना में अधिकांश भील थे और उन्होंने मुगल आक्रमण से रक्षा करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वास्तव में यह एक बहुत ही सरल व निश्छल जाति है और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा वर्ग रहा है, परन्तु इस सब के बावजूद भील एक साहसी और वफादार जाति है। इनके मुख्य हथियार तीर कमान हैं। वे अपने रीति–रिवाज और परम्पराओं के प्रति बहुत अधिक सजग हैं और उसका उल्लंघन करना उन्हें रुचिपूर्ण नहीं लगता। यही कारण है कि जब किसी कानून के द्वारा उनके रीति–रिवाज और परम्पराओं का उल्लंघन हुआ है तो उन्होंने सदैव प्रतिकार करने का प्रयत्न किया है। उदाहरणतः 18वीं शताब्दी में उन्होंने मराठों के विरूद्ध संघर्ष किया तो 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह किया। यह अन्य बात है कि कर्नल टॉड की सफल कूटनीति के परिणामस्वरूप 12 मई, 1825 को भीलों और ब्रिटिश सरकार के मध्य एक समझौता हो गया, जिसके अनुसार भीलों की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि वे चोर, डाकू अथवा ब्रिटिश सरकार के शत्रुओं को कभी शरण नहीं देंगे तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के आदेशों का पालन करेंगे।

गोविन्द गुरू व भगत आन्दोलन– गोविन्द गुरू एक महान समाज सुधारक थे। जिन्होंने भीलों के सामाजिक व नैतिक उत्थान का बीड़ा उठाया। उन्हें सामाजिक दृष्टि से संगठित करके उन्हें मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया। इस लक्ष्य के लिये उन्होंने 'सम्प सभा' की स्थापना की व उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में बनाये रखने के लिये भगत पंथ की स्थापना की। सम्प सभा के माध्यम से मेवाड़, डूँगरपुर, ईडर, गुजरात, विजयनगर और मालवा के भीलों में सामाजिक जागृति से शासन सशंकित हो उठा और भीलों को 'भगत पंथ' छोड़ने के लिए विवश किया जाने लगा।

जब उन्हें बेगार व कृषि कार्य के लिए बाध्य किया गया और जंगल में उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया, तो वे आंदोलन के लिए विवश हो गए। गोविन्द गुरू के प्रयासों से शिक्षा का प्रचार होने के साथ–साथ सुधार भी होने लगा। उदाहरण के लिये जब भीलों में मद्यपान का प्रचलन कम होने लगा, तो कुशलगढ़ व बांसवाड़ा राज्य को आबकारी क्षेत्र में भारी नुकसान उठाना पड़ा। अंग्रेजों ने इस सुधार व संगठन के पीछे 'भील राज्य' की स्थापना की संभावना व्यक्त की। अप्रैल 1913 ई. में डूँगरपुर राज्य द्वारा पहले गिरफ्तार और फिर रिहा किए जाने के बाद गोविन्द गुरू अपने साथियों के साथ ईडर राज्य में मानगढ़ की पहाड़ी पर चले गये (जो बांसवाड़ा व सथ राज्य की सीमा पर स्थित है।) अक्टूबर 1913 ई. को उन्होंने अपने संदेश द्वारा भीलों को मानगढ़ की पहाड़ी पर एकत्र होने के लिए कहा। भील भारी संख्या में हथियार लेकर एकत्र हो गये। उनके द्वारा बाँसवाड़ा राज्य के दो सिपाहियों को पीटा गया। सूथ, किले पर हमला किया गया। इस कार्यवाही ने सूथ, बांसवाड़ा, ईडर व डूंगरपुर राज्यों को चौकन्ना कर दिया। ए.जी.जी. की स्वीकृति मिलते ही 6 से 10 नवम्बर 1913 ई. के बीच मेवाड़ भील कोर की दो कम्पनियां, 104 वेलेजली राइफल्स की एक कम्पनी, राजपूत रेजीमेन्ट की एक कम्पनी व जाट रेजीमेन्ट की एक कम्पनी मानगढ़ की पहाड़ी पर पहुँच गई और गोलीबारी करके भीलों को मार दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस कार्यवाही में 1500 भील मारे गए। इस नरसंहार को कई इतिहासकारो को जलियॉवाला बाग हत्याकाण्ड से भी अधिक विभत्सकारी बताया है।

मोतीलाल तेजावत

गोविन्द गुरू

इस प्रकार भगत आंदोलन निमर्मता पूर्वक कुचल दिया गया। गोविन्दगुरू को 10 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई। यह तो स्पष्ट है कि भीलों की कोई महती राजनीति महत्वाकांक्षा नहीं थी, किन्तु उनमें व्याप्त सामाजिक एकता भी अंग्रेजों व शासकों के लिये चुनौती बन गई। गोविन्द गुरू अहिंसा के पक्षधर थे व उनकी श्वेत ध्वजा शांति का प्रतीक थी। इस आन्दोलन के परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए। भीलों के साथ–साथ समाज के दूसरे वर्गों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई।

मोतीलाल तेजावत व एक्की आंदोलन– अंग्रेजों द्वारा भगत आन्दोलन कुचल दिए जाने के बाद भीलों का आंदोलन कुछ

समय के लिये निष्क्रिय हो गया। फिर भी भगत आंदोलन का प्रभाव भीलों की राजनीतिक चेतना पर पड़ा। भीलों के विरूद्ध सरकारी नीति जारी रही। 1917 ई. में भीलों व गरासियों ने मिलकर महाराणा को पत्र लिखकर दमनकारी नीति व बेगार के प्रति अपना विरोध जताया। कोई परिणाम न निकलता देखकर 1921 में बिजौलिया किसान आंदोलन से प्रभावित होकर भीलों ने पुनः महाराणा को अत्यधिक लागतों व कामदारों के शोषणात्मक व्यवहार के विरूद्ध शिकायत दर्ज की। इन सभी अहिंसात्मक प्रयासों का जब कोई परिणाम नहीं निकला तो भोमट के खालसा क्षेत्रों के भीलों ने लागतें व बेगार चुकाने से इंकार कर दिया। 1921 ई. में भीलों को मोतीलाल तेजावत का नेतृत्व प्राप्त हुआ। तेजावत ने भीलों को लगान व बेगार न देने के लिये प्रेरित किया। एक्की आन्दोलन के नाम से विख्यात इस आंदोलन को जनजातियों के राजनीतिक जागरण का प्रतीक माना जा सकता है। डूंगरपुर के महारावल ने आंदोलन फैल जाने के भय से सभी प्रकार की बेगारें अपने राज्य से समाप्त कर दी। जागीरी क्षेत्रों में भीलों को यह सुविधा न मिल पाने के कारण एक्की आंदोलन संगठित रूप से तेजावत के नेतृत्व में भोमट क्षेत्र के अतिरिक्त सिरोही व गुजरात क्षेत्र में भी फैल गया। अग्रेंजी सरकार ने अब दमनात्मक नीति अपनाई। 7 अप्रैल 1922 ई. को ईडर क्षेत्र में माल नामक स्थान पर मेजर सटन के अधीन मेवाड़ भील कोर ने गोलीबारी की। 3 जून 1929 ई. को ईडर राज्य ने तेजावत को गिरफ्तार कर मेवाड़ सरकार को सौंप दिया। मेवाड़ के सर्वोच्च न्यायालय महाइन्द्राज सभा ने लिखित में तेजावत से राज्य के विरूद्ध कार्य न करने का आश्वासन मांगा। गाँधीजी के निकट

सहयोगी श्री मणिलाल कोठारी के हस्तक्षेप से एक समझौता हुआ। 16 अप्रैल 1963 ई. को तेजावत ने लिखित में इच्छित आश्वासन दिया और 23 अप्रैल को वह रिहा कर दिए गए।

मीणा आन्दोलन– 1924 ई. में अंग्रेजी सरकार ने मीणाओं को ज्यराम पेशा कोम' (जन्मजात अपराधी जाति) घोषित कर दिया। मीणा स्त्री–पुरूषों को प्रतिदिन पुलिस थाने पर जाकर हाजरी देनी पड़ती थी। आय के साधनों के अभाव में आर्थिक स्थिति खराब थी। छोटूलाल, महादेव, जवाहर राम आदि ने 'मीणा जाति सभा' की स्थापना की तथा इस अपमानजनक कानून का विरोध किया गया। शिक्षा के लिए प्रचार–प्रसार किया। सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध आवाज उठायी। 'मीणा सुधार समिति' गठित की गई। श्रीमाधोपुर (सीकर जिला) में आन्दोलन हुआ। ठक्कर बापा के प्रयासों से जयपुर राज्य ने इस कानून को समाप्त कर दिया।

इसके परिणाम स्वरूप थानों में अनिवार्य उपस्थिति की बाध्यताओं को समाप्त किया गया किन्तु जरायम पेशा अधिनियम पूर्ववत् बना रहा। 28 अक्टूबर 1946 ई. को बागावास में हुए विशाल सम्मेलन में 26000 मीणाओं ने भाग लिया ।इसमें चौकीदार मीणाओं ने स्वेच्छा से अपने कार्य से इस्तीफा दिया, और इस दिन को मुक्ति दिवस के रूप में मनाया। जरायम पेशा अधिनियम 1952 ई. में ही रद्द हो पाया।

प्रजामण्डल के नेतृत्व में सम्पूर्ण आजादी

जिस समय अखिल भारतीय स्तर पर राजनीतिक चेतना फल रही थी, राजस्थान भी इससे अछूता नही रहा। यहां विभिन्न संस्थायें जैसे राजस्थान सेवा संघ व राजस्थान मध्य भारत सभा देशी रियासतों में राजनीतिक चेतना जागृत करने में सफल रही। यही नहीं ब्रिटिश प्रान्त के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं से भी राजस्थान के स्वतंत्रता प्रेमी निरन्तर सम्पर्क में रहे।

राजस्थान में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलन को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। 1927 ई. से पूर्व अखिल भारतीय स्तर पर हो रही राजनीतिक हलचल से राजस्थान प्रभावित था। प्रथम विश्व युद्ध से लौटे सैनिकों का विवरण, रोलेट एक्ट, 1920 का असहयोग आन्दोलन जैसी घटनाओं ने निश्चित रूप चेतना जागृत की। यद्यपि सभी रियासतों की स्थितियाँ व समस्यायें समान ही थी, फिर भी एकीकृत संगठन के अभाव में कोई व्यवस्थित आन्दोलन का श्रीगणेश नहीं हो पाया। कांग्रेस पार्टी ने भी देशी राज्यों के मामलों में अहस्तक्षेप की नीति घोषित कर यहां की राष्ट्रवादी गतिविधियाँ खादी का प्रयोग प्रचार एवं सामाजिक सुधारों तक ही सीमित कर दी।

1927 ई. में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की स्थापना के साथ ही सक्रिय राजनीति का काल आरंभ हुआ। कांग्रेस का समर्थन मिल जाने के बाद इसकी शाखाएँ स्थापित की जाने लगी। 1931 ई. में रामनारायण चौधरी ने अजमेर में देशी राज्य लोक परिषद् का प्रथम प्रान्तीय अधिवेशन आयोजित किया।

1938 ई. में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में काँग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर देशी रियासतों के लोगों द्वारा संचालित स्वतंत्रता संघर्ष को समर्थन किया। काँग्रेस के इस प्रस्ताव से देशी रियासतों में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम को नैतिक समर्थन मिला। इन राज्यों में चल रहे आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस से जुड़ गये और राजनीतिक चेतना का विस्तार हुआ। प्रजामंडलों की स्थापना हुई, जिसने देशी शासकों के अधीन उत्तरदायी प्रशासन की मांग की।

विभिन्न देशी रियासतों में प्रजामंडल आन्दोलन की भूमिका

जोधपुर– जोधपुर में राजनीतिक गतिविधियां 1918 ई. में ही आरंभ हो गई थी जब चांदमल सुराणा ने 'मारवाड़ हितकारिणी सभा' की स्थापना की। 1920 ई. में जय नारायण व्यास ने मारवाड़ सेवा संघ स्थापित किया। 1923 ई. में मारवाड़ हितकारिणी सभा

को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। अक्टूबर 1929 ई. में व्यासजी ने मारवाड़ राज्य लोक परिषद् की स्थापना की। उपरोक्त गतिविधियों से स्पष्ट होता है कि जोधपुर में राजनीतिक चेतना का व्यापक प्रसार अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक था। 1934 ई. में जोधपुर में प्रजामंडल की स्थापना हुई जिसके अध्यक्ष भंवरलाल सर्राफ थे। इसका उद्देश्य उत्तरदायी शासन स्थापित करना व नागरिकों की रक्षा करना था। 1936 ई. में इस संस्था को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की जोधपुर इकाई ''मारवाड़ राज्य लोक परिषद्'' सक्रिय रूप से जोधपुर में राजनीतिक गतिविधियाँ संचालित करती रही। विशेष कर जोधपुर प्रजामंडल को असंवैधानिक घोषित किये जाने के बाद से लोक परिषद् ने संवैधानिक अधिकारों व उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष जारी रखा।

चुनावों को साम्प्रदायिक आधार के स्थान पर क्षेत्रीय आधार पर करवाने के मांग परिषद् ने की। मार्च 1940 ई. में परिषद् को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिये जाने के बाद, सदस्यों ने शांतिपूर्ण प्रदर्शनों पर ध्यान केन्द्रित किया। इसके नेता जैसे रणछोड़दास गहानी, मथुरादास माथुर, कन्हैयालाल, इन्द्रमल जैन, आनंदराज सुराणा, भंवरलाल सर्राफ आदि ने अपना सारा ध्यान परिषद् की विचाराधारा लोकप्रिय बनाने में लगाया। उधर सरकार ने राजनीतिक अधिकारों की मांग को परिषद् व सामंतों के बीच संघर्ष का रूप देने का प्रयास किया। 1942 ई. में लोक परिषद ने अत्याचारों के विरूद्ध व राज्य में उत्तरदायी शासन के लिये आंदोलन आरंभ किया। व्यास जी ने परिषद का विधान स्थगित करके स्वयं को प्रथम डिक्टेटर नियुक्त किया और जोधपुर में भारत छोड़ो आंदोलन संचालित किया। प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारियाँ व भूख हड़ताल हुई जिसमें बाल मुकुन्द बिस्सा की मृत्यु हो गई। 4 नवम्बर 1947 ई. को परिषद् ने विधानसभा विरोध दिवस मनाया। 1948 ई. में विलय पत्र पर हस्ताक्षर के बाद ही उत्तरदायी सरकार का गठन हो पाया।

बीकानेर– बीकानेर क्षेत्र के प्रारंभिक नेता कन्हैयालाल ढूँढ व स्वामी गोपालदास थे। इन्होंने चुरू में सर्वहितकारिणी सभा स्थापित की। जनता को अधिकारों के प्रति जागृत करने के लिए उसने पुत्री पाठशाला खोली। महाराजा इस रचनात्मक कार्य के प्रति भी आशंकित हो उठे और षड़यंत्र बता कर उन्हें प्रतिबंधित कर दिया। अप्रैल 1932 ई. में जब लंदन में महाराजा गोल मेज सम्मेलन में भाग लेने गये तो ''बीकानेर एक दिग्दर्शन'' नामक पम्पलेट बांटे गये। जिसमें बीकानेर की वास्तविक दमनकारी नीतियों का खुलासा किया गया। लौटकर महाराजा ने सार्वजनिक सुरक्षा कानून लागू किया। स्वामी गोपालदास चंदनमल बहड़, सत्यनारायण सर्राफ, खूबचंद सर्राफ आदि को बीकानेर षड़यंत्र केस के नाम पर गिरफ्तार कर लिया गया। इस काले कानून का विरोध जारी रहा। 4 अक्टूबर 1936 ई. को प्रमुख नेता शीघ्र ही निर्वासित कर दिए गए। जिनमें वकील मुक्ताप्रसाद, मघाराम वैध व लक्ष्मीदास शामिल थे। रघुबरदयाल ने 22 जुलाई 1942 ई. को बीकानेर प्रजा परिषद् की स्थापना की, जिसका उद्देश्य महाराजा के नेतृत्व में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था। 1943 ई. में गंगासिंह जी की मृत्यु के बाद शार्दुल सिंह गद्दी पर बैठे, वे भी दमन में विश्वास रखते थे। 26 अक्टूबर 1944 ई. में 'बीकानेर दमन विरोधी दिवस' मनाया गया, जो राज्य में प्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन था। दुधवाखारा के किसानों ने जागीरदारों के दमन के विरोध में प्रजा परिषद् के सहयोग से आंदोलन शुरू किया। मार्च 1940 ई. में प्रेस अधिनियम पारित हुआ जिसमें प्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसी बीच भारत में राजनीतिक गतिविधियाँ तेज हो गई और महाराजा ने उत्तरदायी शासन की घोषणा की। 30 जून 1946 ई. में रायसिंह नगर में हो रहे प्रजा परिषद् के सम्मेलन में पुलिस ने गोलीबारी की। बदली हुई परिस्थितियों को देखते हुए सत्ता हस्तान्तरण के लक्षण जब दिखने लगे तो प्रजा परिषद् का कार्यालय पुनः स्थापित किया गया। 1946 ई. में ही दो समितियों, संवैधानिक समिति व मताधिकार समिति की स्थापना की गई। रिपोर्ट को लागू करने का आश्वासन तो दिया गया पर कोई ठोस कार्यवाही नहीं हो पाई व उत्तरदायी शासन की मांग अधूरी ही रही। 16 मार्च 1948 ई. में जसवंत सिंह दाउदसर के नेतृत्व में मंत्रिमण्डल बना जिसे प्रजा परिषद ने अस्वीकृत कर दिया और उसके मंत्रियों ने इस्तीफा दिया। 30 मार्च 1949 ई. को वृहत्तर राज्य के निर्माण के साथ रघुवरदयाल, हीरालाल शास्त्री के मंत्रिमण्डल में सम्मिलित हुए।

जैसलमेर– यह क्षेत्र राजस्थान का सर्वाधिक पिछड़ा क्षेत्र था जो विस्तारित रेगिस्तान, यातायात–संचार के सीमित साधनों व राजनीतिक पृथकता के कारण शेष राजस्थान से कटा ही रहा यहां के महारावल का दमन अत्यन्त तीव्र था। जिसके कारण 1915 ई. में सर्व हितकारी वाचनालय स्थापित करने में भी सफलता नहीं मिली। 1920 ई. में कुछ प्रवासी जैसलमेरियों ने महारावल को एक मात्र पत्र दिया, जिसमें शिक्षण संस्थाओं को संरक्षण देने, समाचार पत्रों के प्रकाशन, नगर पालिका के गठन जैसे गैर राजनीतिक मुद्दे थे। किन्तु इन मांगों का कोई परिणाम नहीं निकला।

1930 ई. में जब रघुनाथ सिंह मेहता, आईदान सिंह व सागरमल गोपा ने एक विज्ञप्ति निकाल कर पं. जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन पर उन्हें बधाई दी तो उपरोक्त नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। रघुनाथ सिंह मेहता की अध्यक्षता में स्थापित 'माहेश्वरी युवक मण्डल' को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। जब 1937–38 ई. में शिवशंकर गोपा, मदनलाल पुरोहित, लालचंद जोशी आदि ने लोक परिषद् की स्थापना का प्रयास किया। जैसलमेर में जन जागृति का श्रेय सर्वप्रथम सागरमल गोपा को जाता है। इनके अलिदान से निरंकुश शासन का विरोध ओर अधिक तीव्र हो गया। इन परिस्थितियों में मीठालाल व्यास द्वारा 1945 ई. में ''जैसलमेर प्रजा मंडल'' की स्थापना की गई। 1946 ई. में जयनारायण व्यास व अचलेश्वर प्रसाद ने जैसलमेर में एक सार्वजनिक सभा की। 2 अक्टूबर 1947 ई. को गांधीजी के जन्म दिवस पर जुलूस निकालने पर लाठीचार्ज किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् जैसलमेर की सामरिक स्थिति के कारण भारत सरकार ने अपना एक प्रशासक नियुक्त किया और कालान्तर में जैसलमेर संयुक्त राजस्थान का भाग बन गया।

मेवाड़– राजस्थान में सर्वाधिक प्रतिष्ठित राज्य मेवाड़ का था

यहां जन जागरण की पृष्ठभूमि किसान आन्दोलन व जनजातीय आन्दोलन से बनी। कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के पश्चात् माणिक्यलाल वर्मा व बलवंत सिंह मेहता ने 24 अप्रैल 1938 ई. को मेवाड़ प्रजा मण्डल की स्थापना की। इसे 11 मई 1938 ई. को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया एवं वर्मा जी को निष्कासित कर दिया गया। अजमेर जाकर वर्मा जी ने अपनी गतिविधियाँ जारी रखी व 'मेवाड़ का वर्तमान शासन' नामक पुस्तिका प्रकाशित करके शासन की कटु आलोचना की। फरवरी 1939 ई. में जब वे उदयपुर आये तो उन्हें बंदी बनाकर पिटाई की गई। इस घटना की गांधी जी ने 18 फरवरी 1939 ई. के 'हरिजन' अंक में कड़ी भर्त्सना की। माणिक्यलाल वर्मा को दो वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई। बाद में 1941 ई. में मेवाड़ प्रजामंडल पर लगी पाबन्दी हटा ली। परिणामस्वरूप राज्य भर में इसकी शाखाएँ स्थापित कर दी गई। 25–26 नवम्बर 1941 ई. को इसका पहला अधिवेशन वर्मा जी की अध्यक्षता में किया गया जिसमें भाग लेने के लिए 'आचार्य कृपलानी व विजयलक्ष्मी पंडित उदयपुर आये। अधिवेशन में मेवाड़ में उत्तरदायी शासन की मांग की गई। वर्मा जी भारत छोड़ो आन्दोलन से पूर्व होने वाली रियासती कार्यकर्ताओं की बैठक में भाग लेकर बम्बई से आये। उदयपुर आकर उन्होंने महाराणा को ब्रिटिश सरकार से संबंध विच्छेद करने के लिये पत्र भेजा। ऐसा न करने पर आन्दोलन की धमकी दी। 21 अगस्त 1942 ई. को वर्माजी को गिरफ्तार किया गया, जिसके विरोध में उदयपुर में पूर्ण हड़ताल व गिरफ्तारियाँ हुई। इस आन्दोलन में विद्यार्थी भी कूद पड़े और आन्दोलन नाथद्वारा, भीलवाड़ा और चित्तौड़ तक फैल गया। 1942 ई. का यह आन्दोलन राजस्थान के अन्य भागों में चल रहे आन्दोलनों से भिन्न था। यहां के नेता इस आन्दोलन को अखिल भारतीय स्तर पर चल रहे आन्दोलन का भाग मानते थे।

भारतीय राजनीति का परिदृश्य बदलने पर प्रजामंडल नेताओं को छोड़ दिया गया व 1945 ई. में प्रजामंडल पर प्रतिबंध हटा लिया गया। राजनीतिक चेतना को विस्तारित करने के लिए प्रभात फेरियां व राष्ट्रीय नेताओं की जयंती मनाये जाने लगी। वर्मा जी ने 31 दिसम्बर से 1 जनवरी 1946 ई. को 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद्' का सातवाँ अधिवेशन उदयपुर में बुलाया। इसकी अध्यक्षता जवाहर लाल नेहरू ने की। 1946 ई. में महाराणा ने संविधान सभा निर्मात्री सभा का गठन किया, जिसमें प्रजामंडल द्वारा मनोनीत सदस्य भी सम्मिलित हुए। इसकी रिपोर्ट प्रजामंडल ने अस्वीकार की। 2 मार्च 1947 ई. को घोषित नये संविधान को भी प्रजा मंडल ने अस्वीकार कर दिया। श्री के.एम. मुंशी द्वारा तैयार किया गया नये संविधान का प्रारूप मई 1947 ई. में अस्वीकार कर दिया गया। इस प्रकार महाराणा के प्रगतिशील सुधारों का विरोध चलता रहा। अन्ततः उदयपुर ने भारतीय संघ में सम्मिलित होना स्वीकार किया और जनतंत्रात्मक प्रक्रिया से जुड़ गया।

कोटा– कोटा में जन जागृति का श्रेय पं. नयनूराम शर्मा को जाता है, जो राजस्थान सेवा संघ के सक्रिय सदस्य थे। पं. शर्मा ने बेगार विरोधी आन्दोलन चलाने के साथ 1934 ई. में हाड़ौती प्रजामंडल की भी स्थापना की किन्तु कोई विशेष उपलब्धि नहीं हो पाई। 1939 ई. में उन्होंने पं. अभिन्न हरि के साथ मिलकर कोट राज्य प्रजामण्डल की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य राज्य में उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना करना था। 1941 ई. में प नयनूराम शर्मा की हत्या के बाद नेतृत्व पं. अभिन्न हरि के पास आ गया। इन्होंने 1 नवम्बर 1941 ई. में प्रजामण्डल के दूसरे अधिवेशन की अध्यक्षता की। 1942 ई. में वे गिरफ्तार हो गए। 1942 ई. में प्रजामंडल के नये अध्यक्ष मोतीलाल जैन ने महाराव को पत्र लिखकर ब्रिटिश सरकार से संबंध विच्छेद करने को कहा। प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं ने पुलिस को बैरकों में बंद करके शहर कोतवाली पर कब्जा कर तिरंगा फहराया। करीब दो सप्ताह तक कोटा के नगर प्रशासन पर जनता का कब्जा रहा। ऐसा इतिहास में दूसरी बार हुआ जब जनता ने प्रशासन अपने हाथ में लिया। (पहली बार 1857 ई. की क्रांति के दौरान ऐसा हुआ था।) महाराव ने जब आश्वासन दिया कि सरकार दमन का सहारा नहीं लेगी तब शासन पुनः महाराव को सौंपा गया। गिरफ्तार किए गए कार्यकर्ता रिहा कर दिए गए। यद्यपि उत्तरदायी शासन का आश्वासन दिया गया पर कोई व्यावहारिक या वास्तविक कार्य नहीं किया गया। इसी बीच स्वतंत्रता प्राप्त होने व संयुक्त राजस्थान बनने की प्रक्रिया शुरू होने से लोकप्रिय सरकार पद ग्रहण नहीं कर पाई।

बून्दी – बून्दी में सार्वजनिक चेतना के लक्षण 1922 ई. में परिलक्षित हुए। पथिक जी के बरड़ आन्दोलन को समर्थन ने नई राजनीतिक चेतना का संचार किया। पथिक जी ने रामनारायण चौधरी के साथ मिलकर कर वृद्धि व बेगार प्रथा के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ा। 1931 ई. में बून्दी प्रजामण्डल की स्थापना का श्रेय कांतिलाल को जाता है। प्रजामण्डल ने उत्तरदायी शासन की स्थापना व नागरिक अधिकारों की सुरक्षा की माँग को बार–बार उठाया। बून्दी के शासक ने 1935 ई. में सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लागू किया। प्रजामंडल ने प्रशासनिक सुधारों की माँग तेज कर दी। 1937 ई. में प्रजा मंडल के अध्यक्ष ऋषि दत्त मेहता बंदी बनाकर अजमेर भेज दिये गये। उनकी अनुपस्थिति में बृजसुन्दर शर्मा ने नेतृत्व संभाला। प्रजा मंडल गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। मेहता जी ने 1944 ई. में अपनी रिहाई के बाद 'बून्दी राज्य लोक परिषद्' की स्थापना की जिसे कुछ समय बाद मान्यता प्राप्त हो गई। महाराव ने बदलती परिस्थितियों को भांपते हुए संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया जिसमें प्रजा मंडल के सदस्य मनोनीत किए गए। नवनिर्मित संविधान पारित होने से पूर्व ही बून्दी राजस्थान में विलीन हो गया।

झालावाड़– कोटा और बून्दी राज्यों में स्थापित हाड़ौती मण्डल ने झालावाड़ राज्य में भी जागृति का लक्ष्य रखा। कोटा का नयूनराम अक्सर अपने पत्थर के व्यवसाय के सम्बन्ध में झालावाड़ आता–जाता था, जहाँ उसने लोगों में जागृति का बीड़ा उठाया। छावनी में स्थित हरिजन स्कूल के रामचन्द से वह अक्सर मिलता रहा। मांगीलाल भव्य, तनसुखलाल मित्तल, मदन गोपाल जी रामनिवास आदि ने हाड़ौती मण्डल की गतिविधियों का झालावाड़ में कुशलता से संचालन कर सार्वजनिक चेतना का कार्य किया। उनकी गतिविधियों से प्रभावित होकर और राजस्थान में बदलती हुई परिस्थितियों के कारण 1946 में झालावाड़ के नरेश ने अपने

राज्य में संवैधानिक सुधारों की घोषणा की। एच.जे. मंगलानी के अनुसार ''झालावाड़ नरेश द्वारा अपने राज्य में सुधारों की घोषणा करना प्रजातंत्रीय व्यवस्था की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास था।''

जयपुर– अर्जुनलाल सेठी द्वारा राजनीतिक आन्दोलन का आरंभ जयपुर में बाद में सेठ जमनालाल बजाज द्वारा रचनात्मक कार्यों में परिवर्तित हो गया। बजाज द्वारा 1927 ई. में चरखा संघ की स्थापना हुई, 1931 ई. में कपूरचन्द पाटनी ने जयपुर राज्य प्रजा मंडल की स्थापना की जो राजनीतिक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली नहीं रहा। कांग्रेस के हरिपुरा प्रस्ताव के बाद जमनालाल बजाज की प्रेरणा व हीरालाल शास्त्री के सक्रिय सहयोग से जयपुर राज्य प्रजा मंडल का पुनर्गठन हुआ। इसका पहला अधिवेशन 9 मई 1933 ई. को बजाज जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। प्रजामंडल का मूल उद्देश्य उत्तरदायित्व शासन की स्थापना करना था। प्रजामंडल को हतोत्साहित करने के लिये जयपुर सरकार ने कानून बनाकर किसी भी अपंजीकृत संस्था का सदस्य बनने पर रोक लगा दी। चूंकि श्री बजाज जयपुर राज्य की सीमा में नहीं रहते थे इसलिये संस्था का पंजीकरण नहीं हो पाया। राज्य द्वारा लगाये प्रतिबंध को तोड़ कर जयपुर में प्रवेश करने पर बजाज को बैराठ के निकट बंदी बना लिया गया। उन्हीं के साथ अन्य नेता जैसे हीरालाल शास्त्री, चिरंजीलाल अग्रवाल व कपूरचंद पाटनी भी बंदी बनाये गये। अब जयपुर में सत्याग्रह का संचालन गुलाबचन्द कासलीवाल व दौलतमल भंडारी के नेतृत्व में शुरू हुआ। अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रश्न को गाँधीजी ने उठाया व जयपुर के महाराजा को समझौते के लिये चेतावनी दी। एक औपचारिक बातचीत के बाद 7 अगस्त 1939 ई. को समझौता हुआ जिसके तहत प्रजामंडल को मान्यता मिली व मार्च 1940 ई. में इसका विधिवत् पंजीकरण हुआ।

हीरालाल शास्त्री इसके पहले अध्यक्ष बने। 16 सितम्बर 1942 ई. को शास्त्री जी ने जयपुर के प्रधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइल को पत्र लिखकर कुछ शर्तें रखी जिनकी पालना न करने पर आन्दोलन की चेतावनी दी। इनमें युद्ध के लिये जन–धन की सहायता न देना व उत्तरदायी शासन के लिये शीघ्र कार्यवाही करना था। इसी बीच 1942 ई. का आन्दोलन संचालित करने के विषय में विवाद उत्पन्न हुआ व बाबा हरिशचन्द्र के नेतृत्व में आजाद मोर्चा प्रजामंडल से पृथक हो गया जो 1945 ई. में नेहरू जी के प्रयासों से पुनः प्रजामंडल में मिल गया। इससे आन्दोलन में गति थोड़ी धीमी पड़ी। अक्टूबर 1942 ई. में संवैधानिक सुधारों के लिये एक समिति सरकार ने नियुक्त की जिसने 1943 ई. में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। मार्च 1947 ई. में नया मंत्रिमंडल बना किन्तु उत्तरदायी सरकार की स्थापना 30 मार्च 1949 ई. को ही हो सकी।

अलवर– अलवर में स्वाधीनता संग्राम के अग्रदूत पं. हरिनारायण शर्मा थे जिन्होंने अस्पृश्यता निवारण संघ, वाल्मीकि संघ व आदिवासी संघ की स्थापना की। 1938 ई. अलवर प्रजामंडल की स्थापना हुई जिसने महाराजा के नेतृत्व में उत्तरदायी शासन की मांग की। जब इस संस्था का पंजीकरण नहीं हुआ तो संघर्ष आरंभ हुआ। अप्रैल 1940 ई. में अलवर में निर्वाचित नगर पालिका परिषद् का गठन हुआ। अगस्त 1940 ई. में यद्यपि पंजीकरण हो गया किन्तु संस्था अथवा सदस्यों को ध्वज उपयोग करने की अनुमति नहीं थी। 1940 ई. में युद्ध कोष के लिये चंदा वसूली का विरोध कार्यकर्ताओं ने किया। इस पर हरिनारायण शर्मा व भोलानाथ मास्टर को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। जनवरी 1944 ई. में भवानीशंकर शर्मा की अध्यक्षता में प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन हुआ। उत्तरदायी सरकार के गठन की मांग को लेकर प्रजामंडल निरंतर प्रयासरत रहा। 1946 ई. में प्रजामंडल ने किसानों की मांगों का समर्थन करके उन्हें भू–स्वामित्व देने के प्रस्ताव का समर्थन किया। 30 अक्टूबर 1946 ई. में महाराजा ने संवैधानिक सुधारों के लिये समिति नियुक्त की जिसका आन्दोलन कारियों ने बहिष्कार किया। उत्तरदायी शासन की मांग अलवर के शासक ने दिसम्बर 1947 ई. स्वीकार कर ली। मार्च 1948 ई. में मत्स्य संघ में अलवर के विलय के साथ ही राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गई।

भरतपुर– भरतपुर में स्वतंत्रता आन्दोलन का श्रीगणेश जगन्नाथ दास अधिकारी व गंगा प्रसाद शास्त्री ने किया। 1912 ई. में हिन्दी साहित्य समिति की स्थापना हुई। सौभाग्य से भरतपुर के महाराजा किशनसिंह अधिक प्रगतिशील शासक थे। उन्होंने हिन्दी को प्रोत्साहित किया व उत्तरदायी शासन की माँग को स्वीकार किया व 15 सितम्बर 1927 ई. को ऐसी घोषणा भी की। ब्रिटिश सरकार ने महाराजा की इन गतिविधियों को गम्भीरता से लेते हुए उन्हें गद्दी छोड़ने पर विवश किया। उनके स्थान पर अल्प वयस्क बृजेन्द्र सिंह गद्दी पर बैठे। प्रशासन के लिए एक अंग्रेज अधिकारी की नियुक्ति की गई, जिसने जगन्नाथ दास अधिकारी को निर्वासित कर दिया व सार्वजनिक सभाओं व प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिया। हरिपुरा कांग्रेस के पश्चात् भरतपुर के नेताओं ने रेवाड़ी (हरियाणा) में दिसम्बर 1938 ई. को प्रजा मंडल ने सत्याग्रह का आह्वान किया। दिसम्बर 1940 ई. में प्रजामंडल से समझौता किया जिसके तहत प्रजा परिषद् नाम से संस्था का पंजीकरण किया गया व सभी नेता रिहा किए गए। प्रजा परिषद् का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक समस्याओं को प्रस्तुत करना, प्रशासनिक सुधारों पर बल देना व शिक्षा का प्रसार करना। परिषद् ने 27 अगस्त से 2 सितम्बर 1940 ई. तक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया। परिषद् ने भारत छोड़ों आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। सरकार ने परिषद् की संतुष्टि के लिये बृज जय प्रतिनिधि सभा का गठन किन्तु राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकी। प्रतिनिधि सभा का बहिष्कार किया गया। 1945 ई. में सत्याग्रह की घोषणा की गई किन्तु प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के कारण वह सफल नहीं हो पाया। अपने दिसम्बर 1946 ई. के कामां सम्मेलनों में बेगार समाप्त करने व उत्तरदायी शासन की माँग रखी गई। दुर्भाग्यवश राज्य के उपद्रव सांप्रदायिक झगड़ों में बदल गए। 18 मार्च 1947 ई. को भरतपुर के मत्स्य संघ में विलीन होने के बाद ही समस्याएँ समाप्त हो पाई।

धौलपुर– आर्य समाज के प्रमुख स्वामी श्रद्धानंद ने 1918 ई. से ही धौलपुर के निरंकुश शासन व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठानी

आरंभ की। स्वामी जी की मृत्यु के बाद आन्दोलन शिथिल हो गया। 1936 ई. में धौलपुर राज्य प्रजा मंडल की स्थापना कृष्ण दत्त पालीवाल ने की। यहाँ भी प्रजा मंडल उत्तरदायित्व शासन व्यवस्था व नागरिक अधिकारों की माँग को लेकर आन्दोलनरत रहा।12 नवम्बर 1946 ई. में तासिनो गाँव में अधिवेशन में पुलिस द्वारा गोलीबारी की। जनता के दबाव में आकर तासिनो कांड की जांच के आदेश दिये। 4 मार्च 1948 ई. में उत्तरदायी शासन स्थापित करना स्वीकार किया। शीघ्र ही धौलपुर मत्स्य संघ में विलीन हो गया।

अन्य राज्य – अन्य राज्यों में भी प्रजामंडल अथवा प्रजा परिषद् के नाम से स्वाधीनता आन्दोलन चलता रहा। 1938 ई. में करौली में प्रजामंडल स्थापित हुआ। उत्तरदायी शासन व नागरिक अधिकारों को लेकर त्रिलोक चंद माथुर, चिरंजीलाल शर्मा आदि ने संघर्ष जारी रखा। बांसवाड़ा में 1943 ई. में भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी ने प्रजामंडल की स्थापना की। डूंगरपुर में भोगीलाल पांड्या ने 1944 में सेवा संघ स्थापित किया। डूंगरपुर प्रजामंडल की स्थापना हरिदेव जोशी ने 1944 ई. में की। प्रतापगढ़ में ठक्कर बापा की प्रेरणा से अमृतलाल, चुन्नीलाल प्रभाकर ने प्रजामंडल की स्थापना 1936 ई. में की। सिरोही में 1939 ई. में गोकुल भाई भट्ट ने प्रजामंडल की बागडोर संभाली किन्तु यह अधिक सक्रिय नहीं हो पाया। झालावाड़ में 1947 ई. में पहली सार्वजनिक सभा हुई। किशनगढ़ प्रजामंडल की स्थापना 1939 ई. में हुई।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान में जन संस्थाएँ अपनी शैशवावस्था में गांधीवादी व रचनात्मक कार्यों में ही व्यस्त रही। रियासतों के शासकों का रवैया इतना दमनकारी था कि खादी प्रचार व स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं को भी अनेक रियासतों में प्रतिबंधित कर दिया गया। प्रेस व किताब पर प्रतिबंध आम बात थी। सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध होने के कारण जन चेतना का व्यापक प्रसार नहीं हो पाया। ऐसी कठिन परिस्थितियों में लोक संस्थाओं का अस्तित्व व कार्यप्रणाली ही कठिन था। जब तक कांग्रेस ने अपने हरिपुरा अधिवेशन (1938) में देशी रियासतों में चल रहे आन्दोलनों को समर्थन नहीं दिया, तब तक यहां पर आन्दोलन सीमित व शिथिल रहा।

हरिपुरा अधिवेशन के बाद रियासती आन्दोलन राष्ट्रीय मुख्यधारा से जुड़ गए। राष्ट्रवादी के नेताओं ने आन्दोलनों को नैतिक समर्थन दिया। फिर भी ये आन्दोलन उत्तरदायी शासन की मांग के आधार पर संचालित होते रहे। जब स्वतंत्रता मिली तो ये प्रजामंडल रियासतों के भारत में विलय के लिए प्रयासरत हो गए।

राजस्थान का एकीकरण–1947 से 1956 तक

15 अगस्त 1947 ई. को भारत स्वाधीन हुआ। परन्तु भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 की आठवीं धारा के अनुसार ब्रिटिश सरकार की भारतीय देशी रियासतों पर स्थापित सर्वोच्चता पुनः देशी रियासतों को हस्तांतरित कर दी गयी। इसका तात्पर्य था कि देशी रियासतें स्वयँ इस बात का निर्णय करेंगी कि वह किसी अधिराज्य में (भारत अथवा पाकिस्तान में) अपना अस्तित्व रखेंगी। यदि कोई रियासत किसी अधिराज्य में शामिल न हो तो वह स्वतंत्र राज्य के रूप में भी अपना अस्तित रख सकती थी। यदि ऐसा होने दिया जाता है तो भारत अने छोटे–छोटे खंडो में विभक्त हो जाता एवं भारत की एकता समाप हो जाती। तत्कालीन भारत सरकार का राजनैतिक विभाग जो अ तक देशी रियासतों पर नियंत्रण रखता था, समाप्त कर दिया गय और 5 जुलाई 1947 को सरदार बल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता रियासत सचिवालय गठित किया गया। रियासत सचिवालय सभ छोटी बड़ी रियासतों का विलीनीकरण या समूहीकरण चाहता था इन रियासतों का समूहीकरण इस प्रकार किया जाना था कि भाष संस्कृति और भौगोलिक सीमा की दृष्टि से एक संयुक्त राज्य संगठित हो सके।

राजस्थान के गठन के प्रारम्भिक प्रयास

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय राजस्थान में 22 छोटी बड़ी रियासतें थी। इसके अलावा अजमेर–मेरवाड़ा का छोटा सा क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत था। इन सभी रियासतों तथा ब्रिटिश शासित क्षेत्र को मिलाकर एक इकाई के रूप में संगठित करने की अत्यन्त विकट समस्या थी। सितम्बर 1946 ई. को अखिल भारतीय देशी राज्य लोक–परिषद ने निर्णय लिया था कि समस्त राजस्थान को एक इकाई के रूप में भारतीय संघ में शामिल होना चाहिए इधर भारत सरकार के रियासत सचिवालय ने निर्णय लिया कि स्वतंत्र भारत में वे ही रियासतें अपना पृथक अस्तित्व रख सकेंगी जिनकी आय एक करोड़ रुपये वार्षिक एवं जनसंख्या दस लाख य उससे अधिक हो। इस मापदण्ड के अनुसार राजस्थान में केवल जोधपुर, जयपुर, उदयपुर एवं बीकानेर ही इस शर्त को पूरा कर थे। राजस्थान की छोटी रियासतें यह तो अनुभव कर रही थी कि स्वतंत्र भारत में आपस में मिलकर स्वावलम्बी इकाइयाँ बनाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, परन्तु ऐतिहासिक तथा कुछ अन्य कारणों से शासकों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास एवं ईर्ष्या भरी हुई थी।

राजस्थान की प्रमुख रियासतों की समस्याएँ

(1) स्वतंत्रता एवं विभाजन के पश्चात् हुए सांप्रदायिक झगड़ मुख्य कारण थे। अलवर व भरतपुर में मेव जाति की समस्या पुनः उभर कर आई। गाँधी जी की हत्या अलवर राज्य का नाम आने से भी अलवर विवादित था।

(2) जोधपुर की भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति अत्यन्त ही महत्वपूर्ण थी। पाकिस्तान की तरफ से जोधपुर क अपनी तरफ मिलाने की चर्चा भी गरम थी।

(3) मेवाड़ के महाराणा एवं जागीरदार वर्ग अपनी गौरवपूर्ण ऐतिहासिक स्थिति के कारण संघ में विलय के इच्छुक नहीं थे।

(4) उधर बीकानेर भी सीमांत राज्य होने के कारण भारत के लिए अत्यन्त महत्तवपूर्ण प्रदेश था। यद्यपि भारत की संविधान निर्मात्री सभा में बीकानेर का प्रतिनिधित्व थ फिर भी शासक का मन स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने का ही था।

बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति में मेवाड़ महाराण द्वारा 25 जून 1946 ई. को जयपुर में राजस्थानी राजाओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसका उद्देश्य एक संघ बनान

था। किन्तु समस्त शासक एक मत न हो सके इसलिए महाराणा की योजना फलीभूत न हो सकी। इसी प्रकार डूँगरपुर के शासक ने भी बागड़ राज्य (डूँगरपुर, बांसवाड़ा व प्रतापगढ़) बनाने का असफल प्रयास किया। जयपुर व कोटा के शासकों के प्रयास भी असफल रहे।

फलस्वरूप भारत सरकार के रियासत विभाग द्वारा सभी रियासतों को मिलाकर एकीकृत राजस्थान का गठन करने का निश्चय किया गया। इस कार्य के लिए अत्यन्त बुद्धिमानी, दूरदर्शिता, संयम एवं कूटनीति की आवश्यकता थी और इसलिए यह कार्य बड़ी सावधानी से धीरे–धीरे सम्पन्न किया गया। एकीकृत राजस्थान का गठन निम्न पाँच चरणों में पूरा हुआ :

(1) प्रथम चरण में ''मत्स्य संघ'' का निर्माण किया गया। इस संघ में अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली को शामिल किया गया।

(2) द्वितीय चरण में ''संयुक्त राजस्थान'' का निर्माण किया गया जिसमें कोटा, बूँदी, झालावाड़, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ और शाहपुरा शामिल किए गये।

(3) तृतीय चरण में मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में शामिल किया गया।

(4) चतुर्थ चरण में जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर राज्यों को संयुक्त राजस्थान में शामिल कर ''वृहत राजस्थान'' का निर्माण किया गया।

(5) पंचम चरण में ''मत्स्य संघ'' को ''वृहत राजस्थान'' में शामिल किया गया।

उपर्युक्त पाँच चरणों में सिरोही व अजमेर–मेरवाड़ा एकीकृत राजस्थान में शामिल नहीं हो पाये। इनका राजस्थान में विलय 1956 में ही संभव हो सका।

मत्स्य संघ

मानचित्र – मत्स्य संघ

भौगोलिक जातीय, आर्थिक दृष्टिकोण से अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली एक से थे। चारों राज्यों के शासको को 27 फरवरी 1948 को दिल्ली बुलाकर उनके समक्ष संघ का प्रस्ताव रखा गया, जिसे सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। श्री के. एम. मुंशी के सुझाव पर इस संघ का नाम मत्स्य संघ रखा गया जैसा कि महाभारत काल में इस क्षेत्र का नाम था। 28 फरवरी 1948 को दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गये। 18 मार्च 1948 को इस संघ का उद्घाटन केन्द्रीय मंत्री एन.वी. गाडगिल ने किया। संघ की जनसंख्या 18 लाख व वार्षिक आय 2 करोड़ रूपये थी। धौलपुर के महाराज उदयभान सिंह को राजप्रमुख नियुक्त कर एक मंत्रिमण्डल का गठन किया गया। शोभाराम (अलवर) को मत्स्य संघ का प्रधानमंत्री बनाया गया एवं संघ में शामिल चारों राज्यों में से एक–एक सदस्य लेकर मंत्रिमण्डल बनाया गया। गोपीलाल यादव (भरतपुर), मास्टर भोलानाथ (अलवर), डॉ. मंगल सिंह (धौलपुर), चिरंजीलाल शर्मा (करौली) ने शपथ ली।

संयुक्त राजस्थान

कोटा, झालावाड़ व डूँगरपुर के शासकों ने एक हाड़ौती संघ बनाने का विचार किया एवं 3 मार्च 1948 को दिल्ली में इन तीनों शासकों ने संघ का विचार स्वीकार कर लिया। यही राय बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ व डूँगरपुर के राज्यों की भी बनी। स्थानीय प्रजामंडलों का दबाव भी लगातार संघ के पक्ष में बन रहा था। शाहपुरा व किशनगढ़ दो ऐसी रियासतें थी जिन्होंने पूर्व में अजमेर–मेरवाडा में विलय के प्रयास का विरोध किया था। ये रियासतें राजस्थान की अन्य रियासतों के संघ में मिलने के इच्छुक थे। इसीलिए इन्होंने संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार संयुक्त राजस्थान में 9 राज्य थे – बांसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़, कोटा, बूँदी, झालावाड़, किशनगढ़, शाहपुरा एवं टोंक। इस संघ का क्षेत्रफल 16807 वर्ग मील, आबादी 23.5 लाख एवं आय 1.90 करोड़ रूपये वार्षिक थी।

प्रस्तावित नए संघ के क्षेत्र के मध्य में मेवाड़ की रियासत पड़ती थी। यद्यपि रियासत विभाग के मापदण्डानुसार मेवाड़ अपना पृथक अस्तित्व रख सकता था। फिर भी रियासत विभाग ने मेवाड़ को इस संघ में शामिल होने का निमंत्रण दिया। किन्तु मेवाड़ के महाराणा भूपाल सिंह तथा मेवाड़ राज्य के दीवान सर एस.वी. राममूर्ति ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा कि मेवाड़ का 1300 वर्ष पुराना राजवंश अपनी गौरवशाली परम्पराओं को तिलांजलि देकर भारत के मानचित्र पर अपना अस्तित्व समाप्त नहीं कर सकता।

मेवाड़ राज्य के उपर्युक्त रवैये को देखते हुए रियासत विभाग ने निर्णय लिया कि फिलहाल उदयपुर को छोड़कर दक्षिण पूर्व राजस्थान की रियासतों को मिलाकर ''संयुक्त राजस्थान'' का निर्माण कर लिया जाए। प्रस्तावित संयुक्त राजस्थान में कोटा सबसे बड़ी रियासत थी। अतः निर्णय हुआ कि ''संयुक्त राजस्थान'' के राजप्रमुख का पद कोटा के महाराज भीमसिंह को दिया जाए और 25 मार्च 1948 को श्री एन.वी. गाडगिल इस नये संघ का उद्घाटन करें। कोटा के महाराज भीमसिंह को राजप्रमुख का पद दिया जाना, वरिष्ठता, क्षेत्रफल व महत्त्व के आधार पर बूँदी के महाराज बहादुर सिंह को स्वीकार्य नहीं था क्योंकि कुलीय परम्परा में उसका कोटा से स्थान ऊँचा था। अतः बूँदी महाराव ने मेवाड़ के महाराणा से नए राज्य में शामिल होने

की प्रार्थना की ताकि उदयपुर के महाराज राजप्रमुख बन जायेंगे, जिससे बूँदी महाराज की कठिनाइयों का स्वतः निराकरण हो जायेगा। किन्तु महाराणा ने बूँदी महाराज को भी वही उत्तर दिया जो उन्होंने कुछ दिनों पहले रियासत विभाग को दिया था। अन्त में विवश होकर बूँदी महाराव ने कोटा महाराज का संयुक्त राजस्थान के राजप्रमुख बनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बूँदी महाराव का सम्मान बनाए रखने के लिए भारत सरकार ने बूँदी महाराव को उप–राजप्रमुख तथा डूँगरपुर के महाराव को उप–राजप्रमुख बनाने का निर्णय किया। इन नौ राज्यों का एक संक्षिप्त संविधान तैयार किया गया और इसका उद्घाटन 25 मार्च 1948 को होना तय हुआ।

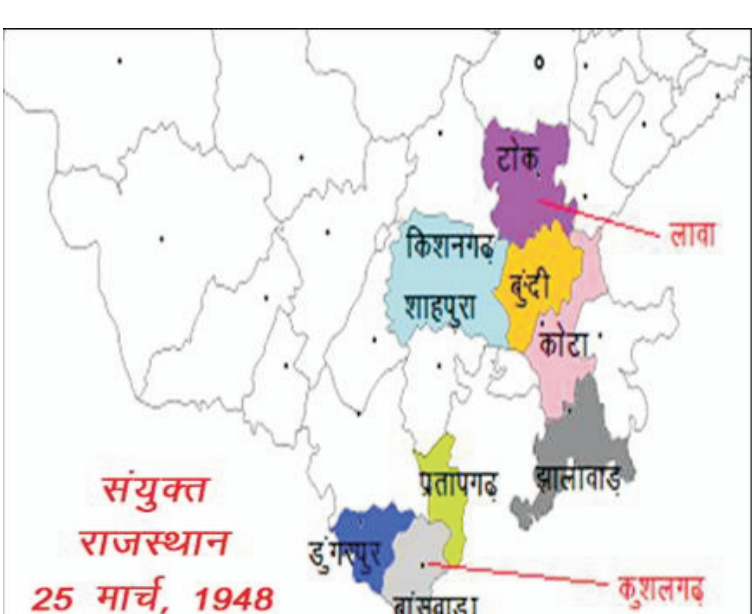

इधर मेवाड़ के संयुक्त राजस्थान में शामिल न होने के फैसले का मेवाड़ में तीव्र विरोध हुआ। मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रमुख नेता एवं संविधान निर्मात्री समिति के सदस्य श्री माणिक्य लाल वर्मा ने कहा कि – मेवाड़ की 20 लाख जनता के भाग्य का फैसला अकेले महाराणा साहब और उसके प्रधान सर राममूर्ति नहीं कर सकते। प्रजा मण्डल की यह स्पष्ट नीति है कि मेवाड़ अपना अस्तित्व समाप्त कर राजपूताना प्रान्त का एक अंग बन जाये। किन्तु महाराणा अपने निश्चय पर अटल रहे। शीघ्र ही मेवाड़ की राजनैतिक परिस्थितियाँ पलटी। मेवाड़ में मंत्रिमण्डल के गठन को लेकर प्रजामण्डल एवं मेवाड़ सरकार के बीच गतिरोध उत्पन्न हो गया। अतः राज्य में उत्पन्न राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने के लिए महाराणा ने 23 मार्च 1948 को मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में शामिल करने के अपने इरादे की सूचना भारत सरकार को भेजते हुए संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन की तारीख 25 मार्च को आगे बढ़ाने का आग्रह किया। चूँकि विलय की प्रक्रिया एवं उद्घाटन की सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी अतः ऐन वक्त पर कार्यक्रमों में परिवर्तन न करते हुए श्री गाडगिल ने संयुक्त राजस्थान का विधिवत उद्घाटन किया। श्री गोकुल प्रसाद असावा को प्रधानमंत्री बनाया गया। किन्तु भारत सरकार की सलाह पर मंत्रिमण्डल के गठन का कार्य स्थगित कर दिया गया।

मेवाड़ का संयुक्त राजस्थान में विलय

संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के तीन दिन बाद संयुक्त राजस्थान में मेवाड़ विलय के प्रश्न पर वार्ता आरम्भ हुई। सर राममूर्ति ने भारत सरकार को महाराणा की प्रमुख तीन मांगो से अवगत कराया। पहली – महाराणा को संयुक्त राजस्थान का वंशानुगत राजप्रमुख बनाया जाए, दूसरी – उन्हें 20 लाख रुपये वार्षिक प्रिवी–पर्स दिया जाए और तीसरी – यह कि उदयपुर को संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनाया जाए। रियासत विभाग ने संयुक्त राजस्थान के शासकों से बात करके मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में विलय करने का निश्चय किया।

महाराणा को आजीवन राजप्रमुख मान लिया गया। यह पद महाराणा की मृत्यु के बाद समाप्त होना तय माना गया। संयुक्त राजस्थान की राजधानी उदयपुर रखी गयी किन्तु विधानसभा का प्रतिवर्ष एक अधिवेशन कोटा में रखना निश्चित हुआ। मेवाड़ के महाराणा ने प्रिवीपर्स 20 लाख रुपये माँगे थे। इसके जवाब में प्रिवीपर्स तो 10 लाख ही रखा गया किन्तु वार्षिक अनुदान के रूप में 5 लाख रुपये व धार्मिक अनुष्ठान के लिए 5 लाख रुपये स्वीकृत किये गये। 11 अप्रैल 1948 को मेवाड़ ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए।

संयुक्त राजस्थान के निर्माण पर प्रधानमंत्री माणिक्य लाल वर्मा अपने मंत्रीमंडल सदस्यों के साथ

इस संघ का उद्घाटन पं. नेहरू ने 18 अप्रैल 1948 को उदयपुर में किया। मेवाड़ के महाराणा राज प्रमुख, कोटा के महाराज वरिष्ठ उप राजप्रमुख व बूँदी व डूँगरपुर के शासक कनिष्ठ उप राजप्रमुख घोषित किए गए। प्रधानमंत्री माणिक्यलाल वर्मा ने पंण्डित नेहरू एवं सरदार पटेल के परामर्श पर अपने मंत्रिमण्डल का गठन किया। मंत्रिमण्डल में गोकुल प्रसाद असावा (शाहपुरा), प्रेमनारायण माथुर, भूरेलाल बया और मोहन लाल सुखाडिया (सभी उदयपुर), भोगीलाल पंड्या (डूँगरपुर), अभिन्न गिरी (कोटा) एवं बृजसुन्दर शर्मा (बूँदी) थे। इस प्रकार राजस्थान एकीकरण का तीसरा चरण भी पूरा हुआ।

वृहत राजस्थान का निर्माण

मेवाड़ के विलय के साथ ही शेष बचे राज्यों का विलय आसान व निश्चित हो गया। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर में विलय एवं एकीकरण का जनमत और भी तेज हो गया। जोधपुर, बीकानेर एवं जैसलमेर राज्यों की सीमाएँ पाकिस्तान की सीमा से मिली हुई थी, जहाँ से सदैव आक्रमण का भय बना रहता था। फिर यातायात एवं संचार साधनों की दृष्टि से

भी यह क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ था, जिसका विकास करना इन राज्यों के आर्थिक सामर्थ्य के बाहर था। समाजवादी दल के नेता डॉ. जयप्रकाश नारायण ने 9 नवम्बर 1948 को एक सार्वजनिक सभा में अविलम्ब वृहद राजस्थान के निर्माण की माँग की। अखिल भारतीय स्तर पर ''राजस्थान आंदोलन समिति'' का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष डॉ. राम मनोहर लोहिया ने भी एकीकृत राजस्थान की माँग की थी।

रियासत विभाग के सचिव श्री वी.पी. मेनन ने संबंधित शासकों से वार्ता शुरू की। वे 11 जनवरी 1949 को जयपुर गए एवं जयपुर महाराज से वार्ता की। जयपुर महाराज सवाई मानसिंह काफी हिचकिचाहट एवं समझाने बुझाने के बाद वृहत राजस्थान के लिए तैयार हुए किन्तु यह शर्त रखी कि जयपुर महाराजा को वृहद राजस्थान का वंशानुगत राजप्रमुख बनाया जाए तथा जयपुर को भावी राजस्थान की राजधानी बनाया जाये। मेनन ने विलय की शर्तों पर बाद में विचार करने का आश्वासन देकर विलय की बात स्वीकार कर ली। विलय के प्रारूप की जयपुर महाराजा की स्वीकृति के बाद तार द्वारा इसकी सूचना बीकानेर और जोधपुर को भेज दी गयी। बीकानेर एवं जोधपुर के शासकों ने काफी आनाकानी के बाद विलय के प्रारूप की स्वीकृति दे दी। 14 जनवरी 1949 को सरदार पटेल ने उदयपुर की एक आम सभा में वृहत राजस्थान के निर्माण की घोषणा कर दी।

मेवाड़ के महाराणा को आजीवन महाराज प्रमुख घोषित किया गया। जयपुर के शासक को राजप्रमुख, जोधपुर व कोटा के शासकों को वरिष्ठ उप राजप्रमुख व बूँदी व डूँगरपुर के शासकों को कनिष्ठ उप राजप्रमुख बनाया गया। राजप्रमुख व उसके मंत्रिमण्डल को केन्द्रीय सरकार के सामान्य नियन्त्रण में रखा गया। राजप्रमुख को नये संविलयन पत्र पर हस्ताक्षर करके संविधान सभा द्वारा संघीय व समवर्ती सूचियों को स्वीकार करना था। सरदार पटेल ने नई संगठित इकाई का उद्घाटन 30 मार्च 1949 को किया जिसे वर्तमान में राजस्थान दिवस के रूप में मनाया जाता है। श्री हीरालाल शास्त्री ने 4 अप्रैल 1949 को मंत्रिमण्डल की कमान संभाली जिसमें श्री सिद्धराज ढड्ढा (जयपुर), प्रेमनारायण माथुर (उदयपुर), भूरेलाल बया (उदयपुर), फूलचन्द बापना (जोधपुर), नरसिंह कछवाहा (जोधपुर), राव राजा हनुमंत सिंह (जोधपुर), रघुवर दयाल गोयल (बीकानेर) व वेदपाल त्यागी (कोटा) सम्मिलित थे। जयपुर के शासक को 18 लाख रूपये, जोधपुर शासक को 17.5 लाख रूपये, बीकानेर शासक को 17 लाख रूपये, जैसलमेर शासक को 2.8 लाख रुपये प्रिवीपर्स के रूप में स्वीकृत किए गए। जयपुर को राजधानी घोषित किया गया तथा राजस्थान के बड़े नगरों का महत्व बनाये रखने के लिए कुछ राज्य स्तर के सरकारी कार्यालय यथा हाईकोर्ट जोधपुर में, शिक्षा विभाग बीकानेर में, खनिज विभाग उदयपुर में तथा कृषि विभाग भरतपुर में स्थापित किए गए।

मत्स्य संघ का वृहत राजस्थान में विलय

मत्स्य संघ के निर्माण के समय मत्स्य संघ में सम्मिलित होने वाले चारों राज्यों के शासकों को यह स्पष्ट कर दिया गया था कि भविष्य में यह संघ राजस्थान अथवा उत्तर प्रदेश में विलीन किया जा सकता है। इधर मत्स्य संघ स्वतंत्र रूप से कार्य कर र था किन्तु सरकार कई समस्याओं से घिरी थी। मेवों का उपद्र सरकार के लिए चिंता का विषय थी। भरतपुर किसान सभा नागरिक सभा द्वारा सरकार विरोधी आन्दोलन भी चरम सीमा था। भरतपुर किसान सभा ने बृजप्रदेश नाम से भरतपुर, धौलपुर अलग अस्तित्व की माँग रखी। अब यह आशंका व्याप्त होने ल कि कहीं मत्स्य संघ का ही विघटन न हो जाये। इस आशंका मध्य नजर रखते हुए चारों राज्यों के शासकों तथा प्रधानमंत्रियों बातचीत के लिए 10 मई 1949 ई. को दिल्ली बुलाया गय विचारणीय बिन्दु यह था कि ये राज्य निकटवर्ती राज्य उत्तर प्रदे में विलीन होगें अथवा राजस्थान में। जहाँ अलवर व करौ राजस्थान में विलय के पक्ष में वे वहीं भरतपुर और धौलपुर उत्त प्रदेश में विलय के इच्छुक थे। समस्या के समाधान के लिए शंकर राव देव की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गयी। इस समि की सिफारिश के अनुसार भरतपुर व धौलपुर का जनमत राजस्थ में विलय के पक्ष में था।15 मई 1948 को मत्स्य संघ राजस्थान सम्मिलित हो गया।

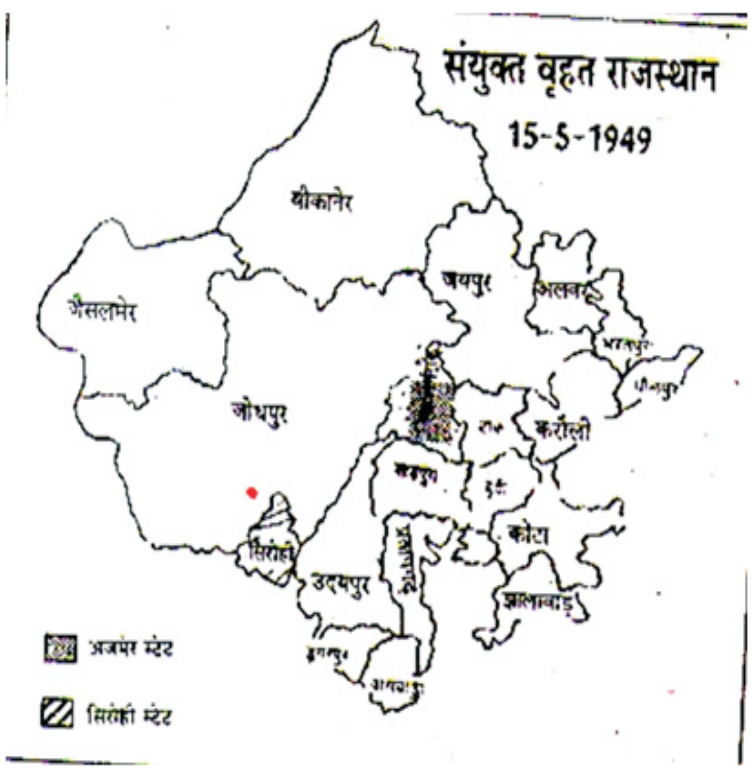

मानचित्र – संयुक्त वृहत राजस्थान

पं. हीरालाल शास्त्री राजस्थान के प्रधानमंत्री बने रहे तथा मत्स संघ के प्रधानमंत्री श्री शोभाराम को शास्त्री मंत्रिमण्डल में शामि कर लिया गया। इस प्रकार मत्स्य संघ भी राजस्थान का एक अ बन गया।

सिरोही का प्रश्न

गुजरात के नेता सिरोही स्थित माउण्ट आबू के पर्यट केन्द्र को गुजरात का अंग बनाना चाहते थे। अतः नवम्बर 1947 में ही सिरोही को भी गुजरात स्टेट्स एजेन्सी केअन्तर्गत कर दिया गया था। 10 अप्रैल 1948 को हीरालाल शास्त्री ने सरद पटेल को पत्र लिखा कि सिरोही का अर्थ है गोकुल भाई और ''बि गोकुल भाई के हम राजस्थान को नहीं चला सकते।इस

मानचित्र – राजस्थान 26.01.1950

बीच सिरोही के प्रश्न को लेकर राजस्थान की जनता में काफी उत्तेजना फैल चुकी थी। 18 अप्रेल 1948 को संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के अवसर पर राजस्थान के कार्यकर्त्ताओं का एक शिष्टमंडल पं. नेहरू से मिला और उन्हें सिरोही के सम्बन्ध में प्रदेश की जन भावनाओं से अवगत कराया। पं. नेहरू की सरदार पटेल से वार्ता के पश्चात् अत्यन्त चतुराई से जनवरी 1950 में माउण्ट आबू सहित सिरोही का 304 वर्ग मील क्षेत्र के 89 गाँव गुजरात में व शेष सिरोही राजस्थान में मिला दिया गया। इस प्रकार सिरोही के प्रमुख आकर्षण देलवाड़ा एवं माउण्ट आबू तो गुजरात में मिल गए और गोकुल भाई भट्ट के जन्म स्थान हाथल सहित सिरोही का शेष भाग राजस्थान को दे दिया गया। इस कदम का राजस्थान में तीव्र विरोध हुआ जिसका नेतृत्व मुख्यत गोकुल भाई भट्ट ने किया। राजस्थान के नेतृत्व ने पं. नेहरू से इस समस्या के समाधान के लिए दबाव बनाया। अंततः इसके निपटारे के लिए इस प्रकरण को राज्य पुनर्गठन आयोग को सौंप दिया गया।

अजमेर मेरवाड़ा का विलय

ब्रिटिश काल में अजमेर–मेरवाड़ा एक केन्द्रशासित

एकीकरण के विभिन्न चरण

क्र.सं.	नाम	राज्य	राजप्रमुख	प्रधानमंत्री / मुख्यमंत्री	तिथि / वर्ष
प्रथम	मत्स्य संघ	अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली	धौलपुर के शासक उदयभान सिंह	श्री शोभाराम	19 मार्च 1948
द्वितीय	संयुक्त राजस्थान संघ	कोटा, बूँदी, झालावाड़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, किशनगढ़, टोंक	कोटा नरेश भीम सिंह	श्री गोकुल लाल असावा	25 मार्च 1948
तृतीय	संयुक्त राजस्थान (मेवाड़ का विलय)	द्वितीय चरण के राज्यों के साथ मेवाड़	उदयपुर (मेवाड़) महाराणा भूपाल सिंह	श्री माणिक्य लाल वर्मा	18 अप्रेल 1948
चतुर्थ	वृहत् राजस्थान	तृतीय चरण के राज्यों के साथ जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर व लावा(ठिकाना)	उदयपुर महाराणा भूपाल सिंह महाराज प्रमुख, जयपुर नरेश राजप्रमुख	श्री हीरालाल शास्त्री	30 मार्च 1949
पंचम	वृहत् राजस्थान	प्रथम व चतुर्थ चरण के राज्य (नीमराणा–ठिकाना सहित)	उदयपुर महाराणा भूपाल सिंह महाराज प्रमुख जयपुर नरेश राजप्रमुख		15 मई 1949
षष्ठम	वृहत् राजस्थान	पंचम चरण के साथ सिरोही (आबू व देलवाड़ा को छोड़कर)	राज्यपाल गुरूमुख निहाल सिंह		26 जनवरी 1950
सप्तम	राजस्थान	षष्ठम चरण के साथ अजमेर, मा. आबू, देलवाडा व सुनेल टप्पा			1 नवम्बर 1956

प्रदेश रहा था। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजपूताना प्रान्तीय सभा सदैव यह माँग करती रही कि वृहत राजस्थान में न केवल प्रान्त की सभी रियासतें वरन् अजमेर मेरवाड़ा का इलाका भी शामिल किया जाए किन्तु दूसरी ओर अजमेर का कांग्रेस नेतृत्व इस माँग का विरोध कर रहा था। 1952 ई. के आम–चुनावों के बाद अजमेर–मेरवाड़ा में श्री हरीभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में कांग्रेस का मंत्रिमंडल बना। चूंकि कांग्रेस का यह नेतृत्व अजमेर को राजस्थान में मिलाये जाने के कभी पक्ष में नहीं रहा और अब अजमेर–मेरवाड़ा में मंत्रिमण्डल के गठन के बाद तो कांग्रेस का नेतृत्व यह तर्क देने लगा कि प्रशासन की दृष्टि से छोटे राज्य ही बनाये रखना चाहिए। इस प्रकरण को भी राज्य पुनर्गठन आयोग को सौंप दिया गया। राज्य पुनर्गठन आयोग ने अजमेर के कांग्रेस नेताओं के तर्क को स्वीकार नहीं किया एवं सिफारिश की कि अजमेर–मेरवाड़ा का क्षेत्र राजस्थान में मिला देना चाहिए। तदनुसार 1 नवम्बर 1956 ई. को राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा सिरोही के माउण्ट आबू वाले क्षेत्र के साथ–साथ अजमेर–मेरवाड़ा को भी राजस्थान में मिला दिया गया।

इस प्रकार राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया जो मार्च 1948 में आरम्भ हुई थी उसकी पूर्णाहुति 1 नवम्बर 1956 को हुई। एकीकृत राजस्थान के निर्माण के बाद भी राजतंत्र के अंतिम अवशेष के रूप में राजप्रमुख के नवसृजित पद रह गए थे। भारत की नवनिर्वाचित संसद ने संविधान के 7वें संशोधन द्वारा 1 नवम्बर 1956 ई. को राजप्रमुख के पद समाप्त कर दिए एवं राज्य के प्रथम राज्यपाल के रूप में सरदार गुरूमुख निहाल सिंह को शपथ दिलाई गई। इस प्रकार सरदार पटेल की चतुराई, बुद्धिमत्ता एवं कुशल नीति से, राजस्थानी शासकों की अनिच्छाओं पर जनमत के प्रभावशाली दवाब से राजस्थान के एकीकरण का स्वप्न साकार हो गया।

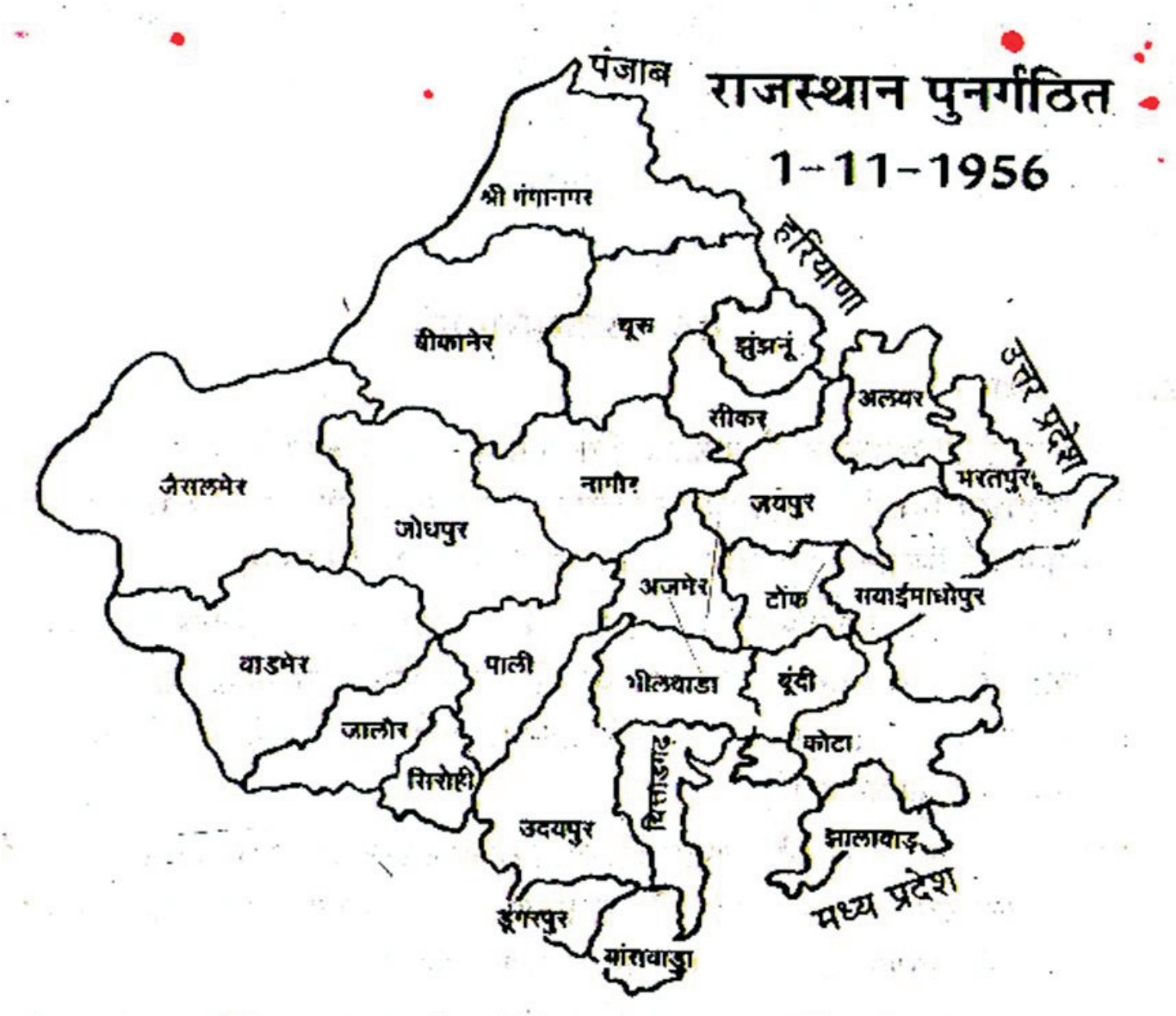

अध्ययन बिन्दु

- ❖ राजस्थान का किसान दोहरी गुलामी से लड रहा था एक अंग्रेज दूसरे देशी ठिकानेदार।
- ❖ 1857 की क्रांति का राजस्थान में आगाज नसीराबाद छावनी से हुआ था।
- ❖ केसरीसिंह बारहठ, प्रतापसिंह बारहठ, जोरावरसिंह बारहठ तीनों एक ही परिवार के क्रांतिकारी थे।
- ❖ आऊवा ठाकुर खुशाल सिंह ने खुलकर अंग्रेजों का सामना किया था।
- ❖ भगत आन्दोलन के संस्थापक गोविन्दगुरू थे ।
- ❖ एकी आन्दोलन के प्रवर्तक मोतीलाल तेजावत थे।
- ❖ विजयसिंह पथिक ने बिजौलियॉ किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया था।
- ❖ स्वामी दयानंद सरस्वती व आर्य समाज ने राजस्थान में जन–जागृति फैलाई।
- ❖ केसरीसिंह बारहठ ने ''चेतावनी रा चूगटयॉ'' नामक सोरठा लिखा।
- ❖ राजस्थान केसरी, प्रताप और नवीन राजस्थान समाचार पत्रों ने क्रांति में योगदान दिया था।
- ❖ जनजाति आन्दोलन की मुख्य जाति भील थी ।
- ❖ स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान का नेतृत्व प्रजामण्डल आन्दोलन के नेताओं ने किया था।
- ❖ राजस्थान का एकीकरण सात चरणों में सम्पन्न हुआ था।
- ❖ लावा, कुशलगढ व नीमराना चीपशीप रियासतें थी।
- ❖ स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय राजस्थान में 22 रियासतें थीं उसमें से 19 स्वतन्त्र व 3 चीपशिप थी।
- ❖ अजमेर–मेरवाडा ब्रिटिश नियंत्रित राज्य था।
- ❖ राजस्थान की रियासतों का एकीकरण लौह पुरूष सरदार बल्लभ भाई पटेल की दूरदर्शिता, कूटनीति एवं ''रियासत विभाग'' के अथक् प्रयासों से संभव हो सका।
- ❖ भारत सरकार के ''रियासत विभाग'' के निर्णयानुसार स्वतंत्र भारत में वे ही रियासतें अपना पृथक अस्तित्व रख सकेंगी, जिनकी आय ''एक करोड़ रूपये वार्षिक'' और जनसंख्या दस लाख या उससे अधिक हो।
- ❖ राजस्थान के एकीकरण का प्रथम चरण अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली को मिलाकर ''मत्स्य संघ'' के रूप में पूर्ण हुआ।
- ❖ सबसे बड़ा संघ 9 राज्यों बाँसवाड़ा,डूँगरपुर, प्रतापगढ़, कोटा, बूँदी, झालावाड़,किशनगढ़, शाहपुरा व टोंक को मिलाकर ''संयुक्त राजस्थान'' के नाम से बना।
- ❖ वृहत राजस्थान की राजधानी ''जयपुर'' को घोषित किया गया तथा राजस्थान के बड़े नगरों का महत्त्व बनाए रखने के लिए कुछ राज्य स्तर के सरकारी कार्यालय यथा हाईकोर्ट जोधपुर में, शिक्षा विभाग बीकानेर में खनिज विभाग उदयपुर में तथा कृषि विभाग भरतपुर में स्थापित किए गये।
- ❖ मत्स्य संघ के क्षेत्र भरतपुर व धौलपुर उत्तर प्रदेश (उ.प्र.) में विलय के इच्छुक थे।
- ❖ ''सिरोही के विलय'' को लेकर गुजरात एवं राजस्थान के मध्य मतभेद हुए, परन्तु राजस्थान की जनता एवं जननायकों के दबाव के फलस्वरूप सिरोही का विलय'' राजस्थान में ही किया गया।
- ❖ राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों द्वारा 1 नवम्बर 1956 को सिरोही के माउन्ट आबू वाले क्षेत्र के साथ–साथ अजमेर व मेरवाड़ा को भी एकीकृत राजस्थान में मिलाकर आधुनिक राजस्थान का निर्माण किया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1 राजस्थान में क्रांन्ति की शुरूआत कहाँ से हुई ?
(अ) नसीराबाद
(ब) नीमच
(स) मेवाड़
(द) मारवाड

2 आऊवा का संबंध किससे है ?
(अ) रामसिंह
(ब) खुशाल सिंह
(स) लक्ष्मणसिंह
(द) जोरावर सिंह

3 बिजौलिया किसान आन्दोलन के नेतृत्व कर्ता थे?
(अ) नयनूराम शर्मा
(ब) हरिभाऊ उपाध्याय
(स) विजयसिंह पथिक
(घ) जमनालाल

4 चेतावनी रा चूगटयॉ सोरठा किसने लिखा ?
(अ) प्रतापसिंह बारहठ
(ब) जोरावरसिंह बारहठ
(स) भारतसिंह बारहठ
(द) केसरीसिंह बारहठ

5 राजस्थान के एकीकरण में प्रथमचरण में किसका निर्माण हुआ?
(अ) मत्स्य संघ
(ब) राजस्थान संघ
(स) वृहत्तर राजस्थान
(द) मेवाड संघ

6 महाभारत कालीन क्षेत्र से सम्बन्धित था –
(अ) वृहत राजस्थान
(ब) संयुक्त राजस्थान
(स) सिरोही
(द) मत्स्य संघ

7 वृहत् राजस्थान की राजधानी थी –
(अ) उदयपुर
(ब) जयपुर
(स) जोधपुर
(द) कोटा

8 ''सिरोही के विलय'' को लेकर हुए आन्दोलन का नेतृत्व किया–
(अ) गोकुल भाई भट्ट
(ब) माणिक्य लाल वर्मा
(स) जय नारायण व्यास
(द) हरिभाऊ उपाध्याय

9 राजस्थान के प्रथम राज्यपाल बनाए गए–
(अ) एन.वी. गाड़गिल
(ब) हीरालाल शास्त्री
(स) गुरूमुख निहाल सिंह
(द) माणिक्य लाल वर्मा

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 नीमूचना काण्ड का संबंध कौनसे जिले से है?
2 गोविन्द गुरू ने कौनसा आन्दोलन शुरू किया था ?
3 एक्की आन्दोलन के प्रवर्तक का नाम लिखो।
4 मेवाड प्रजामण्डल के नेतृत्व को गति प्रदान करने वाले नेताओं के नाम बताओ।
5 अर्जुनलाल सेठी व जमनालाल बजाज ने किस क्षेत्र को अपना कर्मक्षेत्र चुना था ?
6 राजस्थान का एकीकरण कितने चरणों में पूर्ण हुआ ?
7 वृहत राजस्थान के प्रधानमंत्री कौन थे ?
8 ब्रिटिश काल में राजस्थान में स्थित केन्द्र शासित प्रदेश का नाम क्या था ?
9 राजस्थान दिवस किस तारीख को मनाया जाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 राजस्थान में जनजागृति के क्या–क्या कारण थे ?
2 कोटा के विप्लव के जन आक्रोश को अपने शब्दों में लिखो।
3 विजयसिंह पथिक ने जन–जागरण का कार्य किस प्रकार किया ?
4 एक ही परिवार के तीनों शहीद सपूतों का नाम लिखो।
5 गोविन्द गुरू ने आदिवासियों में जागृति का कार्य किस प्रकार किया था ?
6 मत्स्य संघ के वृहत राजस्थान में विलय की प्रक्रिया स्पष्ट कीजिए।
7 सिरोही किस प्रकार राजस्थान में सम्मिलित हुआ ?
8 संयुक्त राजस्थान में विलय के लिए मेवाड़ के महारणा ने क्या–क्या शर्तें रखी थीं ?
9 रियासत सचिवालय की स्थापना कब एवं क्यों की गई थी ?
10 प्रजामण्डल आंदोलन का संक्षेप में वर्णन करें ।

निबंधात्मक प्रश्न

1 बिजौलिया किसान आन्दोलन की सफलता में विजयसिंह पथिक के योगदान को रेखांकित करो।
2 आदिवासी आन्दोलन में भगत व एक्की आन्दोलन को विस्तार से समझाओ ।
3 राजस्थान में क्रांति के केन्द्र कहाँ थे व उनका क्या परिणाम रहा।
4 राजस्थान के एकीकरण के चरणों का वर्णन करिए ।
5 राजस्थान के एकीकरण के पूर्व राजस्थान की रियायतों की स्थिति व उनकी समस्याऐं लिखिए।

उत्तर बहुचयनात्मक प्रश्न

1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (द) 5. (अ)
6. (द) 7. (ब) 8. (अ) 9. (स)

.....

संदर्भ ग्रन्थ

बी.एन. मुखर्जी – स्टडीज इन कुषाण जियनोलॉजी एण्ड क्रोनोलॉजी

एस.के. पाठक – लाइफ ऑफ नागार्जुन

पाउलमेंशन – एनसिएन्ट इण्डिया एण्ड इण्डियन सिविलाइजेशन

के.पी. जैसवाल – हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

के.सी. ओझा – हिस्ट्री ऑफ फारेन इन एनसिएन्ट इण्डिया

भावतशरण उपाध्याय – वृहतर भारत

डॉ. गोपीनाथ शर्मा– राजस्थान का इतिहास

रघुवीर सिंह– दुर्गादास राठौड

पण्डित विश्वेश्वर नाथ रेऊ– मारवाड़ का इतिहास

हीरानन्द कायस्थ– तारीख–ए–किला–रणथम्भौर

जगदीश सिंह गहलोत– राजपूताने का इतिहास

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा– राजपूताने का इतिहास

पं. नरोत्तमदास स्वामी– बांकीदास री ख्यात

रघुवीर सिंह– जोधपुर राज्य की ख्यात

राजेन्द्र शंकर भट्ट– मेवाड़ के महाराणा और शहंशाह अकबर

मीरा मित्र– महाराजा अजीतसिंह और उनका युग

मुंशी देवीप्रसाद– औरंगजेबनामा

कविराज श्यामलदास– वीर विनोद

डॉ. गोपीनाथ शर्मा– ऐतिहासिक निबन्ध राजस्थान

रघुवीर सिंह– पूर्व आधुनिक राजस्थान

दीनानाथ दुबे– भारत के दुर्ग

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, – ओझा निबन्ध–संग्रह (भाग–2) :

विद्याधर महाजन तथा

सावित्री महाजन– भारत 1526 से आगे

बी.एल. ग्रोवर, यशपाल– आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन

डॉ. सत्या राय– भारत में उपनिवेशवाद

डॉ मोहन लाल साहू– भारत का इतिहास एंव संस्कृति 1526–1950

प्रो. टी. के. माथुर– भारत का इतिहास एंव संस्कृति 1526–1950

डॉ. के.एस. सक्सेना– राजस्थान में राजनैतिक जन–जागरण

डॉ. जे.के़. ओझा–	मेवाड़ का इतिहास
पृथ्वीसिंह मेहता–	हमारा राजस्थान
डॉ. गोपीनाथ शर्मा–	राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास
डॉ.बी.एल. पानगड़िया–	राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम
डॉ. रामप्रसाद व्यास–	आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास
डॉ. मुरारी लाल शर्मा–	राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति
पट्टाभि सीतारम्मैया–	दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस
सुभाषचंद्र बोस –	द इंडियन स्ट्रगल
अयोध्या सिंह–	भारत का मुक्ति संग्राम
विपिन चंद्र–	भारत का स्वतंत्रता संघर्ष
रामलखन शुक्ल (सं.)–	आधुनिक भारत का इतिहास
अबुल कलाम आजाद–	इंडिया विंस फ्रीडम
गुलाबराव महाराज–	विश्व व्यापिनी हिन्दी संस्कृति
म्यूर –	हिस्टी ऑफ इण्डिया
सरवाल्टर रैले –	हिस्टी ऑफ वर्ल्ड
कर्नल अल्काट–	थियोसोफी, मार्च 1881 का अंक
मैक्समूलर –	इण्डिया व्हाट केन इट टीच अस
मसूदी–	मिडास ऑफ दी गोल्ड
डॉ आशीष आसोपा–	अतीत से साक्षात्कार
डॉ. के.जी.शर्मा, एच.सी.जैन–	भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
शर्मा, शल्य, शर्मा–	प्राचीन भारत का इतिहास
शिवकुमार मिश्रा–	राजस्थानी संस्कृति :परम्परा,कला एवं साहित्य
शिवकुमार गुप्त–	भारतीय संस्कृति के मुख्य आधार
वी.पी.मेनन–	दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स
शिवकुमार आस्थाना–	भारत का सांस्कृतिक स्राम्राज्य
शरद् हेबालकर–	भारतीय संस्कृति का विश्व संचार
सुरेश सोनी–	हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत
देवेन्द्र सिंह चौहान–	पुण्य सलिला सरस्वती नदी
राजेन्द्र प्रसाद मिश्र–	वैदिक ऋषि परम्परा एवं वंशावलियां
बाबूलाल भाट–	वंशावली लेखन परम्परा में 20 वीं शताब्दी के बून्दी राज्य का सामाजिक व आर्थिक जीवन

शब्दावली

रेजीडेन्ट–	देशी राज्यों में अग्रेंजी सरकार का प्रतिनिधि
छावनी–	सेना के रहने का स्थान
लाग–बाग–	लगान की लागत
बेगार–	बिना पारिश्रमिक दिये कार्य करवाना
हाड़ौती –	कोटा, बूंदी, बारॉ व झालावाड़ का क्षेत्र
प्रजा मण्डल–	आम नागरिक का लोकतांत्रिक संगठन
मत्स्य संघ–	भरतपुर, अलवर व करौली का क्षेत्र
साम्प्रदायिक–	सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित
अधिनियम–	कानून
अन्तरिम–	अस्थायी व्यवस्था
गाजी–	धर्म युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला योद्धा।
चौथ–	शिवाजी द्वारा पड़ोसी राज्यों से लिया जाने वाला उनकी आय का 1/4 अंश।
फरमान–	राजाज्ञा
फतवा–	किसी धार्मिक या न्यायिक प्रश्न पर शरियत के अनुसार निर्णय
मनसब–	मुगल सेना एवं प्रशासन से सम्बन्धित पदानुक्रम
मंजनीक–	पत्थर फेंकने का यंत्र
पशेब–	विशेष प्रकार के चबुतरे, जो किले की ऊँचाई तक पहुँचने के लिये बनाए जाते थे।
मगरबी–	ज्वलनशील पदार्थ फैंकने का यंत्र
टर्रादा–	पत्थरों की वर्षा करने वाला यंत्र
फदिया–	चौहानों के पतन से 1540 ई. के मध्य राजस्थान में प्रचलित स्वतन्त्र मुद्रा शैली।
बैक्ट्रियन–	मध्य एशिया की यूनानी शाखा
श्रेणियाँ–	व्यापारियों के वर्ग
परिनिर्वाण–	सांसारिक उलझन से मुक्ति
प्रतिरोध–	मुकाबला करना
विक्रमादित्य–	अत्यन्त पराक्रमी उपाधि
सहिष्णुता–	सहन करने की क्षमता
रेशम मार्ग–	चीन से रोम तक जाने वाला व्यापारिक मार्ग
संधिकाल–	एक व्यवस्था पतन की ओर एवं दूसरी व्यवस्था का शुरूआती दौर
विश्वसंचार–	विश्व में व्याप्त
गोदीवाड़ा–	बन्दरगाह
विलीनीकरण–	समाहित हो जाना
सीमान्त–	सीमा का अन्तिम क्षेत्र
रजाकार–	हैदराबाद के शासक के कर्मचारी